वंशभास्कर : एक अध्ययन

लेखक
डा. आलमशाह खान

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर

प्रकाशकीय

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर की प्रकाशन शृंखला के समादृत शोध ग्रन्थों में सूर्यमल्ल शताब्दि स्मृति स्वरूप एक गौरवमय अभिवृद्धि—'वंश भास्कर : एक अध्ययन'।

महाकवि सूर्यमल्ल प्रणीत हिन्दी साहित्य के विशालतम ऐतिहासिक महाचंपू 'वंशभास्कर' ग्रन्थ पर युवा शोध-कर्मी-लेखक डा. आलमशाह खान ने जिस मनोयोग से कार्य किया है उसका युगाकलन अवश्य होगा।

महाकवि सूर्यमल्ल बहुभाषाविद् प्रकाण्ड पण्डित एवं *साक्षात् विराट् काव्यपुरुष थे। डा. खान के गहन विवेचन* तथा विश्लेषण से इस दिव्य व्यक्तित्व के भव्य कृतित्व का एक अभिनव आयाम विस्तृत होगा।

वस्तुतः वंशभास्कर 'एक विराट् जातीय-अभिलेख' है। आशा है, इस कृति के प्रकाशन का विद्वत् समाज स्वागत करेगा।

ओंकार पारीक
कार्यवाहक निदेशक
राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर

प्रस्तावना

बूंदी के बहुचर्चित, बहुप्रशसित तथा सर्वत्र समादृत महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण तथा उनकी कृतियों के साथ प्रारंभ से ही अपेक्षा अथवा अपूर्णता की अनपेक्षित अनोखी परंपरा जुड़ गई है। 'छंदो-मयूख' और 'सती रासो' की प्रतियां देखने को भी नहीं मिलती हैं। 'बलवद्-विलास' और 'धातु-रूपावली' की प्राप्य प्रतियाँ अंगुलियों पर गिनी जा सकती हैं। साधारणतया सुलभ होने पर भी महाकवि की प्रारंभिक रचना होने के कारण 'राम-रंजाट' की ओर काव्य-रसिकों और सुविज्ञ समालोचकों ने कभी ध्यान नहीं दिया। 'वीर-सतसई' और 'वंशभास्कर' को महाकवि ने स्वयं पूरा नहीं किया। पुनः जहां 'वीर-सतसई' प्रारंभ में अधिकतर कण्ठ पर ही प्रसारित होती रही, वहाँ अपूर्ण 'वंशभास्कर' के इने गिने 'चरित्रों' की ही प्रतिलिपियां तब करवाई गई थीं या उन्हें लीथो द्वारा छपवा कर सुलभ किया गया था। अपूर्ण 'वंशभास्कर' को महाकवि के दत्तक पुत्र मुरारिदान ने यथासंभव परिपूर्ण किया और शाहपुरा के कृष्णसिंहजी बारहठ ने उस पर 'उदधि मथिनी' टीका लिखी तब इस टीका सहित परिपूर्ण 'वंशभास्कर' को जोधपुर से संवत् १६५६ वि. मे प्रकाशित किया गया। उस समय भी उसकी कुछ ही प्रतियां सुलभ हुई तथा बाकी के छपे हुए, बिना जिल्द बँधे फरमे कई युगों तक दीमक के खाद्य बनते रहे। यही नहीं, उसके देहावसान की एक शताब्दी बाद भी 'महाकवि सूर्यमल्ल-शताब्दी-समारोह' के सुअवसर पर आयोजित इस महाकवि विषयक प्रकाशन कार्यक्रम भी पूर्णतया कार्यान्वित नहीं किया जा सका। महाकवि के महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार का वह प्रस्तावित संग्रह अब भी अप्रकाशित ही पड़ा है। अतः यह कम सतोष की बात नहीं है कि महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण कृत 'वंश-भास्कर' पर डा० आसमशाह खान द्वारा यह शोध-प्रबंध अनेकानेक बाधाओं को पार कर पूरा किया जा सका। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा पी० एच० डी० डिग्री के लिए समनुमोदन के साथ स्वीकृत किया गया, और पूरे पांच वर्ष बाद अब प्रकाशित हो रहा है।

मध्यकालीन राजस्थान के भाषा वैचित्र्यपूर्ण साहित्यिक तथा अध्ययनीय ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथों की विशिष्ट परंपरा की महत्वपूर्ण अंतिम कड़ी होने के कारण 'वंशभास्कर' का राजस्थान के साहित्य और ऐतिहासिक आधार-सामग्री में अपना उल्लेखनीय स्थान है। तथापि अपने बृहदाकार, विविध भाषाओं की दुरूह शब्दावली की सुसज्जा और इतिहास के साथ ही अनेकानेक गहन दुर्बोध विषयक विवेचनों के कारण ही यह ऐतिहासिक महाकाव्य 'वंश-भास्कर' साहित्य-साधकों को भी निरंतर भयभीत ही करता रहा है। उसके बारे में पहिले जो कुछ भी लिखा गया है, वह अधिकतर उसके कुछ इने-गिने अंशों की ऊपरी देख-भाल अथवा कुछ-एक अटकलों पर ही आधारित था। अतएव महाकवि सूर्यमल्ल के 'वंशभास्कर' के रचना-कार्य को सहसा अधूरा ही छोड़ देने के कोई एक शताब्दी बाद उस

पर इस शोध-ग्रंथ की रचना कर डा० आलमशाह खान ने एक आवश्यक महत्वपूर्ण साहित्यिक सत्कार्य का सुप्रारंभ किया है ।

'वीर-सतसई' की भूमिका में दिया गया सूर्यमल्ल का जीवन-विवरण मुख्यतया उसी ग्रंथ-विशेष पर केन्द्रित था । अतः अपने इस अध्ययन में डा० आलमशाह खान ने उसके जीवन-वृत्त संबंधी जो विस्तृत चर्चा की है, वह उक्त विवरण की पूरक हो गई है। सूर्यमल्ल की अन्य विभिन्न रचनाओं आदि का समुचित परिचय भी दिया गया है; वह तत्संबंधी भावी संशोधकों को अवश्य ही सहायक होगा । इस शोध ग्रंथ के लिखे जाने के कोई तीन वर्ष बाद महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण शताब्दी समारोह के शुभअवसर पर उस महाकवि विषयक जो भी लेख ग्रंथ आदि प्रकाशित हुए हैं, वे डा० आलमशाह खान द्वारा प्रस्तुत तद्विषयक रूपरेखा में यत्र-तत्र कुछ अधिक जानकारी जोड़कर उसे यथासंभव परिपूर्ण कर सकेंगे ।

अपने इस अध्ययन के प्रारंभ में विद्वान लेखक ने 'वंशभास्कर' ग्रंथ का सामान्य परिचय देते हुए उसकी अपूर्णता के संभावित कारण को भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। 'वंश-भास्कर' प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतियों का विवरण देने के बाद उस पर लिखी गई विभिन्न टीकाओं की भी जानकारी दे दी गई है। इस प्रसंग में यह बात विशेषरूपेण पाठकों के आग्रह पर 'वंशभास्कर' के अन्तर्गत चित 'बुधसिंह चरित्र' की टीका स्वयं सूर्यमल्ल को प्रस्तुत करनी पड़ी थी । इधर बूंदी के वर्तमान महाराव राजा बहादुरसिंह ने समूचे 'वंशभास्कर' का गद्यात्मक अनुवाद श्री ईश्वरीप्रसाद राव से तैयार करवाया है, जिसे अविलम्ब प्रकाश में लाने की आवश्यकता सुस्पष्ट है, क्योंकि इस दुरूह ग्रंथ का अध्ययन करने तथा उसे ठीक तरह से समझने में उससे विशेष सहायता मिल सकेगी ।

डा० आलमशाह खान ने 'वंशभास्कर' के स्वरूप-विवेचन का भी विशेष प्रयत्न किया है । भाषा और साहित्य के कई विद्वानों ने उसे महाकाव्य की संज्ञा दी है, जिससे वह उसी रूप में प्रख्यात है । परन्तु स्वयं सूर्यमल्ल ने उसे 'महाचंपू' ही कहा है । अतः डा. आलमशाह खान ने 'वंशभास्कर' में प्रयुक्त कथन-शैली, अभिव्यंजना प्रणाली, विषय-प्रतिपादन विधि आदि की परीक्षा बाह्य और आन्तरिक दोनों दृष्टिकोणों से सविस्तार की है तथा अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "विश्लेषण के आधार पर 'वंशभास्कर' चम्पू ही सिद्ध होता है ।" पुनः "नाना विषय-गर्भित रचना होने के कारण ही संभवतः सूर्यमल्ल ने 'चंपू' के साथ 'महा' विशेषण जोड़ दिया है ।"

'वंशभास्कर' की प्रबन्ध-योजना का विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस काव्य विशेष के विस्तार-वैभव हेतु कवि को विभिन्न प्रबंधन शैलियों का उपयोग करना पड़ा है, परन्तु उसमें कहीं भी शास्त्रमुखापेक्षी न रहकर वह नितांत ही स्वच्छंद रहा है। नाना-विषयक-समाहारक दृष्टि से कवि ने इस महाचम्पू की रचना की थी जिससे उसमें वर्णित विभिन्न प्रसंग अनायास ही इस ग्रंथ के आवश्यक अंग बन गये हैं ।

'वंशभास्कर' का महत्व प्रारंभ से ही विशेषतया बूंदी-राज्य के हाड़ा राजघराने के

प्रामाणिक बृहत् इतिहास ग्रंथ के रूप में आँका जाता रहा है। अतः उसके संक्षिप्त 'पद्यात्मक सार' के रूप में पं० गंगासहाय ने 'वंशप्रकाश' की रचना की थी। अपनेसुजात ग्रंथ 'उम्मेद सिंह चरित्र' और 'वीर पराक्रमी हाड़ा राव' में भी उनके रचयिता मेहता लज्जाराम शर्मा ने 'वंशभास्कर' में दिये गये ऐतिहासिक विवरणों का प्रचुर प्रयोग तथा विश्लेषणात्मक विवेचन किया था। यही नहीं, वंशभास्कर के अन्तर्गत सप्तम राशि में वर्णित 'बुधसिंह चरित्र' और 'उम्मेदसिंह चरित्र' की ही प्रतियाँ अधिकतर करवाई गईं जिससे वे ही यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं। इसी मांग के फलस्वरूप ईसा की १९ वीं शती के अन्तिम वर्षों में इन्हीं दोनों चरित्रों की प्रतियां लीथो पर छपवाकर तब बूंदी से प्रकाशित की गई थीं।

बूंदी राज्य के संस्थापक देवा हाडा से लेकर इस हाड़ा राजघराने के विभिन्न शासकों तथा उनके वंशजों की ब्योरेवार वंशावलियाँ, स्वयं उनके, उनके भाई-बेटों तथा पुत्रियों आदि के विवाह-सम्बन्धों अथवा अन्य कौटुम्बिक और क्षेत्रीय इतिहास के लिए 'वंशभास्कर' बहुत ही महत्वपूर्ण है। तत्कालीन राजस्थान के कई प्रसिद्ध राजपूत राजघरानों की वंशावलियों आदि पर भी उससे विशेष प्रकाश पड़ता है। इधर पिछले चालीस वर्षों से वंशभास्कर का चतुर्थ भाग ईसा की १८वीं शतीकालीन राजस्थान के इतिहास के महत्वपूर्ण आधार ग्रंथ के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा है। अतएव डा. आलमशाह खान को अनिवार्य रूपेण इस महाचंपू के इतिहास पक्ष का भी विवेचन करने का प्रयत्न इस शोध ग्रंथ के बारहवें अध्याय में करना पड़ा है।[१]

"इतिहासकार का गुण है सामग्री का पता लगाना और उसे निष्पक्षता के साथ उपस्थित करना। इस गुण का सूर्यमल्ल में अभाव नहीं; उसने अपने जानते कहीं किसी के प्रति पक्षपात नहीं दिखाया।" "यह नहीं माना जा सकता है कि इतिहासकार के दायित्व की उसने अवहेलना की है।" तथापि 'वंशभास्कर' के इतिहास पक्ष में जो त्रुटियाँ पाई जाती हैं उनके कारणों की विवेचना करते हुए डा. खान ने सच ही लिखा है कि "उस युग में इतिहास के साधन आज की तरह प्रचुर नहीं थे और न ही इस दिशा में कोई खोज ही हो पाई थी।" अतः जहाँ 'इतिहास विवेक' का प्रश्न उठता है, "यह कमी सूर्यमल्ल की कमी न होकर (राजस्थान में) उसके युग की इतिहास लेखन-प्रक्रिया की कमी है।"

डॉ० आलमशाह खान के अनुसार "'वंश-भास्कर' क्षत्रियों का एक विराट जातीय अभिलेख है"। इस 'वंश-प्रकाशक ग्रंथ' में छत्तीसों राज-कुलों की जातिगत विशेषताओं का समाहार सहज ही हो गया है।" अतएव 'वंश भास्कर' में उनके सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की जो झलक देखने को मिलती है, उसको भी अति संक्षेप में तेरहवें अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। विवाहादि

१—'वंशभास्कर' के ऐतिहासिक पक्ष के विवेचन के लिये 'महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण स्मृति ग्रंथ' में पृ० ४५-७८ पर देखो मेरा लेख-"ऐतिहासिक आधार-सामग्री के रूप में 'वंशभास्कर' का महत्व और उसकी उपयोगिता।"।

धार्मिक कृत्यों और धार्मिक विश्वासों, सामाजिक रीति-नीति तथा सती-प्रथा आदि के कुछ विशेष उल्लेख को यहां संकलित किया है। 'रजवट' की ह्रासोन्मुख अवस्था की चर्चा के साथ राजपूत राजाओं में पारस्परिक ईर्ष्या और प्रतिशोध (वैर) की उत्कट भावनाओं के कुछ उदाहरण भी दिये गये हैं। समर रीति के साथ ही सामाजिक और आर्थिक स्थिति के कुछ संकेत भी प्रस्तुत किये गये हैं। यों समाज की जो झलक देखने को मिलती है, उसमें तद्विषयक विशृंखलित उल्लेख मात्र हैं, जिन्हें लेकर आगे अधिक गहराई तक खोज और गहन अध्ययन किया जा सकेगा।

जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है "हिन्दी साहित्य की सबसे विशाल कृति होते हुए भी 'वंश-भास्कर' विद्वत् समाज द्वारा पूर्णतया उपेक्षित ही रहा।" जिन इने-गिने विद्वानों ने इसे हाथ में लेने का साहस किया, वे भी उसका विस्तृत गहन अध्ययन नहीं कर पाये, और उसे राजस्थान के एक चारण की रचना जानकर उन्होंने जो भ्रांत धारणाएं बना लीं, उनका प्रसार भी किया। अतएव ग्यारहवें अध्याय में विद्वान् संशोधक द्वारा प्रस्तुत 'वंशभास्कर' की भाषा सम्बन्धी विवेचना का अपना विशेष महत्व है।

सूर्यमल्ल अपने युग का श्रेष्ठ भाषाविद् था। अतः अपने इस बृहत् ग्रंथ में उसने कुल मिलाकर कोई बारह विभिन्न भाषाओं में रचनाएं की हैं। यों 'वंशभास्कर' एक मिश्र-भाषा काव्य बन गया है। परन्तु भाषा के विषय में सूर्यमल्ल ने सर्वत्र बड़ी सावधानी बरती है। किसी भी भाषा अथवा भाषा रूप का प्रयोग करने से पहिले उसने स्वयं ही इस बात का स्पष्ट निर्देश कर दिया है कि वह आगे किस भाषा अथवा भाषा-रूप विशेष का प्रयोग करने जा रहा है। यों 'वंशभास्कर' में सूर्यमल्ल ने भाषाशास्त्र के वर्तमान अध्येताओं के लिये उन अनेकानेक विभिन्न भाषाओं अथवा भाषा-रूपों सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रचुर आधार सामग्री प्रस्तुत की है, जिसकी ओर अब तक किसी का ध्यान नहीं गया है।

इस बृहत् ग्रंथ मे पाये जाने वाले इस सुस्पष्ट विभिन्न भाषा-वैचित्र्य के होते हुए भी सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर के अधिकतर अंशों की रचना (१) ब्रज देशीय भाषा अथवा पिंगल और (२) मरु देशीय भाषा अथवा डिंगल, या उनके विभिन्न मिश्रित भाषा-रूपों में ही की थी। अतएव डॉ० आलमशाह खान ने अपने अध्ययन में इन दोनों भाषाओं अथवा उनके निर्दिष्ट मिश्रित भाषा रूपों के संक्षिप्त भाषा-शास्त्रीय विवेचन में उनकी पृष्ठभूमि, उनके भाषा-नियम, वैयाकरणीय समानताओं और कतिपय विशेषताओं आदि के उदाहरण भी दिये हैं।

इस शोध ग्रंथ का मुख्य भाग वह है, जिसमें एक अनुपम महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति के रूप में 'वंशभास्कर' के अनेकानेक विशिष्ट पहलुओं का प्रथम बार विस्तृत गहन विवेचन करते डॉ० आलमशाह खान ने तत्सम्बन्धी अपने निष्कर्षों और मान्यताओं को सोदाहरण प्रस्तुत किया है, जिससे सुविज्ञ पाठकों को सूर्यमल्ल रचित इस महाचम्पू के बारे में समुचित जानकारी हो सके। यों 'वंशभास्कर' में किये गये 'वस्तु-विवरण' की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है—"मूलतः इतिहास-संभूत रचना होने के कारण 'वंशभास्कर' वर्णनों एवं

विवरणों से आपूर एक विराट का सार देश बन गया है। जैसे इस महाग्रंथ का विस्तार अत्यधिक असीमित है, वैसे ही वस्तु-वर्णन भी अत्यंत व्यापक है। लोक और राज-समाज से सम्बन्धित अनेक वस्तुओं के वर्णन-प्रसंगों का इसमें समाहार हुआ है।" इसी संदर्भ में डॉ० आलमशाह खान ने यह माना है कि प्रासंगिक विषय को लेकर कवि ने स्थान-स्थान पर अपनी विषय-बहुज्ञता का प्रदर्शन करने में जो सूचनात्मक वर्णन-विवरण लिखे हैं, वे अवश्य ही काव्य के रसास्वादन में बाधक प्रमाणित होते हैं।

पुनः 'प्रायः इतिहास की कठोर और तथ्यपरक भूमि में विचरण करने के कारण कवि-कल्पना को युद्ध, सेना, उत्सव, विवाह आदि के वर्णनों में ही अपने पंख पसारने का अवसर मिला है..........(जिससे) 'वंशभास्कर' में काव्यत्व का समाहार हो गया है।" परन्तु विद्वान् लेखक की इस मान्यता से कि 'वर्णनों में भी वहीं कवित्व उभरा है जहाँ इतिहास दूषित नहीं होता है' कोई भी इतिहासकार कदापि सहमत नहीं हो सकेगा। युद्ध के समस्त प्रसंग ऐतिहासिक हैं। एवं सत्य के चौखटे में जहाँ कवि ने सेना-वर्णन तथा युद्ध-वर्णन के रंग भर कर इतिहास को काव्य से वस्तुतः अनुरंजित कर दिया है, वहाँ कल्पना पर आधारित इन वर्णनों में वह अनेकों बार ऐतिहासिक तथ्यों से बहक ही नहीं गया है, परन्तु यदा-कदा वह भयंकर ऐतिहासिक भूलें भी कर बैठा है। युद्धों में चतुरंगिणी सेना व्यवस्था का प्रयोग भारत में मुसलमानों के आक्रमणों से पहिले ही लुप्त प्राय हो चुका था। पुनः भारतीय युद्धों में तोपों बन्दूकों का प्रथम बार ईसा की १६ वीं प्रारम्भ से ही होने लगा था। अतः सेनाओं, युद्धों आदि के ये कल्पना-प्रसूत विवरण अधिकतर तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक तथ्यों से विहीन हैं। प्रायः ऐसे सब ही विवरणों की परख उनकी सजीवता, परिपूर्णता अथवा प्रभावक काव्यात्मकता आदि की दृष्टि से ही की जानी चाहिये।

प्रकृति तथा ऋतु आदि वर्णन सब ही कवियों को अनिवार्य रूपेण आकर्षित करते हैं, जिससे ये विवरण महाकाव्य के आवश्यक लक्षण माने जाते रहे हैं। परन्तु 'वंशभास्कर' में इनका प्रवेश काव्य परम्परा के निर्वाह के लिए और वह भी संकुचित समास रूप में ही हो पाया है। काव्य के रूढ़ि-गत उपकरणों के प्रति सूर्यमल्ल के क्रांतिकारी दृष्टिकोण तथा 'वंशभास्कर' में उसके प्रयोग को डॉ० आलमशाह खान ने अभिनन्दनीय माना है।

विवाहादि उत्सवों के प्रसंगों को लेकर जहाँ कवि ने नृत्य, नट कला आदि मनोरंजन के तत्कालीन साधनों का सविस्तार सजीव विवरण प्रस्तुत किया है, वहाँ राज समाज की उस समय की रीति-परम्पराओं का भी पूरा-पूरा चित्रण किया है। साथ ही लोक-जीवन का सूर्यमल्ल ने बहुत ही भावपूर्ण समग्र चित्रण प्रस्तुत किया है। 'वर्णन-कौशल में गुंफित कवि की बहुज्ञता......तत्कालीन नागर-जीवन का साकार चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुई है,...... उसमान सामंत-काल के जन-जीवन का ऐसा वर्णन दुष्प्राप्य है।"

'वंशभास्कर' एक वीर धर्माख्यानक है, जिसमें मूल रूप से चौहान कुलोद्भूत हाड़ा शाखा के लगभग दो सौ वंशधरों का चरित्र वर्णित हुआ है। प्रसंगवशात् अन्यान्य वंशों के भी कई महत् व्यक्तियों को भी पात्र रूप में निरूपित किया गया है। साथ ही पृष्ठभूमि के रूप में

दिये गये विवरणों में पुराणों के प्रसिद्ध पात्रों की चरित्र सृष्टि भी इसमें हुई। इन सब ही प्रकार के अनेकानेक पात्रों में से कुछ विशिष्ट का जो चरित्र-चित्रण सूर्यमल्ल ने 'वंशभास्कर' में किया है उसका संक्षिप्त विश्लेषण डॉ० खान ने किया है, जो रोचक होने के साथ ही विचारोत्तेजक तथा 'वंशभास्कर' के अध्ययन का प्रेरक भी है। "राम के चरित्र-चित्रण में देवत्व की अपेक्षा मनुजत्व-पक्ष अधिक मुखर है।" "पौराणिक राज-चरित्रों के प्रकाशन में यथार्थ का प्रश्रय अधिक लिया गया है।" डॉ० खान के ये निष्कर्ष विचारणीय हैं।

पुनः "अर्वाचीन ऐतिहासिक पात्रों के विधान में 'व्यक्ति वैशिष्ठ्य संरक्षा' एक नियामक तत्व है।" यही नहीं "विविध पात्रों की व्यक्ति-सत्ता किसी एक ही आदर्श की लीक पर नहीं उभारी गई है।" "पात्रों के चित्रण में अलौकिक विधान कवि को इष्ट नहीं रहा है। यही कारण है कि सब ही पात्र यथार्थ बन गये हैं।" "गुण वैविध्य और व्यक्ति-वैचित्र्य 'वंशभास्कर' के पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है।"

"कवि ने पात्रों के यथार्थ जीवन के मोड़ों का क्रम-संयोजन इस चातुर्य से किया है कि उनके चरित्र के विरोध वक्रताएं आकस्मिक नहीं लगतीं।......(और) गौरव-मंडित पात्रों का हीन पर्यवसान देखकर भी उनके प्रति हमारी सहानुभूति का क्षय नहीं होता।"

यों 'वंशभास्कर' में सूर्यमल्ल के पात्र-विधान' की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद इस महाचम्पू के अध्येता ने सूर्यमल्ल, सुर्जन, दूदा, रत्नसिंह, शत्रुशल्य, भावसिंह, बुधसिंह, उम्मेदसिंह आदि कतिपय प्रतिनिधि नवैतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण का विस्तृत विश्लेषण किया है। डॉ० आलमशाह खान के अनुसार "वंशभास्कर के पुरुष पात्र *यदि रजवट की मशाल हैं, तो नारी-पात्र उसे प्रज्वलित करने वाले अग्नि-स्फुलिंग।*" "कहा जा सकता है कि 'वंशभास्कर' की नारी की कोख से ही 'वीर-सतसई' की नारी का जन्म हुआ है।" अतएव उन्होंने कतिपय विशिष्ट नारी-पात्रों का चरित्र-विश्लेषण भी इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। 'वंशभास्कर' में सूर्यमल्ल ने वीर क्षत्राणी ज्वलंत शौर्य भावना के अनेकों अनोखे मुंह बोलते चित्र नाना रंग-विभव के साथ चित्रित किये हैं। "मानवीय अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति को यदि कविता कहा जाय तो उससे बड़ी कविता और क्या होगी?"

'वंशभास्कर' की शैली की भी सविस्तार समीक्षा की गई है। "विश्लेषण में सूर्यमल्ल के व्यक्तित्व के दो ध्रुव सिद्ध होते हैं—एक पाण्डित्य और दूसरा कवित्व। कहना कठिन है कि इन दोनों में से कौन प्रबल है।" "उसकी शैली में उसके व्यक्तित्व के दोनों पक्ष मुखर होकर व्यक्त हुए हैं। सूर्यमल्ल का 'कवि और पण्डित' 'वंशभास्कर' में साथ-साथ चले हैं।" "*पाण्डित्य और काव्य - चमत्कार के एक साथ दर्शन होते हैं।*" "इस वंश-प्रकाशक ग्रंथ में काव्य-शैली और शास्त्र-शैली का अपूर्व सामंजस्य द्रष्टव्य है।"

'वंशभास्कर' में अपनाई गई शैली विशेष के विधायक तत्वों पर विचार करने के बाद उसके दो विभिन्न पहलुओं-'विषय-प्रतिपादन-शैली' और "साहित्यिक शैली' पर सविस्तार विवेचन किया गया है। "षड् भाषा में काव्य रचना भी कवि का लक्ष्य है। भारतीय साहित्य

की समस्त शास्त्रीय और लौकिक शैलियों के दर्शन–क्या पद्य में और क्या गद्य में– यहाँ हो जाते हैं।" इसी संदर्भ में सुविज्ञ लेखक ने 'भावात्मक शैली' 'लक्षणा-व्यंजना शैली' 'चित्रात्मक शैली' 'ऊहात्मक शैली' 'वीप्सा शैली' आदि के परिचयात्मक कुछ कुछ उपयुक्त उदाहरण 'वंशभास्कर' में से दिये हैं।

अपने वर्ण्य विषय को सहृद संप्रेष्य बनाने के लिए सूर्यमल्ल ने 'वंशभास्कर' में जिन अनेकानेक प्रकार के अप्रस्तुत विधानों को खड़ा किया है, उनकी भी सोदाहरण विवेचना की गई है। पुनः इस महाचंपू में सूर्यमल्ल का जो वाग्विलास' और 'शब्द-सौष्ठव' बारबार देखने को मिलता है, उनके भी अनेकों उदाहरण दिये गये हैं। "यह भाषाविद् सूर्यमल्ल का शब्द-भण्डार नितांत ही समृद्ध है।" एक-एक भाव और गति-चित्र के लिये उसके पास अनेक शब्द हैं जिनका सटीक सुष्ठु एवं प्रशंसनीय प्रयोग देखते ही बनता है।" "अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त और संप्रेष्य बनाने के लिये सूर्यमल्ल ने मुहावरों का और लोकोक्तियों का भी (प्रचुर) प्रयोग किया है।"

"इस प्रकार 'वंशभास्कर' की शैली का पाट बड़ा विस्तृत है। उसका एक किनारा प्राचीन संस्कृत काव्य-परिपाटी का स्पर्श कर रहा है तो दूसरा रीतिकालीन दरबारी काव्य की प्रवृत्तियों तक विस्तृत है।" "शैली में पुरातनत्व रहते हुए भी नवीनता है, जिसमें काव्य-निर्माण की ओर ध्यान रखते हुए भी विवरण-संग्रह का महत्व कम नहीं (है)।"

डा० आलमशाह खान ने 'वंशभास्कर' के सर्वांगीण विवेचन वाले अपने इस 'अध्ययन' में 'वंशभास्कर' में अलंकार-योजना; उसकी 'छंद-समीक्षा' 'भाव-व्यंजना' एवं 'रस-निष्पत्ति' शीर्षक तद्विषयक विवेचना के अलग-अलग विस्तृत अध्याय लिखे हैं। साहित्य-शास्त्र के इन विशिष्ट अंगों का मैंने व्यक्तिगत कोई अध्ययन कभी नहीं किया एवं उनके संबंध में मेरा यहाँ कुछ भी कहना एक अनधिकार चेष्टा ही होगी। परंतु जिस विशेष लगन, अथक परिश्रम और दृढ़-निश्चय के साथ 'वंशभास्कर' का विस्तृत गहन अध्ययन कर उन्होंने ये विश्लेषण प्रस्तुत किये हैं, उन्हें देखते यह विश्वास अवश्य होता है कि 'वंशभास्कर' के भावी अध्येताओं के लिये ये अध्याय अवश्य ही विशेष रूपेण सहायक होंगे।

'वंश-भास्कर' में सूर्यमल्ल ने अनेकों स्थलों पर अपनी बहुज्ञता का जो विशेष प्रदर्शन किया है उसकी विविधता का कुछ परिचय अंतिम अध्याय में दिया गया है। ज्योतिष, गणित, संगीत एवं काव्य-शास्त्र, भाषा-व्याकरण एवं छंद-ज्ञान, योग तथा आयुर्वेद, धर्म तथा दर्शन, शकुन-शास्त्र, द्रव्य-विज्ञान जल एवं भूगर्भ-ज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, भूतल-गत धन-संधान, हिरा-माणिक्य-विज्ञान, धनुर्विद्या, शालिहोत्र, हस्ति परीक्षा, गाय-बकरी-श्वानादि घरेलू पशुओं के शुभाशुभ लक्षण, आयु प्रमाण, सामुद्रिक शास्त्र, काम-शास्त्र, राज-धर्म वर्णन, आदि अनेकानेक विषयों संबंधी भारतीय ज्ञान-परंपराओं को सूर्यमल्ल ने इस महाचंपू के द्वारा चौहान वंश-वृत्त में आबद्ध करने का सफल प्रयास किया है। उसमें "कहीं तो वर्ण्य-विषय वांछित ज्ञान-संभार से संपुष्ट होकर उजागर हो उठा है, और कहीं पांडित्य के तले दबकर रह गया है।" इस विषमताओं के होते हुए भी यह ग्रंथ वस्तुतः एक संहिता ग्रंथ बन गया है।

सूर्यमल्लके चरित्र और जीवन कीप्रसंगतियाँ उसके इस बहु प्रचलित महाचंपू 'वंश-भास्कर' में भी दूसरे ही रूप में उभरी हैं। तत्कालीन मंद-बुद्धि लोग प्राचीन विलष्ट भाषा संस्कृत को समझने में असमर्थ थे, अतएव चौहान वंश-श्री को लोक-भाषा में निबद्ध कर उसे जन-साधारण सुलभ बनाने का आदेश पाकर जब 'रणवीर मूर्ति उद्भट अर्थ द्यु गिरा-निधान सुकवि रविमल्ल' इस महाचंपू 'वंशभास्कर' की रचना करने को प्रवृत्त हुआ तब लोक-भाषा को अपना कर भी षड्-भाषाओं पर सयत्न अर्जित अपने पूर्णाधिकार को वह नहीं भुला पाया। यही नहीं उसकी इस रचना को लोक-भाषा भी वर्जित संस्कृत की ही तरह अनायास क्लिष्ट बन गई। काव्य-संपदा से सपन्न सहज प्रतिभावान् सुकवि होते हुए भी वह काव्य और साहित्य शास्त्रीय अपने पाण्डित्य के सुदृढ़ पाशों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाया। जन-साधारण की मंद-बुद्धि का सुस्पष्ट ज्ञान होते हुए भी वह अपनी बहुज्ञता के प्रदर्शन का लोभ संवरण नहीं कर पाया। यही कारण है कि सुकवि द्वारा लोक-भाषा में रचित इस महाचंपू में महाभारत जैसी सरल सुबोध भाषा, अबाध कथा-प्रवाह और अनोखी रोचकता का अधिकतर अभाव ही है।

लोकभाषा के सुकवि सूर्यमल्ल का यह षड् भाषा ज्ञान, उसका वह प्रकाण्ड पाण्डित्य, उसकी यह बहुज्ञता और इन सबसे अधिक अपनी इन सारी अनोखी विशेषताओं सम्बन्धी उसकी स्वचेतना (सैल्फ कान्शसनेस) भी इस महाचंपू के लिये विशेष रूप से, हानिकारक प्रमाणित हुई। 'वंशभास्कर' का आकार-प्रकार बृहत् हो गया, उसमें प्रयुक्त लोक-भाषाएं भी अनपेक्षित रूपेण क्लिष्ट बन गई और उसके अधिकतर विवरण अथवा विवेचन सुविज्ञ पाठकों तक के लिए दुरूह और दुर्बोध हो गये। यद्यपि डॉ० आलमशाह खान ने विविध प्रसंगों में यथास्थान यत्र-तत्र इन तथ्यों का उल्लेख किया है, परन्तु आवश्यकता यह थी कि इस 'अध्ययन' के उपसंहार के रूप में ही क्यों न हो, इन सब हानिकारक कठोर सत्यों की कुछ अधिक सामूहिक चर्चा की जाती, क्योंकि तब ही 'वंशभास्कर' का अद्यातन विस्मरण ही नहीं विद्वानों द्वारा भी उसकी सतत दु:खद उपेक्षा का भी कारण स्पष्ट हो जाता।

अपने विषय का सर्वप्रथम विवेचन होने के साथ ही, अध्येय ग्रंथ 'वंशभास्कर' के बृहदाकार, उसकी दुरूह भाषा और उसके अनगिनित दुर्बोध विवेचनों के कारण भी डॉ० आलमशाह खान के इस 'अध्ययन' में यत्र-तत्र भूल-चूक हो जाना कोई सर्वथा अनहोनी बात नहीं है। तथापि यह सुनिश्चित है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन से अब तक प्रचलित और प्राय: सर्वमान्य अनेकों भ्रान्तियों का निराकरण ही नहीं होगा, परन्तु इसके द्वारा 'वंश-भास्कर' विषयक विस्तृत सही जानकारी भी प्राप्त हो सकेगी। इस 'अध्ययन को पढ़ने तथा इसमें दिये गये उद्धरणों का रसास्वादन कर यदि साहित्य-प्रेमी और विद्वज्जन 'वंशभास्कर' की ओर अधिकाधिक आकर्षित हुए तो वह इस ग्रंथ के सुविज्ञ रचयिता की एक उल्लेखनीय सफलता होगी।

अंत में मेरा यह सुदृढ़ विश्वास है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के दुर्धर विद्वान् और मर्मज्ञ राष्ट्रप्रेमी सूर्यमल्ल के काव्य का सही मूल्यांकन कर,

उसको हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपयुक्त स्थान ही नहीं देंगे, किन्तु 'वंशभास्कर' के नये सुसंपादित संस्करण के प्रकाशन की योजना को क्रियान्वित करने का भी अत्यावश्यक आयोजन करेंगे, जिससे अपने ढंग का यह एकाकी महाचंपू साहित्य-प्रेमियों और ऐतिहासिक संशोधकों को शीघ्र ही सुलभ हो सके। अतएव डॉ० आलमशाह खान कृत 'वंशभास्कर': एक अध्ययन' का मैं हृदय से स्वागत करता हूं और आशा करता हूं कि वे इसी प्रकार सूर्यमल्ल अथवा 'वंशभास्कर' सम्बन्धी अपने अध्ययन को अधिकाधिक गहन और विस्तृत बनाते रहेंगे कि उसके प्रकाशन सम्बन्धी भावी योजनाओं में वे महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।

—रघुवीरसिंह

'रघुबीर निवास'
सीतामऊ (मालवा)
फरवरी १५, १६७३ ई.

वक्तव्य

राजस्थानी भाषा और साहित्य के अध्ययन, अन्वेषण एवं सृजन की दिशा में विगत दशाब्दी में अभिनन्दनीय प्रगति हुई है। कई अज्ञात कृतियां एवं कृतिकार सम्मुख आये तथा प्राप्त सामग्री का पुनः मूल्यांकन हुआ। आश्चर्य है कि अध्ययन और अन्वेषण के इस क्रम में राजस्थान के सबसे बड़े और युग-प्रवर्तक महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण का 'वंशभास्कर' उपेक्षित रह गया।

प्रो० कन्हैयालाल सहल द्वारा सम्पादित 'वीर सतसई' की भूमिका में सूर्यमल्ल के जीवन आदि के विषय में पहली बार सामग्री का संकलन हुआ किंतु यहां भी, सतसई पर ही केन्द्रित रहने के कारण, इसके विषय में सृजनात्मक संकेत मात्र ही दिये गये हैं।

सन् १९६१ में श्रद्धेय गुरुवर नरोत्तमदासजी स्वामी ने मुझे 'वंशभास्कर' पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने हेतु प्रवृत्त किया। उनके गुरु गभीर शब्द आज भी स्मरण हैं—" विषय एकदम अछूता और महत्त्वपूर्ण है; अध्यवसाय एवं लगन से जुटने पर स्थायी मूल्य का कार्य बन सकता है।"

प्रस्तुत प्रबन्ध १४ अध्यायों में सम्पूर्ण हुआ है। प्रधानतया 'वंशभास्कर' के साहित्यिक सौंदर्य के उद्‌घाटन पर केंद्रित रहते हुए भी 'वंशभास्कर' भाषा-विवेचन, 'वंशभास्कर और इतिहास', 'वंशभास्कर में राजसमाज की झलक' एवं 'वंशभास्कर में कवि की बहुज्ञता' जैसे अध्यायों द्वारा अध्ययन को सर्वांग-पूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

बृहदाकार एवं 'दुरूह भाषा' में रचित होने के कारण वंशभास्कर के विषय में कुछ एक अटकलों के अतिरिक्त कहीं कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता। अतएव इस अध्ययन में मुझे अपनी 'समझ' जो अपरिपक्व है, से ही काम लेना पड़ा है। इस प्रकार यदि प्रथम प्रयास को मौलिक कहा जाय तो इस अध्ययन को सर्वथा मौलिक कहा जा सकता है– अपनी समस्त स्खलनाओं के साथ।

ग्रंथ दुष्प्राप्य है अतएव काव्यात्मक-स्थलों को मुक्त-भाव से उद्‌धृत किया गया है— विशेषकर 'वस्तु-वर्णन' के विवेचन में जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ मूल के साथ उसका अनुवाद भी दे दिया गया है। यों यह प्रबन्ध वंशभास्कर की विवेचना के साथ ही उसकी मूल 'काव्यश्री' से भी परिपूर्ण है।

अपने अध्ययन की पांच वर्ष की अवधि में जब जब भी मैं हताश हुआ श्रद्धेय गुरुवर नरोत्तमदासजी स्वामी ने अपने मौन स्नेह और समर्थ मार्ग-दर्शन से मुझे आशान्वित बनाये रखा, कभी डगमगाने नहीं दिया। अन्त तक वे मेरे शोध–कार्य के निर्देशक रहे। अत्यधिक

विषय-सूची

वंशभास्कर : एक अध्ययन

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण, बूंदी

बोति तरल पालीश बलि मदकल दुव गज मत्त ॥ १६
मय अठ्ठारह रजतमय मुद्रा सहस प्रमान ।
प्रायतजात अनेह के उभयहि अभ्युत्थान ॥ १७
रुचिर सास इक तुरग रथ शुभ शिविका इन दिन्न ।
... ... ॥
पुनि मुत्तिन पय पुञ्जिकै अधिचार निज अन्न ।
ईश्वर कवि डेरन अवधि पहुँचाये सप्रसंस ॥ १९
बूँदीपति यों र्षित इम पटु ईश्वर कवि पाय ।
इद्दुन के पारन भये उच्छन पीत उठाय ॥

—वंश० ३१।२०

वीर सतसई के संपादक-गण राव सूर्यमल्ल के समय ईश्वर कवि का बूँदी आना मान हैं, सो ठीक नहीं है।[1]

सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर में अपना वंश-वृक्ष इस प्रकार दिया है—

कवि ईश्वर सुत हुव सुकवि धीयन साँवलदास ।
साँवल सुत भूपाल हुव रामदास हुव तास ॥ २१
रामतनय आनन्द हुव बल उद्धत रनबीर ।
नवलराय आनन्दसुत तास चतुर्भुज धीर ॥ २२
बदन चतुर्भुज तनय हुव डिंगल पिंगल पूर ।
विष्णुसिंह बूंदीस नृप सनमानिय मतिपूर ॥ २३
... ... ।
बदन सुकवि सुत कविमुकट अमरगिरा मतिमान ॥
पिंगल डिंगल पटु भये धुरधर चण्डीदान । २६
... ... ॥
तिनको सुत रविमल्ल कवि कवि बुध भवतनदास ।
... ... ॥

— वंश० ३९-४० । २९

सूर्यमल्ल के पिता चण्डीदान अपने समय के धुरंधर पण्डित और अच्छे कवि थे । [म]हारावराजा रामसिंह उनका बड़ा मान रखते थे— 'जियत मुक्त हुव रामनृप जिनकी [स]गति पाय' (वंश० ४०।२८)। चण्डीदान द्वारा रचित तीन ग्रंथ — 'बल-विग्रह' (प्रकाशित) [व]ंशाभरण' तथा 'सार-सागर' प्रसिद्ध हैं । सूर्यमल्ल ने 'बल-विग्रह' को वीर-रस प्रधान बताते [हु]ए लिखा है —

---

[1]—वीर सतसई : भूमिका, पृ० १

प्रभु कवि जनक रचिय तिहिं रन पर बलविग्रह अभिधान प्रबन्ध।
उद्धत गुंफ वीररस आलम सहबल लरन भरन दृढ़ संध॥

—वंश० ४११६। ७१

कवि ने अपनी माता का नाम 'भावनाबाई'—वावन्दिम भावना चण्डीदानौ प्रसूजनयितारौ (वंश० १६७२) — तथा भाई का नाम जयलाल—भ्राता कवि रविमल्ल को लघु सोदर जयलाल (वंश० ४०।३१) बतलाया है।

जन्म—

सूर्यमल्ल ने अपना जन्म-दिवस संवत् १८७२ कार्तिक कृष्णा १ निश्चित किया है—

मनें १८७२ सकहिं प्रभु के कवि भू बर, पायो असितादि उज्ज पर।
कवि जनकहु श्रद्धोचित मह किय दान, द्विजादि वुधन समुचित दिय॥

—वंश० ४०।४। ४१

सूर्यमल्ल के पिता चण्डीदान द्वारा बनाई जन्म-कुण्डली[1] से भी यही सिद्ध है। प्रसिद्ध इतिहासकार मुंशी देवीप्रसाद भी इसे ही स्वीकार करते हैं।[2]

सूर्यमल्ल शैशवावस्था से ही नितांत कुशाग्र-बुद्धि एवं अपूर्व स्मरण-शक्ति संपन्न था। वंशभास्कर में कहा गया है कि उसने एक वर्ष में ही संधि-ज्ञान प्राप्त कर लिया था (वंश० १६७२)। दस वर्ष की अवस्था तक आते-आते तो वह एक अच्छा कवि बन गया था और उसने 'रामरजाट' की रचना कर डाली थी। खेल कूद में मग्न रहने पर भी १२ वर्ष की आयु में व्याकरण-गत पद-ज्ञान में वह पारंगत हो गया था (वंश० १५। ६७)।

गुरु—

सूर्यमल्ल 'नाना-विषयों का पारंगत पण्डित था। जिन-जिन व्यक्तियों से उसने कलाएं सीखी थीं और शास्त्र पढ़े थे, उनके प्रति वंशभास्कर में दी गई 'गुरु-स्तुति' के अन्तर्गत कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। ऐसे लोगों में महात्मा-पुरुष और पण्डित भी हैं और मुसलमान मौलवी और कलावन्त भी (वंश० १५-१६। ६७-७२)। इनमें से श्री आशानन्द और दादूपंथी साधु श्री स्वरूपदासजी महाराज सूर्यमल्ल के विशेष श्रद्धा-भाजन थे।

विवाह—

सूर्यमल्ल ने छः विवाह किये थे। उसका पहला विवाह संवत् १८८८ को हुआ था—

कवि जनक किय बलि कवि बिवाह,
सक भावी १८८८ मधु सिति लग्न लाह॥

—वंश० ४२४३। ४८

१—द्रष्टव्य - वीरसतसई, भूमिका पृ० १२

२—कविरत्नमाला, पृ० ११४

इस विवाह में महाराजा रामसिंह सपरिग्रह सम्मिलित हुआ था (वंश ४२४३। ५२-५३)। सूर्यमल्ल ने अपनी पत्नियों के नाम इस प्रकार दिये हैं—

दोला[1] सुरजा[2] विजयिका[3] जसा[4] रु पुष्पा[5] नाम।
पुनि गोविन्दा[6] षट प्रिया अर्कमल्ल कवि वाम ॥

—वंश० ४०।३०

इनमें से गोविन्दा कविता करती थी। उसकी लिखी निम्नांकित काव्य-पंक्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

पावड़ा बिछास्यां छास्यां चंदेवा गुलाब चोवा
फूल फरसास्यां मोती वारस्यां सुहावणा
अतर लगास्यां पान खास्यां मुलकास्यां गास्यां
गोविन्दजी साजस्यां सिंगार मन भावणा
आपो मेंट धरस्यां भुजा में थाने भरस्यां हो
करस्यां जीराज रेल रंग सूं बधावणा
सेजणल्या माणीगर माणजो अनन्तसुख
कंत म्हारे मेहल बसन्त आज्यो पावणा ॥

सूर्यमल्ल के एक ही संतान—पुत्री—हुई थी। कहते हैं जब सूर्यमल्ल उसे ऊपर उछाल उछाल कर दुलार रहे थे तभी उनके हाथों में ही उसका दम निकल गया था। उन्होंने मुरारिदान को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया। मुरारिदान स्वयं कवि और विद्वान था उसने सूर्यमल्ल के मरणोपरान्त वंशभास्कर की पूर्ति की थी (द्रष्टव्य वंश० पृ० ४२६१ ४३९८)।

शिष्य-मण्डली—

सूर्यमल्ल के ११ शिष्य प्रसिद्ध हैं—

१. गोघ्याणा ग्राम : कृष्णगढ़ : के वल्लभजी बारहठ
२. किशनपुरा ग्राम : जयपुर : के सीतारामजी बारहठ
३. श्यामपुरा के हरदानजी बारहठ
४. गंगावती के विजयनाथजी खिड़िया
५. थांनणवां ग्राम : जोधपुर : के मोतीरामजी रतनू
६. बड़े थानणवां ग्राम : जोधपुर के बख्शीरामजी बारहठ
७. लीलेड़ा ग्राम : बूंदी : के धूंकलजी मेहड़ू
८. बूंदी के मंगलजी राव
९. मुरारिदान : सूर्यमल्ल के दत्तक पुत्र
१०. डांसणोली के बास के हरदानजी किसनावत
११. गणेशपुरी जी

— वीर सतसई, भूमिका पृ० २३-२४ से उद्धृत।

मृत्यु—

मुरारिदान, दत्तक पुत्र, के अनुसार सूर्यमल्ल की मृत्यु बूंदी में वि० सं० १९२५ आषाढ़ शुक्ला ११ मंगलवार को चार घड़ी दिन चढ़ने पर हुई—

भून दुव अंक ससि १९२५ सुचि सुचि मास केर,
एकादसी भार वेद नाडी दिवस भात।
मिश्रण कविन्द्र रविमल्ल बहु आमय तें,
बुन्दि द्रंग मांहि प्रभु निर्जर नैर पात।
सो सुनि अनन्त सोक करिकैं नरेंद्र आर,
स्नान करि अनल अंजलि दियउ तात।
तात पुत्र मुरारिदान नामकों,
अभ्युत्थान आदि दै बिससि हित दिखाय।

—वंशभास्कर (मुरारिदान कृत पूर्ति) ४३६२।६

मुंशी देवीप्रसाद द्वारा दी गई निधन तिथि और उपर्युक्त निधन तिथि में सुदि बदि का अंतर है। इस विषय में कि मुरारिदान द्वारा दी गई तिथि ही प्रामाणिक मानी जायेगी।

सूर्यमल्ल की रचनाएँ

सूर्यमल्ल रचित निम्नांकित रचनाएं प्रसिद्ध हैं—

१ वंशभास्कर २ वीर सतसई ३ बलवद् विलास
४ रामरंजाट ५ छंदोमयूख ६ धातु रूपावलि
७ सतीरासो ८ प्रकीर्णक गीत-सवैये आदि

डा० मोतीलाल मेनारिया और मिश्र-बन्धुओं ने इनकी चार ही रचनाएं बतलाई हैं—

वंशभास्कर वीर सतसई बलवत-विलास छंदो मयूख—[१]

१—वंशभास्कर—

वंशभास्कर सूर्यमल्ल की कीर्ति का स्तम्भ है। आगे इसका पहली बार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

२. वीर सतसई—

वीर सतसई क्षत्रियों का जातीय-काव्य है। सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-संग्राम की वेला में रचित[२] इस 'मड़खाणी' (वीर सतसई ७) रचना को निश्चित ही सूर्यमल्ल की कीर्ति का

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० ३१७
मिश्र-बंधु विनोद : द्वितीय संस्करण : द्वितीय भाग पृ० ९३३-३४

२—बीकम बरसां बीतियो, गण चो चंद गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस ॥ वीर० ४ ॥

कलश और मरु-सरस्वती के मंदिर का उत्तुंग शिखर कहा जा सकता है। इस मुक्तक रचना मे ठेठ-राजस्थानी जनजीवन की शोणित-स्नात रेखाएँ यों उभर कर सामने आई हैं कि जिन्हें देखने पर रण-धवल-राजस्थान का पूरा मान-चित्र आंखो में भर जाता है जिसमें स्वामी का नमक उजालने की हविस (वीर० ८) है तो कहीं धर्म-युद्ध ठानने को तत्परता (वीर० १४७-४६) कहीं 'लाय'(ज्वाला) को देख कर हुलसित होने को सीख है (वीर० ६५) तो कहीं शस्त्र को देख कर झपट पड़ने की नसीहत (वीर० ६४) कहीं मरण पर्व का उल्लास है (वीर० ५०) तो कहीं दूध के लजा जाने पर क्षोभ (वीर० ११५), कहीं वीर 'धणी' के लिए 'चूड़े का बल' है (वीर० २५) तो कहीं कायर आदमी के लिए वीरांगना के नीचे झुके नयन (वीर० ११६), कहीं मसल कचलों के रंग हैं (वीर० १६४) तो कहीं रण-क्षेत्र मे कराहते हुए परिजनों को पहले जल न पिला सकने की बेबसी (वीर० २०७), कहीं धवल' छुड़ाकर 'चांचल' (घोड़े) को ओर चल पड़ने वाला बांका वीरत्व है (वीर० १३३) तो कहीं 'कमनैत' के साथ जल मरने का उतावलापन (वीर० ६८), कहीं प्रतिशोध की हिंसा है (वीर० ११८) तो कहीं घोड़े के प्रति व्यामोह (वीर० ७३), कहीं माता के मत-वाले जमाई के प्रति बेटी की रीझ है (वीर० ७०) तो कहीं उसके 'बिण मरियां' आने पर चूड़ी पछाटने' का भाव (वीर० १७६), कहीं असिधावण (सिकलीगर) के प्रति न्यौछावर होने की चाहना है (वीर० ४१) तो कहीं 'पिय मुवा घर आविया' जान कर 'मणिहारी' के प्रति निदेशाज्ञा (वीर० ८४)। इस प्रकार वीर सतसई मरु-संतान का यशःलेख है, इसकी आत्मा की आवाज—उसकी जीवित भावनाओं का आगार।

'वंशभास्कर' के इतिहास कांतार मे अवरुद्ध सूर्यमल्ल का कवित्व वीर सतसई के दोहों में फूट पड़ा है—मानो इतिहास की वर्जनाओं का जौहर जलाकर उसका 'कवि' यहां केस-रिया बाना धारण कर अपने भाव-लोक मे चित्रित 'रजवट' को मूर्त करने को व्याकुल हो उठा है। कवि की यह व्याकुलता ही 'वीर-सतसई' के दोहों का प्राण है। भाव, भाषा, अभिव्यंजना आदि से समृद्ध यह रचना 'सतसई'-साहित्य-परम्परा की गौरवशाली कड़ी है।

वंशभास्कर की भांति वीर सतसई भी अपूर्ण है—इसमें केवल २८८ दोहे हैं। इस दृष्टि से इसे वीर-दोहावलि नाम दिया जा सकता है।

सूर्यमल्ल कृत इस 'वीर सतसई' की पूर्ति सं० १९८० में कुरावड़ (मेवाड़) के रावत (?) मोतसिंह ने मोड़सिंह महियारिया द्वारा करवाई थी, जिसकी मूल प्रति साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित है।

मोड़सिंह विरचित उपर्युक्त सतसई में कुल ७४२ दोहे हैं। इनमें सूर्यमल्ल कृत दोहों की संख्या २६० बतलाई गई है। सूर्यमल्ल के दोहों की तुलना में मोड़सिंह रचित दोहे बड़े फीके ठहरते हैं।

बलवद् विलास—

'बलवद् विलास' में राठौड़ों के संक्षिप्त इतिहास के साथ अजमेर (ककमेर) नरेश

बलवन्तसिंह के चरित्र का आख्यान हुआ है। इतिहास के साथ ही इसमें कवि ने अपनी बहुज्ञता का भी जमकर प्रदर्शन किया है। दर्शन और राज-धर्म का इसमें सविस्तार वर्णन हुआ है।

५८३ छंदों में सम्पूर्ण इस ग्रंथ की रचना विक्रम संवत् १६१५ वैशाख शुक्ला तृतीया को हुई थी—

> जह विक्रम राज की सर ससि नव कु समान।
> तीजो उज्ज्वल राघ तिथि इहि प्रबन्ध उत्थान॥
>
> — बलवद् विलास, ५

इस गद्य पद्यमय ग्रंथ की रचना सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर के प्रणयन के बीच थोड़ा समय निकाल कर की थी—

> वंशभास्कर के अनत विच अवसरु कछु काढ़ि।
> किय प्रबन्ध यह मिहिर कवि कातिक महुरत काढ़ि॥
>
> — बलवद् विलास, ५८३

अतएव इसकी भाषा-शैली पर वंशभास्कर का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। घोड़ों की गति का एक सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है—

> पलटा करैं 'नटके' बटा 'कुपटा' कटाच्छ घटा छये।
> जय हेत 'जैरथ' वेश 'भ्रू' पथ देत दच्छन त्यों तये॥
> झननंकि पक्खर झल्लरि सननंकि 'प्रोथन' सक्रमे।
> भट मोर 'लैं' जिन्ह 'पात' में चक फेर 'खात' भ्रमें भ्रमें॥ ४८४॥
>
> हरने हि होरन हो सजे भरते कि कारन हान कों।
> मुरते 'रु' हकरारते फिरैं करते 'न' आकर मान कों॥
> जिनको 'कटी' पर पै पटी पर 'जाइ' तविकय लीह लों।
> निरखे 'घटी' पर 'जे' नटी पर 'लज्जलावत' लीह लों॥ ४८५॥
>
> कति मोर कच्छिय 'मोर' मच्छिय द्वै बरच्छिय कक्कते।
> मिटि जात 'अच्छियमान' त्यो 'सितिजात' पच्छिय सक्कते॥
> जब राह फादत बाहपै गजगाह यों तिरछे जुरैं।
> मगेन कट्टिय 'दच्छ' अच्छ 'कि' फेर पच्छकि अकुरैं॥ ४८६॥
>
> टकरो 'करी नट राज' जे सकरी गली जे चकरी बनै।
> न 'करी' नट 'परावलि में' न तोय करी 'हि' यों मकरी मनै॥
> सर कानसार सलीन 'चट्टत' वग्ग के 'वस' हो बहैं।
> जिन्ह बवक 'चवक' उडान लक्कत मवक सवक सुने रहैं॥ ४८७॥
>
> रपके 'दपे' धपके नये 'जपके' जनावन हार जे।

पटके जिते तिन जाग यों अरिके 'प्रमानक जे भई'।
भट री फफ्फन 'भवई' पटरी मनों नटरी भई ॥ ४८८ ॥

— बलवद् विलास

'बलवद् विलास' में प्रयुक्त गद्य में वंशभास्कर के जैसा न लालित्य है और न ही वैसा भावोद्वेलन —

> जोईया तो जीवरै साटै समाधि जिणरो थोड़ो दे'र पूरो ही प्रत्युपकार करि आपरो मीधो उद्धार दे आवा— तथापि वीरमदेव आपणो बड़ी तरह बधावणो करि आपरा आधा ग्राम दे'र पाणिनू उणां रा संतोस रो पालो करि प्रवेद रैं ठाम रहिर राठड़ा समस्तो रो स्वामी करि रावण हूवा। जठे ही वीरमदेव रैं पुत्र जुगो हूवो जिकण रा उपद्रव में स्वामीरो अनुप पाइ हाथ रा रजपूत जणोरा वीरांरा परास बहादर बादशाही रो पळ महश्रता रैं माथे राष्ट्रि दसारा जामाता मूं मारि उण रा बांटा रा दोद दुग दाबि पाइ भाई प्रमुख दुर्गां रा मालिकां मूं मारि महा अधर्म रो पळ पावण हूवा।
>
> — बलवद् विलास

बलवद् विलास के राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से प्रकाशित किये जाने की योजना थी। किन्तु इसका प्रकाशित संस्करण देखने में नहीं आया। इसकी एक प्रति उदयपुर निवासी श्री विट्ठलजी से प्राप्त हुई है। डा. दशरथ शर्मा ने भी इसकी एक प्रति का उल्लेख 'वरदा' (वर्ष १, अंक ४, अक्टूबर १९५८ में किया है।

४ रामरंजाट—सूर्यमल्ल ने इसकी रचना १० वर्ष की अल्पावस्था अर्थात् संवत् १८८२ में की थी—

सवत सरस अठार सैं, साल बियासी संत।
रवि बसत पांचैं रहसि, गिरा संपूरण ग्रंथ ॥

'रामरंजाट' चारणी काव्य-परम्परा का एक छोटा-सा ग्रंथ है जिसमें कवि ने हाडा-वंश का यश-गान करते हुए महारावराजा रामसिंह के वैभव एवं वीरत्व का प्रतिपादन किया है।

रचना वर्णन-प्रधान है जिसमें मुख्यतः शिकार, विवाह, हय, हस्ति आदि के वर्णन आये हैं। प्रसंग निक्षेप करके नायिका-नखशिख-वर्णन के लिए भी अवसर निकाल लिया गया है।

'रामरंजाट' की कविता सरस एवं प्रवाहमयी है। वर्षा का एक उत्कृष्ट वर्णन देखिए—

छंद पद्धरी

पागड़े धरे रामेस पांव, उण बार मेह चढ़ियो अमाव।
घण बादळ लूंबै घसण घोर, जळधार उडै छोळां सजोर।
मूसळाधार बरसंत मेह, ऊखळा भरत पांणी अछेह।

भीजंत सरब सोहड़ अभग, केसर्या कसूंमल बहुत रंग ॥
धरडाव पवन झपटे अपार, लपटं तन बसतर वीर लार।
उलड़ें अच्छ डाला अपार, भकार गरज पर्वत भयार॥
चमकंत बीज प्रति दिसा चार, झिल्लीगण दादुर झूंतकार॥
घहरात मेघ गभीर थोक, प्रति मोर सोर कृत प्रोक प्रोक,
उडि छोल रोळ बोळां अनेक, बोछाड पवन भपटां बिसेक॥
उण बार राम चढ़ियो उदड, वानैत वीर पौरस प्रचड।
भीजतां रंग चुवतां प्रसंग, रत हरित केसर्यां गरक साज॥
नचतो थको धजराज नूर, हाथ में लिया मालो हजुर।
इण रीति मदन मूरति उदार, घोरा रग बहतो नीर धार।
इम हुवो महल दाखल प्रसंग, राघत मलार बोहो राम रग।

... ...

घटा बादल घरर, गाजे सरग गहीर।
बीज चमकै वीर बर, नीझर नाळां नीर॥

इस अप्रकाशित ग्रंथ की एक प्रति साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर संग्रह में और एक बंगाल हिन्दी मंडल, कलकत्ता मे सुरक्षित है।

५—छंदोमयूख—डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार 'छंदोमयूख' छंद-शास्त्र की एक बहुत सामान्य कोटि की रचना है।[1] बूंदी मे पड़ताल करने पर भी इसकी प्रति देखने मे नहीं आई। बूंदी दरबार के निजी पुस्तक भण्डार के खाते में भी इसका उल्लेख नहीं है।

६—धातु-रूपावलि—यह धातु-विषयक साधारण स्तर की एक छोटी-सी रचना है। इसकी मूल प्रति के चार पृष्ठ और एक पूरी हस्तलिखित प्रति (पृष्ठ सख्या १८) बूंदी दरबार के निजी पुस्तकालय क्रमशः बस्ता न० ३४ और २६६ में सुरक्षित है।

७—सतीरासो—यह ग्रंथ कहीं देखने मे नही आया। वीर सतसई के सम्पादकों ने लिखा है कि 'सतीरासो' बलवद्विलास मे आये हुए सती सम्बन्धी पद्यों के अतिरिक्त और भी कोई रचना है, यह हमे मालूम नहीं।[2] कहते है इसकी एक प्रति अलवर मे है।[3] परन्तु स्पष्ट सूचना के अभाव में यह प्राप्त नहीं की जा सकी।

प्रकीर्णक-गीत-सवैये आदि—उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त सूर्यमल्ल कृत प्रकीर्णक गीति-सवैय आदि भी यत्र-तत्र पोथियों मे बिखरे हुए मिलते हैं। इनमें से कुछ का सकलन

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य : तृतीय संस्करण : पृ० ३१८
२—वीर सतसई : भूमिका पृ० ६४
३—वीर सतसई : भूमिका पृ० ६४

डा० कन्हैयालाल सहल द्वारा सम्पादित वीर सतसई की भूमिका में हुआ है। *सूर्यमल्ल रचित* कुछ प्रकीर्णक गीत-कवित्त आदि भी मिले हैं।

सूर्यमल्ल : व्यक्तित्व

भिन्नार्थक शब्दों के संकलन को कविता नहीं कहा जा सकता और न ही विभिन्न रंग-रेखाओं को संज्ञा दी जा सकती है। क्योंकि जो तत्व 'कविता' अथवा 'चित्र' संज्ञा को सार्थक करता है, वह इन बाह्य उपकरणों से परे है। इसी प्रकार व्यक्ति के आकार-प्रकार *और रंग-रूप को ही उसका 'व्यक्तित्व' नहीं कहा जा सकता। 'व्यक्तित्व' इनसे पृथक 'कुछ'* और भी है। *व्यक्ति की बाह्य एवं आन्तरिक सचेतनाएं, उसके संस्कार तथा जीवन परि-*स्थितियां 'व्यक्तित्व' में घटित होती हैं और यह 'व्यक्तित्व' व्यक्ति की समस्त ज्ञात और अज्ञात कर्म सारणियों में मूर्त होता है। कवि-कर्म सचेत व्यक्तित्व का मूर्तिमत रूप है—जिसमें व्यक्ति प्रतिभासित हो उठता है।

व्यक्तित्व-परिमापन की तीन कसौटियां हो सकती हैं—प्रथम यह कि वह (व्यक्ति) स्वयं को क्या समझता है? द्वितीय, अन्य लोग उसे क्या समझते हैं? और तृतीय, यह कि वस्तुत: वह है क्या?

उपर्युक्त तीनों कसौटियों पर कसने पर सूर्यमल्ल अपने युग का 'एक महिम व्यक्तित्व' सिद्ध होता है।

सूर्यमल्ल स्वयं को उस चारण-वंशवृक्ष की शाखा घोषित करता है, नाना-विद्या-नैपुण्य; जिसके पल्लव हैं, राजन्य-वर्ग, जल संचयक मतिकाश्रत है, आदर-सत्कार से सींचने का जल-पात्र है, *षड्भाषाएं किसलय दल हैं, चारु-बुद्धि उसका अमद आमोद है, उत्साह वर्धक* काव्यमय-स्तुति उसकी विकसित कुसुम-राशि है, नव-रस, विशिष्ट रूप से वीर-रस, उसका मकरंद है एवं कायर को वीर बना कर लड़ा देना ही उसका फल है—

> जो भूरुह चारन जनन पादप विद्यापत्र।
> आलवाल नृपजन इहाँ आदर सलिल अमत्र ॥४।
>
> भाखाखट किसलय सुभग मति आमोद अमंद।
> काव्य विरुद विहसित कुसुम रसनव मधुर मरंद ॥५॥
>
> पठित वीररस पुलककर उदित पराग अछेह।
> *भटकरि भीरु लरावनों या द्रुम को फल एहु ॥*
>
> —वंश० ३७-३८।६

सूर्यमल्ल अपने आपको 'सुकवि' (वंश० १।१) बताता हुआ कहता है कि वह अनेक *शास्त्रों और विषयों पर ग्रंथ-रचना करने में समर्थ है।*[1]

१— द्रष्टव्य—सूर्यमल्ल द्वारा रतलाम नरेश को लिखित वैशाख शुक्ला ७, संवत् १९१४ का पत्र—वीर सतसई : भूमिका पृ० ४४-४५

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवि स्वयं को विद्या, विवेक एवं वीरत्व का साधन मानता है।

अपने समसामयिक सुधि जनों की दृष्टि से भी सूर्यमल्ल 'एक महनीय व्यक्ति' है। अपनी जीवन-वेला में ही उसका कीर्ति-प्रसार राजपूताना और मालव प्रदेश में दूर-दूर तक हो चुका था। तत्कालीन बुद्धि-जीवी समाज में वह एक महाकवि, निष्णात पण्डित एवं सत्यवक्ता, उदात्त मानव के रूप में प्रतिष्ठित था। राजन्य-वर्ग का वह श्रद्धा-भाजन था, उसकी गणना बूंदी के पांच रत्नों में थी। राजा-महाराजा उससे प्रेरणा ग्रहण करते थे और उसके 'वाणीव्यतीदों' से सावधान रहते थे। जन-साधारण उसके गीत गा-गा कर 'वीरां रो कुलवाट' 'सुमिरण' (वीर० ६) करता हुआ गौरवान्वित होता था।

बड़े-बड़े भू-पति, प्रतिष्ठित कवि और विद्वान उसके संपर्क में थे और उसके दर्शन के लिये सदैव लालायित रहते थे।

> चित्त में दरसण चाव, सूरजमल थारो सदा।
> इणरो बहुत उमाव, हुवै किया भगवत हुवां ॥
>
> — श्रवण ठाकुर जोरावरसिंह—(वीर सतसई भूमिका—पृ० ४७ से उद्धृत)

सूर्यमल्ल जब-जब यात्रा पर निकलता था, उसके प्रशंसक और हितैषी उसे हाथों हाथ लेते थे और उसका समय पर बूंदी लौटना दूभर हो जाता था।[1] उसके पाण्डित्य की चारों ओर धूम थी। संत महात्मा तक उसके पाण्डित्य के आगे मस्तक झुकाते थे—

> तुम अब पेसा लिते हम थोता न जितेक।
> वा तुम प्रीत निरवाण लिखि, बाढ़े मोर विवेक ॥१॥
>
> कहियो दास स्वरूप तैं, वन्दन दास स्वरूप।
> ज्ञान रूप वैराग्य निधि, हो भूपन के भूप ॥२॥[2]

चारणी-आदर्शों का वह मूर्तिमंत रूप था। 'चारयन्ति कीर्तिमिति चारणः' उक्ति को वह चरितार्थ करता था—किंतु वह कीर्ति सत्याश्रित थी, मात्र स्तुतिपरक नहीं। 'तवारीख (इतिहास) में तारीफ़ नहीं होती'—के सिद्धान्त से प्रेरित रहते हुए उसने सदैव सत्य का ही समर्थन किया और जब सांच पर आंच आते देखी तो बड़े क्षोभ का टुकरा कर 'वंशभास्कर' की रचना से ही विमुख हो गया। इसीलिए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास उसे 'मोअबर सत्यवक्ता कवि' के नाम से पुकारते हैं और

१—द्रष्टव्य—सूर्यमल्ल द्वारा धांधलिया ठाकुर फूलसिंह को लिखित पौष सुदमा १ वि० सं० १९१४ का पत्र। —वीर सतसई : भूमिका पृ० ४१

२—वीर सतसई : भूमिका पृ० ६१ से उद्धृत

वंशभास्कर के टीकाकार श्री कृष्णसिंह बारहठ उसे शपथपूर्वक 'सत्यवक्ता इतिहासवेत्ता' घोषित करते हैं।[1]

चारण-जाति को उस पर गर्व है—"राज जिसा सपूतां सूं तो चारण बाणने बडो चेजस छ"[2]—वे उसे भाषा का आदि कवि मानते हैं।[3] उनके लिए वह काव्य का अवतार है। स्वयं सरस्वती उसकी वाणी में काव्य का सत्य देखती है—

आई रासि आदि यह, गुणियो काव्य सार।
अब सूजा में आणियो, ईहग सूं अवतार ॥१॥
कायब रचना तैं करी, आतम बुद्धि उदार।
जेम सिकन्दर फूतसी, निरखि पच मीवार ॥२॥
माण इयू रस पट भयो, पूंछ भयो कवि चंद।
नरबाणी सूजा करी, सरबाणी सुर वन्द ॥ ३ ॥
हायन एक हजार में, आदि हुवो नहं अंत।
सुरसत बाणी सूजड़ा, पढ़ि पदारथ पंत ॥ ४ ॥

— कविराजा भवानीदास महियारिया
वीर सतसई : भूमिका, पृ. २१ से उद्धृत

श्रवण ठाकुर जोरावरसिंह के मतानुसार सूर्यमल्ल की कोटि का कवि न तो कोई हुआ है, न है ही और न होगा ही। वह चारणों की १२० शाखाओं में सिरमौर कवि है—

होसी, हुवो न हाल, इसड़ो सुकवि और है।
मीसण सूरजमाल, साखां सो बीसां सिरै ॥

—वीर सतसई, भूमिका पृ. २१ से उद्धृत

आधुनिक विद्वान भी सूर्यमल्ल को आधुनिक राजस्थानी साहित्य (परिवर्तन काल) का सब से बड़ा कवि मानते हुए उसे राजस्थानी का रवीन्द्रनाथ घोषित करते हैं[4]।

कवि का व्यक्तित्व उसके काव्य में उजागर होता है। कविता के चित्र-पट पर उसके

१—वंशभास्कर : उदयिमंदिनी टीका : पूर्व पीठिका, पृ. ९

२—कविराजा भारतदानजी, मुरारिदानजी, जोधपुर के द्वारा सूर्यमल्ल को लिखित पत्र का अंश—वीर सतसई : भूमिका पृ. ४८ से उद्धृत।

३—देववानि में आदिकवि, जिम हुव वल्मकजात।
सूर्यमल्ल भाषा सुकवि, मम मत तिमहिं मनात ॥
— टीकाकार कृष्णसिंह बारहट, वंशभास्कर, पहली जिल्द, पृ. २

४—डा. मोतीलाल मेनारिया — राजस्थानी भाषा साहित्य पृ. ३१४

मानस के रंग बिखरने लगते हैं और यों अनायास ही कवि-व्यक्तित्व चित्रित हो जाता है, जिसे देखकर हम कह उठते हैं कि कवि का वास्तविक व्यक्तित्व यही है।

सूर्यमल्ल अपनी कृतियों में एक रससिद्ध कवि, प्रचण्ड पंडित एवं ऊर्जस्व व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आया है। वंशभास्कर एवं बलवद्‌विलास जैसे प्रबन्धों में यदि उसका 'पण्डित' मुखर है तो वीर सतसई जैसी ओजस्वी रचना में उसके 'कवित्व' का सागर हिलोरें ले रहा है।

सूर्यमल्ल कोरा कवि ही नहीं था। वह जागरूक नेता और युगद्रष्टा भी था। उसका 'अहं' आर्यत्व के हीन दर्पत्व को देखकर उसे बराबर कचोटता रहता था। उसे यह देखकर बड़ा मनस्ताप होता था कि बड़े-बड़े दुर्धर्ष योद्धा जिस भारत भूमि की ओर भूलकर भी आँख उठाने का साहस नहीं करते थे आज उस भूमि में कायर जन मदमस्त ऊधम मचा रहे हैं —

जिण बन भूल न जावता, गैंद गवय गिड़राज।
तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज ॥ १ ॥

— वीर० २८१

वीरसतसई के दोहों में तो वह स्पष्ट ही भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का पृष्ठपोषक बनकर सामने आया ही, वंशभास्कर—जिसकी रचना अपेक्षाकृत पहले हुई है—में भी उसका जाति-वर्चस्व संस्थापन-भाव और स्वातंत्र्य-प्रेम स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। उसकी विवेकबुद्धि राजपूताधिपों को सदैव सावधान करती रही है कि संगठन में शक्ति है; इसकी पराजय समस्त जाति की पराजय है—

मिच्छसों इक को बनैं सु बनैं समस्तनको पराजय।

—वंश० ७५६। १०

बाहरी आक्रमण के समय विद्वेषजन्य प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर आपस में लड़ना नीति-सम्मत नहीं है व गाढ़े समय में वैरियों का एकजुट होकर सामना किया जाना चाहिए—

मौंहि मौंहि लरि मरन बुरो नयसूरि बतावत।
जब टरिहै यह ब्यसन उचित यह तब उर आवत ॥
यह कंगुरेस बांधव अखिल आय हम मिच्छन लरैं।
भोर की बैर हूँ धरि मनहु किम जरहन अपकृत करैं॥

—वंश० ११७६। १०४

बिखराव क्षीणता का सूचक है। उससे क्षय सहज है। अकेले तंतु को क्षुद्र कीट भी तोड़ डालता है, जब कि परस्पर गुंथे हुए तंतु मदोन्मत्त हाथी को भी बाधित कर लेते हैं। अतएव सब एकमन होकर शत्रु से जूझ पड़ो—

स्वत्व इक्क आमहुव मारि कैट हु जिहि जीरत ।
बद्दुव जोति मन सो दमहु मइदन घरीन ।।
धार सह मम ठक्क होहु कब्बुव सो झारिहि ।
... ... ।।

— वं० ११६० । ५

मातृ-भूमि की रक्षा के पुनीत यज्ञ में कोई भाग न ले तो उस पर वे ही उसमें अपने प्राण होम दो। क्योंकि रण-मरण की वांछा करने वाले किसी का महान आदर नहीं करते। उसका कर्मान्त निराला है—उन पर वे चढ़ेंगे ही क्यों है—

जीवन जु भो रन मरन जु, न लहै इतर महान ।
मूरन को उद्धुत गति, भजै अधिक अपमान ।।

— वंश० १३८० । ४८

वंशभास्कर में कहीं भी उतना बाता है आति-द्रोहियों को उसने बुरी तरह फटकारा है (वंश० २११४ । ७)।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के सन्दर्भ में लिखे गये सूर्यमल्ल के पत्र उनके उत्कट स्वाभिमान के साक्षी हैं। एक अंग्रेज-भक्त शासक के आधीन रहते हुए भी उसने विद्रोहियों को नैतिक समर्थन के साथ ही उन्हें सक्रिय सहयोग देने का जो वचन दिया है उससे वह सहज ही भारतीय-स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानियों की पंक्ति में आ खड़ा हुआ है[1]।

वीणा-वादिनि शारदा को सहृदनिरूपण करने वाला 'रसवीर मूर्ति' (वंश० ६२ । १२) कवि सूर्यमल्ल मिश्रण—ऊँची-पूरी देह-यष्टि विशाल भवों से अलग छोरें एवं मुख के आकार को इंगित करता हुआ श्मश्रु-युक्त तेजोदीप्त मुखमण्डल को आच्छादित किए हुए तलवार की धार-सी पट्टी वाली दाढ़ी और इन सब से ऊपर उसकी उद्दाम उद्वेलित वाणी रण-टंकार बनकर गर्जने वाली — 'इला न देणी आपणी' का उद्बोध देने वाली।

सूर्यमल्ल के चरित्र में असंगतियाँ हैं और बहुत हैं। ओठर की उखाला के साथ ही नेत्रों में शराब के गुलाबी डोरे, एक हाथ में खड्ग और दूसरे में वीणा[2], अंग्रेज-रक्षक महाराव-राजा रामसिंह की स्तुति (वंश० ४१ । १३-१४) और बागियों के दीवानों का समर्थन। आँख में आँसू और ओठों पर गीत[3] रामसिंह के दाब को पाड़ों की टापों तले रूंधता हुआ

१—द्रष्टव्य—वीर सतसई की भूमिका में संकलित कवि के पत्र।

२—सूर्यमल्ल बड़ा सिद्धहस्त वीणा-वादक था। वह अपने हाथ में हमेशा अंकुश रखा करता था।

३—प्रवाद प्रसिद्ध है कि सूर्यमल्ल अपनी पत्नी का दाह-संस्कार तानपूरे पर 'भाड़ी जो घूघटड़ो खोलो म्हाने चाव छं' गीत गाते हुए किया था।

— द्रष्टव्य—वीर सतसई, भूमिका पृ. २४-२५

देखने की कामना[1] और उसे छोड़कर अन्यत्र कहीं न जाने का निश्चय[2]। ज़रा - ज़रा-सी बात पर तुनक जाने वाला मिज़ाज[3] और पर-दुःख-कातर मन[4]।

इस विसंगति का कारण उसकी मद्य-लोलुपता न होकर उसका वह युग था, जिससे वह बहुत-बहुत आगे था। उसकी स्वधर्म और जाति विषयक तपःपूत भावनाएँ तत्कालीन *वातावरण से मेल नहीं बिठा पा रही थीं। अपनी वाणी और व्यक्तित्व के सम्मिलित* प्रभाव से भी वह अपने युग की मनोवृत्ति को बदल पाने में असमर्थ रहा था। 'इळा न देणी आपणी', 'सुरन की अद्भुत सरनि, क्रमे पथिक अरकाय' (वंश० १७८० । ४८) के मन्त्र और तत्कालीन नेतृत्व को दिया गया उद्बोधन—'हिंदुन हकारि हिंदुन अवनि हिंदुनपति भुगहु हरखि' (वंश० ३०१२ । १८) अर्थात् हिन्दू-पतियो हिन्दुओं को एक झंडे के नीचे एकत्र कर हिन्दुस्तान की धरती का हर्षपूर्वक भोग करो— मात्र वाणी के विषय बनकर रह गये थे, कर्म-क्षेत्र में उनका प्रवेश नहीं हो पाया था। इसी की प्रतिक्रियास्वरूप हम पाते हैं कि नैराश्य के धुंधलके में डूबता-उतरता सूर्यमल्ल स्वयं को शराब में गर्क कर डालता है और गा उठता है—'मीसण थारो मनड़ो कहूँ न दोसै।' डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन स्तुत्य है कि सूर्यमल्ल अपने युग के लिए मिसफिट अर्थात् 'मिसपन्थी' था। 'यदि ये' महाकवि महाराणा प्रतापसिंह या राजसिंह के समकालीन होते अथवा आज के ज़माने में नेताजी के साथ होते तो *कैसा मणि-कांचन संयोग होता*।[5]

सूर्यमल्ल मूलतः युद्ध का कवि है। एक ही युद्ध-प्रसंग उसके काव्यलोक में नाना रंग - शैलियों में चित्रित हैं। जब वह उसका उद्‌घाटन करता है तो राजस्थान का वीर-दर्प ठांठे मारता हुआ मुंह से बोलने लगता है। उसकी वाणी में जौहर - ज्वालाओं में अर्थ मूर्त्त होने लगते हैं और लगता है जैसे हम केसरिया आकाश के तले खड़े हैं। सूर्यमल्ल साहित्य की ये

१—कहते हैं कि सूर्यमल्ल प्रति दिन प्रार्थना करता था कि हे भगवान भास्कर! एक दिन ऐसा भी उगे कि जब मेरे स्वामी का मुण्ड घोड़ों की टापों में लुढ़कता मिले। इसका कारण पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया था कि मेरा स्वामी खाट पर मरने के बजाय रण-मरण का सौभाग्य प्राप्त करे। रामसिंह इस बात से बड़ा प्रसन्न हुआ था।

— द्रष्टव्य—वीर सतसई, भूमिका पृ ५३

२—जोधपुर नरेश ने सूर्यमल्ल को ६०-७० हज़ार की जागीर देने को कहा था। पर रामसिंह को छोड़कर जाना उसे स्वीकार्य न हुआ। — द्रष्टव्य वही पृ २६

३—कवि महाराज भीमसिंह की बारात में बांसवाड़ा गया था। वहां के प्रधानामात्य की ज़रा-सी बात पर नाराज़ होकर बांसवाड़ा से चल पड़ा था। —द्रष्टव्य वही पृ. ३२

४—कवि ने दारोगा अम्बालाल को बूंदी दरबार से बड़ी सहायता दिलवाई थी।

— द्रष्टव्य वही पृ. २७

५—वीर सतसई, प्राक्कथन पृ. ४

अध्याय २

वंशभास्कर : सामान्य परिचय

वंशभास्कर राजस्थान का नितान्त ही मान्य एवं यशस्वी ग्रंथ है। हिन्दी के रीतिकालीन कवि जब अपनी कला-साधना और शृंगार-आराधना में ससमारोह व्यस्त थे तभी वंशभास्कर का उदय हुआ। उससे जो रश्मियाँ विकीर्ण हुईं उनसे जहाँ एक ओर रण-धवल राजस्थान का अतीत आलोकित हुआ वहीं उनका बाँका वीरत्व और पराक्रमी शौर्य प्रदीप्त वाणी में मुखरित हो उठा, जो राजस्थानी जन-मानस को दूर तक प्रभावित करने में समर्थ हुआ। युवा मरुवीरों ने उसमें अपने रक्त का रंग देखा तो रमणियों ने जौहर की ज्वाला के दर्शन किये तो वृद्ध-जनों ने मूछों पर हाथ धरे और बालवृन्द केशरिया रंग का जादू समझने लगा। राजाओं ने उसके पारायण से राजत्व समझा, पण्डित-शास्त्रियों ने नीति और शास्त्र गुना, कलावन्तों ने कलाएँ जानीं, कवि-आचार्य साहित्य की परख में समर्थ बने और राजस्थान के इतिहास-प्रणेताओं ने तो इसे आधार बनाकर चलने में ही सिद्धि देखी। इस प्रकार वंशभास्कर काव्य और इतिहास के रूप में ही नहीं अपितु भारतीय ज्ञान-परम्परा के समृद्ध कोष और राजस्थानी सभ्यता-संस्कृति के स्मारक-ग्रंथ के रूप में प्रख्यात है।

ग्रंथ-निर्माण—

बूंदी नरेश महारावराजा रामसिंह के आदेश से वंशभास्कर का निर्माण हुआ। यह आदेश उसने उस समय दिया जब वह अपनी सभा-मण्डली सहित ब्राह्मण आशानन्द से महाभारत सुन रहा था। आदिपर्वान्तर्गत उत्तङ्काख्यान का श्रवण करते समय उसमें विचारोन्मेष हुआ कि यद्यपि चहुवाण (चौहान) वंश-पराक्रम संस्कृत में सुगुम्फित है परन्तु आज के मन्द-बुद्धि लोग इस क्लिष्ट भाषा को समझने में असमर्थ हैं अतएव क्यों न चौहान-वंश-श्री को लोक-भाषा में निबद्ध कर उसे जन-साधारण-सुलभ बना दिया जाय? इस विचार को मूर्त्त करने हेतु उसने निज आश्रित 'रसवीर मूर्ति, उद्दण्ड अर्थ, छः गिरा-निधान सुकवि रविमल्ल' को आदेश दिया (वंश० ६५। ६-१२)। उसने कवि को विशेष रूप से निर्देश दिया कि 'रचो नृगिरा बंस प्रबंध, धरो सबही मत मध्य सुबंध' (वंश० ६७। ५) आदेश पर सूर्यमल्ल ने तथास्तु कहकर स्वामी की आज्ञा को शिरोधार्य किया और महारावराजा ने स्वर्ण-कंकण कुण्डलादि देकर अपने कवि को विदा किया।

ग्रंथ-रचना-काल—

अपने निवास-स्थान पर आकर शास्त्रोक्त रीति से स्नान, ध्यान, दान आदि के उपरान्त कवि ने विघ्न-विदारण गणपति का आराधन किया और वह वीणापाणि सरस्वती से

'युक्ति-नवीन' की कामना कर वंश-प्रबन्ध की रचना को सन्नद्ध हुआ— 'बिरंचन बंश प्रबन्ध को, अब कवि धरिय उमग' (वश० ६६ । २२)

ज्योतिष शास्त्र की नितान्त ही सूक्ष्म गणना के आधार पर अपने ग्रंथ का रचना-काल निर्धारित करते हुए कवि ने स्पष्ट लिखा है—

> विक्रम सक हय अंक अट्ठ अवनी १८६७ मित आवत ।
> सालिवाह सक नयन तर्क हय भूमि १७६२ सुहावत ।।
> चद्रराध सित तीज घटी मुनि गुन ३७ पल दुव कर २२ ।
> बिधिभ ४ त्रिकु १३ र गज पच ५८ छठी ६ युति तीस ३० र दस १० पर ।।
> तैतिल ४ कृसानु ससि १३ कृत बिलय ५४ दिन दंत ३२ र रद ३२ मानधर ।
> मध्याह्न इष्ट आरंभ किय लग्न कुलीर ४ प्रबन्ध वर ।। —वश० पृ. ८४ । ८६

मोटे रूप में विक्रम सम्वत् १८६७ वैशाख सुदि तृतीया सोमवार को वंशभास्कर की रचना प्रारम्भ हुई। आगे 'ग्रह लाघव' नामक ग्रंथ के आधार पर भी कवि ने ग्रंथ-रचना काल को सुनिश्चित रूप से प्रकट कर दिया है—

> ग्रह लाघव अनुसार अभ्र सर वेद ४५० अहगंन ।
> अवी पर रवि कवि कुज ६ इदु इख २ केतु मृगादन ५ ।।
> तुला ७ जीव अलि ८ मद कुंभ ११ आश्रित सिंहीसुत ।
> सोमनंद थित सफर १२ जत्थ निज भाग भोग जुत ।।
> हय पंच अर्क १२५७ मित जवन सक इंग्रेजन ससि वेद धृति १८४१ ।
> तिहिं काल सुकवि प्रारम्भ किय अनलबंस उत्पत्ति कृति ।।
>
> — वंश० पृ. ८५ । ८६

कवि यह भी बताना नहीं भूला है कि चहुवाण (आदि चौहान) का जो जन्म-दिवस है वही वंशभास्कर की रचना का भी— 'जन्म दिवस चहुमान को, या ग्रंथ हुम्रो माहि' (वश० १५१ । १)। और इसकी रचना बूंदी नगर में हुई है — 'ऐसे बूंदीनैर बिच हुव यह ग्रथित प्रबन्ध' (वंश० ८३ । ८२)।

ग्रंथ-रचना-प्रक्रिया—

वंशभास्कर एक नितान्त ही वृहदाकार ग्रंथ है। संभवतः इससे बड़ा ग्रन्थ हिन्दी में कोई नहीं। अधूरा होते हुए भी यह लगभग अढ़ाई हजार मुद्रित पृष्ठ सँजोये हुए है। संक्षिप्त टीका सहित इसके पृष्ठों की संख्या ४१६८ तक पहुँची है। ऐसे 'ग्रन्थ-राट' का निर्माण— वह भी पद्य में—अकेले व्यक्ति की सामर्थ्य से परे ही लगता है। इसलिए सूर्यमल्ल ने इसके निर्माण में 'डिक्टेशन पद्धति' से काम लिया है। राजस्थान में यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि एक साथ कई लेखकों को पास बिठला कर सूर्यमल्ल वंशभास्कर लिखवाया करते थे। 'हरणा' (बूंदी) निवासी सूर्यमल्ल के पौत्र ठा० वासुदानजी के कुंवर के कथनानुसार आठ व्यक्ति

सूर्यमल्ल के दायें-बायें बैठ कर बड़ी कठिनाई से उनकी कविता को लेख-बद्ध कर पाते थे। परन्तु मुंशी देवीप्रसादजी के मतानुसार ये लेखक आठ नहीं थे, केवल चार थे, जिनमें से तीन के नाम उपलब्ध हैं। वे हैं—१ अम्बालाल दाहिमा, २ नदराम गूजरगौड और ३ हूडाजी दाहिमा। भणाय नरेश बलवन्तसिंहजी को सूर्यमल्ल द्वारा माघ शुक्ला चतुर्दशी वि० सं० १६१६ को लिखे गये पत्र में इन लेखकों की संख्या दो ही बताई गई है।[1] इन लेखकों को प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक सूर्यमल्ल के साथ रहना पड़ता था। मद्यपानोपरात अथवा जब भी लहर आ जाये अचानक सूर्यमल्ल 'हूँ' करते और ये लेखक सावधान हो लेखन के लिए तत्पर हो उठते और ज्यों ही कवि के मुख से वाणी फूटी कि लिखने लग जाते—कलम सरपट दौड़ती; एक से यदि वाणी का सूत्र छूट-टूट गया तो दूसरे ने उसे पकड़ जोड़ लिया और यही क्रम चलता रहा—चलता रहा। अर्द्ध-निमीलित नेत्र-सम्पुट काल-गति के भान से परे एक विशेष तन्द्रा की स्थिति — कवि की जिह्वा पर सरस्वती नृत्यरत है…घंटों … कि अचानक तार टूटता है— 'बस, सरस्वती माता! कृपा करो, अब और अधिक तुम्हारी वाणी को वहन करने की क्षमता मुझ में नहीं है।' लेखक सास लेकर श्रमवलात माथा ऊँचा करते—जैसे किसी विराट यज्ञ की एक आहुति पूर्ण हुई हो। इसी प्रक्रिया के आधीन वंशभास्कर का निर्माण हुआ।

सामान्यतः वंशभास्कर का निर्माण एक 'राशि' के उपरान्त दूसरी और तीसरी राशि इस प्रकार हुआ है— पर किन्हीं आवश्यक कारणों से कवि को इसमे व्यतिक्रम भी लाना पड़ा है। कवि ने स्वयं लिखा है— "इस ग्रन्थ मे छट्ठी राशि पहली निर्माण हुवो जिकण मे प्रसग पाइ कुमार चूडा री सपूती बिसेस जणाई।" (वंश० १८७२। २४)। ग्रन्थ के वृहदाकार और उसमे नाना विषयों की योजना का उद्देश्य रहने से कुछ ऐसे प्रसग भी छूट गये हैं जिनकी रचना ग्रथकार को इष्ट थी। यथा—'कछुक आधुनिक भक्त-कुल अब प्रमनत आनन्दि' (वंश० ४२। ६) की घोषणा तो उसने की पर इस विषय मे वह कुछ भी न लिख सका। मद्योन्माद के फलस्वरूप कवि वंशभास्कर मे कहीं कहीं न केवल ऐतिहासिक सन् - सवतों की बड़ी भूलें कर गया है अपितु षट्पात् छद मे उसने ७ पदो की रचना कर डाली है (वंश० ४१४१)।

ग्रंथ - योजना—

सूर्यमल्ल ने इस महाग्रंथ की रचना एक सुनिश्चित योजना के आधार पर की है। ग्रथ का पारायण करने पर 'ग्रथ-योजना' निम्नांकित तीन खण्डों मे विभक्त प्रतीत होती है—

१—मंगलाचरण खण्ड : इसमें अधोलिखित प्रसंग समाविष्ट हैं—

क – वस्तु-निर्देश : विषय, प्रयोजन, अधिकारी-निर्देश।

ख – स्तुति-प्रशंसा : ब्रह्म-स्वरूप स्तुति, देवता स्तुति, श्रावी स्तुति, भवस

१—द्रष्टव्य—वीर सतसई की भूमिका का फुटनोट, पृ. ३४

धर्म सूति स्तुति, ऋषि-स्तुति, गुरु-स्तुति, शिशु-स्तुति, पंडित-स्तुति गीर्वाणवाक् कवि-स्तुति, सज्जन-स्तुति, उदार-स्तुति, वीर-स्तुति, गंभीर-स्तुति, सत्यवाक्-स्तुति, मनस्वी-स्तुति, लोक-भाषा-कवि स्तुति, चारण-कवि-स्तुति, प्रवक्ता मित्र-प्रशंसा।

ग – कवि-वंश-वर्णन।

२—ग्रंथ परिचय खण्ड : अथ प्रबन्ध प्रारम्भ (वंश० पृ. ४७) : इसमें निम्नांकित प्रसंगों का समावेश है—

क – देश, राजधानी एवं रामसिंह-वर्णन।

ख – ग्रंथ निर्माणाज्ञा।

ग – ग्रंथ-प्रारम्भ-काल-निरूपण।

घ – ग्रंथ सार अर्थात् क्षत्रिय वंश-वर्णन-प्रतिहार, चालुक्य और परमार सहित चहुवाणोत्पत्ति एवं संक्षिप्त चहुवाण वंश-वर्णन।

ङ – ग्रंथ-निर्माण-नियम, भाषा, छन्द, अलंकारादि विषयक नियम।

च – ग्रंथ सूची।

छ – ग्रंथ-नाम।

३—मूल - ग्रंथ - खंड.: अथ यथातथ्यविस्तरवाह्निवंश प्रारंभः (वंश० पृ. १११)।

मूल-ग्रन्थ-खण्ड में 'ग्रंथ-सार' के अन्तर्गत समास रूप में प्रस्तुत सामग्री का व्यास-शैली में कथन किया गया है। कवि ने कहा भी है— 'यह समास उद्देस किय बरनौं अब करिय व्यास' (वंश० ११६। १)।

मूल-ग्रंथ-खड में ग्रंथ-सार का विस्तृत वर्णन है। प्रथम प्रतिहार चालुक्य और प्रमार वंशों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सूर्यमल्ल के अनुसार चहुवाण (चहुवाण) से चौहानों से एक ही प्रमुख शाखा थी, परन्तु सोमेश्वर के समय से उसकी —भरथ और उरथ— दो शाखाएँ हो गईं (वंश० ११२। १३१) डिड्डुर (चौहान) वंश में भरत से पृथ्वीराज हुआ और उरथ कुल से अस्थिपाल (हाडा)—

डिड्डुर कुल पीथल तिहर, अधिप भरथ भव रास।
अस्थिपाल कुल उरथ भव, बरो ग्रवण बरैस॥

— वंश० ८६। ४०

यद्यपि हाडा-वंश ही इस ग्रंथ-रचना का मूलाधार है— 'हाडा ग्रंथ निदान है, सो सब मुख्य सुबोध' (वंश० १२६७। ४१) तथापि उसका कथन भरत कुल के उपरान्त ही किया गया है (वंश० १२६७। ४२-४३)। हमीर तक भरत कुल का बखान करके उरथ वंश का वर्णन विविध कथाओं के साथ प्रारम्भ किया गया है—

लहि समाप्ति हम्मीर लग बलि नृप तावक वंश।
विविध कथा गुन बरनि हौं उरय बंस अवतंस॥

— वश० ८६। ४५

हाडा वंश के एक एक राजा को लेकर 'राशियों' के अंतर्गत 'चरित्रों' की रचना की गई है। यथा 'बुद्धसिंह चरित्र', 'उम्मेदसिंह चरित्र' आदि और इन्हीं के साथ आनुषंगिक रूप से अन्यान्य सम्बद्ध राजाओं बादशाहों, युद्धों आदि के हवाले दे दिये गये हैं। इसी प्रसंग में विद्या-शास्त्र आदि कथन के अवसर भी ग्रंथकर्ता ने ढूढ निकाले हैं।

ग्रन्थानुबन्ध—

सूर्यमल्ल ने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही ग्रंथानुबन्ध स्पष्ट करते हुए लिखा है—

" ···सुकवि सूर्य्यमल्लविहित —वंशभास्कराभिध विविध बाहुजवंशोपविमंवित विशिष्टवेदनीयवरविद्याविषयक - प्राकृतादिपाण्डित्यपूर्वप्रस्तुत पुरुषार्थ (४) प्रयोजनक सविधात् - संविधेयसम्बन्ध कविविधर्वेधयिक काव्यकलन कामाधिकारिप्रबन्धः पुस्ती-क्रियते।" (वश० १। १)

इसके आधार पर वंशभास्कर के विषय, प्रयोजन एवं अधिकारी के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य प्रकट होते हैं—

विषय– विविध क्षत्रिय वंश एवं श्रेष्ठ विद्याएँ।[१]

प्रयोजन– प्राकृतादि भाषा का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन और पुरुषार्थ।[२]

अधिकारी– नाना विषय-गर्भित-काव्य की कामना करने वाले।

ग्रंथ - सूची—

कवि ने ग्रन्थ-परिचयान्तर्गत जो ग्रन्थ-सूची दी है वह इस प्रकार है—

प्रथम बंस चंडासिको, विधिक्रम जुत विस्तार।
इतर क्षत्रियन वसजुत, बहुर सुवीर प्रसार॥ ८

१—मिलाइये– (क) रचो नृगिरा करि वस प्रबन्ध, धरो सबही मत मध्य सुसंध।

— वंश० ६७। १

(ख) प्रथम समास रु व्यास करि, कहौं अनल कुल भव्व।
पुनि सब बर विद्या विषय, जे अवश्य पठितव्य॥

— वंश० ८७। ६

२—मिलाइये– ··· ··· ··· रविमल्ल यहं नृप के मुख्य निदेस।
समुभावत प्राकृतसहित बरनत बय विसेस॥ — वंश० २२। ४०

धर्म श्रुति स्तुति, ऋषि-स्तुति, गुरु-स्तुति, पितृ-स्तुति, संस्कृ
गीर्वाणवाक् कवि-स्तुति, गणेश-स्तुति, उदार-स्तुति, धीर-स्तुति,
गंभीर-स्तुति, शरणवाक्-स्तुति, मनस्वी-स्तुति, लोक-भाषा-कवि-स्तु
चारण-कवि-स्तुति, ग्रंथकर्ता मिश्र-प्रशंसा।

ग – कवि-वंश-वर्णन।

२—ग्रंथ परिचय खण्ड : अथ प्रबन्ध प्रारम्भ (वंश० पृ. ४३) : इसमें निम्न
प्रसंगों का समावेश है—

क – देश, राजधानी एवं रामसिंह-वर्णन।

ख – ग्रंथ निर्माणेच्छा।

ग – ग्रंथ-प्रारम्भ-काल-निरूपण।

घ – ग्रंथ सार अर्थात् क्षत्रिय वंश-त्रय-प्रतिहार, चालुक्य और परमार इति
चहुवाणोत्पत्ति एवं संक्षिप्त चहुवाण वंश-वर्णन।

ङ – ग्रंथ-निर्माण-नियम, भाषा, छंद, अलंकारादि विषयक नियम।

च – ग्रंथ सूची।

छ – ग्रंथ-नाम।

३—मूल - ग्रंथ - खंड : अथ यथातथसविस्तरचाह्विंश प्रारंभः (वंश० पृ. १११)।

मूल-ग्रन्थ-खण्ड में 'ग्रंथ-सार' के अन्तर्गत समास रूप में प्रस्तुत सामग्री का व्यास-शैली में कथन किया गया है। कवि ने कहा भी है— 'यह समास उद्देस किय बरनों अब करि व्यास' (वंश० १३६। १)।

मूल-ग्रंथ-खंड में ग्रंथ-सार का विस्तृत वर्णन है। प्रथम प्रतिहार चालुक्य और प्रमार वंशों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सूर्यमल्ल के अनुसार चंडासि (चहुवाण) से चौहानों से एक ही प्रमुख शाखा थी, परन्तु सोमेश्वर के समय से उसकी —भरथ और उरथ— दो शाखाएँ हो गई' (वंश० ११२। १३१) डिड्डुर (चौहान) वंश में भरत से पृथ्वीराज हुआ और उरथ कुल से अस्थिपाल (हाडा)—

> डिड्डुर कुल पीथल निडर, अधिप भरथ भव रास।
> अस्थिपाल कुल उरथ भव, धरो श्रवण धरेश॥
>
> — वंश० ८६। ४०

यद्यपि हाडा-वंश ही इस ग्रंथ-रचना का मूलाधार है— 'हाडा ग्रंथ निदान है, सो सब मुख्य सुबोध' (वंश० १२६७। ४१) तथापि उसका कथन भरत कुल के उपरान्त ही किया गया है (वंश० १२६७। ४२-४३)। हमीर तक भरत कुल का बखान करके उरथ वंश का वर्णन विविध कथाओं के साथ प्रारम्भ किया गया है—

सहि समाप्ति हम्मीर लग बलि नृप तावक वंश।
विविध कथा गुन बरनि हीं उरय बंस भवतंस॥

— वंश० ८६। ४५

हाडा वंश के एक एक राजा को लेकर 'राशियों' के अंतर्गत 'चरित्रों' की रचना की गई है। यथा 'बुद्धसिंह चरित्र', 'उम्मेदसिंह चरित्र' आदि और इन्हीं के साथ आनुषंगिक रूप से अन्यान्य सम्बद्ध राजाओं बादशाहों, युद्धों आदि के हवाले दे दिये गये हैं। इसी प्रसंग में विद्या-शास्त्र आदि कथन के अवसर भी ग्रंथकर्ता ने ढूंढ निकाले हैं।

ग्रन्थानुबन्ध—

सूर्यमल्ल ने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही ग्रंथानुबन्ध स्पष्ट करते हुए लिखा है—

" ···सुकवि सूर्य्यमल्लविहित —वंशभास्कराभिध विविध बाहुजवंशीयविभक्ति विशिष्टवेदनीयवरविद्याविषयक - प्राकृतादिपाण्डित्यपूर्वप्रस्तुत पुरुषार्थ (४) प्रयोजनक सविधात् - सविधेयसम्बन्ध कविविधवंषयिक काव्यकलन कामाधिकारिप्रबन्धः पुस्तीक्रियते।" (वंश० १।१)

इसके आधार पर वंशभास्कर के विषय, प्रयोजन एवं अधिकारी के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य प्रकट होते हैं—

विषय– विविध क्षत्रिय वंश एवं श्रेष्ठ विद्याएँ।[1]

प्रयोजन– प्राकृतादि भाषा का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन और पुरुषार्थ।[2]

अधिकारी– नाना विषय-गर्भित-काव्य की कामना करने वाले।

ग्रंथ - सूची—

कवि ने ग्रन्थ-परिचयान्तर्गत जो ग्रन्थ-सूची दी है वह इस प्रकार है—

प्रथम बंस चंडासिको, विधिक्रम जुत विस्तार।
इतर छत्रियन वसजुत, बहुर सुबीर प्रसार॥ ८

१—मिलाइये– (क) रचो नृगिरा करि वंस प्रबन्ध, धरो सबही मत मध्य सुसंध।

— वंश० ६७। ५

(ख) प्रथम समास रु व्यास करि, कहौं अनल कुल भव्य।
पुनि सब बर विद्या विषय, जे अवश्य पठितव्य॥

— वंश० ८७। ६

२—मिलाइये– ··· ··· ··· रविमल्ल यहं नृप के मुख्य निदेस।
समुभावत प्राकृतसहित बरनत बंध बिसेस॥ — वंश० २२। ४०

धर्म वृत्ति स्तुति, ऋषि-स्तुति, गुरु-स्तुति, पितृ-स्तुति, पंडित-स्तुति गीर्वाणवाक् कवि-स्तुति, सतोषी-स्तुति, उदार-स्तुति, धीर-स्तुति, गंभीर-स्तुति, सत्यवाक्-स्तुति, मनस्वी-स्तुति, लोक-भाषा-कवि स्तुति, चारण-कवि-स्तुति, ग्रंथकर्ता मित्र-प्रशंसा।

ग — कवि-वंश-वर्णन।

२—ग्रंथ परिचय खण्ड : अथ प्रबन्ध प्रारम्भ (वंश० पृ. ४७) : इसमें निम्नांकित प्रसंगों का समावेश है—

क — देश, राजधानी एवं रामसिंह-वर्णन।

ख — ग्रंथ-निर्माणाज्ञा।

ग — ग्रंथ-प्रारम्भ-काल-निदर्शन।

घ — ग्रंथ सार अर्थात् क्षत्रिय वंश-त्रय-प्रतिहार, चालुक्य और परमार सहित चहुवाणोत्पत्ति एवं संक्षिप्त चहुवाण वंश-वर्णन।

ङ — ग्रंथ-निर्माण-नियम, भाषा, छंद, अलंकारादि विषयक नियम।

च — ग्रंथ सूची।

छ — ग्रंथ-नाम।

३—मूल - ग्रंथ - खंड.: अथ यथातथसविस्तरचाह्विवंश प्रारंभ: (वंश० पृ. ११३)।

मूल-ग्रन्थ-खण्ड में 'ग्रंथ-सार' के अन्तर्गत समास रूप में प्रस्तुत सामग्री का व्यास-शैली में कथन किया गया है। कवि ने कहा भी है— 'यह समास उद्देस किय बरनों अब करि व्यास' (वंश० १३६। १)।

मूल-ग्रंथ-खंड में ग्रंथ-सार का विस्तृत वर्णन है। प्रथम प्रतिहार चालुक्य और प्रमार वंशों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सूर्यमल्ल के अनुसार चंडासि (चहुवाण) से चौहानों से एक ही प्रमुख शाखा थी, परन्तु सोमेश्वर के समय से उसकी —भरथ और उरथ— दो शाखाएँ हो गईं (वंश० ११२। १३१) हिन्दुर (चौहान) वंश में भरत से पृथ्वीराज हुआ और उरथ कुल से अस्थिपाल (हाडा)—

> हिंदुर कुल पीयस निहर, मथित भरथ भव राम।
> अस्थिपाल कुल उरथ भव, धरो श्रवण भरेस॥

— वंश० ८९। ४०

यद्यपि हाडा-वंश ही इस ग्रंथ-रचना का मूलाधार है— 'हाडा ग्रंथ निदान है, सो सब मुख्य सुबोध' (वंश० १२६७। ४१) तथापि उसका कथन भरत कुल के उपरान्त ही किया गया है (वंश० १२६७। ४२-४३)। हमीर तक भरत कुल का बखान करके उरथ वंश का वर्णन विविध कथाओं के साथ प्रारम्भ किया गया है—

इहि समाप्ति हम्मीर लग बलि नृप तावक वंश।
विविध कथा गुन बरनि हों उरथ बंस भवतंस ॥

— वश० ८६ । ४५

हाडा वंश के एक एक राजा को लेकर 'राशियों' के अंतर्गत 'चरित्रों' की रचना की गई है। यथा 'बुद्धसिंह चरित्र', 'उम्मेदसिंह चरित्र' आदि और इन्हीं के साथ आनुषंगिक रूप से अन्यान्य सम्बद्ध राजाओं बादशाहों, युद्धों आदि के हवाले दे दिये गये हैं। इसी प्रसंग में विद्या-शास्त्र आदि कथन के अवसर भी ग्रंथकर्ता ने ढूंढ निकाले हैं।

ग्रन्थानुबन्ध—

सूर्यमल्ल ने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही ग्रंथानुबन्ध स्पष्ट करते हुए लिखा है—

" ···सुकवि सूर्य्यमल्लविहित —वंशभास्कराभिध विविध बाहुजवंशीयविभवित विशिष्टवेदनीयवरविद्याविषयक - प्राकृतादिपाण्डित्यपूर्वप्रस्तुत पुरुषार्थ (४) प्रयोजनक सविघात् - संविधेयसम्बन्ध कविविधवंपयिक काव्यकलन कामाधिकारिप्रबन्धः पुस्तीक्रियते।" (वश० १ । १)

इसके आधार पर वंशभास्कर के विषय, प्रयोजन एवं अधिकारी के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य प्रकट होते हैं—

विषय– विविध क्षत्रिय वंश एवं श्रेष्ठ विद्याएँ।[1]

प्रयोजन– प्राकृतादि भाषा का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन और पुरुषार्थ।[2]

अधिकारी– नाना विषय-गर्भित-काव्य की कामना करने वाले।

ग्रंथ - सूची—

कवि ने ग्रन्थ-परिचयान्तर्गत जो ग्रन्थ-सूची दी है वह इस प्रकार है—

प्रथम बंस चंडासिको, विधिक्रम जुत विस्तार।
इतर छत्रियन बसजुत, बहुर सुवीर प्रसार ॥ ८

१—मिलाइये– (क) रच्यो नृगिरा करि बंस प्रबन्ध, धरो सबही मत मध्य सुसंध।

— वंश० ६७ । ६

(ख) प्रथम समास रु व्यास करि, कहों अनल कुल मत्त।
पुनि सब बर विद्या विषय, जे अवश्य पठितव्य ॥

— वंश० ८७ । ६

२—मिलाइये– ··· ··· ··· रविमल्ल यहं नृप के मुक्ख निदेस।
सपुभावत प्राकृतसहित बरनत बंय विसेस ॥ — वंश० २२ । ४०

कथ्य - निरूपण—

'वंशभास्कर' के नानाविध-विस्तृत कथ्य-कथन के लिए सूर्यमल्ल ने क्रमशः समास, व्यास एवं सिंहावलोकिनी शैली का प्रश्रय ग्रहण किया है (द्रष्टव्य प्रबन्ध-योजना)।

ग्रन्थ-परिचय-खंड में उसने जो रूपरेखा निश्चित की है, मूल-ग्रंथ-खंड में उसी का विस्तार किया है। उसने कहा भी है 'सूची कोहु समास करि, अब करियत उद्देस' (वंश० १५२।७) और भी 'यह समास उद्देस किय, बरनों अब करि व्यास' (वंश० १३६।१)।

प्रत्येक मयूख के अंत में पुष्पिका के अंतर्गत उपसंहार-वाक्य में विवेचित सामग्री को एक बार फिर दुहरा दिया गया है। इस प्रकार वंशभास्कर में एक कथ्य की तीन-तीन अवतारणाएँ—एक बार समास रूप में, फिर व्यास रूप में और अंत में उपसंहार रूप में—हुई हैं। प्रत्येक राशि के अंत में भी राश्यान्तर्गत विवक्षित सम्पूर्ण विषय का सारांश देना भी कवि नहीं भूला है।

उपसंहार तथा सूची-पत्र देने का क्रम आदि से लेकर पंचम राशि तक बराबर जारी रहा है किन्तु छठी राशि में प्रथम, सप्तम राशि में 'उम्मेदसिंह चरित्र' तथा अष्टम राशि में 'अजितसिंह चरित्र' के प्रथम मयूख के अतिरिक्त शेष मयूखों के उपसंहार (पुष्पिकाएँ) का स्थान छोड़ दिया गया है। टीकाकार कृष्णसिंह बारहठ ने अपनी 'उदधि-मथिनी टीका' में 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' नीति से अपनी ओर से उपसंहार-वाक्य जोड़ दिये हैं।

पंचम राशि का समारम्भ करते हुए सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर का परिचय इन शब्दों में दिया है —

'वसुधेश्वर वंशवारिजवारिधि क्षात्रधर्मखनि, श्रुतशूरवंशमनुलोमाञ्चक करुणास्पदी कृतकाल-कलाप यथातथराजन्याचारबोधमान मृषाश्वमेधदीक्षादक्षीकरण कुशल कलिकालोदन्तो-द्दीपक धोर्यगुम्रुमिलिन्दमालतीमरन्द कविकलरवसहकार रसनवक निधि नरवाहन कोविदकाश्यपीकमनकौतिनीकंवर्तक प्रबन्धेश भास्कराभिधे.........।' (वंश० १६७३।१)

वंशभास्कर की अपूर्णता—

सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर की रचना एक पूर्व-निर्धारित सुनिश्चित योजना के आधार पर की है। उसने ग्रंथ-नियमान्तर्गत स्पष्ट लिखा है कि रवि के दो अयनों १२ अंशों और सहस्र मयूखों के समान ही वंशभास्कर के भी दो अयन, १२ अंश (विभाग) और सहस्र मयूख हैं। एक अयन में विविध वंशीय अनेक नृपतियों के चरित्र-वर्णन का विधान है और दूसरे अयन में पुरुषार्थ चतुष्टय के साथ ही देशी प्राकृतादि भाषाओं का विवेचन (वंश० १५३।१३)। परन्तु वंशभास्करकार अपनी इस योजना को पूर्ण-रूपेण क्रियान्वित नहीं कर सका। २१२ मयूखों में छः राशियों की रचना कर—पूर्वायण की समाप्ति के उपरान्त—उत्तरायण में सातवीं राशि लिखकर आठवीं राशि पूरी भी नहीं कर पाया था कि सूर्यमल्ल को अपने इस महत्त्वाकांक्षी ग्रंथ का निर्माण सदा के लिए बन्द कर देना पड़ा, और यह

वंशभास्करान्तर्गत 'राम-चरित्र' के इस विश्लेषण के आधार पर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि महारावराजा रामसिंह जैसा पुरातनपंथी और नीति-निपुण शासक अपने चरित्र के धूमिल-पक्ष का निरावृत प्रदर्शन होते न देख सका हो और उधर इतिहासकार के धर्म एवं चिर-आचरित गौरवमयी चारणी परम्पराओं से प्रेरित सूर्यमल्ल अपनी सत्य-निष्ठा और तथ्य प्रतिपादन के सिद्धांत के प्रति अडिग रहा हो और परिणामस्वरूप वंशभास्कर का निर्माण अवरुद्ध हो गया हो। अपने सत्य-कथन और तथ्य-प्रतिपादन के निश्चय को कवि ने वंशभास्कर में स्पष्ट कर दिया है। दुष्ट-संस्तुति को वह ब्रह्म-हत्या के समान मानता है—

> कानि चहै यह नहि काहुको, सुकवि कहै इक सत्य।
> मानि दयो दुष्टहिं भलो, ह्वै वो सद्विज हत्य।।

—वंश० २।२२७७

शीश देकर भी उसे सत्य की रक्षा इष्ट है—

> तथ्य न व्है कथितव्य, तो अर्प्पहिं ध्रुव अवनीस।
> कबहु सुकवि अनृत न कहत, सहत जदपि दुखसीस।।

—वंश० २।११७७

अन्तःसाक्ष्य से भी ऐसे संकेत मिल जाते हैं कि रामसिंह के उदात्त स्वरूप को चित्रित करता हुआ (वंश० ४२३०-३१। २०४-२९८) कवि प्रसंग प्राप्त-स्थलों पर उसकी दुर्बलताओं को भी इंगित कर जाता है। यथा अपने सचिव कृष्णराम धाभाई की हत्या के प्रति शोधस्वरूप रामसिंह द्वारा की गई ब्राह्मण और वैश्य की हत्या के कृत्य को उसकी किशोरावस्थाजन्य प्रमाद का सूचक कहते हुए वह उसे पश्चाताप करता हुआ चित्रित करता है। (वंश० ४२२९। १८७-८८, ४२३१। १९२)। इससे स्पष्ट है कि यदि कवि को अवसर मिलता तो वह रामसिंह के चरित्र के धूमिल पक्ष को भी अवश्य ही उजागर करके रहता। जबकि उसने अपने ग्रंथ मे सभी विगत बूंदी-नरेशों के चरित्रों से सम्बद्ध क्या अच्छी और क्या बुरी सभी बातो का आकलन किया है तो फिर 'राम-चरित्र' ही अपवादस्वरूप कैसे रह जाय? इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि सूर्यमल्ल बूंदी-नरेशों की चारित्रिक स्खलनाओं का उद्घाटन करने में भी नहीं चूका है। महारावराजा बुधसिंह की राठोड़ी रानी तक को उसने स्पष्ट शब्दों में असति और हराम कह डाला है— सुता भणाय अधीश की, बुंदी पति लघुवाम। सांगानेर समीप सो ही असती रु हराम। वंशभास्कर-कार को आदत यह नीति रही है कि जब वह अपने ग्रंथ में किसी तथ्य को प्रतिपादित करता है तब उसके अंतिम सूत्र की भी सूचना वह दे देता है। परन्तु 'राम-चरित्र' के कुछ प्रसंग इसके अपवादस्वरूप हैं। यथा—कवि ने रामसिंह के प्रथम पुत्र महाराजकुमार भीमसिंह के जन्म और उस के उत्सव आदि का तो वर्णन किया है (वंश० ४०३३। १६) परन्तु उसके अन्त के विषय में कुछ भी नहीं कह सका है। इस विषय में प्रवाद प्रसिद्ध है कि अवज्ञाकारी होने एवं यवनों की संगत में विचरण करने के कारण महारावराजा रामसिंह ने भीमसिंह को विश्वासघात

से मरवा डाला था। इस तथ्य का वंशभास्कर में उल्लेख न देकर टीकाकार कृष्णसिंह बारहठ ने तो यहाँ तक कह दिया है कि इससे कवि की सत्य-निष्ठा पर आक्षेप आता है[1]। रामसिंह के इस पुत्र-घात के प्रसंग मे बूंदी के कवि गोपालसिंह सन्यासी ने तो बूंदी-वंशधरों के विषय में यहाँ तक कह डाला कि—'है तो तू माय पर सांपणी सी जांणी जाय' ऐसा ही एक प्रसंग महारावराजा रामसिंह के भाई गोपालसिंह का है, जिसके विवाह आदि का सूचन तो कवि ने किया है पर उसके प्रति रामसिंह के व्यवहार को वह अंकित नहीं कर पाया है। इतिहास में प्रसिद्ध है कि गोपालसिंह को दुश्चरित्रता के आरोप मे महारावराजा रामसिंह ने नजर-कैद कर लिया था और उसी दशा मे उसकी मृत्यु हो गई थी।[2]

'राम-चरित्र' के अन्तर्गत आने वाले ये कतिपय ऐसे प्रसंग हैं कि जिन्हें यथातथ्य लिखने पर रामसिंह का चरित्र अवश्य ही धूमिल हो जाता है। और यह बात भी निश्चित है कि यदि सूर्यमल्ल को अष्टमराश्यान्तर्गत 'रामसिंह-चरित्र' पूर्णरूपेण लिखने का अवसर मिलता तो वह इन प्रकट तथ्यों की अवहेलना कभी नहीं करता क्यों कि वह पाप-रक्षित अग्नि-वंश का ही संवर्धन चाहता है।[3] अनुमान किया जा सकता है कि ये और ऐसे ही कतिपय अन्य प्रसंगों से अवगत होकर रामसिंह कवि के प्रति विरक्त हो गया होगा और उसके वंशभास्कर की रचना बंद करवादी होगी।

इस प्रवाद से परे जाकर यदि हम वंशभास्कर के रचनावरोध का कारण कवि की प्रकृति-प्रवृत्ति एवं संस्कृति-संस्कार मे खोजने का प्रयास करें तब भी हमें कुछ पते के सूत्र मिल जाते हैं।

कवि की जीवनी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह नितान्त ही निरंकुश प्रकृति का व्यक्ति था। आर्य-गौरव की आंच मे तपे क्षत्रियत्व के पराक्रम एवं स्वधर्म के तेजोमय दर्प से उस 'वीर-रसावतार' के 'आग्नेय व्यक्तित्व' का निर्माण हुआ था जिसकी ऊष्मा वीर-सतसई के दोहों में आज भी जीवित है। स्वधर्म, स्वदेश एवं स्वशासन के त्रि-सूत्री मन्त्र के जाप में समर्पित सूर्यमल्ल की वाणी मे आर्य-गौरव का शंख-स्वर ही तो निनादित हुआ है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने सत्य कहा है कि सूर्यमल्ल अपने युग के लिए मिसफिट् (Misfit); अर्थात भिन्न-पंथी था।[4] इसलिये हम उसके चरित्र में नाना विसंगतियाँ पाते हैं। वीर सतसई जैसे जातीय काव्य की रचना का सामर्थ्य रखने वाली लेखनी से वंश-भास्कर जैसे पद्यात्मक इतिहास का निस्सरण कवि की इस चारित्रिक विसंगति का परिणाम कहा जा सकता है। वीर-सतसई के कवि ने अपने युग के साथ विवश समझौता करके

१—टीकाकार की टिप्पणी : वंश० पृ० ४२३६

२—जगदीशसिंह गहलोत : बूंदी राज्य का इतिहास, पृ. ६६

३—*मज्जिद्वंशप्रभुप्रेत्य मातरनिश विद्ये महा मोक्ष दे।*
रवं से ज्वलनान्ववायमनघ विश्वेश्वरे वृहय॥ — मयू० ४। १

४—वीर सतसई : प्राक्कथन, पृ. ४

वंशभास्करान्तर्गत 'राम-चरित्र' के इस विश्लेषण के आधार पर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि महाराव राजा रामसिंह जैसा पुरातनपंथी और नीति-निपुण शासक अपने चरित्र के धूमिल-पक्ष का निरावृत प्रदर्शन होते न देख सका हो और उधर इतिहासकार के धर्म एवं चिर-आचरित गौरवमयी चारणी परम्पराओं से प्रेरित सूर्यमल्ल अपनी सत्य-निष्ठा और तथ्य प्रतिपादन के सिद्धांत के प्रति अडिग रहा हो और परिणामस्वरूप वंशभास्कर का निर्माण अवरुद्ध हो गया हो। अपने सत्य-कथन और तथ्य-प्रतिपादन के निश्चय को कवि ने वंशभास्कर में स्पष्ट कर दिया है। दुष्ट-संस्तुति को वह ब्रह्म-हत्या के समान मानता है—

> कानि चहै वह नहिं काहुको, सुकवि कहै इक सत्य।
> मानि दं बो दुष्टहिं भलो, ह्है बो संद्विज हत्य।।
>
> —वंश० २।२२७७

शीश देकर भी उसे सत्य की रक्षा इष्ट है—

> तथ्य न रहै कथितव्य, तो अप्पहिं धुम अवनीस।
> कबहु सुकवि अनृत न कहत, सहत जदपि दुखसीस।।
>
> —वंश० २।३३७

अन्त:साक्ष्य से भी ऐसे संकेत मिल जाते हैं कि रामसिंह के उदात्त स्वरूप को चित्रित करता हुआ (वंश० ४२३०-३१।२०४-२१८) कवि प्रसंग प्राप्त-स्थलों पर उसकी दुर्बलताओं को भी इंगित कर जाता है। यथा अपने सचिव कृष्णराम धाभाई की हत्या के प्रति क्षोभस्वरूप रामसिंह द्वारा की गई ब्राह्मण और वैश्य की हत्या के कृत्य को उसकी किशोरावस्थाजन्य प्रमाद का सूचक कहते हुए वह उसे पश्चाताप करता हुआ चित्रित करता है। (वंश० ४२२६।१८७-८८, ४२३१।१६२)। इससे स्पष्ट है कि यदि कवि को अवसर मिलता तो वह रामसिंह के चरित्र के धूमिल पक्ष को भी अवश्य ही उजागर करके रहता। जबकि उसने अपने ग्रंथ में सभी विगत बूंदी-नरेशों के चरित्रों से सम्बद्ध क्या अच्छी और क्या बुरी सभी बातों का आकलन किया है तो फिर 'राम-चरित्र' ही अपवादस्वरूप कैसे रह जाय? इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि सूर्यमल्ल बूंदी-नरेशों की चारित्रिक स्खलनाओं का उद्घाटन करने में भी नहीं चूका है। महाराव राजा बुधसिंह की राठौड़ी रानी तक को उसने स्पष्ट शब्दों में असति और हराम कह डाला है— सुता मराय अघोर की, बुंदी पति लघुवाम। सांगानेर समीप सो ही असती रु हराम। वंशभास्कर-कार की आदत यह नीति रही है कि जब वह अपने ग्रंथ में किसी तथ्य को प्रतिपादित करता है तब उसके अंतिम सूत्र की भी सूचना वह दे देता है। परन्तु 'राम-चरित्र' के कुछ प्रसंग इसके अपवादस्वरूप हैं। यथा—कवि ने रामसिंह के प्रथम पुत्र महाराजकुमार भीमसिंह के जन्म और उस के उत्सव आदि का तो वर्णन किया है (वंश० ४०३३।१६) परन्तु उसके अन्त के विषय में कुछ भी नहीं कह सका है। इस विषय में प्रवाद प्रसिद्ध है कि अवज्ञाकारी होने एवं यवनों की संगत में विचरण करने के कारण महाराव राजा रामसिंह ने भीमसिंह को विश्वासघात

से मरवा डाला था। इस तथ्य का वंशभास्कर में उल्लेख न देकर टीकाकार कृष्णसिंह बारहठ ने तो यहाँ तक कह दिया है कि इससे कवि की सत्य-निष्ठा पर आक्षेप आता है[1]। रामसिंह के इस पुत्र-घात के प्रसंग में बूंदी के कवि गोपालसिंह सन्यासी ने तो बूंदी-वंशधरों के विषय में यहाँ तक कह डाला कि—'है तो तू माव पर सांपणी सी जांणी जाय' ऐसा ही एक प्रसंग महारावराजा रामसिंह के भाई गोपालसिंह का है, जिसके विवाह आदि का सूचन तो कवि ने किया है पर उसके प्रति रामसिंह के व्यवहार को वह अंकित नहीं कर पाया है। इतिहास में प्रसिद्ध है कि गोपालसिंह को दुश्चरित्रता के आरोप में महारावराजा रामसिंह ने नजर-कैद कर लिया था और उसी दशा में उसकी मृत्यु हो गई थी।[2]

'राम-चरित्र' के अन्तर्गत आने वाले ये कतिपय ऐसे प्रसंग हैं कि जिन्हें यथातथ्य लिखने पर रामसिंह का चरित्र अवश्य ही धूमिल हो जाता है। और यह बात भी निश्चित है कि यदि सूर्यमल्ल को अष्टमराश्यान्तर्गत 'रामसिंह-चरित्र' पूर्णरूपेण लिखने का अवसर मिलता तो वह इन प्रकट तथ्यों की अवहेलना कभी नहीं करता क्यों कि वह पाप-रक्षित अग्नि-वंश का ही संवर्धन चाहता है।[3] अनुमान किया जा सकता है कि ये और ऐसे ही कतिपय अन्य प्रसंगों से अवगत होकर रामसिंह कवि के प्रति विरक्त हो गया होगा और उसके वंशभास्कर की रचना बंद करवादी होगी।

इस प्रवाद से परे जाकर यदि हम वंशभास्कर के रचनावरोध का कारण कवि की प्रकृति-प्रवृति एवं संस्कृति-संस्कार में खोजने का प्रयास करें तब भी हमें कुछ पते के सूत्र मिल जाते हैं।

कवि की जीवनी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह नितान्त ही निरंकुश प्रकृति का व्यक्ति था। आर्य-गौरव की आंच में तपे क्षत्रियत्व के पराक्रम एवं स्वधर्म के तेजोमय दर्प से उस 'वीर-रसावतार' के 'आग्नेय व्यक्तित्व' का निर्माण हुआ था जिसकी ऊष्मा वीर-सतसई के दोहों में आज भी जीवित है। स्वधर्म, स्वदेश एवं स्वशासन के त्रि-सूत्री मंत्र के जाप में समर्पित सूर्यमल्ल की वाणी में आर्य-गौरव का शंख-स्वर ही तो निनादित हुआ है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने सत्य कहा है कि सूर्यमल्ल अपने युग के लिए मिसफिट् (Misfit); अर्थात मिस्र-पंथी था।[4] इसलिये हम उसके चरित्र में नाना विसंगतियाँ पाते हैं। वीर सतसई जैसे जातीय काव्य की रचना का सामर्थ्य रखने वाली लेखनी से वंशभास्कर जैसे पद्यात्मक इतिहास का निस्सरण कवि की इस चारित्रिक विसगति का परिणाम कहा जा सकता है। वीर-सतसई के कवि ने अपने युग के साथ विवश समझौता करके

१—टीकाकार की टिप्पणी : वंश० पृ० ४२३६

२—जगदीशसिंह गहलोत : *बूंदी राज्य का इलिहास*, पृ. ६६

३—मज्जिहवाग्रमुपेत्य मातरनिशं विदे महा मोद दे।
 त्वं से ज्वलनान्ववायमनघ विदवेश्वरे व्रूहय ॥ — वंश० ४ । १

४—वीर सतसई : प्राक्कथन, पृ. ४

ही वंशभास्कर का निर्माण स्वीकार किया होगा जिसका निर्वाह वह अंत तक नहीं कर सका। कहा जा सकता है कि संवत् १६१३ में प्रसंग प्राप्त होने पर जब महाराजराजा रामसिंह ने वंशभास्कर को अपने चरित्र वर्णन में मात्र संस्तुति-संपादन का आदेश दिया होगा तभी उसके चरित्र का उदात्त तत्व उद्दीप्त होकर वंशभास्कर की रचना से उसे विमुख कर गया होगा। तभी हम देखते हैं कि संवत् १९१४ में[1] कवि 'वीर प्रकासण'[2] देने वाली 'मद बाणी'[3] वीर सतसई के निर्माण में संलग्न है। सन् १८५७ (संवत् १९१४) को स्वतन्त्रता-संग्राम ने जहां खानवा और हल्दीघाटी के युद्धों में चमकने वाली तलवारों को 'पानी' दिया वहीं सूर्यमल्ल की प्रकृत-कवि-प्रतिभा-सुलभ-कर्तव्य-भावना को भी जागृत कर दिया हो तो आश्चर्य ही क्या?

सती - प्रथा - प्रतिबंध, हतप्रभ क्षत्रिय नरेशों के दंभ, पारस्परिक विद्वेष एवं तज्जन्य भारतीयों की दुर्दशा को देखकर सूर्यमल्ल अंग्रेज और अंग्रेज-भक्त भारतीय शासकों के प्रति पहले से ही क्षुब्ध था। इसकी पुष्टि पीपल्या नरेश बलवंतसिंह को भादरबा कुंभारा ? को लिखे गये कवि के पत्र से भली भांति हो जाती है।[4] स्वतंत्रता - संग्राम के अवसर पर कवि का यह मानसिक आक्रोश प्रदीप्त वाणी में फूट पड़ा और अपना कुल-स्वभाव भूलकर

१—बीकम बरसां बीतियो, गण चौ चंद गुणीस।
विसहर तिथ गुरु जेठ वदि, समय पलट्टी सीस॥ — वीर सतसई, पृ. ४

२—सतसई दोहामयी, मीसण सूरजमाल।
जपै भड़ वाणी जठै, सुणी कायरां साल॥ ७ — वही पृ. ६

३—के दोहूं पद क्रमहा, पुत्र पूरा बोध।
सुरुग्यां है बड़ सो सुणो, वीर प्रकासण बोध॥ ६ — वही पृ. ७

४—हिन्दुस्तान को दिन बोरो छै तीनूं एकता कोई विरलो ठोड़ ही रह गई छै। पांच बरस पहली अंग्रेजां ने कमी होता की बात मर्दे वरिता को हुक्म जारा ही रजवाड़ा में अब्दारो ही कर वटा-वटा की बडी-बडी बातमी का बचाव धाप धालबी प्रजी में जाहिर किया त्यां मैं दोनां का भी बचाव एकता की बतवि सूं जिस्या नहीं तीनूं अठेव भी हुक्म कर दिया एकता का बचाव कोई भी कवीन हुयो नहीं त्यांमें कोई मैं बातबी वर्ष भी वट मूं ठीक बचाव जिस्यो छै तो ऊ भी जुदा-जुदा मत का कारण सूं बारी का सबन्ध पर काटी ही भाग्यो नहीं। एकता होती कर सब को एक बचाव वाजो तो अंग्रेजां बचती के को मजूर ही होतो परन्तु हिन्दुस्तान का राजा में तो या बुद्धि रहि नहीं तो देखा देख अठेव मोड व मुसलमान वैसी मिजाज सूं बादशाह छै त्यांको हुक्म हटाबा में तो आपको वर्ष व नाम बचन की नुकसान दे छै परन्तु कांसो बाबी कागे छै कर वटो वर्ष अंग्रेजी फुरमई छै वर बन्दर। अंग्रेजां अबालीय छै जो आपका मन का छै, आपकी बात्यां का छै सो भी क्यों सूं कमपूती हवड़ स्याड़ें छै कर ज्यां में कोई वर्ष को [illegible] देवी कर मजबा दिखाई पवि कार्ड छै के है बडा बूं कर वं अपना

एकछत्र विदेशी सत्ताधीश वीरों के प्रति विक्षुब्ध[1] सूर्यमल्ल का कवि हुकार उठा 'इळा न देणी आपणी'।[2] स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में ही मिति पौष शुक्ला प्रतिपदा १ संवत् १६१४ को पीपल्या ठाकुर फूलसिंह के नाम कवि द्वारा लिखे गये पत्र से प्रकट है कि 'भारत के बुरे दिन देख कर' उसकी अंग्रेज विरोधी भावनाएं कितनी प्रखर हो उठी थीं। उसने स्पष्ट कह दिया था कि 'इस पलटे हुए समय' में भी यदि अंग्रेज यहाँ रह गया तो सत्ता-नाश के साथ ही स्व-धर्म-नाश भी निश्चित ही मानिये।[3]

दिखावा जोग छै सो नम्रता करै छै या बुद्धि हिन्दुस्थानकां की हुई जदि पैली विलायतकां को अमल हुवै छै अर कलियुग लागां पंली पैली तांही धरम के साथ एकता रही जतरै रही। जद इग्रेज व मुसलमान राज लोकां कै पलटण्यां में भर्‌या जावै छा इत्यादिक लिखी जो बात तो आपसूं बी सारी ही छानी छै तीसूं आप जिस्या महा धर्मिष्ठ उठै परमेश्वर नैं मालिक किया छा अर ज्यो आपको हित चहै तीसूं एकता ही चाहो छो।" — वीर सतसई पृ. ८३ से उद्धृत

१—इक डंको गिण एकरी, भूले कुळ स्वभाव।
सूरा आळस ऐस में, प्रकज गुमाई आव।। — वीर सतसई पृ० ५

२—इळा न देणी आपणी, हालरियां हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई मांय।।२३४।। वही पृ० ११४

३—"...........यो तो शरीर जीं अर्थ लाग्यो आछो लागै ऊ अर्थ आयां तो तृण सों भी तुच्छ गिण्यो जावै छै सो तो ठीक ही छै तीको तो म्हानें भी निश्चित भरोसो छै परन्तु ऊ अर्थ बिना और समय में सदा ही यो शरीर प्रयत्नपूर्वक रक्षा करवा को छै अर ईनैं अर्थ लगावा की समय तो परमेश्वर ने पलटायो छै कदाचित् राज्य जिसा सुक्षत्रियां का तथा राज्य के लारै लगा हमास्त का०रां का ए शरीर केही अर्थ लागै तो एक योगी ज्ञानी भक्त कै भी या होई तो सोना में सुगंध होई ज्यों अत्यन्त शोभा पावै तीसों परमेश्वर या बात मिलावै तो उत्तमोत्तम छै परन्तु अल्प परिकर वाला तो आपणै जिस्या सारा ही ई बात नै चाहां छां परन्तु आपणै तो केवल स्वर्ग-प्राप्ति को अर अठै कीर्ति को यो ही फल छै अर ये राजालोग देशीपती जमी का ठाकर छै जै सारा ही हिमालय का गल्या ही नीसरघा सौ चालीस सौ लैरे साठ सत्तर बरसतांई पाछै पट्‌क्या छै तो भी गुलामी करै छै परन्तु यो म्हारो वचन राख्य याद राखोगा कि जै अब के (अंग्रेज) रह्‌यो तो ईको गायो ईसा पूरो करसी जमी का ठाकर कोई भी न रहसी सब ईसाई हो जासी तीसों दूरदेसी विचारै तो फायदो कोई के भी नहीं परन्तु आपणो आछो दिन होय तो विचारै और राज्य जसो सुहृद् म्हारै होय तो बड़ाई तरीके लिखी जावै तो सूं थोड़ो में बहुत जाण लेसो। विज्ञेपु अलमिति पौष शुक्ल प्रतिपदा ज्युजुर्वेदांगभू १६१४ मित विक्रमार्क शाक संगत्यां लिपिरियम्।

— वीर सतसई की भूमिका पृ० ७६ से उद्धृत

ही वंशभास्कर का निर्माण स्वीकार किया होगा जिसका निर्वाह वह अंत तक नहीं कर सका। कहा जा सकता है कि संवत् १९१३ में प्रसंग प्राप्त होने पर जब महारावराजा रामसिंह ने वंशभास्कर को अपने चरित्र वर्णन में मात्र संस्तुति-संपादन का आदेश दिया होगा तभी उसके चरित्र का उदात्त तत्व उद्ग्रीव होकर वंशभास्कर की रचना से उसे विमुख कर गया होगा। तभी हम देखते हैं कि संवत १९१४ में[1] कवि 'वीर प्रकासण'[2] देने वाली 'भड़ खाणी'[3] वीर सतसई के निर्माण में संलग्न है। सन् १८५७ (संवत् १९१४) को स्वतंत्रता-संग्राम ने जहां खानवा और हल्दीघाटी के युद्धों में चमकने वाली तलवारों को 'पानी' दिया वहीं सूर्यमल्ल की प्रकृत-कवि-प्रतिभा-सुलभ-कर्तव्य-भावना को भी जागृत कर दिया हो तो आश्चर्य ही क्या ?

सती - प्रथा - प्रतिबंध, हतप्रभ क्षत्रिय नरेशों के दंभ, पारस्परिक विद्वेष एवं तद्जन्य भारतीयों की दुर्दशा को देखकर सूर्यमल्ल अंग्रेज और अंग्रेज-भक्त भारतीय शासकों के प्रति पहले से ही क्षुब्ध था। इसकी पुष्टि भणाय नरेश बलवंतसिंह को भाद्रपद शुक्ला ३ को लिखे गये कवि के पत्र से भली भाँति हो जाती है।[4] स्वतंत्रता - संग्राम के अवसर पर कवि का यह मानसिक आक्रोश प्रदीप्त वाणी में फूट पड़ा और अपना कुल-स्वभाव भूनकर

१—बीकम बरसां बीतियो, गज चो चंद गुणीस।
   बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस ॥ — वीर सतसई, पृ. ४

२—सतसई दोहामयी, मीसण सूरजमाल।
   जपं भड़-खाणी जठै, सुणी कायरा साल ॥ ७ — वही पृ. ६

३—जे दोहूं पख ऊजळा, जूमण पूरा जोध।
   सुणता वे भड़ सो गुणां, बीर प्रकासण बोध ॥ ६ — वही पृ. ७

४—"हिन्दुस्तान को दिन खोटो छै जींसूं एकता कोई बिरलो ठांव ही रह गई छै। पांच बरस पहली अंग्रेजां ने सती होबा की बात मनै करिबा को हुक्म सारा ही रजवाड़ा में लगवायो छो पर ज्यां-ज्यां को जसी-जसी मानगी का जवाब आय आपको अखरी में जाहिर किया त्यां में कोयां का बी जवाब एकता की संगति सूं मिल्या नहीं जींसूं अंग्रेज भी हुस्या अर बिना एकता का जवाब कोई भी यकीन हुयो नहीं त्यांमें कोई ने आपकी धर्म की राह सूं ठीक जवाब लिख्यो छै तो ऊ बी जुदा-जुदा मत का कारण सूं सारां का जवाब छा जस्यो ही मान्यो गयो। एकता होती अर सब को एक जवाब जातो तो सरकार कम्पनी में बी मंजूर ही होतो परन्तु हिन्दुस्तान का राजां में तो या बुद्धि रहि गई सो पेमा दीन अंग्रेज लोक व मुसलमान पेली विलायत सूं बापरया छै त्यांको हुक्म उठावा में तो आपको धर्म व नाम नकस बी गुमाय दे छै परन्तु बांकी मरजी सार्य छै अर क्यो करै क्योंही मुगतै छै अर आपका बरोबरया सजातीय छै सो आपका मत का छै, आपकी जाती का छै तो भी क्यां सूं लाखगुणी ठसक ल्यावै छै अर त्यां में कोई धर्म की तरफ देखी अर नम्रता दिखावै तदि जाणै छै के ये बड़ा छां अर यें नम्रता

एकछत्र विदेशी सत्ताधीश वीरों के प्रति विक्षुब्ध[1] सूर्यमल्ल का कवि हुंकार उठा 'इळा न देणी आपणी'।[2] स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में ही मिति पौष शुक्ला प्रतिपदा १ संवत् १९१४ को पीपल्या ठाकुर फूलसिंह के नाम कवि द्वारा लिखे गये पत्र से प्रकट है कि 'भारत के बुरे दिन देख कर' उसकी अंग्रेज विरोधी भावनाएं कितनी प्रखर हो उठी थीं। उसने स्पष्ट कह दिया था कि 'इस पलटे हुए समय' में भी यदि अंग्रेज यहाँ रह गया तो सन्तान वंश के साथ ही स्व-धर्म-नाश भी निश्चित ही मानिये।[3]

दिखावा जोग छै सो नम्रता करै छै या बुद्धि हिन्दुस्थानकां की हुई जदि पैली विलायतकां को अमल हुवै छै अर कलियुग सांयां पैली पैली तांही धरम कै साथ एकता रही जतरै रही। जद इंग्रेज व मुसलमान राज लोकां कै पलटण्यां में भरया जावै छा इत्यादिक लिखी जो बात तो आपसूं बी सारी ही छानी छै तीसूं आप जिस्या महा धर्मिष्ठ उठै परमेश्वर नै मालिक किया छा अर ज्यो आपको हित चहै तीसूं एकता ही चाहो छो।" — वीर सतसई पृ. ८१ से उद्धृत

१—इक डंकी गिण एकरी, मूले कुळ स्वभाव।
सूरा आळस ऐस में, अकज गुमाई आव।।—वीर सतसई पृ० ५

२—इळा न देणी आपणी, हालरियां हुलराय।
पूत सिखावै पालणैं, मरण बडाई मांय।।२३४।। वही पृ० ११४

३—..........ये तो शरीर थीं अर्थ लाग्यो आछो लागै ऊ अर्थ आयां तो तृण सों भी तुच्छ गिण्यो जावै छै सो तो ठीक ही छै तींको तो म्हानैं भी निश्चित भरोसो छै परन्तु ऊ अर्थ बिना और समय में सदा ही यो शरीर प्रयत्नपूर्वक रक्षा करवा को छै अर ईं नैं अर्थ लगावो की समय तो परमेश्वर ने पलटायो छै कदाचित् राज्य जिसा सुक्षत्रियां का तथा राज्य के लारै लगा इमारत कारतां का ए शरीर कैंही अर्थ लागै तो एक योगी *ज्ञानी भक्त कै भी या होई तो सोना में सुगंध होई ज्यों अत्यन्त शोभा पावै तींसौं पर*-मेश्वर या बात मिलावै तो उत्तमोत्तम छै परन्तु अल्प परिकर वाला तो आपणै जिस्या सारा ही ई बात ने चाहा छां परन्तु आपणै तो केवल स्वर्ग-प्राप्ति को अर अठै कीर्ति को यो ही फल छै अर ये राजालोग देशीपती जमी का ठाकर छै जै सारा ही हिमालय का गल्या ही नीसरया सौ चालीस सौ लैरै साठ सत्तर बरसतांई पाछै पट्‌क्या छै तो भी गुलामी करै छै परन्तु यो म्हारो वचन राज्य याद राखोगा कि जै अब के (अंग्रेज) रहयो तो ईंको गायो ईसा पूरो करसी जमी का ठाकर कोई भी न रहसी सब ईसाई हो जासी तींसों दूरदेसी विचारै तो फायदो कोई के भी नही परन्तु आपणो आछो दिन होय तो विचारै और राज्य जसो सुहृत् म्हारै होय तो बड़ाई तरीके लिखी जावै ती सूं थोड़ी में बहुत *जाण* लेसी। *किं* बहुना मिति पौष शुक्ल प्रतिपदा ज्युजुर्वेदांगभू १९१४ मित विक्रमार्क शाक संगरयां लिपिरियम्।

— वीर सतसई की भूमिका पृ० ७६ से उद्धृत

सूर्यमल्ल ने स्वातंत्र्य-संग्राम में वीरों का मात्र परोक्ष रूप से समर्थन ही नहीं किया अपितु उसने अंग्रेजों के विरोध में खुल्लमखुल्ला युद्ध ठानने वाले आउवा (मारवाड़) के ठाकुर खुशालसिंह[1] की प्रशंसा में गीत गाये। उसके क्षत्रियत्व[2] एवं वीरत्व[3] का प्रतिपादन करते हुए उसे साधुवाद दिया।[4] इसी प्रकार विदेशी सत्ता के विरुद्ध क्रांति की जोत जगाने वाले देवगढ़ के रावत रणजीतसिंह[5] की पीठ ठोंकी[6]।

आगे चलकर तो उसने बूंदी मे भी विद्रोहियों के संगठन का संकल्प व्यक्त किया।[7]

यहां विचारणीय है कि क्या महाराव राजा रामसिंह सूर्यमल्ल की इन विद्रोहात्मक कारगुजारियों से सर्वथा अपरिचित रह गया होगा ? यह मान्य नहीं हो सकता। रामसिंह पक्का अंग्रेज भक्त था—कर्नल टॉड, जिसकी उपस्थिति में उसका राजतिलक हुआ था उसकी

१—द्रष्टव्य : एन० आर० खड़गावत : राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७ — पृ. ३०-२७

२—'बड़े बड़े बीरन में बड़ी रजपूती तिन्हैं, बैरि के पहारन सौं तेंही भरी बाथ।'

— वीर सतसई की भूमिका पृ. ५१ से उद्धृत

३—"दड्ढा पैं बराह लीनी, दैत्य की दबाइ तैसे,
खग पैं उठाय लीनी, क्षिति को खुशालतैं।" —वही पृ. ५१

४—"खग तैं खेतो निपजाई तैं खुशालसिंह मिश्रण को ता पर जय श्री रंगनाथ है।" — वही पृ. ५१

५—द्रष्टव्य : एन० आर० खड़गावत : राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल आफ १८५७ —वही पृ० ३०

६—"ईसाई सर्मै में आज अज्जन सौं रूठो जात,
रोकि राखी तैं ही रणजीत रजपूती को।"

— वीर सतसई की भूमिका पृ० ५१ से उद्धृत

७—"घर मांहो सूं कढिबो तो अबताई हो जातो परन्तु श्री परमेश्वर नें समय और ही कर दियो तीसूं राजपूतां में राजपूती कठै कठै लाधै सो देख्यां सों तथा सुण्यां सों मन के आनन्द पा जावा को व्यसन छै और कठै ही राजपूती उघड़गी तथा सूही ही दीसेगी तो असी खुसी बेखुसी हासिल हुयां कठिबो हौसो। लोभ अनेक तरे का हुइ छै त्यां में ही यो रजपूत को राजपूती देखवा को लोभ छै सो अठी की तरफ ज्यादा असर करै छै पर साथ भी बहुत मिल जाता सुणां छां परन्तु हिन्दुस्थान को दिन आछ्यो नहीं तीसों आपस में एकता करै नहीं.........और पृथ्वी का छठा अप्सरा का मालिक उठी की तरफ का राजा लोकां में राज्य नैं प्राणां की बाजी लगावा वाला वीर मांहा बच्या का साथी हौवता दीसता होई तो पीछीदे लिखसो जदी तो अठी भी अयी बीजळियां छै सों और भी केही साथी होवा पर तय्यार छै अर फेर भी कई तैयार होजावै साथी

माता का राखी बंध भाई था।[१] राज्य-विप्लव के दिनों में उसने अंग्रेजों की सहायतार्थ अपनी सेना नीमच भेजी थी[२] और फलस्वरूप अंग्रेजों से खूब वाहवाही लूटने का प्रयास किया था।[३] फिर भी अंग्रेज अधिकारी इससे संतुष्ट नहीं थे।[४] कोटा पर विद्रोहियों का अधिकार हो जाने पर वह बड़ा सतर्क हो गया था। वि० सं० १६१५ आषाढ़ शुक्ला ८ के दिन जब भारतीय विद्रोहियों की सेना बूंदी की ओर आई तब महारावराजा ने नगर और किले के द्वार बंद कर विद्रोहियों पर तोपों के फायर करवाये जिससे उन्हें वहाँ से जाना पड़ा।[५] ऐसी स्थिति में यह कदापि संभव नहीं था कि अंग्रेज पक्ष-पोषक महारावराजा रामसिंह निज-आश्रित कवि सूर्यमल्ल की अंग्रेज विरोधी कार्यवाहियों को देखकर चुप रह जाय। तत्कालीन राजपूताना में सूर्यमल्ल नितान्त ही प्रभावशाली व्यक्ति था। उस समय के लगभग सभी क्षत्रिय शासक उसके प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। ऐसी परिस्थिति में उसकी अंग्रेज-विरोधी उग्र भावनाएँ राजपूताना और मालवा में बड़े गुल खिला सकती थीं— नीतिनिपुण रामसिंह इस तथ्य से भली-भाँति अवगत था। फलतः सूर्यमल्ल के प्रति उसका उदासीन और कठोर हो जाना सहज ही था। पीपल्या (जयपुर) ठाकुर फूलसिंह के नाम संवत् १६१४ पौष शुक्ल प्रतिपदा को लिखे गये अपने पत्र में सूर्यमल्ल ने उसके प्रति किये गए रामसिंह के कठोर एवं निर्मम व्यवहार का वर्णन इस प्रकार किया है—

खड़ा करिबा को विस्लो म्हां लोकां को कुल कसब छै हो आप उठी सूं लिखसी तो अठी सूं भी तपसीलवार लिख्या जावसी परन्तु पोसीदेही छै। राज्य तो अंग्रेज को समर्थन देखताई बात हैं नादानगी कीं हीं जाणसी अर बात भी नादानगी की छै परन्तु म्हां लोरा है तो थी परमेस्वर ठेठसूं नादानगी ही दीन्ही तो म्हां में दानाई कहां सूं होइ।"

—संवत् १६१४ पौष सुदी ११ को रतलाम के जागीरदार नामली ठिकाने के स्वामी बखतावरसिंह के नाम लिखा गया सूर्यमल्ल के पत्र का अंश।

—वीर सतसई की भूमिका पृ० ८०-८२ से उद्धृत

१—डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग १

२—वंश प्रकाश : पृ० १२१ और राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल आफ १८५७-१०२१

३—पं० गंगासहाय : वंशप्रकाश पृ० २२१

४—"Maharao Raja Ram Singh's attitude towards the British Govt. during the mutinies of 1857 was one of apathy and lukewarmness, which in the case of the rising of the Raj troops at Kotah, amounted almost to an open support of the rebel's cause. This was due in some measure to the fact that the chief was not on good terms with the Maharao Kotah.

—Aitcheson's Treaties etc. Vol. III 1929 p. 218

५—जगदीशसिंह गहलोत : बूंदी राज्य का इतिहास पृ० ६६

पं० गंगासहाय : वंशप्रकाश पृ० १२१

सूर्यमल्ल ने स्वातंत्र्य-संग्राम में वीरों का मात्र परोक्ष रूप से समर्थन ही नहीं किया अपितु उसने अंग्रेजों के विरोध में खुल्लमखुल्ला युद्ध ठानने वाले आउवा (मारवाड़) के ठाकुर कुशालसिंह[1] की प्रशंसा में गीत गाये। उसके क्षत्रियत्व[2] एवं वीरत्व[3] का प्रतिपादन करते हुए उसे साधुवाद दिया।[4] इसी प्रकार विदेशी सत्ता के विरुद्ध क्रांति की जोत जगाने वाले देवगढ़ के रावत रणजीतसिंह[5] की पीठ ठोंकी[6]।

आगे चलकर तो उसने बूंदी में भी विद्रोहियों के संगठन का संकल्प व्यक्त किया।[7]

यहां विचारणीय है कि क्या महाराव राजा रामसिंह सूर्यमल्ल की इन विद्रोहात्मक कारगुजारियों से सर्वथा अपरिचित रह गया होगा? यह मान्य नहीं हो सकता। रामसिंह परम अंग्रेज भक्त था—कर्नल टॉड, जिसकी उपस्थिति में उसका राजतिलक हुआ था उसकी

१—द्रष्टव्य : एन० आर० खड्गावत : राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　—पृ० ३०-३७

२—'बड़े बड़े बीरन में बड़ी रजपूती जिन्हें, बौरि के पहारन सों सेंहौ भरी बाथ।'
　　　　　　　　　　　　　　　　—वीर सतसई की भूमिका पृ० ५१ से उद्धृत

३—"दड्ढा पै बराह लीनी, दंत्य की दबाद हैसे,
　　खग्ग पै उठाय लीनी, खिति को खुमानसै।"　　—वही पृ० ५१

४—"खाग सैं खेती निपजाई तैं कुशालसिंह मिश्रण की हा पर जय थी रंगनाथ है।"
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　—वही पृ० ५१

५—द्रष्टव्य : एन० आर० खड्गावत : राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल आफ १८५७
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　—वही पृ० ३०

६—"ईसाई समै में आज अज्जन सों रूठी जात,
　　रोकि राखी तैं ही रणजीत रजपूती को।"
　　　　　　　　　　　　　　　　—वीर सतसई की भूमिका पृ० ५१ से उद्धृत

७—"घर मांही सूं कढिवो तो अबताई हो जातो परन्तु श्री परमेश्वर नैं समय और ही कर दियो सीसूं राजपूतां में राजपूती कठै कठै लाधै सो देख्यां सों तथा सुण्यां सों मन के आनन्द आ जावा को व्यसन छै और कठै ही राजपूती उपड़गी तथा बूड़ी ही दीसेगी तो जसो खुसी वेखुसी हासिल हुयां कढिवो होसी। लोभ अनेक तरे का हुइ छै त्यां में ही यो रजपूत की राजपूती देखवा को लोभ छै सो अठी की तरफ ज्यादा असर करै छै अर साथ भी बहुत मिल जावा सुणां छां परन्तु हिन्दुस्थान को दिन आछ्यो नहीं सीसों आपस में एकता करै नहीं.........और पृथ्वी का लठा अप्सरा का मालिक उठी की तरफ का राजा लोकां में राज्य नैं प्राणां की बाजी लगावा वाला वीर घणा बच्या का साथी होवता दीसता होई तो योसोदे लिखसो जदो तो अठी भी जमी बीजळियां छै सो और भी केही साथी होवा पर तय्यार छै अर फेर भी कद तैयार होजावै साथी

माता का राखी बंध भाई था।[१] राज्य-विप्लव के दिनों में उसने अंग्रेजों की सहायतार्थ अपनी सेना नीमच भेजी थी[२] और फलस्वरूप अंग्रेजों से खूब वाहवाही लूटने का प्रयास किया था।[३] फिर भी अंग्रेज अधिकारी इससे संतुष्ट नहीं थे।[४] कोटा पर विद्रोहियों का अधिकार हो जाने पर वह बड़ा सतर्क हो गया था। वि० सं० १९१५ आषाढ़ शुक्ला ८ के दिन जब भारतीय विद्रोहियों की सेना बूंदी की ओर आई तब महारावराजा ने नगर और किले के द्वार बंद कर विद्रोहियों पर तोपों के फायर करवाये जिससे उन्हें वहां से जाना पड़ा।[५] ऐसी स्थिति में यह कदापि संभव नहीं था कि अंग्रेज पक्ष-पोषक महारावराजा रामसिंह निज-आश्रित कवि सूर्यमल्ल की अंग्रेज विरोधी कार्यवाहियों को देखकर चुप रह जाय। तत्कालीन राजपूताना में सूर्यमल्ल नितान्त ही प्रभावशाली व्यक्ति था। उस समय के लगभग सभी क्षत्रिय शासक उसके प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। ऐसी परिस्थिति में उसकी अंग्रेज-विरोधी उग्र भावनाएं राजपूताना और मालवा में बड़े गुल खिला सकती थी—नीतिनिपुण रामसिंह इस तथ्य से भली-भांति अवगत था। फलत: सूर्यमल्ल के प्रति उसका उदासीन और कठोर हो जाना सहज ही था। पीपल्या(जयपुर) ठाकुर फूलसिंह के नाम सवत् १९१४ पौष शुक्ल प्रतिपदा को लिखे गये अपने पत्र में सूर्यमल्ल ने उसके प्रति किये गए रामसिंह के कठोर एवं निर्मम व्यवहार का वर्णन इस प्रकार किया है—

खड़ा करिबा को बिल्लो म्हां लोकां को कुल वसव छै हो आप उठी सूं लिखसी तो अठी सूं भी तफसीलवार लिख्या जावसी परन्तु पोसीदेहो छै। राज्य तो अंग्रेज को समर्थन देखताई बात हैं नादानगी कीं हीं जाएसी अर बात भी नादानगी की छै परन्तु म्हा लोकां है तो श्री परमेस्वर ठैठसूं नादानगी ही दीन्हीं तो म्हां में दानाई कहां सू होइ।"

—सवत् १९१४ पौष सुदी ११ को रतलाम के जागीरदार नामली ठिकाने के स्वामी बखतावरसिंह के नाम लिखा गया सूर्यमल्ल के पत्र का अंश।

—वीर सतसई की भूमिका पृ० ८०-८२ से उद्धृत

१—डा० मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग १

२—वंश प्रकाश : पृ० १२१ और राजस्थानस् रोल इन दी स्ट्रगल आफ १८५७-१९२३

३—पं० गगासहाय : वंशप्रकाश पृ० २२१

४—"Maharao Raja Ram Singh's attitude towards the British Govt. during the mutinies of 1857 was one of apathy and likewarmness, which in the case of the rising of the Raj troops at Kotah, amounted almost to an open support of the rebel's cause. This was due in some measure to the fact that the chief was not on good terms with the Maharao Kotah.

—Aitcheson's Treaties etc. Vol. III 1929 p. 218

५—जगदीशसिंह गहलोत : बूंदी राज्य का इतिहास पृ० ६९
पं० गंगासहाय : वंशप्रकाश पृ० १२३

"अर माघ सुदी में बूंदी में आइ हाजिर हुवो तीं वखत तो मरजी ही दीसी छी परन्तु धणों कान लगे तीं की मानी ही आवं छं तीसों औरां के तो दण्ड एक साल के हासिल को हुवो अर म्हारे रूपया तीन छं हर साल दण्ड का लिख दिया, अर बड़ा तकादा सों पुराणा बोहरा पलकारि दिया १०)का रूपया पेटे असबाब घर को तमाम बिकि गयो—सरकार ने थोड़े अरज करबो तो बरस तीन सों मोकूफ करि दियो और एकांत को औसर मिलं नहीं और के हाथे अरज करावां सो दो-दो तीन-तीन बरस मालूम होइ नहीं। रतलाम सूं माघ में आयां पछे फाल्गुन में अरज कराई छी सो हाल ताईं मालूम न हुई छं। असो दीसं छं कि मूंडा सूं तो सोख न देणी और दुःख सूं कंठ भागं तो ठीक छं ··· ··· ग्रन्थ को बणाबो ही पर सो ही मोकूफ छं। ग्रन्थ का लेखक वगैरे तमाम छुडाय दिया। सुणवाई करं नही तीसों चित्त पर बरस दोय सों निहायत उदासी बढ़ रही छं।" — वीर सतसई : भूमिका पृ ४१ से उद्धृत

अपने प्रति अपनाये गये ऐसे कड़े रुख का कारण सूर्यमल्ल नहीं बताना चाहता; वह मात्र इतना कहता है कि 'अठे ग्रन्थ को निर्माण अवरुद्ध हुवो तींको लिखबो तो लज्जा मोकूफ ही करं छं क्योंकि आपका स्वामी की निंदा शुभचिन्तक होय तींका लिखबा में औचित्य न पावं छं।'[1] यहां विचारणीय है कि वंशभास्कर रचनावरोध के पीछे ऐसा कौनसा बड़ा कारण रहा था कि कवि उसके कथन में लज्जाभाव और स्वामीभक्तिमूलक अनौचित्य का अनुभव करता है ? उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में देखें तो विदित होता है कि वह कारण सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम से ही सम्बद्ध रहा होगा। एक ओर सूर्यमल्ल की स्वधर्म, स्वदेश एवं स्वशासनोन्नायक वीर भावनाएँ और दूसरी ओर रामसिंह की अंग्रेजी सत्ता समर्थक स्वातंत्र्य-विरोधी दमन नीति—पृथक दो ध्रुव, मेल बैठे तो कैसे ?

ऐसे बदले हुए समय (सन् १८५७) —'समय पलट्टी सीस'— में जब कि वीर क्षत्रिय रजोगुण-रंजित हो अपने पराक्रमी पुरखाओं के कुलमार्ग का स्मरण कर विदेशी सत्ता के विरुद्ध जूझ रहे थे[2]—न केवल वीर कुलोत्पन्न यश-धवल योद्धाओं की ही धमनियों में शौर्य सौ गुना बढ़कर उछाले ले रहा था[3] अपितु रजोगुण-हीन उत्साह-मंद जनों में भी वीरत्व का स्फुरण हो चुका था[4] जब कि 'राणी जाये'[5] युद्ध-चेतावनी पाकर[6] अपनी सुहागिनों के

१—सूर्यमल्ल लिखित पीपल्या ठा० फूलसिंह वाला पत्र —वीर सतसई पृ० ४२

२—इण वेळा रजपूत वे, राजसगुण रजाट।
सुमिरण लग्गा वीर सब, वीरां रो कुलवाट॥ ६

३—जे दोही पख ऊजळा, जूझण पूरा जोध।
सुणता वे भड़ सौ गुणा, वीर प्रकासन बोध॥ ९

४—नयी रजो गुण ज्यां नरां, सण वां पूरो न उफाण।
वे भी सुणता ऊफणै, पूरा बीर प्रमाण॥ ८

५—नागण जाया चीटला, सींहण जाया साव।
राणी जाया नह रुके, सो कुल वाट सुभाव॥ ४०

६—बाजा बाल म वीसरे, मो पण जहर समान।
रीत मरतां ढोल की, ऊठ पियो घमसाण॥ १२

चूड़ों का बल धारणकर[1] 'रण खेती रजपूत री'[2] की भावना के साथ 'ठाकों ठाकर रो रिजक[3] चुकाने को उत्सुक थे एवं सतीत्व-उत्साह-संपूरित-वीर-मना क्षत्राणियाँ हाथों में नारियल लिए खड़ी थीं[4] तब रामसिंह के जो कृत्य थे—जिनकी झांकी हम पा चुके हैं—उनके विषय में कुछ कहना 'स्व' को सिरमौर मानने वाले सूर्यमल्ल के लिए लज्जा की ही तो बात थी—और यदि वह इस बारे में कुछ कह दे तो उससे स्वामी का अपयश भी तो निश्चित है जो उस स्वामी-भक्त चारण को मान्य नहीं। फिर भी विवक्षित तथ्यों के प्रकाश मे कहा जा सकता है कि सूर्यमल्ल प्रस्तुत प्रसंग में कुछ न कह भी सब कुछ कह गया है। निष्कर्ष यह है कि वंशभास्कर के रचनावरोध का मुख्य कारण सन् १८५७ (सं० १९१४ वि०) के स्वातन्त्र्य-संग्राम विषयक महारावराजा रामसिंह और महाकवि सूर्यमल्ल की परस्पर विरोधी नीति ही थी। संवत् १९१३ में जब रामसिंह की कोरी स्तुति-सपादन करने से इनकार करने पर वंशभास्कर का पहली बार रचना-स्थगन हुआ था तब तक सूर्यमल्ल रामसिंह चरित्रान्तर्गत सवत् १८९० तक के उसके कृत्यों का लेखा-जोखा ले चुका था। इसके बाद यदि वंशभास्कर की रचना आगे बढ़ती तो उसमें सब सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय 'स्वातंत्र्य-संग्राम में रामसिंह की भूमिका' हो तो होता और सूर्यमल्ल उसका यथा तथ्य अंकन करने में भला कब चूकने वाला था। यह बात रामसिंह को कैसे मान्य होती ? यही वह रहस्य है जिसके उद्‌घाटन में सूर्यमल्ल अपने स्वामी की निन्दा देखता है। ऐसी स्थिति में वंशभास्कर की रचना अवरुद्ध होनी ही थी। स्पष्ट है कि रामसिंह के कोरे स्तुति-सम्पादन के प्रति सूर्यमल्ल का उपेक्षा-भाव वंशभास्कर-रचनावरोध का प्रथम कारण रहा होगा, पर मूल कारण स्वातंत्र्य-संग्राम के दिनों को आश्रयदाता (रामसिंह) और आश्रित (सूर्यमल्ल) की गति-विधियां ही रही हैं। आगे हम देखते है किसी प्रकार सूर्यमल्ल संवत् १९१६ में वंशभास्कर की रचना की ओर फिर प्रेरित किया जाता है परन्तु उसमें उसका मन बिलकुल नहीं रमता[5] —तथ्यों की हत्या में उस सत्य-वक्ता का मन रम भी कैसे सकता था ? परिणामतः वंशभास्कर अधूरा का अधूरा ही रह जाता है।

१—पूजाणो गज मोतियां, मीडाणो कर मूझ।
बीजाणें घण चामरां, है चूड़ो बळ तूझ॥ १५

— वीर सतसई

२—रणखेती रजपूत री वीर न भूलें बाळ।
बारह बरसां बापरो लहै बैर लफाळ॥ ११८॥

३—ठाकी ठाकर रा रिजक, ताला रो विप एक।
गहळ मुवां ही ऊतरै, सुणिया सूर अनेक॥ १२॥

४—ऊभी गोख अवेखियो, पैल रो दल सेर।
पड़ियो पव सुणियो नहीं, लीधो घण नाळेर॥ ६८॥

— वीर सतसई

५—द्रष्टव्य—इसी अध्याय की पादटिप्पणी संख्या २ पृ० ४४

वंशभास्कर की प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतियाँ

वंशभास्कर के टीकाकार बारहठ कृष्णसिंहजी के अनुसार ग्रंथ की मूल प्रति सूर्यमल्ल के दत्तक पुत्र श्री मुरारिदान के पास सुरक्षित थी पर वह उन्हें नहीं मिल सकी थी।[१] इस लिए उन्होंने कोटा के कविराजा देवीदान से प्रति मंगवाकर अपनी टीका तैयार की थी।

श्री कृष्णसिंह बारहठ द्वारा निर्मित वंशभास्कर की उदधि-मथिनी टीका (मूल सहित) की मूल प्रति कोटा स्थित उनके निजी पुस्तकालय कृष्ण-भारती-भवन (माणिक-भवन) में उनके वंशधरों के पास सुरक्षित है।

सम्पूर्ण वंशभास्कर की प्रति और कहीं देखने में नहीं आई है। हां उसके अंश— 'उम्मेदसिंह चरित्र' और 'बुधसिंह चरित्र' की हस्तलिखित प्रतियां राजस्थानी काव्य-रसिकों के पास मिल जाती हैं। वंशभास्कर के ये दोनों अंश बूंदी से ही मोथी में प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनकी कुछ हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में भी सुरक्षित हैं।

बुधसिंह चरित्र की संवत् १६३३ में निर्मित एक नितांत ही सुन्दर हस्तलिखित प्रति उदयपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक डॉक्टर कृष्णचन्द्र श्रोत्रिय के पास भी सुरक्षित है जो उन्हें सांयाका खेड़ा (उदयपुर) के ग्राढ़ा रघुवीरसिंह को मातामही से प्राप्त हुई है।

शत्रुसाल चरित्र की एक अपूर्ण प्रति (पत्र संख्या ६८) सरस्वती भवन, उदयपुर में भी है। वंशभास्कर के विभिन्न अंशों की ये प्रतियां व्यक्ति-रुचि का परिणाम हैं, जो अंश जिसको रुचा उसने उसी अंश की प्रति बनाली।[२] वैसे भी इस महाकाय ग्रंथ की संपूर्ण प्रति करना अथवा करवाना दोनों ही दुःसाध्य है।

वंशभास्कर की टीकाएं

वंशभास्कर : उदधि-मंथिनी टीका

श्री कृष्णसिंहजी बारहठ द्वारा निर्मित और श्री रामकृष्ण आसोपा द्वारा प्रताप प्रेस जोधपुर से चार बड़े खण्डों में प्रकाशित (सं० १६५६) इस टीका के रूप में ही आज वंशभास्कर जीवित है। यह सटीक मुद्रित वंशभास्कर भी अब प्रायः अप्राप्य हो चला, इसके पृष्ठ इतने जीर्ण हो गये हैं कि किंचित् असावधानी बरतने से टूट जाते हैं।

१—प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने भी सूर्यमल्ल के गांव हरणा (पोस्ट हींडोली, जिला बूंदी, राजस्थान) जाकर वंशभास्कर की मूल प्रति देखनी चाही थी, किन्तु सूर्यमल्ल के वयोवृद्ध प्रपौत्र कालूदानजी और उनके पुत्र जसवंतसिंहजी आना-कानी कर गये। इन्हीं सज्जनों ने बताया कि बूंदी स्थित उनकी हवेली में सूर्यमल्ल-साहित्य कीटाहार बन रहा है। क्या किया जाय?

१—ऐसे ही वंशभास्कर के कुछ अंशों की टीका के पत्र राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में संग्रहीत हैं—

क - ग्रंथांक १२०, वंशभास्कर पृ० संख्या १४६

ख - ग्रंथांक ७७२६ वंशभास्कर : लिपिकार सं० १६१३ : १८४

श्री कृष्णसिंह बारहठ को अपनी टीका में 'ग्रंथकर्ता' का अभिप्राय दिखा देना ही अभीष्ट है और भावार्थ दिखा देना ही टीका का फल है।[1] अतएव कुछ ही स्थलों की उन्होंने पूर्ण टीका प्रस्तुत की है अन्यथा शब्दार्थ मात्र दे दिया है जिससे आशय सुगमता से नहीं खुलता, फिर भी टीकाकार का यह रक्त-शोषक-श्रम अभिनन्दनीय है। हमारे अध्ययन का आधार यही टीका है। इसी में से उद्धरण दिये गये हैं।

सूर्यमल्ल की टीका : सूर्यमल्ल के जीवन-काल में ही वंशभास्कर का कीर्ति-प्रसार दूर-दूर तक हो गया था और लोग उसे चाव से पढ़ने लग गए थे। अपने पाठकों, प्रशंसकों के आग्रह पर वंशभास्करान्तर्गत रचित बुधसिंह चरित की टीका स्वयं सूर्यमल्ल को प्रस्तुत करनी पड़ी थी। सूर्यमल्ल द्वारा प्रस्तुत इस टीका का समाहार कृष्णसिंह बारहठ ने अपनी टीका में किया है।[2]

अन्य टीकाएँ : बूंदी महारावराजा के निजी पुस्तकालय 'सरस्वती भण्डार' की पुस्तक सूची में भी वंशभास्कर की दो टीकाओं का उल्लेख इस प्रकार पाया है—

१— वंशभास्कर की टीका राव मगलसहायजी ने बनाई जीका पृष्ठ लिखित संख्या १११

२— राव रामनाथजी ने वंशभास्कर की टीका बनाई जीका पृष्ठ लिखित संख्या १२६

प्रयत्न करने पर भी इन टीकाओं के दर्शन नहीं हो पाये। सीमित पृष्ठ संख्या से ही अनुमान किया जा सकता है कि ये पोथियां वंशभास्कर के किसी थोड़े से अंश की टीकाएँ ही होंगी।

बूंदी के वर्तमान महारावराजा बहादुरसिंहजी ने श्री ईश्वरीप्रसाद राव से आषाढ़ शुक्ला २, सोमवार वि० संवत् २००६ में वंशभास्कर का 'सरल भाषा' में अनुवाद करवाया है जो अद्यावधि अप्रकाशित है और बूंदी के सरस्वती भण्डार में सुरक्षित है। इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि प्रयास करने पर भी उपलब्ध न हो सकी। अनुवादक की टिप्पणी मात्र प्राप्त हुई है सो उद्धृत की जा रही है—

> कठिन काव्य रविमल्ल को, भूप बहादुर ताहि।
> सरल करायो सबन हित, देव नागरि मांहि॥ ५
> ग्रथकार के सिष्य कवि, कवि मगल मेरे तात।
> तिन को सुत ईस्वर यहै, जग को राव विख्यात॥ ६
> तासों बुंदी पति यहै, कृपया दियो निदेस।
> सरल बनें तो जगत में, होय प्रसिद्ध बिसेस॥ ७

१—टीका पृ० ६

२—द्रष्टव्य - श्री कृष्णसिंह बारहठ : वंश० की उदधि मंथिनी टीका पृ० २८६७-२६६६

गुरु की आज्ञा सीस धरि, बारठी गणुर मनाय ।
कियो ग्रंथ अनुवाद यह, भाषा सरल बनाय ॥ ८

कविजन सो पढ़ि लेत सब, कठिन काव्य के छंद ।
पै अनु मति के लोग हू, लहै न ग्रंथ आनंद ॥ ९
संवत् विक्रम राज के, द्वै नौ सौ छै जान । २००६
दोज शुक्ल आषाढ़ की, अर्पित कियो शुभ मान ॥ १०
ईस वेद नव एक सन, तीस जून को पाय । १९४९
इंग्लिश राज को अंक यह, सोऊ दियो बताय ॥ ११
गुजराती मोतीवल्लभ, अब लगो रसप्रीत ।
लेखक या अनुवाद के, लिखते रहे विनीत ॥ १२

इसी प्रकार सुनते हैं कि बूंदी के एक अंग्रेज उच्चाधिकारी रोबर्टसन की लेडी ने भी वंशभास्कर के कुछ स्थलों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया था । पर, वह अब अप्राप्य है ।

वंश-प्रकाश—

बूंदी कौंसिल के सदस्य पं० गंगासहाय द्वारा निर्मित यह वंशभास्कर की ऐतिहासिक सामग्री का गद्यात्मक संस्करण है जो महारावराजा रघुवीरसिंहजी की आज्ञा से बूंदी के रंगनाथ मुद्रणालय से प्रकाशित हुआ था । सं० १९१७ में इसका तीसरा संस्करण निकला था । अब यह भी अप्राप्य हो गया है ।

अध्याय ३

वंशभास्कर : स्वरूप - विवेचन

हिन्दी जगत् में सूर्यमल्ल महाकवि और उसका वंशभास्कर महाकाव्य के रूप में प्रख्यात है।[1] प्राय: सुनने में आता है कि वंशभास्कर महाभारत की टक्कर का महाकाव्य है। किंतु वंशभास्कर के साहित्य-शास्त्रीय विवेचन से हम किसी और ही निष्कर्ष पर पहुंचते हैं।

सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर में स्वयं को 'महाकवि' न कह कर 'सुकवि' (वंश १/१) और वंशभास्कर को महाकाव्य न कह कर महाचम्पू[2] से अभिहित किया है। और ये ही नाम उसने अपने ग्रन्थ के प्रत्येक मयूख के उपसंहार वाक्य में दुहराये हैं। इस तथ्य से सिद्ध है कि कवि वंशभास्कर के प्रणयन में इस बात से पूर्णत: अवगत रहा है कि वह काव्य की किस विधा में रचना करने जा रहा है? वस्तुत: रचनाकार के लिए वह समय कड़ी परीक्षा का होता है जब उसे अपने अनभिव्यक्त कथ्य के लिए बाह्य एवं आंतरिक दोनों दृष्टिकोणों से किसी उपयुक्त कथन-प्रणाली अथवा विधा का निर्वचन करना होता है। क्योंकि किसी भी कृति की सफलता उसमें विवेचित विषय-सामग्री की प्रवृत्ति-प्रकृति के अनुरूप काव्य-रूप के चयन में निहित है।

रूप— 'रूप' शब्द का सामान्य अर्थ है 'बाह्याकार'।[3] किंतु साहित्य-क्षेत्र में रूप के अंतर्गत कथन-शैली, अभिव्यंजना-प्रणाली, विषय प्रतिपादन-विधि आदि से सम्बन्धित विभिन्न विशेषताओं का समावेश किया जाता है। इस दृष्टि से शब्द-योजना से लेकर प्रबन्धात्मकता तक की सभी प्रकार की विशेषताएं रूप के अंतर्गत आती हैं।[4] डा० गणपतिचन्द्र ने इन

१—क. डा. कन्हैयालाल सहल आदि : वीर सतसई की भूमिका पृ० ४४
ख. डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : वीर सतसई का प्राक्कथन पृ० ४

२—द्रष्टव्य—वंशभास्कर—प्रत्येक मयूख की पुष्पिकाएँ

३—"In general the external appearance, configuration of an object in contradiction to the matter of which it is composed."

—Encyclopaedia Britanica Vol IX Page 518.

४—'Form includes all those elements a verbal composition rhyme metries, structure, coherence, emphasis, diction, images which can more or less readily be discussed as if they are not a part of the poems' Content message, or doctrine."

—Brooks : Literary Criticism Page 148.

(डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, 'साहित्य-विज्ञान' पृ० २०६ से उद्धृत)

विशेषताओं को दो वर्गों में विभाजित किया है[1]।

१—साहित्य की अभिव्यंजना प्रणाली से संबन्धित सूक्ष्म विशेषताएं, जैसे अलंकार, रीति, ध्वनि, प्रतीक, बिम्ब आदि जिन्हें समुच्चय रूप में 'शैली' या 'रीति' कहा जा सकता है।

२—विषय-वस्तु के आकार-प्रकार एवं संगठन या बाह्य ढांचे की दृष्टि से साहित्यिक रचनाओं के स्थूल भेदों को सूचित करने वाली विशेषताएं जैसे प्रबन्धात्मकता, गीतात्मकता, अभिनेयता आदि। इन स्थूल विशेषताओं के आधार पर ही साहित्य के विभिन्न रूप-भेद नाटक, कविता-उपन्यास, कहानी आदि स्थिर किये जाते हैं।

इन वर्गों को क्रमशः 'साहित्य की शैली' एवं साहित्य के रूप-भेद शीर्षक दिये जा सकते हैं।

यहां हम वंशभास्कर का साहित्यिक रूप-भेद' अथवा काव्यरूप की दृष्टि से ही विवेचन करने जा रहे हैं—शैली की दृष्टि से आगे विचार किया जायगा।

काव्य-रूप—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' और 'रमणीयार्थं प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' के अनुसार काव्य के दो पक्ष स्थिर होते हैं—अनुभूति-पक्ष और अभिव्यक्ति-पक्ष। काव्यकार जिस विधि-विधान से अपनी अभिव्यक्ति को प्रेषित कर सहृदय को रस-मग्न करता है उसी पर काव्य-रूप निर्भर करता है। काव्य के नानाविध रूपों का आधार अभिव्यक्ति-स्थापन अथवा कथ्य-प्रतिपादन का यही वैशिष्ट्य है।

संस्कृत-साहित्य-शास्त्रियों ने इंद्रिय-ग्राहिता के आधार पर काव्य के दो भेद स्थिर किये हैं—१ दृश्य-काव्य २ श्रव्य-काव्य।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनःकाव्यं द्विधामतम्।
दृश्यं तत्राभिनेय तद्रूपारोपात्तु रूपकम्॥

—नाट्य शास्त्र ३२। ३८३, साहित्यदर्पण ६। १

वंशभास्कर श्रव्य-काव्य है, अतएव दृश्य काव्य के विवेचन में न जाकर हम यहां सीधे श्रव्य-काव्य पर आ जाना चाहेंगे।

१—वही पृ० २०७

व्यंग्य[1], भाषा[2], देश-काल[3], वर्ण्य-विषय[4] एवं शैली के आधार पर श्रव्य-काव्य के नाना भेद-विभेद प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु इनमें से शैली के आधार पर किया गया विभेद ही मुख्य है और वही मान्य होकर चला है।

शैली के आधार पर श्रव्य-काव्य के तीन भेद किये गये हैं[5] गद्य, पद्य और मिश्र। छन्दोबद्ध पद पद्य एवं छंदविहीन पद गद्य कहा जाता है।[6]

सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर को महाचम्पू कहा है और चम्पू मिश्र-काव्य की कोटि में आता है अतएव हम यहां अपने अध्ययन को मिश्र-काव्य पर ही केन्द्रित रखेंगे।

मिश्र-काव्य-गद्य पद्य की मिश्र-शैली में रचित काव्य मिश्र काव्य कहलाता है। रूपक, उपरूपक आदि भी मिश्र शैली में रचित होते हैं, पर वे दृश्य काव्यान्तर्गत परिगणित हैं। गद्य अथवा पद्य की एकरसता का परिहार कर गद्य-पद्य का सह-प्रयोग, मिश्र-काव्य में गद्य की अर्थ-गरिमा और पद्य के रागात्मक लालित्य दोनों को एक साथ संचारित करने में समर्थ होता है। मिश्र-शैली ग्रहण के रूप में यही मान्यता रही है।

अग्निपुराण ने गद्य-पद्य की ही भांति मिश्र-काव्य को भी दो भागों में विभक्त किया है[7]—

१— ख्यात (बन्ध-युक्त) एवं

२ — प्रकीर्ण (मुक्तक)

मिश्र-मुक्तक-काव्य—मिश्र-मुक्तक-काव्य के सामान्यतः निम्नांकित रूप मिलते हैं—

१—(क) इदमुत्तममतिशायिनी व्यंग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः ॥४॥

(ख) अतादृशि गुणीभूत व्यंग्यं व्यंग्येतु मध्यमम् ॥५॥

(ग) शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम् ॥६॥

—मम्मट काव्यप्रकाश (१४५।६)

२—देवादीनां संस्कृतं स्यात्प्राकृतं त्रिविधं नृणाम्। — अग्निपुराण ३३७।८

३—अवस्था देशकालादि विशेषैरपिजायते।
आनन्त्यमेव वाच्यस्य शुद्धस्यापि विशेषतः॥ — ध्वन्यालोक ४।७

४—काव्यं शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।
काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्॥ — स० कंठा० २।१३९

५—क. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्। काव्यादर्श १।११
ख. गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधम् स्मृतम्। अग्निपुराण ३३७।८

६—छन्दोबद्धपदं पद्यं गद्यने छन्दसाविना। काव्यादर्श १।२३

७—मिश्रं वपुरिति ख्यातंप्रकीर्णमिति च द्विधा। अ० पु० ३३७।३८

१—करम्भक—विविध भाषाओं में लिखित प्रशस्ति करम्भक कहलाती है[1]। उदाहरणार्थ विश्वनाथकृत 'प्रशस्ति रत्नावलि'।

२—विरुद-मिश्र-शैली में रचित राज-स्तुति 'विरुद' कहलाती है[2]। उदाहरणार्थ मिथिला नरेश की स्तुति में रचित रघुदेव कृत विरुदावलि और कल्याण कृत विरुदावलि द्रष्टव्य हैं[3]।

३—घोषणा अथवा जयघोषणा—शाहजी की जय-घोषणा स्वरूप सुमतीन्द्र कवि ने 'सुमतीन्द्र जयघोषणा'[4] का प्रणयन किया है। स्वयं कवि ने 'जय-घोषणा' का लक्षण प्रस्तुत कर उसी के आधार पर अपनी कृति की रचना की है। लक्षण इस प्रकार है—

गद्यैः प्रत्येकपद्यान्तैः चतुर्भिर्वर्णयेत् क्रमात्।
सर्वाधिपत्येन पूर्वादिचतुर्दिवसीयवर्तान्॥ १
ततः सप्तविभक्त्यर्थैः सप्तभिर्गीहरीतिकैः।
पद्य गद्यद्वय सर्वे जनाः शृणुतमद्वचः॥ २
शौर्यादिगुणवानेष एवंति भुवि घुष्यताम्।
घुष्यतामितिमिति शब्दान्तैर्नेतुः शौर्यादयागुणाः॥ ३
घुष्यन्ते यत्र साटोप भवेज्जय घोषणा।
अस्यामाद्यन्तयोः कार्यं पद्यमाशीः समन्वितम्॥ ४
दिदि यस्यामयं नेता साम्राज्यंवद्घोषयेत्।
नेतुर्नामांकितः श्लोको नायको न महीपतिः॥ ५

—चम्पू काव्य : आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन
पृ० २५–२६ से उद्धृत

४—आज्ञा-पत्र अथवा दान-पत्र—ताम्र-पत्रों एवं शिलालेखों के रूप में कतिपय ऐसे आज्ञा-पत्र और दान-पत्र प्राप्त हैं जो मिश्र-शैली में रचित होने के साथ ही अलंकृत विशेषण पदावली अथवा अनुप्रासादि से समन्वित कर काव्यत्व की कोटि तक पहुँचाये गये हैं।[5]

मिश्र-प्रबन्ध (श्रव्य) काव्यचम्पू—

श्रव्य-काव्यान्तर्गत प्रबन्धात्मक मिश्रकाव्य का एक मात्र अंग चम्पू-काव्य है। गद्य-पद्य-

---

१—करम्भकं विविधाभिः भाषाभिर्विनिर्मितम्। सा० द० ६। ३३७
२—गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। सा० द० ६। ३३७
३—द्रष्टव्य—कलकत्ता संस्कृत कालेज कैटलाग, सं० १११,१४२
४—सरस्वती लाइब्रेरी तंजौर कैटलाग, सं० पी. पी एस. शास्त्री वो० ७ नं० ४२१७०
डॉ० छविनाथ त्रिपाठी : चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन से उद्धृत
५—डॉ० छविनाथ त्रिपाठी : चम्पू-काव्य का आ. ए. अ० पृ० २६ से उद्धृत

गद्य काव्य को चम्पू कहा गया है[1]। मिश्र-मुक्तक-काव्य के उपर्युक्त सभी रूप चम्पूकाव्य के अंगभूत बन कर उसमें उसी प्रकार समाहित हो सकते है जिस प्रकार गद्य एवं पद्य मुक्तक दोनों अपने-अपने प्रबन्ध काव्यों के अंग बन कर आ सकते हैं।

चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति—

चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगण के गत्यर्थक 'चपि' धातु से उ प्रत्यय लगाकर 'चम्पयति इति चम्पूः' की गई है। हरिदासजी भट्टाचार्य ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए- 'चमत्कृत्यपुनाति सहृदयान्विस्मयादि कृत्य प्रसादयति इति चम्पूः' कहा है। इस व्याख्या के अनुसार अन्य काव्यों की भांति चम्पू-काव्य में भी सहृदय-हृदय को चमत्कृत, विस्मित, पवित्र और प्रसन्न करने की अद्भुत क्षमता होनी चाहिये[2]।

चम्पू-काव्य : स्वरूप

अन्यान्य विधाओं की अपेक्षा 'चम्पू-काव्य' संस्कृत-साहित्य के परवर्ती मध्यकाल में आकर मान्यता को प्राप्त हो सका। अतएव यह संस्कृत आचार्यों की विवेचना का विषय न बन सका। मिश्र-शैली का उल्लेख करते हुए इसकी उपेक्षा करदी गई। आचार्य दण्डी ने इसका जो संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत किया है उससे चम्पू के प्रति उनका उपेक्षाभाव स्पष्ट झलक रहा है—

> मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
> गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते॥

—काव्यादर्श, १।३१

आचार्य हेमचन्द्र और वाग्भट्ट ने चम्पू काव्य की विशेषताओं में मिश्र-शैली के अतिरिक्त 'सांक' और 'सोच्छ्वास' होना और जोड़ दिया है—

> गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा चम्पूः।

(काव्या॰ हेमचन्द्र ८।९, काव्या॰ वाग्भट्ट प्रथम अध्याय)

भोज ने स्वयं 'चम्पू रामायण' की रचना की परन्तु उसके स्वरूप के विषय में कुछ न बतला कर मात्र इतना कहा कि चम्पू के अन्तर्गत गद्य और पद्य का मिश्रित आनन्द वाद्य एवं संगति के समन्वित माधुर्य सदृश है।[3] विश्वनाथ ने भी गद्य-पद्यमय काव्य को चम्पू कहा — गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते — और परवर्ती आचार्य उन्हीं का अनुसरण

१—गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।

—सा॰ द॰ ६।३३६

२—चम्पू काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृ॰ २७ से उद्धृत।

३—द्रष्टव्य—रामायण चम्पू बालकाण्ड ३

करते रहे। डॉ० सूर्यकान्त ने स्वसम्पादित नृसिंह चम्पू की भूमिका में किसी अज्ञात विद्वान द्वारा निर्धारित परिभाषा में उक्ति-प्रयुक्ति और विष्कंभक का अभाव भी चम्पू काव्य की विशेषताओं में सम्मिलित कर लिया है यथा—

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा कवि गुम्फिता।
उक्ति प्रयुक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता॥[1]

चम्पू - काव्य की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर उसकी निम्नांकित विशेषताएँ सम्मुख आती हैं—

१ गद्य-पद्य-मयता २ अंक-मयता ३ उच्छ्वासों में विभाजन

४ उक्ति-प्रयुक्ति-हीनता ५ विष्कम्भकशून्यता

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी ने चम्पू-काव्यों पर अपने प्रथम किन्तु विस्तृत एवं सुविवेच्य प्रबन्ध— 'चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन' में उपलब्ध चम्पू-काव्यों के आधार पर सप्रमाण सिद्ध किया है कि गद्य-पद्य-मयता के अतिरिक्त शेष विशेषताएँ चम्पू-काव्यों में नहीं मिलतीं।[2] उनका कथन है कि अनेक बड़े एवं महत्वपूर्ण चम्पू-काव्य हैं। जो सांक (हर चरण सरोजांक) या सोच्छ्वास हैं। 'पारिजात हरण' उच्छ्वासों में विभाजित है तो सांक नहीं है। भोज का 'चम्पू रामायण' काण्डों में विभाजित है, सोमदेव का 'यशस्तिलक' आश्वासों में और अच्युत शर्मा का 'भागीरथी चम्पू' मनोरथों में। अतः सांक और सोच्छ्वास होने का नियम सभी चम्पू-काव्यों पर समान रूप से लागू नहीं होता। जहाँ तक उक्ति-प्रयुक्ति के न होने का प्रश्न है, अत्यन्त प्रसिद्ध चम्पू 'विश्वगुणादर्श' अपने दो प्रमुख पात्रों कृशानु और विश्वावसु की उक्ति-प्रयुक्ति पर ही निर्मित है। यह गद्य-पद्य-मयता भी एक सही लक्षण नहीं है क्योंकि यह अतिव्याप्ति दोष से दूषित है। चम्पू श्रव्य-काव्य है अतः उसमें दृश्य-काव्य सदृश विष्कम्भक के प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता।[3]

अपने मन्तव्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए डा० त्रिपाठी ने आगे लिखा है कि "यदि गद्य-पद्य से मिश्रित होना ही चम्पू-काव्य का लक्षण मान लिया जाय तो ब्राह्मण-ग्रन्थों से लेकर गद्य-पद्य मिश्रित सामान्य कथा-कहानियाँ तक सभी चम्पू-काव्य कहलाने लगेंगे। उक्त परिभाषाओं से गद्य-पद्य का सापेक्षित महत्व, उनकी मात्रा, काव्यांगों से चम्पू-काव्य का भेदकत्व आदि स्पष्ट नहीं होता। इसी अस्पष्टता के कारण 'वासवदत्ता' एवं 'दमयन्ती' कथा को एक ही चम्पू-काव्य की श्रेणी में बिठा दिया गया है (द्रष्टव्य हेमचंद्र, काव्यानुशासन पृ. ४०८) जब कि शास्त्रीय और लोक-परम्परा 'वासवदत्ता' को गद्य-काव्य

१—नृसिंह चम्पू की भूमिका

२—चम्पू-काव्य का आ० एवं ऐ० अध्ययन पृ. २६

३—चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पृ. २६

मानती आ रही है। इसी के कारण 'मन्दरामन्द' जैसे लक्षण-ग्रंथ भी अपने को चम्पू घोषित करने में संकोच नहीं करते।"[1]

चम्पू काव्य का स्वरूप : चम्पू-काव्यकारों की दृष्टि में

चम्पू-काव्य के स्वरूप को समझने के लिए चम्पू-काव्यकारों द्वारा प्रसंग-प्राप्त चम्पू-विषयक संकेतों का विश्लेषण अनपेक्षित न होगा। चम्पू-निर्माताओं के चम्पू-काव्य विषयक अभिमतों का सारभूत आकलन डॉ॰ त्रिपाठी ने इन शब्दों में किया है "गद्य-पद्य का मिश्रण काव्य में ऐसी सरसता उत्पन्न करता है जो केवल गद्य या पद्य-बद्ध काव्यों में नहीं मिलती। चम्पू-काव्यों द्वारा प्रदत्त आनन्द किशोरी कन्या[2], वाद्य-समन्वित संगीत[3], माध्वीक मृद्वीक अथवा सुधा और माध्वीक के सम्यक् योग से प्राप्त होने वाले आनन्द की भांति विलक्षण है।[4] इन काव्यों का सौंदर्य पद्मरागमणि-संयुक्त मुक्तामाला[5] या कोमल किसलय-कलित तुलसी के हार सदृश मनोरम एवं आकर्षक होता है[6]। जल-विहार की भांति ही रसिक जनों के लिए चम्पू-विहार भी होता है[7]। गद्य-पद्य की एक दूसरे से मीलित, लघु-गुरु-भाव-लहरियों में क्रीड़ा करता हुआ मानस हंस जिस आनन्द की अनुभूति करता है, वह

१—वही पृ. २१

२—गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्।
हर्ष-प्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्राग्बाल्यतारुण्यवतीव कन्या॥ —जीवंधर चम्पू १।६

३—गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्य-सूक्तिर्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद् दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया॥ चम्पू-रामायण
- बालकाण्ड ३

४—पद्य यद्यपि विद्यते बहुसतां हृद्यं विगद्य न तत्,
गद्यं च प्रतिपद्यते न विजहत्पद्य सुधास्वाद्यताम्।
आदत्ते हि तयोः प्रयोगमुभयोरामोदभूमोदय,
संगः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीकमृद्वीकयोः॥ विश्वगुणादर्श १।४

५—लोके श्लोकाननेकान् विदधति कृतिनः श्लीकरास्तोकपाका
नैकेगद्यानिहृद्यान्यतिमधुरपदास्वाद्यानि चान्ये।
पार्श्वाभिव्यक्तमुक्ताफलकलनकलत्पद्मरागोज्ज्वलो स्रग्
बन्धच्छायानुबद्धरचयति कविराडेष चम्पूप्रबन्धम्॥ — तत्वगुणादर्श १।४

६—पद्यैरनवद्यैरपि—गद्यैर्संवलितास्तुतकृतिभिरियं हृद्या।
तुलसीप्रवालविकचकिसलकलितमालेव भगवतः शौरेः॥ — बालभागवतम्

७—मदयति मदो मदीयं ननु वचनभारतीरसविभागः।
किमु सुतनु नीरविहारो नहि नहि चम्पूविहारोऽयम्॥ — गोपाल चम्पू। अन्तिम छंद

एक रसप्रवाहित गद्य या पद्य-धारा में कहां उपलब्ध होती है[1]—

चम्पू-काव्य : विशेषताएँ

डॉ॰ छविनाथ त्रिपाठी ने अपने शोध-प्रबन्ध में प्रकाशित और अप्रकाशित २४५ संस्कृत चम्पू-काव्यों के आधार पर संस्कृत साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन आचार्यों के चम्पू-विषयक मतों की विवेचना करते हुए चम्पू-काव्य की जो विशेषताएँ निर्धारित की हैं[2] उनका आकलन हम इस प्रकार कर सकते हैं—

१—प्रबन्धात्मकता—

आचार्यवृन्द एवं चम्पूकाव्यकार दोनों चम्पू-काव्य को मिश्र-शैली में प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य मानते हैं। प्रबन्धकाव्य में कथा-वस्तु का सन्निवेश अनिवार्य है। कथा-वस्तु की प्रकृति के आधार पर तीन प्रकार के चम्पू-काव्य उपलब्ध हैं—

अ— जिनमें कथावस्तु आरंभ से अंत तक अविच्छिन्न रूप से चलती रहती है।

ब— जिनमें कथा-वस्तु को भूमिका और उपसंहार रूप में प्रस्तुत कर मध्य में दृश्यों अथवा स्थानों आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है जैसे विश्वगुणादर्श, केरलाभरणम्, मन्दारमन्द चम्पू आदि।

स— जिनमें कथा-वस्तु का अभाव है। मिश्र-शैली में रचित होने के कारण ही उन्हें चम्पू-काव्य कह दिया गया है। आरंभ में तो चम्पू-काव्य प्रबन्ध काव्य का ही बोधक था परन्तु आगे चल कर शैली का बोधक बन गया।

२—वस्तु-संगठन—

चम्पू-काव्यों की कथावस्तु एक घटनाश्रित एवं बहुघटना-संयुत दोनों प्रकार की है। मुख्य और प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त पुराणों की भांति कतिपय चम्पू-काव्यों में अवान्तर कथाओं का भी समावेश हुआ है यथा यशस्तिलक चम्पू, मन्दारमरन्द चम्पू आदि। चम्पूकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता कथावस्तु का ऋजु गति से विकास है। नाटकों और उपन्यासों की भांति उनमें वक्रता नहीं है। औत्सुक्य को सुरक्षित रखने के लिए घटनाओं के संगठन में क्रम-विपर्यय नहीं मिलता।

वस्तु को चमत्कारपूर्ण बनाये रखने के लिए अद्भुत और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन-खण्डों का

---

१ पद्यं हृद्यमपीह गद्यरहितं नाद्यं न हृद्यास्पदं
गद्यं पद्यविवर्जितं च भजते नास्वाद्यतां मानसे।
साहित्यं हि तयोर्द्वयोरपि सुधामाध्वीकयो र्योगवत्
सम्मोदं हृदयाम्बुजे वितनुते साहित्यविद्याविदाम्॥ — कुमारसम्भव चम्पू १।६

२—चम्पू काव्य का आलो॰ एवं ऐति॰ अध्ययन, पृ॰ ३६

आश्रय लिया गया है। वर्णन पर अधिक ध्यान देने के कारण वस्तु की अवस्थाओं एवं संधि-सन्ध्यंगों पर उपेक्षापूर्ण दृष्टि रही है। वर्णनों के बीहड़ वन में, वस्तु की क्षीण रेखा दृष्टि-पथ से बारबार ओझल हो जाती है। लघु चम्पू-काव्यों में जहां वर्णन-विस्तार कम है, कथा-वस्तु स्पष्टरूपेण दृष्टिगत होती रहती है।

10864

३—चम्पू-काव्यों की कथावस्तु के स्रोत—

चम्पू-काव्यों के वस्तु-ग्रहण का क्षेत्र, संस्कृत-साहित्य की किसी भी एक काव्य-विधा-से व्यापक एवं विस्तृत है। उसका एक छोर यदि महा-काव्यों के मूल स्रोत पुराणों तक है तो दूसरा सामान्य जीवन की सामान्य घटनाओं और लोककथाओं की अंतिम सीमा तक। चम्पू-काव्यों ने महाकाव्यों सदृश लक्षण-निर्दिष्ट-रूढ़िबद्ध परम्परा का अनुगमन नहीं किया है। ऐतिहासिक राजाओं के वर्णन को पौराणिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करने में चम्पू-काव्य अधिक सफल रहे हैं।

चम्पू-काव्यों में पुराणों की अत्यन्त लोक-प्रचलित कथाएं ही ग्रहण की गई हैं। परिणय-कथाओं के अतिरिक्त गुरुओं और विविध सम्प्रदायों के संतों के चरित भी चपू-काव्यों के विषय बने हैं। कतिपय आश्रय-दाताओं को भी कवियों ने काव्य का विषय बना लिया है। महत् चरित्र के अभाव में ये कवियों के आश्रयदाता कवि-कल्पना पर ही निर्भर रह गये हैं।

४—चम्पू-काव्यों का आकार—

आकार की दृष्टि से चम्पू-काव्य लघु और वृहत् दोनों प्रकार के उपलब्ध हैं। ये महाकाव्यों की भांति आठ परिच्छेदों से अधिक के भी हैं और खण्डकाव्यों की भांति आठ से कम भी।

५—चम्पू-काव्यों का विभाजन—

चम्पू-काव्यों का विभाजन घटना पर आधारित रहता है, वर्णन पर नहीं। आकार-लघु चम्पू जहां विभाजनविहीन हैं वहां बड़े चम्पू कई परिच्छेदों में विभाजित हैं। परिच्छेदों का विभाजन चम्पू-काव्य-निर्माताओं ने केवल उच्छ्वासों में ही नहीं किया अपितु अपनी रुच्यनुसार स्तबकों, आश्वासों, उल्लासों, काण्डों, तरंगों, सर्गों, विलासों, कल्लोलों, मनो-रथों, बिन्दुओं, परिच्छेदों आदि किसी में भी कर दिया है।

६—चम्पू काव्यों का आरम्भ—

चम्पू-काव्यों का आरम्भ सामान्यतः मंगल-श्लोकों के उपरान्त कवि-परिचय, नागर या नायक-वर्णन से हुआ है। कुछ चम्पुओं में सज्जन-स्तुति और खल-निंदा भी है पर अधिकांश संख्या में ऐसे ही चम्पू मिलते हैं जिनमें मंगल-श्लोकों के उपरान्त सीधे कथा का आरम्भ कर दिया है।

७—उपसंहार-वाक्य—

चम्पू-काव्यों के उपसंहार-अंश के विषय में किसी एक नीति का अनुसरण नहीं किया

गया है। कुछ चम्पू काव्यों के उपसंहार-वाक्य के साथ आश्वास, उल्लास अथवा स्तबक के पूर्व घटना का निर्देश करने वाला विशेषण जोड़ दिया गया है और कुछ में इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं है। ये उपसंहार-वाक्य तीन प्रकार के दिखाई पड़ते हैं—

(अ) जिनमें संख्यात्मक विशेषण दिये गये हैं अथवा समाप्ति की सूचना दी गई है। किसी किसी में कवि का नाम और संक्षिप्त परिचय भी उपलब्ध होता है।

(ब) जिनमें केवल अंक-निर्देश कर दिया गया है और कवि तथा काव्य का नामोल्लेख मात्र है।

(स) जिनमें कवि और काव्य-परिचय के अतिरिक्त चम्पू-काव्य को चरित-काव्य, महाकाव्य अथवा चम्पू-काव्य कहा गया है तथा वर्ण्य-विषय का भी संकेत कर दिया गया है।

चम्पू-काव्यों में पात्र-सृष्टि—

चम्पू-काव्यों का नायक देवता, गंधर्व, मानव, पशु पक्षी कोई भी हो सकता है। कुछ चम्पू-काव्यों में प्रतिनायकों की भी योजना है और कुछ में नहीं। नायकों के गुण-लक्षण ग्रंथानुसार ही होते हैं। नायिकाएँ भी राजकन्या से लेकर भिल्ल-कन्या तक हैं। नायिका-विहीन चम्पू-काव्य भी उपलब्ध हो जाते हैं। नायक-नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र देवासुर से लेकर सामान्य जन तक मिल जाते हैं। पात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। नल-चम्पू में पात्र संख्या ६३ तक पहुँचती है। चम्पू-काव्यकारों का लक्ष्य नायक-नायिका का ही चित्रण करना रहा है, अन्य पात्र साधन-स्वरूप ही रखे गये हैं।

कुछ चरित्-चम्पूकाव्यों में एक से अधिक नायक हैं। एक वंश के कई व्यक्तियों (द्रष्टव्य चोल-चम्पू अथवा भोसल-वंशावली चम्पू) अथवा एक सम्प्रदाय विशेष के कई आचार्यों (द्रष्टव्य जैनाचार्य विजय-चम्पू) का एक साथ वर्णन उपलब्ध होता है, परन्तु उनमें भी कवि ने किसी विशेष व्यक्ति को ही वर्णन का मुख्य आधार बनाया है।

चम्पू-काव्यों में रस

चम्पू-काव्यों मुख्य रस शृंगार एवं वीर है। अन्य रसों का भी यथा स्थान उपयोग हुआ है। धर्म-परक चम्पू-काव्यों का पर्यवसान शांत रस में हुआ है।

चम्पू-काव्यों की शैली

चम्पू काव्यों की शैलीगत विशेषताओं का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) वर्णन-शैली—चम्पू काव्य वर्णनात्मक हैं। वर्णन की प्रधान दो शैलियां—अन्य पुरुषात्मक एवं कथोपकथनात्मक हैं। नल-चम्पू, यशस्तिलक चम्पू, जीवन्धर चम्पू अन्य पुरुषात्मक एवं विश्वगुणादर्श वैकुंठ विजय, वीरभद्र चम्पू आदि

कथोपकथनात्मक शैली में रचित हैं। श्रीनिवास चम्पू का पूर्वार्द्ध तो अन्य पुरुषात्मक शैली में और उत्तरार्द्ध संवादात्मक शैली में है।

(ख) गद्यपद्यमयता—सभी चम्पू काव्य गद्य-पद्य मिश्रित शैली में रचित हैं।

(ग) गद्य-पद्य प्रयोग का स्तर और मात्रा-वर्णन एवं कथावस्तु के विकास में गद्य और पद्य समान स्तर पर प्रयुक्त हुए हैं। गद्य और पद्य के प्रयोग की मात्रा के सम्बन्ध में कवि-रुचि ही प्रधान रही है। कुछ चम्पू-काव्य गद्यबहुल हैं तो कुछ में पद्य की भरमार है। प्रथम का उदाहरण नल-चम्पू और द्वितीय का भोजकृत चम्पू रामायण है।

(घ) अलंकरण की प्रवृत्ति और गाढ़बद्धता सभी चम्पू-काव्यों का गद्य-भाग अलंकृत है। गद्य की वृत्तगन्धोज्झित, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक सभी शैलियों के दर्शन एक अथवा भिन्न-भिन्न चम्पू-काव्यों मे हो जाते हैं। अनेक चम्पू-काव्यों का पद्य-भाग भी कवित्वपूर्ण होता है पर कोरे वर्णनात्मक पद्यों की भी कमी नहीं है।

(ङ) अन्य कवियों एवं ग्रंथों के उद्धरण—चम्पू-काव्यों में अन्य कवियों की सूक्तियों एवं शास्त्रीय ग्रंथों के उद्धरणों को भी खपा दिया गया है। यह प्रवृत्ति यशस्तिलक चम्पू में विशेषरूप से द्रष्टव्य है। उद्धरण की यह प्रवृत्ति गद्य भाग में दृष्टि-गोचर नहीं होती। उद्धृत पद्यों की संख्या सीमित ही रहती है। अधिकतर चम्पू-काव्य इस उद्धरण-पद्धति से मुक्त हैं।

(च) दृष्टान्तों के लिए अवान्तर कथाओं का उपयोग— यह प्रवृत्ति भी चम्पू-काव्यों मे चली है। यशस्तिलक एवं जीवन्धर जैसे जैन चम्पूकाव्यो में अवान्तर कथाओं का प्रचुरता से उपयोग हुआ है।

चम्पू-काव्यों में छन्द-प्रयोग

चम्पू-काव्यों में वर्ण एवं मात्रा-वृत दोनों का उपयोग हुआ है। यथा-यशस्तिलक चम्पू। चम्पू-काव्यों में एक परिच्छेद के अन्तर्गत अनेक प्रकार के वृत्तों का प्रयोग मान्य है।

चम्पू-काव्य : परिभाषा

चम्पू-काव्यकार वस्तु-ग्रहण, नायक-चयन, पात्र-प्रयोग, रस-परिपाक एव शैली की दृष्टि से नितान्त ही स्वच्छन्द रहे हैं। उन्होंने कहीं भी किसी शास्त्रीय बन्धन को स्वीकार नहीं किया है। फलतः इस बहु-रूप विधा को किसी एक परिभाषा के अन्तर्गत रख पाना बड़ा दुष्कर है।

चम्पू-काव्य की प्रचलित परिभाषा— 'गद्य-पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' अति व्याप्तिदोष से ग्रसित है। संभवतः अलंकरण प्रवृत्ति एवं वर्णन-विस्तार की आकांक्षा चम्पू-

काव्यों की सामान्य विशेषताएँ रही हैं। इस दृष्टि से डॉ० त्रिपाठी ने चम्पू-काव्य की निम्न-लिखित परिभाषा निर्धारित की है—

गद्यपद्यमयं श्रव्यं संबन्धं बहुवर्णितम्।
सालङ्कृतं रसैः सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्॥

परम्परागत परिभाषाओं की एकांगिता एवं अतिव्यापकता को देखते हुए यह परिभाषा मान्य हो सकती है।

वंशभास्कर : चम्पू-काव्य की कसौटी पर

चम्पू-काव्य-विश्लेषण से प्राप्त उसकी रूपगत विशेषताओं के आधार पर वंशभास्कर का अध्ययन करने पर यह निश्चिततः 'चम्पू-काव्य' सिद्ध होता है। इस प्रकार सूर्यमल्ल जो उसे बारबार 'महाचम्पू' से अभिहित करता है उसकी पुष्टि भी हो जाती है। देखिये—

१—प्रबन्धात्मकता—

वंशभास्कर मिश्र-शैली में रचित एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें कथावस्तु को भूमिका और उपसंहार में प्रस्तुत कर मध्य मे नानाधर्मी विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं। चहुवाण वंश के दो पाटों के मध्य एकाधिक राजवंश, ऐतिहासिक घटनाएं विविध ज्ञान-विज्ञान की बातें, कवित्व-चमत्कार, धर्म-दर्शन, रीति-नीति, आचार-विचार और न जाने क्या-क्या कवि ने रच डाला है। फिर भी यह कवि-प्रतिभा का चमत्कार है कि सब कुछ होते हुए भी उसने रचना के प्रबन्धकत्व को बनाये रखा है।

२—वस्तु-संगठन—

वंशभास्कर का कथ्य बहुघटनाश्रित है। उसमें मुख्य विषय चहुवाण-वंश-विवेचन के साथ अन्यान्य क्षात्र अथवा क्षात्रेतर वंशों का विस्तृत वर्णन हुआ है। बूंदी नरेशों के चरित्र-वर्णन के व्याज से मुगलवंश का तो पूरा लेखा-जोखा प्रस्तुत कर दिया गया है। इसी प्रकार मेवाड़ का राणा-वंश और जयपुर के कछवाहे भी विवेचन का विषय बन गये हैं। अवान्तर प्रसंगों की भी वंशभास्कर में भरमार है। फलतः उसकी कथा (वृत्त) में न तो क्रम-विपर्यय ही किया गया है और न ही किसी प्रकार की वक्रता ही लाई गई है। संधि-संध्यगों के निर्वाह का भी एकांत अभाव है। बस मंदाकिनी नदी के बहाव की भांति कथा-प्रवाह ऋजु-गति से चलता है।

अद्भुत और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों की भी यहां कमी नहीं है, वरन् वस्तु-संभार इतना अधिक है कि कई बार आधिकारिक विषय आंखों से ओझल होने लगता है।

३—कथा-स्रोत—

'विशिष्टवेदनियवरविद्याविषयक' ग्रंथ वंशभास्कर के स्रोतों की गणना कठिन है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, ब्राह्मण, आरण्यक, विविध-शास्त्र एवं काव्य-ग्रंथों बड़वा भाटों की पुस्तकों, फारसी तवारीखों, ऐतिहासिक अभिलेखों, सामान्य जीवन की घटनाओं आदि कई

साधन-स्रोतों से वंशभास्कर की सामग्री जुटाई गई है। स्पष्ट ही है कि वंशभास्करकार ने वस्तु का चयन किसी बंधे-बंधाए दायरे के भीतर से ही नहीं किया है अपितु जरूरत की चीज जहाँ भी मिली है उन्मुक्त भाव से ले ली गई है।

ऐतिहासिक राजाओं को पौराणिक परिवेश में प्रस्तुत करने का भी कवि का आग्रह रहा है। राजा भोज, विक्रम, वसुदेव, देवीसिंह आदि के आख्यान इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं।

४—आकार—

जैसा कि परिचय में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि वंशभास्कर नितान्त ही वृहदाकार रचना है। ग्रंथ की मूल योजनानुसार १२ राशियों के अन्तर्गत एक हजार मयूखों की रचना होनी थी परन्तु बीच में ही ग्रंथ-रचना अवरुद्ध हो जाने के कारण ऐसा सभव न हो सका।

५—विभाजन—

सूर्य रूपक से पूर्वायण और उत्तरायण दो विभागों के साथ वंशभास्कर का विभाजन १२ राशियों में किया गया है। प्रत्येक राशि फिर मयूखों में विभक्त की गई है। राशि में मयूखों की संख्या निश्चित नहीं है अर्थात् किसी राशि में कम तो किसी में अधिक मयूख आ गये हैं।

६—आरंभ—

वंशभास्कर का आरम्भ मंगलाचरण के साथ हुआ है। मंगलाचरण के पश्चात् स्तुति की एक लंबी परम्परा रखी गई है। तत्पश्चात् कवि-वंश वर्णन, राजधानी राजगुण-निबन्धन, ग्रन्थ-निर्माण हेतु कथन और फिर पौराणिक ढग पर प्रकृति-सर्ग, सृष्टि-रचना, भूगोल-खगोल आदि के वर्णन के बाद कथारम्भ कर दिया गया है।

७—उपसंहार-वाक्य—

उपसंहार-वाक्य के रूप में प्रत्येक मयूख के अंत में पुष्पिका दी गई है जिसमें ग्रंथ-नाम के साथ मयूख में विवक्षित वस्तु का सारांश-कथन करके मयूख की संख्या गिनाई गई है यथा—
"इति श्री वंशभास्करे महाचम्पू के पूर्वायणे द्वितीयराशौ चहुवाण विजयन धूम्रकेतुयज्ञकेत्वादिनव दैत्यनिपातन त्रयोदशो मयूखः।" —आदितोऽष्टत्रिंशतम्: ॥

प्रत्येक राशि की समाप्ति पर भी पुष्पिका में *ग्रन्थनाम, कवि नामपदवी आदि के साथ* राशि में मयूख संख्या की गणना के बाद सम्पूर्ण राशि के वण्र्य का सारांश दिया गया है।

८—पात्र-सृष्टि—

देव-दानव और आर्य-अनार्य नरेशों से लेकर चारण कवि, सामान्य सैनिक, वणिक् आदि सभी के चरित्र वंशभास्कर में वर्णित हुए हैं। एक ही हाड़ावंश के एकाधिक नायक इसमें आए हैं नायिका का अभाव है तथापि नारी पात्रों का विधान हुआ है।

९—शैली—

(क) ओज-वक्ता-शैली में निर्मित वंशभास्कर एक वर्णन-प्रधान रचना है। इसी शैली के

अतर्गत ही कहीं कहीं कथोपकथन (द्रष्टव्य-हल्लू-प्रसंग) और अन्य पुराणात्मक शैली
राम कृष्ण-प्रसंग) का भी उपयोग हुआ है।

(ख) गद्य पद्य शैली में रचित वंशभास्कर में यों परम्परामान्य षड्भाषाओं के
पद्य का समावेश हुआ है, तथापि प्रधानाभ्यन्देश से पिंगल और डिंगल का गद्य-पद्य
है।

(ग) वंशभास्कर पद्य-बहुल रचना है। गद्य अथवा पद्य के प्रयोग में किसी निश्
का अनुपालन नहीं हुआ है वरन् कवि-इच्छानुसार ही इनका उपयोग हुआ है।

(घ) वंशभास्कर का गद्य नितान्त ही अलंकारिक है। राजस्थानी वचनिका
रचित डिंगल गद्य के कच्चे आंगन में तो जैसे सूर्यमल्ल का मन-मयूर नाच उठा है
एक एक अनुभाव संचारी के ऐसे सुन्दर चित्र खींचे हैं कि उसे राजस्थानी के शिरमं
कार जग्गा खिड़िया के समकक्ष लेजा कर खड़ा कर देने को जी चाहता है।[1]

वंशभास्कर के गद्य भाग में कवित्व है तो अपार है और नहीं तो नीरस पद्यात्म
वृत्त दूर-दूर तक फैले हुए हैं।

(ङ) वंशभास्कर में अन्य कवियों अथवा ग्रंथों के उद्धरण नहीं आए हैं। कवि को
समस्त बातों का आलेखन अभीष्ट रहा है और उसने शास्त्रीय आधार पर उन्हें प्रेि
किया है परन्तु कहीं पर भी शास्त्रों के श्लोकादि को ज्यों का त्यों उद्धृत नहीं कि
शास्त्र के मन्तव्य को अपनी भाषा में प्रस्तुत कर देना ही उसे इष्ट रहा है।

राम और कृष्ण के चरित्र भी क्रमशः 'वाल्मीकि रामायण' और 'विष्णुपुरा
आधार पर वर्णित हुए हैं। किन्तु इन ग्रन्थों के मूल अंशों को कहीं भी ग्रहण नहीं
गया है।

इसी प्रकार पृथ्वीराज का प्रसंग चन्दकृत 'पृथ्वीराज रासो' पर आधारित होते ह
सूर्यमल्ल की समर्थ काव्य-प्रतिमा से अनुरंजित हो उठा है।

(च) दृष्टान्तों के लिए वंशभास्कर में पौराणिक तथा निजन्धरी कथाओं से
शास्त्र-न्याय तक के प्रयोग (द्रष्टव्य ४२२। २६, ४२२। ३१) हुए हैं।

(छ) वंशभास्कर में वर्ण एवं मात्रा (वृत्त) दोनों का उपयोग हुआ है। ए
मयूख में नाना जाति के छंद बेरोक आए हैं (द्रष्टव्य—छन्द-समीक्षा)।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर वंशभास्कर चम्पू-काव्य ही सिद्ध होता है औ
प्रकार सूर्यमल्ल द्वारा दिये गये इसके 'महाचम्पू' अभिधान की सम्पुष्टि हो जाती
नानाविषयगर्भित रचना होने के कारण ही संभवतः सूर्यमल्ल ने 'चम्पू' के साथ
विशेषण जोड़ दिया है। वैसे चार आश्वासनों में सम्पूर्ण होने वाले 'कुमारसंभव
को भी उसके रचयिता ने 'महाचम्पू' कहकर पुकारा है।

१—द्रष्टव्य : आलमशाह खान—राजस्थानी वचनिकाएँ।

अध्याय ४

वंशभास्कर : प्रबन्ध-योजना

सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर को 'महाचम्पू' से अभिहित किया है।[1] चम्पू प्रबन्धाश्रित होता है। अतएव उसने एकाधिक प्रसंगों में इसे 'प्रबन्ध' ही घोषित किया है।[2]

जीवन की समग्रता के प्रति विश्वस्त रहने के कारण भारतीय आचार्य-परम्परा 'मुक्तक' की अपेक्षा प्रबन्ध-रचना को महिम मानती आई है।[3]

आचार्य कुन्तक के अनुसार महाकवियों की कीर्ति का मूलाधार प्रबन्ध रचना ही है।[4] इसी प्रकार यायावरीय राजशेखर प्रबन्ध-रचना में समर्थ कवि को ही महाकवि पद से विभूषित करते हैं।[5]

प्रबन्ध : सामान्य अर्थ

बन्ध के साथ 'प्र' उपसर्ग लगने से (प्रबन्ध अच) प्रबन्ध बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'प्रकृष्ट-बन्ध' अर्थात् प्रबल रूप से बंधा हुआ—"अनुज्झितार्थ सम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः[6]।" इस प्रकार प्रबन्ध - रचना से तात्पर्य है—एक ऐसी रचना जिसका कथ्य

१—वंश० द्रष्टव्य मयूखों की पुष्पिकाएँ।

२—(क) रचो नरगिरा करि बंस प्रबन्ध···। — वंश० पृ० ६७। ५

(ख) ग्रंथ प्रबन्धः प्रारम्भः। — वही पृ० ४०

(ग) बिरंचन बंस प्रबन्ध को अब कवि धारिय उमग। — वही पृ० ६६। २१

(घ) आरंभ कीय प्रबन्ध बर··· — वही पृ० ८४। ८५

(ङ) या प्रबन्ध बिच··· — वही पृ० १५० ६६

(च) करत प्रबन्ध प्रकाश···। — वही पृ० ४०। २६

(छ) ऐसे बुंदिय नेर बिष हुव यह प्रथित प्रबन्ध। — वही पृ० ८३। ८२

३—(क) असकलितरूपाणां काव्यानां नास्ति चारुत्वं न प्रत्येक प्रकाशन्ते तेजसः परमाणवः।

२६ — वामनः काव्यालंकारसूत्र वृत्ति।

(ख) तच्च (रसास्वादोत्कर्षकारकं विभावादिना सम्प्रबन्धान्यम्) प्रबन्ध एव। अभिनव गुप्तः अभिनवभारती गायकवाड़ संस्करण — पृ० २२८

(ग) आ० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली, भूमिका — पृ. ६६-६७

४—प्रबन्धेषु कवीन्द्राणां कीर्तिकन्देषु किं पुनः। ४। २६ —हिन्दी वक्रोक्ति जीवित

५—यो यत्र प्रबन्धे प्रवीणः स महाकविः। —काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय

६—आप्टे—संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी

आदि से लेकर अंत तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है। उसके धारा-प्रवाह में सतत गतिशीलता है, उसका एक एक अध्याय, सर्ग अथवा अनुच्छेद तथा उसका प्रत्येक प्रसंग ही नहीं अपितु प्रत्येक वाक्य अथवा छंद पूर्वापर क्रम से परस्पर इस प्रकार आबद्ध है कि उनका अपना पृथक कोई अस्तित्व ही नहीं—विभिन्न रह कर भी वे नितांत अभिन्न हैं।

इस प्रकार की प्रबन्ध योजना शास्त्र-संरचना में भी नियोजित हो सकती है एवं काव्य-प्रणयन में भी। हिन्दी में तो आंग्ल शब्द 'पोतिस' के पर्याय रूप में प्रबन्ध शब्द ही चल पड़ा है। यही कारण है कि प्रबन्ध काव्यों में ही नहीं इतिहास, भूगोल आदि जैसे समाजशास्त्रीय विषयों में भी सुचिंत्य प्रबन्ध-योजना परिलक्षित होती है। इनमें भी विषय के विवक्षित पक्ष का विवेचन नाना खण्डों,अध्यायों, अवतरणों आदि में रहते हुए भी एक विशेष प्रकार का अन्विति-क्रम रहता है।

'प्रबन्ध' : काव्य-शास्त्रीय अर्थ

काव्य शास्त्र में 'प्रबन्ध' शब्द एक विशेष अर्थ का द्योतक है। वहाँ 'प्रबन्ध' से तात्पर्य 'प्रबन्ध काव्य' है एवं तदन्तर्गत समग्र कथा-विधान का नाम प्रबन्ध है।[1] यह समग्र कथा-विधान अथवा प्रबन्ध-कौशल ही 'प्रबन्ध-काव्य' की सफलता का प्रथम अनुबंध है।

प्रबन्ध-काव्य एवं इतिवृत्त विचार

प्रबन्ध काव्य का मूलाधार इतिवृत्त होता है। उसी को लेकर कवि वस्तु-विन्यास की ओर अग्रसर होता है। इतिवृत्त सामान्यतः दो प्रकार का होता है।[2]—'वृत्त' (अनुत्पाद्य अथवा ख्यात) एवं उत्प्रेक्ष्य (उत्पाद्य अथवा कल्पित) आधारभूत तत्व रहते हुए भी काव्य में इति-वृत्त का स्थान नितान्त गौण है, क्योंकि निसर्गतः काव्य रस-मय होता है, कथामय नहीं। यही कारण है कि कवि प्रस्तुत इतिवृत्त के कुछ प्रसंगों को, जो उसके अभीष्ट भाव को रस की स्थिति तक संवहन करने में समर्थ होते हैं, चुन लेता है और शेष का निराकरण कर देता है। सिद्ध है कि इतिवृत्त का सांगोपांग वर्णन इतिहास का विषय है, काव्य का नहीं।[3] कथा-जन्य कौतूहल का परिशमन करना ही कवि - कर्म की इति-श्री नहीं है, उसका लक्ष्य इससे कहीं बढ़ा-चढ़ा है।[4] अपने इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु 'अपूर्व वस्तु-निर्माण क्षमा-प्रज्ञा'—प्रतिभा के धनी कवि को 'प्रबन्ध-सृष्टि' हेतु प्रजापति तुल्य अधिकार प्राप्त है—

१—डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका पृ० २७६

२—विभावभावानुभाव सचार्यौचित्य चारुणः।
विधिः कथा शरीरस्य वृत्तस्योत्प्रेक्षितस्य वा॥ —आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक ३।१०

३—न हि कवेरितिवृत्तमात्र निर्वहणेन किंचित्प्रयोजनं, इतिहासदेव तत्सिद्धेः ॥१४
—आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक

४—निरन्तररसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भराः।
गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिताः॥
—कुंतक, हिन्दीवक्रोक्ति जीवित ॥ ४।११

अपार काव्य-संसार में उसकी (कवि की) इच्छा ही सार्वभौम है।[1] 'Poet' शब्द के यूनानी अर्थ 'रचयिता' को ग्रहण करते हुए अरस्तू ने भी कवि को सृष्टा कहा है।[2]

काव्य-प्रयुक्त इतिवृत्त अथवा विषय-वस्तु के चयन, संशोधन, संगठन, संयोजन, पूर्वापर-क्रम-संस्थापन, प्रकरण-नियोजन, वस्तु-अन्वयन आदि प्रबन्ध विधान सम्बन्धी समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म सकार्यों मे कवि की प्रतिभा-शक्ति अबाध-रूप से सक्रिय रहती है, उस पर यदि किसी का अंकुश है तो मात्र अभीष्ट-रस निष्पत्ति-विचार का। इस दृष्टि से वह परम्परा-प्राप्त अथवा ख्यात इतिवृत्त के प्रवाह को रसानुकूल मोड देकर एक नई कथा भी गढ़ सकता है।[3]

पाश्चात्य आलोचक श्री डिक्सन का भी यही मत है कि कवि इतिहासाश्रित होकर भी उसके वृत्त से बधा नहीं है; अपने लक्ष्य और कार्य के अनुरूप ही वह घटनावली का चयन करता है।[4]

चम्पू-काव्य एवं प्रबन्ध-योजना

प्रबन्ध-काव्यान्तर्गत परिगणित अन्यान्य काव्य विधाओं की प्रबन्ध-योजना की तुलना में चम्पू-काव्य का प्रबन्ध-विधान नितान्त ही भिन्न-पंथी है। चम्पू इतर प्रबन्ध-काव्यों में जहां आधिकारिक और प्रासंगिक वस्तु का सुचित्य-स्वरूप पारस्परिक-सम्बन्ध-भावना के आधार पर पूर्वाक्रमानुसार संधि-सन्ध्यंग-नियमान्तर्गत अंग-अंगीभाव से जटिलतापूर्वक नियोजित रहता है वहां चम्पू-काव्य में इसका ताना-बाना अत्यन्त ही सरल सूत्रों से निर्मित होता है।

१—अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥

—आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक

२—Sir Paul Harvey : The Oxford Companion to English Literature. Page 39.

३—कविना काव्यमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भवितव्यम्।
तत्रेतिवृत्ते यदि रसाननुगुणां स्थितिं पश्येत्
तदेमां भङ्क्त्वापि स्वतन्त्रतया रसानुगुणं कथान्तरमुत्पादयेत् ॥

—आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक ॥१४॥

४—The Poet may be historian but he will be selective whose method involves excision of all matters which cannot be closely united into relation with this main action, whose contact with his hero and hero's doing, cannot somehow be preserved.

—Dixon : English Epic & Historic Poetry, page 123.

उसमें न तो कथा-काव्यों की भांति औत्सुक्य साधिका-वक्र कथा- भंगिमा ही रहती है और न ही नाटकीय संधि-सन्धान एवं विभिन्न अवस्था-साम्य वस्तु-विधान ही—उसमें महाकाव्योचित प्रधान कार्य— महद् उद्देश्य—का प्रतिफलन करने वाली कथान्विति का भी अभाव रहता है। क्योंकि चम्पू-काव्यकार वस्तु-चयन एवं वस्तु-विन्यास में रूढ़िग्रस्त न रहकर स्वच्छन्द रहे हैं। चम्पू-काव्यों में चरित काव्यों की सर्जना का लक्ष्य निहित रहने से उनका वस्तु-विस्तार पुराणों से लेकर जीवन की सामान्य घटनाओं तक परिव्याप्त है। वर्ण्य-विषय, विस्तार-वैभव, वस्तु-विधान एवं शैली-स्वरूप की दृष्टि से चम्पू-काव्य पुराणों के सर्वाधिक निकट हैं।

चम्पू-काव्यों का वस्तु-समाहारक वृत्त इतना विस्तृत है कि उसकी परिधि में इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, काव्य आदि ज्ञान की समस्त संचित राशि सर्वतोभावेन समाहित रह सकती है। चंपू-काव्य की कथावस्तु अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित भी रह सकती है और भूमिका तथा उपसंहार रूपी दो तटों के मध्य समतल में बहने वाली विशाल पयस्विनी की भांति अपने कलेवर में जल के साथ प्रकृति के नाना उपादानों को लेकर भी चल सकती है। वह एक घटनाश्रित भी हो सकती है और बहु-घटना-संघत भी। उसमें आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त अवान्तर कथाओं-आख्यानों का भी समावेश हो सकता है। वस्तुतः चम्पू-काव्यों में 'कथावस्तु' आवृत्त होकर वर्णन-विस्तार के साथ निरन्तर चलती रहती है। कथा की निरावृत्त धारावाहिकता को चम्पू-काव्यों में स्थान नहीं मिलता है।[1] वर्णनों की सघनता में वस्तु की क्षीण रेखा, दृष्टि-पथ से बारम्बार ओझल हो जाती है। लघु चम्पू-काव्यों में जहाँ वर्णन-विस्तार कम है, कथा-वस्तु स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है।[2]

वंशभास्कर का आधार-फलक

वंशभास्कर मूलतः इतिहासाश्रित वंश-प्रकाशक प्रबन्ध है (वंश० ११४। १२) जिसमें अनल वंश उत्पत्ति (वंश० ८६। ८६) के साथ हाड़ा वंश को विविध-कथा-संयुत करके कहा गया है (वंश० १२६०। ४५)। आधारभूत विषय (हाड़ा वंश) के साथ इतर क्षत्रिय-क्षत्रियेतर वंश (वंश० ११३। ८) वर विवाहें (वंश० ८७। ६) एवं मत-मतान्तर, मधुर वृत्त और विविध सर्ग-कथन आदि भी इसमें समाविष्ट हो गये हैं (वंश० ६७। ५)। इसके साथ ही चार राशियों में पुरुषार्थ चतुष्टय का लेखा लेना भी कवि का उद्देश्य रहा था (वंश० ११४। १३) किन्तु बीच में ग्रन्थ का लेखन अवरुद्ध हो जाने से वह पूरा न हो सका।

इस नाना विषयाभिमुख वर्ण्य - विस्तार के प्रणयन में कवि स्पष्ट ही कथा-काव्यों की सी वक्र भंगिमाओं का विधान वंशभास्कर में नहीं कर सका है। वंशभास्कर का कथ्य प्रायः

---

१ — डॉ० छविनाथ त्रिपाठी : चम्पू-काव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० ५०

२—वही पृ० ४८

सपाट है। उसमें न सधि-संध्यंग परिलक्षित हैं और न ही कुतक विवेचित प्रबन्ध-वक्रता के चमत्कार। उसका प्रवाह, जो कूल-भेदी न होकर कूल-सव्यापक है, कहीं सतत है तो कहीं विच्छिन्न, कहीं गतिशील है तो कहीं अवरुद्ध, कहीं आन्दोलित है तो कहीं अधोमुख, कहीं उन्मुख है तो कहीं पश्चाद्‌भिमुख, कहीं स्पष्ट है तो कहीं अस्पष्ट, कहीं गोचर है तो कहीं अगोचर। इस प्रकार यह वीर-रसार्णव अपने आप में सिन्धु का समस्त संभार लिए हुए सुशोभित है।

कथ्य के इस विस्तार-वैभव के लिए वंशभास्कर को जिन प्रबन्ध - प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा है, वे महाप्रबन्ध की ही शैलियां हैं जिनके दर्शन महाभारत की प्रबन्ध-कल्पना में द्रष्टव्य हैं।

वंशभास्कर : प्रबन्ध शैली

वंशभास्कर की प्रबन्ध शैलियों का आकलन हम इस प्रकार कर सकते हैं—

१ महाप्रबन्ध शैली २ सिंहावलोकिनी-शैली ३ दूरान्वय संस्थापन-शैली
४ प्रसग-विधान-शैली

१—महाप्रबन्ध शैली—सूर्यमल्ल ने महाभारत की महाप्रबन्ध शैली[1] का आश्रय ग्रहण करते हुए वंशभास्कर के कथ्य का समास, व्यास एवं समाहार अनुक्रम से प्रस्तुत किया है। कथ्य-निरूपण में सिंहावलोकिनी एवं दूरान्वय शैलियां भी नियोजित हुई हैं।

(क) समास व्यासानुक्रम से कथ्य-निरूपण बड़े ग्रंथों की विशेषता है। जहां वस्तु-कान्तार होता है वहां प्रथमतः समास कर लेना एक प्रकार से सूची-निर्माण का सा कार्य होता है—इससे गन्तव्य स्पष्ट एवं आलोकित हो जाता है। सूर्यमल्ल ने भी वंशभास्कर के कथ्य-निरूपण में इसी पद्धति का निर्वाह किया है। सर्वप्रथम आधिकारिक-विषय - चहुवान-वंश के राजाओं का समास-कथन (वंश० प्रथम राशि मयूख ११) किया गया है। तदनंतर ग्रंथ प्रयोजनानुसार (वंश० ११६।२) चालुक्य, परमार और प्रतिहार वंशों की वंशावलिका प्रस्तुत कर दी गई है (वंश० द्वितीय राशि मयूख : १५-१६) प्रत्येक राशि के अन्त में भी समस्त कथ्य को एक बार फिर समास करके प्रस्तुत कर दिया गया है।

१—विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्यचाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समास व्यास धारणम्॥

—१।१।५१ महाभारत

मिलाइये—

समसन विस्तर सबनके, इष्ट श्रवन हित मांहि।
इहिं क्रम सिंहवलोकिनी, मंजु कथा या मांहि॥

—वंश० ११२।६

समास विधान में कवि का प्रथम लक्ष्य वंश अथवा पात्र-विशेष से संबद्ध समग्र जानकारी देने का रहा है। (द्रष्टव्य वं॰भा॰ प्रथम राशि-मयूख ११) द्वितीय उद्देश्य है—विस्तार क्रम में पूर्व वृत्तांत का पुनर्न्यास करना (वं॰भा॰ द्रष्टव्य तृतीय राशि-मयूख ३५ में जनक-कथा का पुनर्न्यास और मयूख ३० में चहुवाण-वंश का पुनर्न्यास)।

अवान्तर विस्तृत प्रकरणों के मध्य आधिकारिक विषय (चहुवाण वंश) आँखों की ओट न हो जाय, इसलिए भी समास विधि का बारंबार आश्रय लिया गया है। एक बार विषय-विन्यास कर चुकने के बाद कवि सम्बद्ध विषय के अतरंग में प्रवेश कर जाता है तब पूर्व क्रम को जोड़ने के लिए पूर्व कथा का समास-कथन कर देता है। इस प्रकार आधिकारिक विषय के विस्तार-कथन का फिर अवसर निकल आता है। वंशभास्कर के प्रबन्ध में आद्यान्त यही क्रम चलता है।

समास-विधान की इस योजना के अभाव में वंशभास्कर के आधिकारिक विषय की सुरक्षा असंभव थी।

२—समास-कथनोपरान्त विस्तार-कथन का आश्रय लिया गया है। अब कवि के सामने अपने विवक्षित विषय के विस्तार के लिए लंबा-चौड़ा पाट है जिसमें उसने वंश-विकास, विविध-विषय-ज्ञान, ऐतिहासिक तथ्य, निजधरी-प्रसंग, युद्ध-वर्णन, वीरत्व-चित्रण, भाषा-चमत्कार, भाव-व्यंजना, शैली-सौष्ठव, रस-माधुर्य आदि जो भी उसकी गांठ में है— सबका सब समाविष्ट कर दिया है। कवि चूंकि युद्ध एवं वीरत्व का उद्दण्ड कलाकार (वंश॰ ६१। १२)। है अतएव उसकी प्रतिभा का स्फुरण इन प्रसंगों में विशेष रूप से हुआ है।

३—समास तथा व्यास-योजना के अनन्तर कवि ने प्रायः प्रत्येक वर्णन-प्रसंग को समाहार-बद्ध करने का नियम रखा है। प्रारम्भ में समास, मध्य में व्यास तथा अन्त में कथ्य का समाहार करके कवि ने मृदंगन्याय से एक-एक राशि की रचना की है। इस विधि से एक कथा-सूत्र की तीन-तीन आवृत्तियाँ हो गई हैं; विस्तार में उसका पुनर्न्यास हो जाए वह अलग से। समाहार-योजना एकदम विवरणात्मक है, जिसमें समास का भी समास करके कवि ने कविवृत्त, नाम-गणना, सतति-गणना, राजा के निर्माण-कार्यों आदि का ब्यौरा प्रस्तुत किया है (द्रष्टव्य वं॰भा॰ तृतीय राशि मयूख ३५)।

४—सिंहावलोकिनी शैली— राश्यान्तर्गत प्रत्येक चरित्र-वर्णन में मध्य संक्रमण करने वाले एकाधिक वृत्तान्त आये हैं जिनके लिए कवि ने सिंहावलोकिनी शैली[1] का आश्रय लिया है। जहाँ अवान्तर प्रकरण दूर तक चले हैं वहाँ प्रबन्ध के अधिकारिक विषय को पुनः समास करके उठाया है (वंश॰ २६६५। १७-१८, २६६६। ५-६)। कवि ने महाप्रबन्ध की इस रीति का ग्रंथ-नियम से पृथक् भी स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है—

१—सिंह आगे को चलता जाता है और पीछे को देखता जाता है उसी प्रकार एक बार कहे हुए वृत्तान्त को फिर से दोहराना कथा की सिंहावलोकिनी शैली कहलाती है।
—टीकाकार वंश॰ पृ॰ १२२

जिह् जसोनिधी गाथा अकम्पेजुसदन्ते ।
बोअशोणोऽस्थयो आरम्महावावया॥समानपो ॥

—वंश० २६४१ । १

दूरान्वय—महाप्रबन्ध को एक रीति दूरान्वय भी कही गई है। इसलिए कवि ने इस महाप्रबन्ध में दूरान्वय-शैली का आश्रय भी लिया है। जहाँ एक प्रथम पद या वाक्य का अन्वय अनेक मध्यवर्ती पदों अथवा वाक्यों के बाद आकर स्थापित हो वह दूरान्वय कहा जाता है यथा—

रहे हैं वासर समाप्ति कहँ, वर्ष तार्य शुभ पत्र।
नादानुसाहि हम लिखि, मेरहु दोस मरम ॥ ४
बहु बहुसुतन सऩ्परें, सुरत सु अन्वय भाव।
बड़े प्रबन्ध में यु विधि, समुझहु बुध समुदाय ॥ —वंश० १६३ । ५

इस महाकाव्य में अनेक विषय तथा घटनाएँ अधिकारी विषय के साथ प्रसंगोपात्त आई हैं। अतः एक प्रसंग के क्रम-निर्वाह में व्याघात आना स्वाभाविक है। मध्यवर्ती कथाओं के अन्त में पुनः पूर्व-प्रसंग के अन्वय स्थापित करने में समास-कथन (सिंहावलोकन) का प्रयोग किया गया है। एक प्रसंग बीच में टूट जाता है तथा अनेक वर्णनों के बाद उसका पुनः अन्वय स्थापित होता है। दूरान्वय की यह शैली प्रत्येक चरित्र वर्णन में स्पष्ट है क्योंकि कवि ने चहुवाण वंश-चरित्र को प्रधान रखकर अवान्तर प्रसंग बीच-बीच में जड़े हैं। दूरान्वय का एक रूप तो वृत्त सम्बन्धी दूरान्वय-योजना का है तथा दूसरा रूप महावाक्य योजना तथा उपमान-योजना का है जैसे एक स्थान पर (वंश० ४२८ । १८) बरछी का रूपक देकर फिर दूर जाकर (वंश० ४१० । २) उसके इस मारने का कथन किया गया है।

वाक्यगत दूरान्वय के उदाहरण रूपक वर्णनों में विरल (द्रष्टव्य युद्ध रूपक, सेना० रूपक) तथा गद्य-शैली के वर्णनों में विशेष रूप से मिल जाते हैं (द्रष्टव्य वंश० चतुर्थ राशि १६ मयूख, ४ राशि २४ मयूख, ४ राशि २७ मयूख, ७ राशि १ मयूख)।

प्रसंग - विधान - शैली

सूर्यमल्ल प्रबन्ध-निर्वाह हेतु शास्त्रमुखापेक्षी न रहकर नितान्त ही स्वच्छन्द रहा है। इसमें उसने श्रोता वक्ता की मौखिक शैली का आश्रय ग्रहण कर प्रबन्ध-प्रवाह को मनचाहे मोड़ दे दिये हैं। यही कारण है कि वंशभास्कर में इतने अधिक विषयों का समावेश हो गया है कि यह विश्वकोश की सीमाओं का स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है। वंशभास्कर का परिच्छेद ऐसे सीधे, सरल और मोटे तागों से निर्मित हुआ है कि उनमें सभी रंग पृथक् पृथक् दीखते हुए भी वे एक दूसरे से बंधे हुए हैं—हाड़ा वंश ताने का प्रथम सूत्र है—बुनने वाली मलकी (घटना) में यही लगा है—शेष खड़े सूत्र नाना विषयों के हो सकते हैं—नाना वंश-विवरणों के हो सकते हैं—मलकी चलती है तो कहीं इतिवृत्त की सीधी पट्टियाँ

निर्मित कर जाती है तो कहीं काव्य की गुलकारी सजाती जाती है, जिसमें रस का रंग इतना गहरा रहता है कि शेष सारे रंग फीके पड़ जाते हैं।

प्रसंग विधान में कवि ने न पारस्परिक सूत्र सम्बन्ध-स्थापन का ध्यान रखा है और न औत्सुक्य-साधिका वक्र-भंगिमा का। जो बात जिस भराटे में रचनाशील कवि के मस्तिष्क में आ गई बस वहीं उसका ठाठ खड़ा हो गया। इस प्रक्रिया में कवि ने देश-काल-समन्विति का अवश्य ध्यान रखा है। कतिपय विचार-संकेतों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१—ग्रंथारम्भ में सर्गसृष्टि कथन करते हुए कवि अर्बुदाचल के निर्माण पर आता है और वहीं अर्बुदाचल क्षेत्र में अग्नि-कुल के क्षत्रियों की उत्पत्ति के वर्णन का अवसर निकाल लेता है। इस प्रकार सर्ग-कथनान्तर्गत उसने अभी तक जो पृष्ठ पर पृष्ठ रंगे हैं उनका तारतम्य बिठला दिया है।

२—विवाह के अवसर पर पुरोहित चहुवाण वसुदेव को नड्वल कृत राम-कथा *सुनाता है—बस प्रसंग बन गया और राम-कथा का वर्णन प्रारम्भ हो गया। कथा के अन्त* में 'इम राम चरित नड्वल बरनि, दुल्लह नृप बसुदेव प्रति' (वंश० १०६ । १२२) कहा और फिर असली बात शुरू हो गई। *चन्द्र-वंश वर्णन भी इसी प्रकार विवाह-अवसर पर* पुरोहित द्वारा करवाया गया है— 'लग्न समय ससधर उत्तम, कहिय पुरोहित नाम कथा क्रम'। (वंश० ७६६ । ८)

३—धर्मनिष्ठ यज्ञ संपूर्त्यर्थ नाना शास्त्र-सम्मत तर्क देकर ऋषि मुनिगण, दैत्य-दलन का औचित्य सिद्ध करते हैं, जैसे— गर्ग ज्योतिष से, भरत-संगीत-साहित्य से, याज्ञवल्क्य धर्म से, पाणिनि व्याकरण से और इसी प्रकार नारद, जैमिनी, व्यास, कौत्स, कणाद, शालिहोत्र, चाणक्य, पिंगल, परशुराम, सारस्वत, कण्व,पाराशर, वररुचि मुरसमद, कामंदक आदि अपने अपने विषय के तर्क देकर दैत्य-दलन का औचित्य सिद्ध करते हैं और इस क्रम में इतने सारे विषयों की प्रारम्भिक जानकारी का समावेश ग्रंथ मे हो जाता है।

४—कृष्ण-चरित्र का समावेश चहुवाणों के इस प्रबन्ध में केवल इस आधार पर हो गया है कि चहुवाण, पौंड्रक वासुदेव और श्री कृष्ण का समकालीन है—(द्रष्टव्य वंश० पृ० ९८३, मयूख २१ की पुष्पिका)। महाभारत के पात्रों को भी इसी प्रकार चहुवाण राजाओं का समकालीन दिखा कर संक्षेप में महाभारत कथा कह दी गई है।

५—चहुवाण वंश खीची उपशाखा में उत्पन्न राजा रामचन्द्र ने कौशलेश शूद्रक की सुता से विवाह किया कि बस कवि को शूद्रक के राज्य-काल में उत्पन्न चारुदत्त और बसन्त सेना के प्रणय कथा का आकलन करने का प्रसंग मिल गया। (वंश० ११९३।२१)

६—इस प्रकार के प्रसंग-विधान वंशभास्कर में पग-पग पर मिलेंगे। दो एक उदाहरण और देखिये—

चौहान सारंगदेव ने जैन मत धारण किया तो जैन-धर्म के मुख्य उपादान लिख दिये गये (वंश० १२७८।३१-५५) वीसलदेव विलासी है, बस काम-शास्त्र की दुकान खुल गई

(वंश० १२६०।१०-१२)। रामसिंह की स्त्री गर्भवती है—गर्भवती स्त्रियों के लक्षण तैयार हैं। रामसिंह के विवाह में गणिका नृत्य-गान-रत है तो फिर नृत्य-ज्ञान की शास्त्रीय विवेचना से क्यों चूका जाय। प्रसंग विधान में यही क्रम आद्योपान्त दृष्टिगोचर होता है।

कहीं कहीं एक बात का वर्णन करते-करते 'सुनिये व वत्त मिच्छ समाज'— कहकर भी दूसरे प्रसंग पर आ जाता है और पिछला सिलसिला जोड़ कर आगे बढ़ जाता है। इसके लिए उसने कहा भी है कि बड़े प्रबन्धों में बहुत से वृत्तों को लांघ कर भी अन्वय जोड़ा जाता है। यथा—

> कहुं बहुवृत्तन लघि कै, जुरत जु अन्वय जाय।
> बड़े प्रबन्धन में सु विधि, समझहु बुध समुदाय॥ —वंश० ११२।५

वंशभास्कर में इस प्रकार के प्रसंगों का समावेश क्या अनर्गल कहलायेगा? वंशभास्कर की रचना कवि ने जिस नाना-विषय समाहारक दृष्टि से की है, इस विचार से ये सारे प्रसंग ग्रंथ के अंश ही कहे जायेंगे। फिर भी इसमें किसी को अनर्गलता लगे तो हम यह कहकर उसका परितोष कर सकते हैं कि अनर्गल विस्तारविहीन प्रबन्ध का उदाहरण मिलना कठिन ही है। यथा—

> बह्वपि स्वेच्छया काव्यं प्रकीर्णमभिधीयते।
> अनुज्झितार्थ-सम्बन्धः प्रबन्धोदुदाहरः॥ —माघ २।७३

अध्याय ५

वस्तु - वर्णन

मूलतः 'वंशप्रकाशक' अर्थात् इतिहास-प्रसूत रचना होने के कारण 'वंशभास्कर' वर्णन एवं विवरणों से आपूर एक विराट कान्तार देश बन गया है जिसमें नाना-वंशवल्लरियां तथा विविध इतिवृत्त-कुंज अपने समस्त फलभार एवं वैभव के साथ आच्छादित हैं। इसकी सुविस्तृत वीथिकाओं में कहीं नाना-भंगी सैन्य-सज्जा, विविध युद्ध-वर्णन और विवाहोत्सव के चित्रण हैं तो कहीं वंशों के उत्थान-पतन, राज्यों के निर्माण-विनाश एवं राजकीय कुचक्रों, दुरभिसंधियों के असंख्य आलेख अटे पड़े हैं। प्रायः इतिहास की कठोर और तथ्यपरक भूमि में विचरण करने के कारण कवि-कल्पना को युद्ध, सेना, उत्सव, विवाह आदि के वर्णनों में ही अपने पंख पसारने का अवसर मिला है। कवि ने इन अवसरों का इस विशेषता के साथ उपयोग किया है कि आधिकारिक विषय इतिहास होते हुए भी वंशभास्कर में काव्यत्व का समाहार हो गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि सूर्यमल्ल ने इतिहास की भूमि में काव्यत्व का संचार करके रासो निर्माताओं की भांति तथ्य और कल्पना का गड़बड़झाला नहीं खड़ा किया है, अपितु इतिहास की सीमा से अलग—तथ्य की विशुद्धता से परे - मात्र वर्णनों और विवरणों में अपना कवित्व प्रदर्शित किया है। कहां कोरा इतिहास है और कहां खरा काव्य यह वंशभास्कर के पृष्ठों पर आसानी से देखा जा सकता है। वर्णनों में भी वहीं कवित्व उभरा है जहाँ इतिहास दूषित नहीं होता। वर्णन एवं विवरणों की सरस-सलिला और विशिष्ट पात्रों के भावालोक की चित्रावली के अतिरिक्त वंशभास्कर में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसमें सहृदय रम सके।

जैसे इस महाग्रंथ का विस्तार-क्षेत्र असीमित है वैसे ही वस्तु-वर्णन भी अत्यन्त व्यापक है। लोक और राज-समाज से सम्बन्धित अनेक वस्तुओं के वर्णन-प्रसंगों का इसमें समाहार हुआ है। यही कारण है कि कवि को स्थान-स्थान पर अपनी विषय-बहुलता के अवसर मिल गये हैं और उसने कुशलतापूर्वक प्रासंगिक विषय के अपने ज्ञान को वहां समाविष्ट कर दिया है। यों काव्य में लोक-जीवन का संश्लेषण होने के दृष्टिकोण से वस्तु-वर्णन की व्यापकता का समादर होना चाहिए तथापि सूचनात्मक वर्णन-विवरण काव्य के रसास्वादन में बाधक ही कहे जावेंगे। आलोच्य ग्रंथ का कवि भी इस अवगुण से स्वयं को नहीं बचा पाया है।

वंशभास्कर में समालोचित विशिष्ट एवं काव्यात्मक वर्णनों की तालिका इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

१ सेना-वर्णन   २ वीर-वर्णन   ३ युद्ध-वर्णन   ४ प्रकृति-वर्णन

५ विवाह-वर्णन   ६ रूप-वर्णन   ७ उत्सव-वर्णन   ८ नगर-वर्णन

इन वर्णनों के अतिरिक्त देश, काल, स्थान, आश्रम, प्रजा-हेतु, जाति-स्वभाव, बलादि

पशु-पक्षी, स्थापत्य आदि के अनेक वर्णन इसमें आये हैं जिनकी अलग से विस्तृत सूची बन सकती है। ये सपाट वर्णन हैं, इनमें काव्यत्व नहीं है।

१—सेना - वर्णन

वंशभास्कर में सेना के वर्णन अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक हैं। इन प्रसगों में ही सूर्यमल्ल ने कवित्व के गुल खिलाये हैं। तत्कालीन सैन्य-सज्जा, अभियान-रीति, युद्ध-विधानादि संपूरित एवं वीरभाव-संभूत— शौर्य-संस्पृष्ट ये सुविस्तृत, किन्तु स्वाभाविक वर्णन हमें रजवट के उस युग में लेजाकर खड़ा कर देते हैं जब कि मरण एक पर्व था और युद्ध एक सामान्य दिनचर्या। शैलीगत नवीनता एवं विविधता ने इन वर्णनों को पुनरावृत्ति दोष से बचाये रखा है। युद्ध के समस्त प्रसंग ऐतिहासिक हैं—कवि ने तथ्य के चौखटे में सेना-वर्णन तथा युद्ध-वर्णन के रंग भरकर इतिहास को काव्य से अनुरंजित कर दिया है—इस कौशल के साथ कि इतिहास इतिहास रहे और काव्य काव्य।

सेना-वर्णन दो प्रकार के हैं—सामान्य तथा विशिष्ट।

अ — सामान्य सेना-वर्णन

सामान्य सैन्य-वर्णन संक्षिप्त तथा आलंकारिक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

> चले इनकों सुनि कासिय राय, सज्यो उत पौंड्रक मित्र सहाय।
> भये मद घुम्मत सज्ज मतंग, धरारन लेत विनीत तुरंग॥ २१
>
> रथी रथ जोरन सादि समूह, जुरे भज भिट्टनि सादिन जूह।
> घनी भवि पक्खर पंचन घोर, भरे पलनार भरे चहुँ ओर॥ २२
>
> चमा सिर मानि करे सहि माल हरा करि लश्कन चक्क समास।
> दमंकिय ढोल नगारन नद्द, धमंकिय आयुध ओज बिहद्द॥ २३
>
> धमंकिय भुम्मि सबै हय धार, टमंकिय चच्छरि घुग्घर मार।
> चमट्टिय पट्टिय पाडुम ओन, उलट्टिय सिंधु प्रलै अनु ओन॥ २४
>
> करंकिय कटक बधन सत्थ, खरंकिय खप्पर जुग्गिनि हत्थ।
> छरंकिय भज्झपटा अमधून, फरंकिय ओरन नैन अनून॥ २५
>
> थरंकिय पक्खर ताल पखर, फरंकिय झंडन पै बहुरक्ख।
> भरंकिय कातर प्रानन चाहि, मरंकिय रिक्खन देव उमाहि॥ २६
>
> भुरंकिय कच्छप ज्यों हरि हाल, बरंकिय दंतुलि कोल बिहाल।
> डरंकिय दिग्गज जातुन धकि, करंकिय अक्खडाह उचक्कि॥ २७
>
> चढ्यो रथ चक्किय चक्क विरोहि, चढ्यो नभ एहु दिवाकर रोहि।
> करालुहिराज स पौंड्रक बीर, इमे इम सज्जि चमू हमीर॥ मयू० ६१६। २८

यहाँ सैन्य-सज्जा के उपकरणों को वर्णानुरंजित कर चित्रित किया गया

है। दिग्गजों के प्रकंप और शेष, वराह आदि के श्रमभारजन्य अनुभावों की छाया-प्रकाश-योजना से चित्र और सजीव तथा गत्यात्मक बन गया है। कवि ने युद्ध-सम्बन्धी प्रत्येक प्रसंग को बड़े चाव के साथ उठाया है और सेना-वर्णन के साथ जमकर युद्ध-वर्णन किये हैं। शुष्क इति-वृत्तों के बीच वस्तुतः यही ऐसे स्थल हैं जहाँ सूर्यमल्ल के कवि को रमने का अवसर मिला है।

सामान्य सैन्य वर्णन का निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है। यथा—

> उज्ज साह इरान को दल मैं अयुष्कर उप्परयो इम।
> संग सोदर गोड मवक कटायकं अप सोंन दं जिम॥
> मत्त पीलन पिट्ठिके बहुरक्क मेचक रंग सुल्लिय।
> सोह संकुलि अंधकार अपार अविरय अवक हुल्लिय॥ १
>
> निक्खरे हय सं तरारन भक्कके हिय लोभ आनत।
> जे बिनीत तुखार ताजिक अवंके अकिबो न आनत॥
> बायरी थट मिच्छ म्हैं कमनैतके हथियार हंकिय।
> पंच जोजन भुम्मिय फोजन फेरके घन घेर ढंकिय॥ २
>
> चिल्ल गिद्ध सिचान संगहि जुग्गिनीन जमाति सग्गिय।
> दीपमाल समान हैं सुरताल आवन ज्वाल जग्गिय॥
> म्हैं धरातल धुंधि लोकन रुंधिकैं धकधुंधि मंडिय।
> आयसौं अहकाय चंडिय त्यों महानट आय तंडिय॥ ३
>
> संधि सिंधु सनाम यों सरिता अबूफर साह आयउ।
> और औरन लुट्टि सोर सजोर सोर महो मचायउ॥
> गोग हू स्मित दुम्ब सो सुनि मिच्छ कौं सुन मांन मक्खिय।
> छोहि मुच्छन उब्भरे कथ रारि रीति रहैं न छक्खिय॥ वंश० ७२१। ४

रूपक के माध्यम से किये गये सैन्य वर्णन भी अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़े हैं। सेन का वर्षा-रूपक देखिए—

> पाउस घन घनपन प्रतिम पुहवी दलत प्रपात।
> कठि लहरू कि असार कौं अनता जिमतैं जात॥ ३
>
> इंद्रायुध केतन उदित चपला असिवर चंड।
> गति खद्योत फुल्लिग न बक बारन द्विज दंड॥ ४
>
> गज्जन बज्जन भेरिगन फुज्जहु तोपन फेर।
> चातक घंटा चीरिका सिंजित दिखवत सैर॥ वंश० ३११८। ५

और भी कई सैन्य रूपक आये हैं, जिनमें से मुख्य हैं—

(क) कादिक-रूपक (वंश० ४१२। २२-२८)

(ख) समुद्र-रूपक (वंश० २९७५ । ७)

(ग) विवाह-रूपक (वंश० २६७६ । ८-९)

(घ) समुद्र-मंथन-रूपक (वंश० ३३५४ । ४२)

(ङ) वसन्त-रूपक (वंश० १८८९ । ७३)

आ—विशिष्ट सेना-वर्णन

सेना के जिन विशिष्ट अंगों के वर्णन में कवि की प्रतिभा निखरी है उनका आकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) अश्व सेना—

अश्व-सेना के वर्णन में सूर्यमल्ल खूब रमा है। उसने अनेक स्थानों पर उनकी शोभा-सज्जा, गति-शक्ति, आदि का मनोयोग के साथ वर्णन किया है। देखिए—

"सवारों के हाथों में तुले हुए घोड़े युद्ध के लिए दुबन्धों से खुले। उनकी विशाल अयाल पर झूलती हुई जाली सर्पों के समान है; उनके कंधे झुके हुए हैं। वे चचल ऐसे हैं कि मछलो की गति से उलटते पलटते हैं—मानों पृथ्वी पर उनके पैर जलते हों। त्वरित वेग-वह मे जब कभी वे हाथियों के झुण्ड में चले जाते हैं तब ऐसे लगते हैं मानों श्याम घटा में बिज्जु सुशोभित हो। उद्दाम गति से संचालित ये अश्व अपने सवारों को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। कितने ही सवार भू-लुंठित हो जाते हैं और कितने ही अनाड़ी नट के समान उनकी पीठ पर लटके रह जाते हैं। विजय-पथ-बाधा-बेधक ये बलवन्त अश्व निश्चित ही वीरों को मनोवांछित फल—युद्धरति—देने में समर्थ हैं। कई घोड़े तो नखराली पातुरी की भांति वक्र गति से नृत्य करते हैं। रान का दबाव पड़ते ही ये लंबी मलप लेकर सैन्य-समूह को पार कर जाते हैं और कई बरछियाँ मार करें उतनी भूमि को प्रकंपित कर देते हैं। पारस, कच्छ, वाल्हीक, वनायु आदि देशों के ये वेग्र और अश्वमेध-जेता घोड़े शेष-फन पर भार-स्वरूप हैं। गोलाकार फिरते हुए अश्व यों थिरकते हैं मानो वेश्या हाव-भाव सयुत हल्लीसक कर रही हो। कितने ही मार्ग को फांदते हुए यों बढ़ते हैं मानो गज-ग्राहों के पंख फैल रहे हों। अपने वेग में उड़ते हुए घोड़े एक दूसरे को इस प्रकार लांघ जाते हैं जैसे एक नटिनी दूसरी नटिनी को लांघ जाय। द्रुतगति से दौड़ते हुए वे लकीर-से दीख पड़ते हैं। वे इतने तेज चलते हैं जैसे वैयाकरण की विजय पर तार्किक की जीभ चलती हो। अनेक घोड़े आकाश मे उछलते हैं मानो वहाँ अपने प्रतिद्वन्द्वी को खोजते हों। कुलटा नायिकाओं के कटाक्ष की भाँति पलटते हुए वे नई नई गतियों का प्रदर्शन करते हैं। दौड़ते हुए वे ऐसे लगते हैं मानों धरती को अपनी बाथ मे भरते और छोड़ते हों। वे नालों से पीछे की ओर चिनगारियाँ उड़ाते चलते हैं और अपनी छाया देखकर झिझकते हैं। उनके कान केवड़े की भांति हैं, गर्दन इतनी लचीली है कि मानो उसमें हड्डी ही नहीं है। छलांग लगाते हुए वे हिंडोले की लड़ियों की

भांति लगते हैं। अष्टमंगल, पंचभद्र, चक्रवाक, मल्लिकाक्ष आदि अनेक प्रकार के घोड़े अपनी युवा अवस्था के अनुरूप ही वेग में रत हैं। नाना प्रकार की दौड़ में पटु, अपूर्व वेग तथा अमोघ शक्ति में भरे हुए वे घोड़े शत्रु के लिए जेठ मास की ज्वाला बनकर चमते हैं।" यथा—

बाजि बैक चले मुले रवि राजि बाजि मुले दु बंधन।
सूब सोहत श्यामश्राम विताम याल बिनम्य संधन॥
मीनसौं पलटैं पटैं रु भटैं मनौं पय भुम्मि दरम्महिं।
हरिय इंदन जात बिज्जु चमात ज्यौं सहि मेघ मज्महिं॥ १२

वेगमें पटके चिते लटके फिरैं मटके बटागति।
दृष्ट जे झटके रु उच्छटके करैं बटके कटागति॥
मेत के पखरान चाल मराल ज्यौं नखराल चातुरि।
जात के चमरास सुमन हासवै बलिहार ह्वै जुरि॥ १३

झूंड चंचल रान के प्रतिमान खंजन लघि भंजत।
के बरच्छिन बानजान उड़ान के क्रम भुम्मि कंपत॥
पारसीक रु कच्छ वाल्हिक के बनायुज जात अश्वर।
आइके प्रतिभार वक्र जिताइ जे हयमेघ अध्वर॥ १४

वातचक्र बनाय के करि भावजाव धरबिक रच्चहिं।
नर्तकी पलटाव ज्यौं करि हाव भाव फरक्कि नच्चहिं॥
के मलंगत राह पच्छन राह लैं गजगाह फैलहिं।
जानि लंघन चाह छोरत दाहसौं रविवाह गैलहिं॥ १५

उप्फनैं जवमें घनैं उदधिजात वात बनैं पटीपर।
इक्क लंघत इक्ककौं जिम हानि जानि नटी नटी पर।
इक्क जीह कहौं कितो द्रुत दीह दौरत लीह लगात।
जानि सद्दिय जोत वानिक बानी तक्किय चोह खगात॥ १६

उच्छटैं नभमें अनेक भटैं मनौं प्रतिमल्ल इक्सन।
पिट्ठि पौन प्रचार ज्यौं अनुचार पंचहि धार सिक्खन॥
के करैं पलटा चलावत अक्खि ज्यौं कुलटा निरच्छिय।
चाल चाल अनेक धात नई नई गति लेत अच्छिय॥ १७

भुम्मि बरधन घल्लि डारत पिट्ठि भारत अग्गि नासन।
होत जे खुरघात ते कसकात बालुक कैं कपालन॥
पिक्खि जे निज छाहिंकौं झझकैं पलट्टत क्यौं केवक।
अस्थि ह्वै न निगालमें गल यों नमैं सुखमा उपेवक॥ १८

के फुरैं बहुफाल घोरन की हिंडोरन की लरैं जिम।
खग मोरन की छटा मग बिब दौरन की करैं किम॥

घरट्टमगल पंचभद्र रु चक्रवाक अनेक उद्धत।
मल्लिकाक्ष छये नये वयमें बहैं रयमें रहैं रत ॥ १९

... ...

केक सादिन हिठु सत्रुन जिठुके दव ज्यौं बनैं जिम ।

—वंश० १४४७।१४५०। १२-२२

अश्व-वर्णन का एक और सुन्दर प्रसंग विवेचनीय है। यहाँ कवि की काव्य-प्रतिभा अश्वों के सौन्दर्य-वर्णन में उसी प्रकार निखरी दिखाई पड़ती है जैसे रीतिकालीन कवियों की प्रतिभा नायिका वर्णन में खिलती है। भिन्न-भिन्न जाति के घोड़े (वंश० २६५०।११) सेना पर प्रसरण करते हुए यों चलते हैं जैसे पानी पर किलकिला पक्षी चले। धनुष के लचीलेपन को लज्जित करने वाली उनकी गर्दन है, चन्द्रमा रूपी खुरों के साथ मानो खुरताल रूपी राहु विगत ज्वर होकर विहार कर रहा है। उनके गोल तथा सचिक्कण पुट्ठे कोमल और सुन्दर चाक के समान हैं, छाती अपने फैलाव में बाजोट को भी मात करने वाली है, कान अपने छोटेपन में केतकी की कली को भी लज्जित करने वाले हैं। नाक के नथुने शहनाई के मुख की भाँति मोड़दार हैं। धनुष के गोशों की भाँति कंधे झुके हुए हैं। उन पर अयाल का समूह तीर के समान तथा जेरबंध प्रत्यंचा के समान है। गोधि सर्प के मुद्गर की भाँति नमा हुआ उनका ललाट है। संभवतः पैर, उभरी हुई अंग-संधियाँ और चँवर जैसी झुलती हुई उनकी पूँछ है। मछली के समान उलट-पलट करने वाले, मृग की भाँति मलप लेने वाले और वेग में नट तथा कुलटा के अपांगों को भी लज्जित करने वाले हैं। इस प्रकार के अश्व वर्णनों में कवि का मन खूब रमा है। यथा—

ओघी बाल्हिक पारसीक कांबोज प्रयाकर।
पुरासान ताजिक तुखार भाडेज खटामर॥
जवन वनायुज खेतजात धमकात धराधर।
कमि जल उप्पर किलकिला कि प्रसरैं दल उप्पर॥ ११

चक्र हयप्पट्ट झकि बहुंत कोदंड हठीकर।
पच्छि छुवत उठात पायदग्नि भू बैसंदर॥
ससि खुर तम खुरताल संग बिहरैं जनु विज्वर।
क्रम मलकीलन नलकिनीन धनपन मृग धत्वर॥ १२

पुट्ठे जुग पिंडक अगोल मृदु चक्र मनोहर।
उर आयत विप्फर विडबि धारन दब्बें घर॥
करन जुगल लघुतन कलीन केतक निदाकर।
सहनाइन चहून मुरि प्रोथ मनोहर॥ १३

बरच न माइ ममाइ बंक कसते धनु कंधर।
धालन जूरा बिसिख ग्रोप प्रतिबध थ्यका पर॥

अवनी सालिग्राम जानि भंखी छद अंतर।
गोपि सु नत जिम सुनत गोधि पन्नग दल पद्धर ॥ १४
थान उठे बपु चरन थंभ चल बालाधि चामर।
लेत कुसा छेकत मलंगि ढ्वँ ढ्वँ बरछी धर॥
पलट उलट सफरी प्रमान मृगदान मनोहर।
बिस्मय जब नटके बटा न कुलटा दृग के कर ॥ १५
गहि बरथन पीछें गिरात अवनी जवनो धर।
मुकुर बिंब दिन चलन मान परिछो उड़िबो पर॥
जिन्ह विक्खत आकार जात न गिनै ज्ञाता नर।
जे भ्रापक द्रुम सुमन जाल बहि फाल बरब्बर॥ —वंश० २६५२। १६

अश्व-वर्णन प्रायः रूढ़ उपमाओं से संयुक्त होकर रीतिबद्ध हो गये हैं। और भी कई स्थलों पर अश्व-वर्णन आये हैं। यथा—वंश० २६८०। ४१, २६५१। ३५, ३२४२। ६०, ३२६३। २६, ३३४६। २४, ३६७१। २२।

(ख) हस्ति सेना—

युद्ध वर्णनों में अश्व-वर्णन की भांति हस्ति-वर्णन के प्रसंग भी कलापूर्ण बना कर उभारे गये हैं। उनके रूप, सज्जा, शृंगार, शक्ति, गति आभरण आदि के वर्णन अश्व की भांति विस्तृत तथा शास्त्रानुकूल हैं।

अरिदपाल के अभियान-प्रसंग में अश्व-वर्णन से पूर्व हस्ति-वर्णन हुआ है। विविध रंगों से रंगे हुए हाथियों के मुंहों पर लहराती हुई ध्वजाएं होली की ज्वाला की भांति शोभा दे रही हैं। हाथियों पर कसे सिंहमुखी हौदे मेघाडम्बर तथा आतपत्र के समान लग रहे हैं। उन हाथियों का क्रोध देखकर सुमेरु का विवेक भी डिग जाता है। हल्ला होते समय जब वे पैर का टल्ला देते हैं तब धरती डोल जाती है। वे धरती पर अपनी छाया को देखते हुए चारों ओर घात करते चलते हैं। महावतों के द्वारा प्रेरित होने पर वे सर्प के फण की तरह अपनी सुण्ड को ऊपर उठा कर क्रीड़ा करते हैं। दोनों दांतों में सोने के बंगड़ ऐसे चमकते हैं मानो पूर्णिमा की रात को चन्द्र वक्रगति वाले राहु द्वारा ग्रस लिया गया हो। भद्र, मंद, मृग और मिश्र जाति के मदचुए, बाल पोत, विक्क आदि हाथी अपनी चंचलता के साथ धरती को प्रकंपित करते हैं। यूथपति, अविप्र, मैगल, व्याल, कल्पित आदि युवा हाथी झूम-झूम कर मद वर्षा करते हैं। उनकी सूंड से छोड़ी हुई फुहारें तीखी होकर आगे पीछे चलती हैं। ये हाथी मेघ-घटा को लज्जित करते हुए चमकते हैं। कितने ही हाथी अपनी सुण्डों के अग्रभाग को उठा कर यों दौड़ते हैं मानो तक्षक नाग फण उठाये दौड़ रहे हों। क्रोध में उछल कर वे घोड़ों की पट्टी को पीछे छोड़ कर ज्वाला की भांति धधकते हैं। कितने ही झुंझला कर अपने महावतों को नीचे गिरा देते हैं जैसे पवन के जोर से सुमेरु की कोई चट्टान उड़ कर नीचे गिरे। उनके इंदिका, प्रतिमान, गंड, निर्यान, चचक, अवग्रह वातद्रुम चूलिक बिंदु आदि स्थानों पर भिन्न-भिन्न रंगकारी है। अपने शरीर जैसा ही अपरा-हस्ति का रंग देखकर (उसे

अपना प्रतिपक्षी समझ कर) वे रोष में भर कर दौड़ते हैं जिसे देख प्रतिपक्षी हाथियों को पसीना छूटने लगता है। फलस्वरूप उनकी पद्म रचना की रगकारी मिट जाती है—असत्त हो जाते हैं। कितने ही हाथी उमंग में भरे हुए अपनी सांकल को गेंद की भांति उछालते हैं तो कितने ही अपने वेगवाह में पैरों की वेड़ियों को वटते बिखेरते चलते हैं। यौवन मद में भरे हुए *कितने ही हाथी अंकुश की मार को भी नहीं मानते और गर्जना करते हुए केके के फल के* लोभ अथवा क्षोभ मे आगे बढ़ते हैं। यथा—

अखिपाल कुमार सज्जि, अनीक चालुक पैं चल्यो इम।
जभपैं सुर संग संग, प्रयान वासव को बनैं जिम ।।
कंक चित्र विचित्र मत्त करीन भंडन मूढ केनन।
लार जे हुव भार होरिनकोंहू ओप जिलीक लंजुन ।। ४

कंक हरियन सिंह पीठ रु मेघ छत्रतपत्र कंकन।
बिप्फुरे जिनकों लखें विबुधादिकंहु टिके विवेकन ।।
हल्ल में पय टल्ल दैत इमल्ल झुल्लत भ्रु हिंडोरन।
अप्पनी छितिछाँह पात चलात घात रु ओर ओरन ।। ५

पालकाप्य प्रभाव पाटव पुंज ज्यों इम पाल पिल्लत।
खूब त्यों अहिम्मीग जोग उठाइ पौगर खेल खिल्लत ।।
जात्य हाटक जात दीप्ति दिखात दोहु बिसान बंगर।
पूर्णिमा निस चंद्र कों कि बिकुप्पि वेढ़िय बक्र संगर ।। वरा० १४४५। ६

भद्र मद मृगाख्य मिश्र अनेक उद्धत भू भ्रमावत।
भेद मवकुन बाल पोत रु बिक्कके जिन्ह चिक्क भावत ।।
जूह नाह प्रमिश्र मंगल ब्याल के लहि मज्झ जुम्बन।
घुम्मि कल्पित कंक टुट्टत दान के बमयून के घन ।। १४४६। ७

अंग पिट्ठि अनेक औ दुहुं पासके इम लग्गि आरन।
वारिवाह घटा दबात घटाफबात चले ति वारन ।।
तुक्कि पुस्करके अपैं भपकार ज्यों फन फार तच्छक।
धार बाजिन पिट्ठि पारि प्रचारि हुंकत कोपकी धक ।। १४४६। ८

अप्प प्रेरक केक झंझटि झारि आसनतें उडावत।
यौन कै बस मेड सों छुटि भृंग ज्यों टिकिबे न पावत ।।
ईषिका प्रतिमान गंड निजान पंचक त्यों अवग्रह।
बात कुंभ रु चूलिका बिंदु आदि चिन्हित देत आग्रह ।।
गात्र त्यों अपरान द्रवत धंकि
पद्मजाल प्र
उल्लसैं
बेग के

सोभ मद्र भाष्ट मनत के म जुम्बन और संडन।
मोषिका फन सोमके मति छोम के हग मान मंडन ॥ वंश० १४४७ । ११

डिंगल भाषा में गुंफित हस्ति-सेना वर्णन विवेचनीय है। श्यामले बगाल और सिंदूरी रंगों की धूप-छांही शोभा से संयुक्त हाथी जब दौड़ते हैं तो उनके पैर धरती में धंस जाते हैं। अपनी सुण्ड के अग्रभाग को यों उठाये दौड़ते हैं मानो गिरनारी राग पर काले नाग फण उठाये हों। ये ताड़-पत्र की भांति अपने विशाल कानों को उछालते हैं मानो काल-रूप पर्वत पंख फैलाए दौड़ रहे हों। ये जिस दुर्ग से भिड़ते हैं उसे प्रकम्पित और जर्जरित कर देते हैं। सुण्ड रूपी तलवार धारण किये हुए एक एक हाथी हजारों वीरों का विनाश कर देता है। उनके पदों से मद झरने की तरह बहता है और वे शत्रु समूह के प्राणों को उसी प्रकार भयातुर कर देते हैं जैसे सिंह अन्य जीवों को भयभीत कर देता है। भ्रमरों की पंक्तियां उन के साथ गुंजार करती चलती है। अवरोधक वीरों की रोक को तोड़ कर दौड़ते हुवे वे बहुत दूर तक निकल जाते हैं। पर्वतों को रज रज कर क्रोध में हंसते हुए वे अपनी सुण्ड से आकाश में वर्षा करते हैं। पैरों में पड़ी भारी सांकल को सूत के डोरे की तरह खींचते हुए वे उससे धरती पर ऐसी नालियां बना देते हैं जैसे खेत में सिंचाई के लिए नलके बनाये गये हों। शत्रु-व्यूह को भेदने में समर्थ संग्राम-वेदी स्वरूप वे हाथी विजय के मित्र हैं। वे युद्ध रूपी रंग भूमि के ऐसे ऊंचे भट्ट हैं जिनके सामने पर्वत भी लज्जित होते हैं। उनके दांतों में सोने के कंगड़ ऐसे लगते हैं जैसे पूर्णिमा मंगल और चन्द्र को लिए हुए हो। कंठ प्रदेश में कसा हुआ लाल रंग का रेशमी कलावा ऐसा लगता है मानो राहु ने चक्रवत होकर सूर्य को घेर रखा हो। कुंभस्थल पर शिरोभूषण ऐसे सुन्दर लगते हैं मानो नारी के उभरे वक्ष पर जड़ाऊ चोली कसी हो। सिरों के बीच कुंभस्थल ऐसा लगता है जैसे सूर्य और चन्द्र के बीच सुमेरु का उभार हो, उनकी रणकार ऐसी फैलती है जैसे झालरें बजती हों। पीठ पर डाली हुई जरीयुक्त झूलें ऐसी लगती हैं जैसे तामसी वृत्ति में राजसी वृत्ति मिल गई हो। उनकी पीठ पर फहराती लम्बी पताकाएं ऐसी लगती हैं जैसे पर्वतों पर लम्बे ताड़ लहरा रहे हों। पीठ पर बंधी हुई छतरी महल के शीर्षस्थ गवाक्ष की भांति मन को मोहित करती है। पीठ पर कसे हुए हौदों की चित्रकारी महलों की अटारियों की शोभा प्रस्तुत करती है। पीठ पर बजने वाले नगाड़े नौबत की याद दिलाते हैं। हस्तियों के इस थट्ट से मेघमाला लज्जित होती है। यथा—

> घट्टो नट्टियां बांह यूं राह चल्लो, हनाड़े घजां के गजां पंति हल्लो।
> लसै श्याल जगाल सिंदूर सुंडा, हला में धसै पाव रा पाव उंडा ॥ २६
> उठावैं करां पोगरां दें उछाळा, किनां लागणां राग पैनाग काळा।
> चले कर्णताळां उलाळां चलावैं, धरे कालमा अद्रि पंखाळ धावैं ॥ ३०
> हणे भद्र मंदा मृगां वंश ठाया, छटा फैन हालें किनां सैल छाया।
> ढहो सात जेता करैं दुर्ग ढोला, मही रैं मही साथ देता मचोळा ॥ ३१
> धरा रूप सबो करां धूप धारैं, भरां एक एको हजारां निवारैं।
> झरता घटां दान पब्बे झरी ज्यूं, करंता घटां प्राण मैंकेहरी ज्यूं ॥ ३२

रचै लार गुंजार रोलंब राजी, भगाणी मंडा रोष प्रोलंब भाजी।
भराना हुंसे डुंगरां रैण भांटैं, छटी जे करां सीकरां गैण छांटैं।। ३३
हणी धींसता सांकलां सूत डोरा, धरा यूं खणैं ज्यूं बणैं खेत धोरा।
भला जूहवैं बैरियां व्यूह भेदी, विजै मित्र जे चित्र संग्राम वेदी।। ३४
हसा रंग भू ढंग रा भट्ट ऊंचा, सिटाबैं जिकां हठे पखो समूचा।
रदैं हाटकी बंगड़ी दंत ईसा, सुहावैं लियां भार राका ससी सा।। ३५
कसे रेसमी लाल कठां कलावा, किनां बेढ़िया राहु दे भाण कावा।
सिरीकोस कुंभा मणी हेम साऊ, जथा नारि वक्षोज चोळी जड़ाऊ।। ३६
रामैं घंट भासां दुपासां भरोहै, ससी सूर रैं बीच ज्यूं मेरु सोहै।
रणके तिकां चोर रूड़ी रचाई, ठणके किनां झल्लरी ठौर ठाई।। ३७
नखी जाणि झूलां जरीतास नांहीं, मिली तामसी राजसी वृत्ति मांहीं।
प्रकासैं किता लंब दंडां पताका, भलैं डूंगरां सीस ज्यूं ताल भाका।। ३८
मिले पीठि छत्री मनों केक मोहै, सिरे जाणि प्रासाद रैं गोख सोहै।
किता पीठि होदा लसे चित्रकारी, उभाड़ैं जिके तुंग सोभा अटारी।। ३९
बड़े नाद भेरी किता पीठि बाजैं, लखंतां घटा स्याम री गाज लाजैं।
डिगाया डगां जे मगां डाकदारां, लगा चंड बेतंड यूं दंड लारां।।

—वंश० २६८० । ४०

रूढ़ उपमाओं से युक्त होने पर भी ये हस्ति-वर्णन कवि की अनूठी कल्पना शक्ति से कलात्मक बन गये हैं। ऐसे ही और भी कई वर्णन हैं, यथा—वंश० २६५०, २८। ३२४३, ६५। ३३६५, ४१। ३३४३, १६। ३३७१, ३३।

(ग) उष्ट्र-सेना—

उष्ट्र सेना का वर्णन वंशभास्कर की नवीनता है। अन्य काव्यों में सेना-वर्णन के अंग विशेष के रूप में ऊटों की सेना का विभावात्मक वर्णन देखने में नहीं आता। कवि ने प्रचल विशेष का ध्यान रखते हुए ही राजस्थानी सैन्य-योजना में उष्ट्र-सेना का वर्णन किया है। यथा—

लघु लूम संहित यों लसैं परि पट्ट रज्जुव पास।
अटक्यो समीर कि ताहि खेंचत अश्व पहुँचन आस।।
मृदु हृस्व पायतलीन भडत छोनि भप्पन छाप।
अति लोल बाजिन लज्ज मानत भाव जाव अमाप।। १०
उपविष्ट ढट्टर बाहु अंगन मध्य के अवकास।
मुस धावते कढ़ि जाइ मूलिक ओक खडुक भास।।
लगि पट्ट लूम दु पास लम्बित गुंफ के गजगाह।
प्रतिपास पक्षय के कि रंजित बारि क्यारि प्रवाह।। ११

मढ़ि तारपिट्ठि पलान दारव कृत्ति कंबल मेल।
कुकुदंग लै बिच जे कसे मखतूल संगन मेल॥
कृत कांति राजत नक्कईलन राजती कटि कान।
पगि बंध पट्ट विचित्र रस्सिन जे इचे प्रतिप्रान॥ १२

गन घंटिका बजि सार हार हमेल शृंखल ग्रीव।
सह भेक झिल्लिन ओर सोर कि घोर घोर घतीव॥
जिनपै सु बाजिन के चढ़ाकन के लुभे मन जाइ।
छम हाल कौतुक काल चाल अनेक चित्रन छाइ॥ १३

पृथु भाल वेग बिसाल उच्छ्रित भक्षिकूट प्रदेस।
बतरात गात दिपात बातन बात लेहु बिसेस॥
बलमें क्रमेलक यों चले कति जान छुट्टत बान।
बिलसंत बाहन दब्बि बाहन भुम्मि ब्योम बिमान॥ १४

कनि भारवाहक धार लाहक पारगाहक पंथ।
नहि सारवाहक भारनाहक जे सहैं गति ग्रंथ॥
मुख मध्य मल्लन फुल्ल गल्लन मानि बाह्य प्रतीक।
घटना स्वर्ग चतुर्थ को घन ठानि गज्जत ठीक॥ १५

धवली करैं अवली अटे धर युट्ठि फेनन बार।
घनले लगै मग उट्ठि अप्पहि सिट्ठि धारि पहार॥
जिनके दुपास कसे ससीतन भार हिट्ट जाइ।
मधु मंत तोलत मल्ल अद्रिन ज्यों तुला अधिकाइ॥ १६

—वंश० ४।७७-८० । १०-१६

जैसा कि कहा जा चुका है— सेना तथा युद्ध-वर्णनों में ही ग्रंथकार को अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखाने का अवसर मिला है। ऐतिहासिक तथ्यों तथा इतिवृत्त से भरपूर इस ग्रंथ में इन वर्णनों द्वारा रसात्मकता तथा काव्य-कलात्मकता का संचार हो गया है। यही कारण है कि वंशभास्कर को पूर्णतया शुष्क इति-वृत्त मात्र नहीं कहा जा सकता।

(१) वीर-वर्णन—

सेना-वर्णन के प्रसंगों में वीरों और भयानक भटों के प्रशंसात्मक चित्र भी कवि ने विभाव-पोषक बनाकर प्रस्तुत किये हैं। कतिपय उदाहरणों से कवि के वर्णन की बानगी देखी जा सकती है—

मित्र-वंश मर्यादापोषक शत्रु-दल-स्तम्भक विविध शस्त्रधर वीर चतुर्विध अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर चले। रक्तपटोत्तरधारी मृत्यु-रूपी दुलहन को चाहने वाले वे, यों युद्ध की विवाह के दूल्हे बने हैं। अनेक वीर ऐसे हैं जो मरणोपरान्त अप्सरा की इच्छा नहीं रखते। क्योंकि वे मानते हैं कि उनको पत्नी ही सहगमन करके वहाँ वहीं मिलेगी। उनमें से कोई चौहान है तो कोई वंश, पर वे सभी उत्तम कुल वाले और वंशोद्धारक हैं। वे मन के उदार

है। असत्य का भंजन करने वाले एवं सत्य की प्रतिष्ठा करने वाले हैं। स्वामी का नमक उन्हें कभी हजम नहीं होता। नमक अदा करने में वे शुद्ध-मना वीर उसी प्रकार सेना के आगे रहते हैं जैसे भ्रमर कुसुम कली के सम्मुख रहता है।

नमक उजालने के उत्साह में उफनते हुए ऐसे स्वामिभक्त वीर अपनी भुजाओं के बल का प्रसार करते हुए चले। यथा—

बैरी बाधक विविध बंस साधक भट सगर,
सज्ज सयन थद्व भेद सस्त्र पर भेद प्रथा पर।
इक पत्नीव्रत जे अभंग रन ब्याह बनें बर,
कति अच्छरि न चहैं कलत्र गिनि निज सहगरवर॥ १७

के हरिपद हरपद किते कि इच्छे कुल उदर,
भासे सत्य असत्य भजि मन के मकराकर।
सज्ज्यो कबहु न स्वामि लौंन जिनकै धरि जाठर,
सुमनकली नासीर सीर भर भोम अली भर॥ १८

चालुक तोमर चाहुवान प्रतिहार प्रथाधर,
के कूरम जद्दव कबध सीसोद पुरस्सर।
सेंगर दाधिम सकवाल परमार परंपर,
चावोरे दहिये चलाक गोहिल बडगुज्जर॥ १९

मोहिल बिदु र मंडुवान कुल गोर प्रभाकर,
लुल्लक जाव प्रभाव लौंन उफनाव प्रतिस्वर।
इत्यादिक बाहुज उदार बलबाहुज बिस्तर,
मरद किते बहु भेद मिच्छ बहु भेद उमँ पर॥ —वंश० २६५२। २०

वीरों के धर्म उनके वेशादि तथा आन मान का कवि ने अन्यत्र भी ज्वलत चित्र प्रस्तुत किया है। यथा—

... ... ।
सुरां ने उरां पाखरां नाद खुल्ले, तिकां बाहरी इंद्र रैं चाह तुल्ले॥ ५६
ससैं ओज पूरैं फौज लाडा, गऊ विप्र भीडू दया लाज गाडा।
बळी दीन बंधू धरैं बंसवाना, अकूपार गंभीर रोळैं अराना॥ ५७
दिरैं मेय राधेय सर्वस्व दानी, महाकष्ट भी मांगवै भूप मानी।
हुवां प्राण संसैं मघी झूठ हेरैं, कणी दीठ पैंला अणी पीठ फेरै॥ ५८
सदा एक राणी व्रती धर्म सेवी, खरा जुद्ध लिप्सू विजैं भाव खेवी।
हठो जेन मार्ग न मागां प्रहारैं, धरां लगरां सगरां पाव धारैं॥ ५९
अजोरां नरां लैण मांटा उभारा, सजोरां हुऐ देण बांटा सु धारा।
महा स्वामिधर्मी लियां हाथ माथा, गवैं देस देसां जिकां पाथ गाथा॥ ६०

उरां धारी बंदूक मोती उतारै, सरां मारि थाता हणां सैलु मारै।
बसी तोमरां दावके भाव बार्थ, समथ्यां गुणी श्याम वा नाम सार्थं॥ ६१

लगे लाह काढ़ क्रिया बाह लीधा, कटारी छुरी मोवड़ै छिद्र कीधा।
महावीर पाड़े पछाड़े मदंदा, गहै दंत रोके मदाळी गइंदा॥ ६२

सजे बोपरां टोप सोमा सिधाळी, झिकें मीढ़िया देस नागोर आळी।
सबाहुन ऊरुत्र जपात्र संगी, चहै बेत धीरहा रहै एक रंगी॥

—वंश० २१८३।६३

इन वर्णनों में वीरों के आदर्शों, मनोभावों, युद्धोत्साह, मरणातुरत्व, पर-दल-भंजन की उद्दण्ड आकांक्षा आदि की जिन रूपों में व्यंजना हुई है वह कवि के वर्णन-कौशल की परिचायक होने के साथ ही उसके व्यक्तित्व एवं विचार-सरणि की ज्ञापिका भी है। वीरों के और भी वर्णन द्रष्टव्य हैं। यथा—वंश० २१२४, ८। २१२६, ११-१२। ३१०७, ५। ३३५२, ३०। ३११८, १६-२१।

३—युद्ध-वर्णन—

सूर्यमल्ल मूलतः युद्ध का कवि है। वंशभास्कर में पग-पग पर युद्ध के स्थल आये हैं और हर स्थल पर कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा अपना जादू दिखा गई है। यों कहिये कि समस्त वंशभास्कर एक विराट युद्ध-क्षेत्र है जिसमें एक से एक बढ़ कर युद्ध की छटाएं अनुपम लाघव के साथ सुसज्जित हैं। कहीं मल्ल-युद्ध के कमाल हैं तो कहीं रथ और तोप-युद्ध के करतब, कहीं शस्त्र-युद्ध के चमत्कार हैं तो कहीं माया-युद्ध का जंजाल, कहीं व्यूह-रचना है तो कहीं कबन्धों की वीभत्स मार काट। कहने का तात्पर्य यह कि वंशभास्कर के पृष्ठों पर युद्ध की ऐसी घनी छाया उभरी हुई है कि सहृदय स्वयं को मोर्चे पर खड़ा अनुभव करता है।

युद्ध के इन वैविध्यपूर्ण एवं विस्तृत वर्णनों को इस प्रकार विभाग-बद्ध किया जा सकता है —

(अ) सामान्य युद्ध-वर्णन—

(आ) विशिष्ट युद्ध-वर्णन —
(क) मल्ल-युद्ध (ख) रथ-युद्ध (ग) तोप-युद्ध (घ) शस्त्र-युद्ध (ङ) माया-युद्ध

(इ) व्यूह-रचना-वर्णन

(ई) कबन्ध-युद्ध-वर्णन

(उ) युद्ध-रूपक

अ—सामान्य युद्ध-वर्णन—सामान्य युद्ध-वर्णनों में कवि ने समास शैली का आश्रय ग्रहण किया है। जिन वर्णनों को कवि विस्तार देना नहीं चाहता उन्हें सामान्य से वर्णन द्वारा चलता कर देता है।

पौराणिक युद्ध वृत्तांतों को अधिकतर सामान्य वर्णन-पद्धति पर प्रस्तुत किया गया है। यथा—प्रतिहार का दैत्यों के विरुद्ध युद्ध—इधर देव मुनियों के आदेशानुसार प्रतिहार दैत्यों पर अभियान करता है, उधर से दैत्य उस पर बाण-वर्षा करते हैं। एक ओर अग्नि-पुत्र प्रतिहार और दूसरी ओर बाण-पुत्र, युद्ध के लिए अड़े हुए हैं। बाणों पर बाण, त्रिशूलों पर त्रिशूल छूट रहे हैं। बरछी पर बरछी, भाले पर भाला, गदा पर गदा और तलवार पर तलवार बज रही है। मुक्तादिक अस्त्रों से वार हो रहे हैं। घावों से छक छक कर रक्त बह रहा है। सूर्य भी इस कौतुक को देखने के लिए थम गया है—

> बिसिखन पर प्रतिबिसिख त्रिसिख छुट्टत त्रिसिखन पर।
> सगिन उप्पर सगि कुंत पर कुंत भयंकर॥
> गदा गदा रुख चलत खग्ग बुल्लत झरि खग्गन।
> मुक्तादिक आयुधन मचत इम वार समग्गन॥
> छक छकत घाय सोनित छलत चलत राह रबिरथ थकिय।
> प्रतिहार राज इत उत प्रबल धूम्रध्वज जुज्झन धकिय॥ वंश० ३६०, ८

आगे दैत्य शत्रुओं की नाम गणना (वंश० ३६०। ६-१०) के उपरान्त कवि ने प्रतिहार के युद्ध-कौशल का वर्णन किया है (वंश० ३६१। १२)। प्रतिहार विभिन्न दैत्यों का विदारण करने में रत है। तभी धूम्रध्वज द्वारा उसकी छाती पर बरछी का घातक प्रहार होता है—'धूम्रध्वज इत अनलि सूल पटक्यौ नृप छत्तिय' (वंश० ३६१। १३)। फलतः वह अचेत हो जाता है एवं उसका रथ पीछे हट जाता है—'इहिं छत होत अचेत सूत रोके रथ सत्तिय' (वंश० ३६१। १३) और देवपक्ष की पराजय सूचित हो जाती है। इस प्रकार के सामान्य वर्णनों को संक्षेप में निपटा दिया गया है। किंतु जहां अभीष्ट है वहाँ वर्णन को विस्तार भी दिया गया है।

युद्ध के सामान्य वर्णन रस-पूर्ण एवं गत्यात्मक हैं। वीर-रस के सहारे ये वर्णन सजीव बन गये हैं जिनका विस्तृत विवेचन 'रस-प्रकरण' में किया गया है। इन युद्ध वर्णनों में कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, लोकोक्ति आदि अलंकारों की सहायता से प्रसाद गुण सम्पन्नता लाकर ओज के साथ प्रसाद का सुन्दर मेल प्रस्तुत किया है। युद्ध के सहकारी भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, चुड़ैल, भैरव, शिव, काली आदि अद्भुत और वीभत्स के उत्पादक बने हैं। कहीं कहीं तो उनकी लीलाओं, क्रीड़ाओं, कौतुक आदि के समावेश से ये युद्ध-वर्णन अप्रतिम बन गये हैं। युद्ध के विकट वातावरण शृंगार पूरित अप्सराओं के यट्ट कहीं कौतूहल वर्षन करते हैं तो कहीं रोपनाग कच्छप, वाराह आदि के अनुभाव विस्मय-जनित भय उत्पन्न करते हैं। नानाविध अस्त्र-शस्त्रों के संचालन के गत्यात्मक चित्रों से संयुक्त इन वर्णनों से पाठक क्षण भर के लिये भी वियुक्त नहीं होता। सामान्य युद्ध वर्णन के लिए चहुवाण और बाणासुर पुत्रों का युद्ध द्रष्टव्य है—

एक ओर है देवताओं एवं ऋषियों से प्रबोधित-प्रेरित-चहुवाण और दूसरी ओर है अपने दुर्वह भार से शेष फन को झुकाती हुई—उसकी जिह्वाओं को वर्तिकावत बाहर

निकालती हुई, वराह की दंतुल पर भीर मचाती हुई उसके सिर में पीड़ा का संचार करती हुई, अपने वेग में पर्वत समूह को साथ लेती हुई, झंझावात उत्पन्न करके समुद्र-जल को उछालती हुई, बाण-पुत्रों की विकराल वाहिनी। जिसके घर्षण से कच्छप की छिली हुई पीठ और रक्त-प्रदीप्त चेहरा ऐसे दिखाई पड़ा जैसे काली ने कलेजे के मालपुए पकाने को भट्टी जलाई हो। महाभोज के आनन्द की उत्सुकता में भरकर भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि प्रमत्त होकर जुड़ने लगे। मुंडमाल संचय के लोभ में भरकर शिव भी यों पहुंचे जैसे कोई रंक कौड़ी-संग्रह हेतु दौड़े। बावन वीर महाभोज पर ऐसे जैसे ब्राह्मण मिष्ट भोज पर चले। योगिनियों का समूह ऐसी उत्सुकता से चला जैसे बालकों का समूह इन्द्रजाल का कौतुक देखने चले। इस महाभोज के रचनाकारक के रूप मे नारद भी अपनी 'महती' वीणा लेकर खड़े हो गये कि कहीं भोज्य-सामग्री कम न पड़ जाय कि कहीं सामग्री के अभाव में वीभत्स भोज नीरस न हो जाय। यथा—

प्रभु देव विप्रन पुज्जिकें चहुवान संगरपें चढ़यो,
बिजयावलोकन को उछाह समस्त लोकन में बढ़्यो।
उततेंहु आत्मज बानके चहुवानके सिर चक्कमे,
अति निम्न ढाल बिसाल ज्यों फनजाल आलुकके नमे॥ ३

जिम तेलभाजन वर्तिका रसना हजार उमें कढ़ी,
बलि होत दंतुलि चोर पीर बराहके सिरमें बढ़ी।
मृत ज्यों लहैं पुनि प्रान अद्रिन संघ जंगम यों भये,
नभसिंधु नीर उछाल लैं पवमान लैं घन ज्यों गये॥ ४

कमठेस की उर त्यों भट्यारन की अधिश्रयनी भयो,
प्रज्ञराय ताव अलाव कालिक पूपिका जिम पक्कयो।
धरि कालिका मुख में भये अट दिक्करी करि चिक्करी,
पलचार के हुव सग गिद्धनि कंक फेरव फिक्करी॥ ५

ससमास्वरोधक सेत अद्भुत आनि कानफटा लगे,
तिम भूत रक्खस डाकिनी पिसाच पातरिकों पगे।
गलह अष्टदेविन को मनोरथ हारिपें बढ़तो रहै,
इम आय कौतुक काज नारदहू खरे महती गहैं॥ —वंश० ४११।६

युद्ध का यह अद्भुत समारम्भ वातावरण को गहन-गम्भीर बनाकर नितांत ही भयावह बना देता है।

सूर्य और चन्द्र ने भी मानो भावी अंधकार के भ्रम में अपने सामने धूम और धुंध का पर्दा तान लिया; ब्रह्माण्ड के दोनों खप्पर (आकाश-पाताल) कुमित्रों की भांति पराङ्मुख हो गये। कायर भागने लगे जैसे चोरों के माल को देखकर बनिया भागता है। मंडी में झुकने के बाद टूटे कंडी की तरह ध्वज-दण्डों से पताकाएं झुकीं। जैसे बोहरे को देखकर असामी का जी डोलता है वैसे ही चकवा-चकवियों के मन डोलने लगे। जैसे राज-द्वार पर

ब्राह्मणों की भीड़ लगे वैसे ही गगन में विमान छा गये। जैसे सती नारी का मुख अन्य लोगों को नहीं दीखता वैसे ही सूर्य दिखाई नहीं देता। पवन का चक्र बनकर चहुवान का रथ इधर से और युद्ध के मेहमान बाण के पुत्र उधर से बढ़े। भादों के मेघ की भांति वे चहुवान पर भुके और नट के पगों से पटरी भुके वैसे ही उनके बल-भार से धरती भुक गई। अंधेरा होते ही कुलटा नायिका निकलें वैसे ही तलवारें म्यानों से निकल पड़ीं। जैसे बंशी-कांटा मछलियों को बेधता है वैसे ही वीरों की डंकीली मूंछें उनके नयनों को बेधने लगीं। जैसे विपत्ति बुधजनों की परीक्षा करती है वैसे ही वीर जुझार बरछी को फेंक फेंककर उसकी परीक्षा करते हैं। जैसे प्रमदा नारियां हिंडोले पर भूलती हैं वैसे ही गोफण में पत्थर भूलते हैं। भटों की भुजाओं में युद्ध रचने के लिए बल यों बढ़ने लगा जैसे शासन में चोरों का गिरोह बढ़ता है। यथा—

` ... ... ।

सति सूरनैं तम भाविके भ्रम लेह की चिक-सी सजी ॥ ७

द्वि कुमित्र ज्यों ब्रह्मण्ड खप्पर मेलकों तजने लगे,
जिम तेय को लखि क्रेय ऊरुज मीर यों भजने लगे।
भरि दंड ज्यों खल कंदनें ध्वजदंड अंबर यों खुले,
अधमर्ण ज्यों लखि उत्तमर्णहिं चवक चक्रिन जी डुले ॥ ८

भूपबार ज्यों द्विजबार यों रव छई विमानन की तती,
नहिं सूर देह दिखाव ज्यों बिनु नाह आनन को सती।
चहुवान के रथचक्र ह्वो पवमान के गुटके भये,
घमसान के महिमान बानन बान के सुत बिंटये ॥ ९

उततैंहुं सम्मुह वे अदेवहु भद्र के घन ज्यों भुके,
पय देत ज्यों नट पट्टरी धरनी अधोबिल यों धुकें।
कुलटा निसामुख गेहतें जिम तेग ककन पैं कढ़ी,
बनसी कि मीननपैं क्रितेकन मुच्छ नैननपैं चढ़ी ॥ १०

कुनरेस सासन ज्यों सरासन जीविका करखैं कितैं,
बुधका बिपति समान प्रासन पिल्लिकैं परखैं कितैं।
तिय ज्यों हिंडोरन अद्रि ग्रौरन भिंदिपालनपैं चढ़े,
भुज जोर जोरन जग ग्रोर कुराज्य चोरन त्यों बढ़े ॥

—वंश० ४१७-४१८। ११

रूढ़ उपमाओं के साथ कवि की कल्पना शक्ति का चमत्कार यहां देखते ही बनता है। एक से एक बढ़कर सटीक उपमाएँ कवि के भाव-लोक में करबद्ध खड़ी हैं, वह मनचाहे ढंग से उन्हें वर्णन प्रसंग में आसानी से जड़ देता है। देखिए—दैत्य वीरों के हाथ में पाश है जैसे गारुड़ी के हाथों में सर्प हो; वे जोश से ओठ चाबते हैं जैसे भील घट्ट का छत्ता

निकालती हुई, वराह की दंतुल पर और मचाती हुई उनके सिर में पीड़ा का संचार करती हुई, अपने वेग में पर्वत समूह को साथ लेती हुई, झंझावात उत्पन्न करके समुद्र-जल को उछालती हुई, बाण-पुत्रों की विकराल वाहिनी। जिसके धमाके से कच्छप की छिली हुई पीठ और रक्त-प्रदीप्त चेहरा ऐसे दिखाई पड़ा जैसे काली ने कलेजे के मालपुए पकाने की भट्टी बनाई हो। महाभोज के आनन्द की उत्सुकता में भरकर भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि प्रमत्त होकर कूदने लगे। मुंडमाल संचय के लोभ में भरकर शिव भी वों पहुँचे जैसे कोई रत्न कोही-संग्रह हेतु दौड़े। बावन वीर महाभोज पर ऐसे जैसे ब्राह्मण मिष्ट भोज पर चले। योगिनियों का समूह ऐसी उत्सुकता से चला जैसे बालकों का समूह इन्द्रजाल का कौतुक देखने चले। इस महाभोज के रचनाकारक के रूप में नारद भी अपनी 'महती' वीणा लेकर खड़े हो गये कि कहीं भोज्य-सामग्री कम न पड़ जाय कि कहीं सामग्री के अभाव में बीभत्स भोज नीरस न हो जाय। यथा—

> प्रभु देव विप्रन पुज्जिकैं चहुवान संगरपैं चढ़्यो,
> विजयावलोकन को उछाहु समस्त लोकन में बढ़्यो।
> उततेंहु भारमल्ल बानके चहुवानके शिर धमके,
> अति निम्न ठाम विसाल ज्यों फनजाल फालुकके नमे॥ ३
>
> जिम तैलभाजन वर्तिका रसना हजार उमें कढ़ी,
> बलि होत दंतुलि पीर पीर बराहके शिरमें बढ़ी।
> भूत ज्यों सहैं पुनि प्रान अद्रिन संघ जंगम यों भये,
> नभसिंधु नीर उछाल सँ पवमान सँ घन ज्यों गये॥ ४
>
> कमठेस को उर त्यों भट्यारन की अधिश्रयनी भयो,
> अजराव साव पलाव कालिक पूपिका जिम पक्कयो।
> धरि कालिका मुख में भये बढ़ दिक्करी करि चिक्करी,
> पलचार के हुव संग गिद्धनि कंक फेरव फिक्करी॥ ५
>
> सलमाऽवरोधक खेत सट्टत श्वानि कानफटा लगैं,
> तिम भूत रक्खस डाकिनी पिशाच पातरिकौं पगैं।
> कलह पक्षदेविन को मनोरथ हारिपैं बढ़तो रहैं,
> इम आय कौतुक काज नारदहू खरे महती गहैं॥ —वंश० ४१६।६

युद्ध का यह अद्भुत समारम्भ वातावरण को गहन-गंभीर बनाकर नितांत ही भयावह बना देता है।

सूर्य और चंद्र ने भी मानो भावी अंधकार के भ्रम में अपने सामने धूल और धुंध का पर्दा तान लिया; ब्रह्माण्ड के दोनों खप्पर (आकाश-पाताल) कुमित्रों की भाँति पराङ्मुख हो गये। कायर भागने लगे जैसे चोरों के माल को देखकर बनिया भागता है। लंबी कैद भुगतने के बाद छूटे कैदी की तरह ध्वज-दण्डों से पताकाएँ खुलीं। जैसे बोहरे को देखकर ऋणी का जी डोलता है वैसे ही चकवा-चकवियों के मन डोलने लगे। जैसे राज-द्वार पर

ब्राह्मणों की भीड़ लगे वैसे ही गगन में विमान छा गये। जैसे सती नारी का मुख अन्य लोगों को नहीं दीखता वैसे ही सूर्य दिखाई नहीं देता। पवन का चक्र बनकर चहुवान का रथ इधर से और युद्ध के मेहमान बाण के पुत्र उधर से बढ़े। भादों के मेघ की भांति वे चहुवान पर झुके और नट के पगों से पटरी झुके वैसे ही उनके बल-भार से धरती झुक गई। अंधेरा होते ही कुलटा नायिका निकलें वैसे ही तलवारें म्यानों से निकल पड़ीं। जैसे बंशी-कांटा मछलियों को बेधता है वैसे ही वीरों की ढंकीली मूंछें उनके नयनों को बेधने लगीं। जैसे विपत्ति बुधजनों की परीक्षा करती है वैसे ही वीर जुझार बरछी को फेंक फेंककर उसकी परीक्षा करते हैं। जैसे प्रमदा नारियाँ हिंडोले पर झूलती हैं वैसे ही गोफण में पत्थर झूलते हैं। भटों की भुजाओं में युद्ध रचने के लिए बल यों बढ़ने लगा जैसे शासन में चोरों का गिरोह बढ़ता है। यथा—

... ... ।

ससि सूरनैं तम भाविके भ्रम खेह की निकसी सजी ॥ ७

द्विज कुमित्र ज्यों ब्रह्माण्ड खप्पर मेलकों तजने लगे,
जिम तेय को लखि क्षेम ऊरुज भीरु यों भजने लगे।
भरि दंड ज्यों खल फंदनैं ध्वजदंड अंबर यों खुले,
अधमर्ण ज्यों लखि उत्तमर्णहि चक्क चक्किन जी ढुले ॥ ८

नृपबार ज्यों द्विजबार यों रव छई विमानन की तती,
नहि सूर देइ दिखाव ज्यों बिनु नाह आनन को सती।
चहुवान के रथचक्र ह्वां पवमान के गुटके भये,
घमसान के महिमान बानन बान के सुत बिटये ॥ ९

उततैंहुं सम्मुह वे मदेवहु भद्द के घन ज्यों झुके,
पय देत ज्यों नट पट्टरी धरनी अधोबिल यों धुकें।
कुलटा निसामुख गेहतें जिम तेग ककन पैं कढ़ी,
बनसी कि मीननपैं कितेकन मुच्छ नैननपैं चढ़ी ॥ १०

कुनरेस सासन ज्यों सरासन जीविका करखें किते,
बुधको विपत्ति समान प्रासन पिल्लिकैं परखें किते।
तिय ज्यो हिंडोरन अद्रि औरन भिंदिपालनपैं चढ़े,
भुज जोर जोरन जग और कुराज्य चोरन त्यों बढ़े ॥

—वंश० ४१७-४१८। ११

रूढ़ उपमाओं के साथ कवि की कल्पना शक्ति का चमत्कार यहां देखते ही बनता है। एक से एक बढ़कर सटीक उपमाएँ कवि के भाव-लोक में करबद्ध खड़ी हैं, वह मनचाहे ढंग से उन्हें वर्णन प्रसंग में आसानी से जड़ देता है। देखिए—दैत्य वीरों के हाथ में पाश है जैसे गारुड़ी के हाथों में सर्प हो; वे जोश से ओठ चाबते हैं जैसे मील पट्टद का छत्ता

निकालती हुई, वराह की दंतुल पर शोर मचाती हुई उसके सिर में पीड़ा का संचार करती हुई, अपने वेग में पर्वत समूह को साथ लेती हुई, झंझावात उत्पन्न करके समुद्र-जल को उछालती हुई, बाण-पुत्रों की विकराल वाहिनी। जिसके घर्षण से कच्छप की छिली हुई पीठ और रक्त-प्रदीप्त चेहरा ऐसे दिखाई पड़ा जैसे काली ने कलेजे के मालपुए पकाने को भट्टी जलाई हो। महाभोज के आनन्द की उत्सुकता में भरकर भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षक आदि प्रमत्त होकर जुड़ने लगे। मुंडमाल संचय के लोभ में भरकर शिव भी ऐसे पहुंचे जैसे कोई रंक कौड़ी-संग्रह हेतु दौड़े। बावन वीर महाभोज पर ऐसे जैसे ब्राह्मण मिष्ट भोज पर चले। योगिनियों का समूह ऐसी उत्सुकता से चला जैसे बालकों का समूह इन्द्रजाल का कौतुक देखने चले। इस महाभोज के रचनाकारक के रूप में नारद भी अपनी 'महती' वीणा लेकर खड़े हो गये कि कहीं भोज्य-सामग्री कम न पड़ जाय कि कहीं सामग्री के अभाव में वीभत्स भोज नीरस न हो जाय। यथा—

प्रभु देव विप्रन पुज्जिकैं चहुवान संगरपैं चढ्यो,
बिजयावलोकन को उछाह समस्त लोकन मैं बढ्यो।
उततैंहु आत्मज बानके चहुवानके सिर चक्कमे,
अति निम्न ढाल बिसाल ज्यों फनजाल आलुकके नमे॥ ३

जिम तेलभाजन वर्तिका रसना हजार उमैं कढ़ी,
बलि होत दंतुलि घोर घोर बराहके सिरमें बढ़ी।
मृत ज्यों लहैं पुनि प्रान अद्रिन संघ जंगम यों भये,
नभसिंधु नीर उडान लैं पवमान लैं घन ज्यों गये॥ ४

कमठेस को उर त्यों भट्यारन की अधिश्रयनी भयो,
प्रज्ञराव ताव अलाव कालिक पूपिका जिम पक्कयो।
धरि कर्णिका मुख मैं भये अह दिक्करी करि चिक्करी,
पलचार के हुव संग गिद्धनि कंक फेरव फिक्करी॥ ५

समभाज्यरोधक लेत लट्टुत आनि कानफटा लगैं,
तिम भूत रक्खस डाकिनी पिसाच पातरिकौं पगैं।
इलह अशदेविन को मनोरथ हारिपैं बढ़तो रहैं,
इम भाय कौतुक काज नारदहू खरे महती गहैं॥ —वंश० ४१६

युद्ध का यह अद्भुत समारम्भ वातावरण को गहन-गंभीर बनाकर नितांत ही [illegible] बना देता है।

सूर्य और चंद्र ने भी मानो भावी अंधकार के भ्रम में अपने सामने धूल और धु[illegible] पर्दा तान लिया; ब्रह्माण्ड के दोनों खप्पर (आकाश-पाताल) कुमित्रों की भांति [illegible] हो गये। कायर भागने लगे जैसे चोरी के माल को देखकर बनिया भागता है। [illegible] भुगतने के बाद छूटे कैदी की तरह ध्वज-दण्डों से पताकाएं खुलीं। जैसे कोहरे को [illegible] प्राणी का जी डोलता है वैसे ही चकवा-चकवियों के मन डोलने लगे। जैसे राजन[illegible]

ब्राह्मणों की भीड़ लगे वैसे ही गगन में विमान छा गये। जैसे सती नारी का मुख अन्य लोगों को नहीं दीखता वैसे ही सूर्य दिखाई नहीं देता। पवन का चक्र बनकर चहुवान का रथ इधर से और युद्ध के मेहमान बाण के पुत्र उधर से बढ़े। भादों के मेघ की भांति वे चहुवान पर भुके और नट के पगों से पटरी भुके वैसे ही उनके बल-भार से धरती भुक गई। अंधेरा होते ही कुलटा नायिका निकले वैसे ही तलवारें म्यानों से निकल पड़ीं। जैसे बंसी-कांटा मछलियों को बेधता है वैसे ही वीरों की टंकीली मूंछें टनके नयनों को बेधने लगीं। जैसे विपत्ति बुधजनों की परीक्षा करती है वैसे ही वीर जुझार बरछी को फेंक फेंककर उसकी परीक्षा करते हैं। जैसे प्रमदा नारियां हिंडोले पर भूलती हैं वैसे ही गोफण में पत्थर भूलते हैं। भटों की भुजाओं में युद्ध रचने के लिए बल यों बढ़ने लगा जैसे शासन में चोरों का गिरोह बढ़ता है। यथा—

... ... ।
ससि सूरनैं तम भाविके भ्रम खेह की चिक-सी सजी ॥ ७

द्वि कुमित्र ज्यों ब्रह्मण्ड खप्पर मेलकों तजने लगे,
जिम तेय को लखि श्रेय ऊरुज भीर यों भजने लगे।
भरि दंड ज्यों खल कंदनैं ध्वजदंड अंबर यों खुले,
अधमर्ण पयों लखि उत्तमर्णहिं चक्क चक्कित जी डुले ॥ ८

भूपवार ज्यों द्विजवार यों रव छई विमानन की ततो,
नहिं सूर देइ दिखाव ज्यों बिनु नाह आनन को सती।
चहुवान के रथचक्र ह्यां पवमान के गुटके भये,
घमसान के महिमान बानन बान के सुत बिटये ॥ ९

उततैंहुं सम्मुह वे भदेवहु भद्द के घन ज्यों भुके,
पय देत ज्यों नट पट्टरी धरनी भवोबिल यों धुकें।
कुलटा निसामुख गेहतैं जिम तेग ककन पैं कढ़ी,
बनसी कि मीननपैं कितेकन मुच्छ नैननपैं चढ़ी ॥ १०

कुनरेस सासन ज्यों सरासन जीविका करखैं किते,
बुधका बिपत्ति समान प्रासन पिल्लिकैं परखैं किते।
तिय ज्यों हिंडोरन अद्रि औरन भिंदिपालनपैं चढ़े,
भुज जोर जोरन जग और कुराज्य चोरन त्यों बढ़े ॥

—वंश० ४१७-४१८।।

रूढ़ उपमाओं के साथ कवि की कल्पना-शक्ति का चमत्कार यहां ... बनता है।
एक से एक बढ़कर सटीक उपमाएँ कवि के भाव-लोक में
से उन्हें वर्णन प्रसंग में आसानी से जड़ देता
जैसे गारुड़ी के हाथों में सर्प हो; वे

चाटते हैं। नेत्रों से अग्निस्फुलिंग झड़ते हैं जैसे आकाश से उल्काएँ छूटती हैं। हल की फाल की तरह उनके दांत बाहर बढ़े हुए हैं—

> ... ...
> ग्रहि गारह कर ज्यों किलेकन पास प्रेरनकों गही।
> मधुरेस घात किरात ज्यों खल मोठ लेहनके करें,
>
> जिम गंनतें उलका बिलेकन नैनतें चिनगी भरें॥ १२
> हलतें कि फारक फालदत कुदाल बेकन कें बढ़ें।
> ... ... ॥ —वंश० ४१८।१

युद्ध - साधनों का वर्णन भी द्रष्टव्य है—मुर दैत्य ने बाण और तरकश लिए तो कीलकजिह्व मुद्गर, बक तलवार लेकर ही पिल पड़ा। जंभ ने सबा भाला और धूमकेतु ने चक्र संभाला तो हृदतुंग ने गोफन से पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। मूलिक ने त्रिशूल लिया तो तालहस्त हाथ में ताड का वृक्ष लिए चल पड़ा। 'कराल आनन' ढाल तलवार लिये है तो रीतिलोचन लवे छुरे से ही युद्ध करता है। सारांश यह कि जितने शत्रु हैं उतने ही विविध शस्त्र हैं। यथा—

> मुर सज्जि चाप कलाप कीलक जिह्व मुद्गर लों लर्‌यो,
> तरवारिसों बक रारिवें चक धारि सम्मुह उच्छर्‌यो।
> तह धूम्रकेतन चक्र जंभ प्रलंब तोमर रिल्लये,
> हृदतुंद चालुक काण नैंसुगसों सिलोच्चय ठिल्लये॥ १७
> गहि सूल सूलिक तालहस्त सु ताल हस्तहि लैं जुर्‌यो,
> असि ढाल सोहि कराल आनन काल बानिक बिप्फुर्‌यो।
> इक्षु चापसों बक केसि धेनुक भो प्रलबुस उज्झलें;
> खल कालजिह्व रु रीतिलोचन पत्रपालहि लैं चलें॥ —वंश० ४१६।१८

वीर चहुवान शत्रुओं के सभी अस्त्रों को काटता चला जा रहा है। उनका उत्साह अनंत है। विकट दाव देखकर वह घातक घाव देता है। धनुष की चाप कट जाने पर मुर दैत्य ने चहुवाण के सर पर बरछी फेंकी, जैसे सिंह के दांत टूट जायें तो वह नखों से आक्रमण करता है। इसी बरछी से चहुवाण मुर पर घातक वार करता है। यदि मुर के पुण्य कर्म भारी न होते तो बस—

> चहुवान भूपहु चोंपसों क्रमतें खलायुध कट्टिकैं,
> सबकें दये छत सूर संतत दाव उद्दत दट्टिकैं।
> मुर चाप कट्टत संगि लैं पटकी नरेश्वर सीसपैं,
> जिम दंत तुट्टत केहरी करसूक बाहत रीसपैं।
> वह सांगि आवत भूप लैं मुर बच्छ में उलटी दई,
> न बचरही बड़ दानकी फल होय तो महिमा गई॥ —वंश० ४२०।१०

ऐसे और भी प्रसंग द्रष्टव्य हैं। —वंश० ११६२ । १२-१६ २०४६ । ८-१४, ११५४ । २३, ३१५७ । ४५ ।

३ – विशिष्ट युद्ध-वर्णन—

(क) मल्ल-युद्ध—मल्ल-युद्ध का वर्णन श्रीकृष्ण-चरित्र के प्रसंग में आया है। बाहु-शक्ति के प्रदर्शन की दृष्टि से यह वर्णन महत्वपूर्ण है। कृष्ण के बाहुबल का परिचय कुवलयापीड़ हाथी को मारने के प्रसंग मे मिलता है। कृष्ण-बलराम उस विशालकाय हाथी के दांत पकड़ कर ही उसे मार डालते हैं। उनके अतुल बाहुबल से सन्त्रस्त कंस के प्रसिद्ध मल्ल चाणूर और मुष्टिक—सिंह के सम्मुख लाए गए बकरे से प्रतीत होते हैं। चाणूर का मुकाबला कृष्ण से और मुष्टिक का बलराम से है। दोनों ही युग्म-क्षेपण सन्निपात आदि दावों की अभूतपूर्व रचना करते हुए ताल ठोंकते हैं — प्रबल प्रहार करते हैं। उनके प्रतला-घात करने, भारी कदमों से चलने और गिरने से भयंकर आवाजें होती हैं। पृथ्वी प्रकम्पित हो उठती है। उसमें दरारें पड़ने लगती हैं और शेष-वराह भी कसमसाने लगते हैं। ज्यों-ज्यों आपदों के आघात बढ़ते हैं—भुजाओं के भार का आयास विस्तृत होता है— त्यों त्यों कंस के मल्लों का श्वास-प्रमाण घटता है जिसे देखकर कंस आश्चर्यचकित रह जाता है। चाणूर का पैर पकड़कर कृष्ण उसे ऊपर ही ऊपर घुमाते हैं फिर धोबी-पछाड़ देकर परम-धाम पहुँचा देते हैं। मुष्टिक को नीचे पटककर उसकी छाती पर मुष्टि-प्रहार करते हुए बलराम घुटनों से मचका-मचका कर ही उसके प्राण ले लेते हैं। उधर हर्षित होते हुए कृष्ण तोसल को भी मार गिरा देते हैं जिससे शेष सभी मल्ल भाग खड़े होते हैं। फिर कंस को चोटी से पकड़कर घुमाया जाता है और सन्निपात विधि से मार दिया जाता है। यथा—

चाणूर कुप्पि लिय कन्ह खेल, मुष्टिक लिय दाऊ दाव मेल।
द्वैरन ह सन्निपातावधूत, रचि उभय उभय मडे अभूत ॥ ५४

धुज्जिय दरारि भूतल धमकि, संकर समाधि छूटि असुर सकि।
स्वमन्निय धरि ब्रह्माण्ड डोल, कसमसि भुजग कमठेस कौल ॥ ५५

... ...

जिम जिम नियुद्ध हुव अति अमान, तिम तिम लगि मल्लन घटन प्राण।
यह जानि कंस मन चिन्त धारि, सवन बादित्रन दिय निवारि ॥ ५७

हरि पकरि ससकल मल्ल पाय, चिरकाल गगन रखयो भ्रमाय।
पुनि दियउ रजक पट भू पछारि, इम लियउ कन्ह चाणूर मारि ॥ ५८

मुष्टिक उर दै बल मुष्टि रीस, दै जानु हन्यो पुनि पुहवि पीसि।
मारिय बलि तोसल कन्ह रज्जि, खिल मल्ल गये यह देखि भज्जि ॥ ५९

... ...

सहि कन्ह घोर यह गोप दुष्ट, सरबस्व हरहु तिनको प्रदुष्ट।
इम कहत कंस ठिग मलयि भा०, श्रीपति सिखाहि पकरी सुभाय ॥ ६१

डारयो उछारि सम अधर देस, ऊरहिं अन्त में जग प्रसेस।
आये सु भयो आघात उग्र, उद्धरे समाधि इहिं पात उग्र ॥ —वंश० ६०२।६२

मल्ल-युद्ध का सर्वांगपूर्ण वर्णन सुग्रीव और रावण के मल्ल-युद्ध प्रसंग में आया है। रावण का गर्व मिटाने हेतु सुग्रीव मत्सर लेकर उछलता हुआ उसके सामने पहुँचता है। क्षण भर तो रावण उसे देखता ही रह जाता है, तदनन्तर वे दोनों एक दूसरे की बाँहों में समा जाते हैं। कभी रावण सुग्रीव को और कभी सुग्रीव रावण को नीचे गिराकर बल, दाव, पलट, आघात आदि का प्रयोग करते हैं। फिर रत्नि, अरत्नि, कराग्र, मुष्टि कूर्पर, तल के आघात करते हुए परस्पर बाँध में समाये हुए वे खाई में गिरते हैं। एक क्षण में वे छूट जाते हैं और दूसरे ही क्षण में फिर गुथ जाते हैं। कभी गोमूत्र गति, यान गति, मंडल गति, अग्र गति, प्रत्यागत और चक्र गति से चलते हुए आघात तथा वर्जन करते हैं। इस प्रकार परिधावन, आप्लव, अभिद्रवण, आस्थान परावृत्त, समवलुप्त, अपावृत्त, अवधान आदि नियुद्ध के प्रकारों का उपयोग करते हुए भयंकर बाहुयुद्ध में रत हैं। अन्त में रावण अपने को शिथिल पाकर माया की रचना करता है जिसे देखकर सुग्रीव राम के पास वापिस चला आता है—

जिहि गोपुर ह्वो जातुधान रन जतन विचारत।
तहं सुवेल तन मलपि गयउ कपिपति ललकारत ॥
इक मुहूर्त तिहि इक्खी बहुरि जुट्टिय उड़ि बत्थन।
कहिय कबहुं छुट्टे न होय मध्यग मम हत्थन ॥
दिय भुव गिराय दससिर मुकुट खलहु ताहि डारिय धरनि।
पटक्यो यहैहु कपि पुनि प्रबल, तनय जंग रुक्किय तरनि ॥
—वंश० ६०२।२६

दुवहि जुरें बल दाव पलट आघात पसारत।
रत्नि अरत्नि कराग्र मुष्टि कूर्पर तल मारत ॥
बरन निखातक बीच प्रसभ बत्थन संकुल भरि।
लग्गे पुनि उठि लरन धीर जह् मग्ग मलप धरि ॥
गोमूत्र यान मंडल गमन, गत प्रत्यागत चक्रगत।
आघात दैन वर्जन प्रमुख, रचन लगे तिनि युद्धरत ॥ २७
परिधावन आप्लाव पुनि, अभिद्रवन आस्थान।
परावृत्त समवलुप्त रु, अपावृत्त अवधान ॥ २८
इतिमुख असह्य नियुद्धके, प्रेरे दुहून प्रकार।
इत कपीस दससीस उत, जुरे प्रबल जुज्झार ॥ २९
जान्यों दुर्जय कीस जब, माया रचिय दसास।
सु लखि झंपि सुग्रीवहू, पुनि आयो प्रभु पास ॥ —वंश० ६०२।३०

मल्ल-युद्ध के इन वर्णनों में नियुद्ध विज्ञान के ज्ञान का समावेश जहां कवि की बहुज्ञता का संकेत करता है वहीं उसके वर्णन-कौशल का परिमापन भी। मल्ल-युद्ध के वर्णन पौराणिक प्रसंगों में ही रखे गये हैं। नव इतिहास-काल के युद्ध वर्णनों में इनके लिए अवसर नहीं है।

(ख) रथ-युद्ध—

रथ-युद्ध का वर्णन राम-रावण के युद्ध प्रसंग में हुआ है। रथ-युद्ध की परम्परा नव-इतिहास काल में नहीं थी। यह पुराण-युग की विशेषता थी। गोग चहुवाण के बाद से (ईसा पूर्व नवमी शती के आसपास) रथ-युद्ध की प्रथा बंद हो गई थी (मयं० ७६४ ।५०)।

रथ-युद्ध में राम का रथ रावण के रथ को दाहिने रख कर चला, देवतादि भी रथ-युद्ध के कौतुक देखने के लिए एकत्रित हो गए। दोनों रथी रथ-युद्ध में इस प्रकार प्रवृत्त हुए कि राक्षस-बानर सब चित्र-लिखित से रह गए। राम के रथ पर रावण ने घनघोर बाण-वर्षा की किन्तु वे सब बाण टकरा-टकरा कर मुड़ गए। राम ने एक ही बाण से उसके रथ की ध्वजा काट दी। रावण ने प्रत्युत्तर में राम के रथाश्वों पर बाण बरसाये किंतु वे फाल-रहित होकर ऐसे गिरे कि जैसे फूल हों। पुनः दोनों ओर से भयंकर बाण-वृष्टि हुई जिससे आकाश आच्छादित होकर छत की भांति सुशोभित हुआ। इस प्रकार युद्ध करते हुए दोनों रथ गत, आगत, मंडल, वीथि आदि की विधि से घूमने लगे। रथों के घोड़े और धुरियां परस्पर मिल गये। राम ने शत्रु के घोड़ों को तीरों से व्याकुल कर दिया जिससे वे रथ को लेकर मुड़ गये। यथा—

> जुरयो हि तथापि दशानन जंग, इतैं प्रभु जुज्झिय धारि उमंग। ६८३।१००
> दयौं लखि दोउन यों रनदाव, भज्यो कपि जातुन चित्रित भाव।
> घनें सर दुष्ट तजे तब घुम्मि, गिरे रवकें लगि ते मुरि भुम्मि॥ १०१
> तहां इक आसुग दैं रघुराय, दयौ दस कंतन कट्टि गिराय।
> दयें प्रभु अस्वन कैं खलबान, लगैं जिम फूल गिरे हतवान॥ १०२
> दयैं पुनि बान हजारन दुष्ट, तजे तिनपैं इतैं प्रभु तुष्ट।
> भयो तिनतैं नभ कुट्टिम भास, कहूं नहिं नैंक रह्यो अवकास॥ १०३
> अनन्तर दोउन अविक प्रमान, परस्पर बाजिन कैं दिय बान।
> रथैं पुनि दोउन दैं रथ काव, गताऽऽगत मंडल बीथि न दाव॥ १०४
> समीप मिले पुनि द्वै रथ आजि, भिरे धुरसौं धुर बाजिन बादि।
> तहां प्रभु रक्खस अस्सन अग, दये सर बाजि मुरे रथ सग॥
>
> —वंश० ६८३।१०५

(ग) तोप-युद्ध-वर्णन—

मध्य-काल में तोप युद्ध का महत्व बढ़ गया था। मुगलों के आने के बाद चतुरंगिणी

लगि बात वेग अति उड़ि अलात, जारत कति कोसन प्रांत जात।
इम लसत तिमिर गोलन उड़ान, मानहु अलात प्रेतन मसान ॥ १६६३। ४०

मिटि पहन सु पद्धर होत मग्ग, इत उत प्रपात गोलन उदग्ग।
कसमसत सेस भजि भूमिकप, सूचि अंधकार जल दकि सर्प ॥ १६६३। ४१

लपि दूर दूर सरिता तड़ाग, फिर होत सलिल आवट्टि पाग।
पूर कि कटाहु जलजंतु पंति, भावित भटिन्न हुव भति भति ॥ १६६३। ४२

ढिग पुरन रास गधक गुढ़ार, छिप्रहि उड़ि लगिन करत छार।
पारद के क्रेता हानि पाइ, उर कुट्टि बुव पारत प्रपाय ॥ १६६३। ४३

कालियपन मालिय गन विवेक, उल्कामय सालिय धरत एक।
भट केक सलिल उपचार मुल्लि, इहि तोप भरत सिन मरत डुल्लि ॥ ४४

गुटिका पुलिग विसरत विसाल, करका खद्योत कि जलदकाल।
हम्मीर रत्ति परिखद सुहाइ, इक पुन्न महल बैठत सुभाइ ॥ —वंश० २६६४।४५

अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के प्रसंग में भी तोप युद्ध का वर्णन किया गया है। दोनों ओर बारूद के अंबार धधक उठे जिससे भूमि जलने लगी। तोपों की गड़गड़ाहट का घरराट मच गया। ज्वालाओं ने मिलकर प्रचंड ताप उत्पन्न किया। उस समय चिनगारियों, ज्वालाओं, अग्नि-कणिकाओं और धूएँ के समूह से युक्त जलता हुआ पर्वत सेना को आच्छादित कर ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अनेक विद्युत-चक्रों से युक्त मेघ पर्वत रूपी कानन पर बस गया हो। वज्र के समान गोले बढ़-बढ़कर नगर और शत्रु-दल का नाश करते हैं। दगने का शब्द भाड़ में तड़कते हुए चनों के शब्द के समान सब ओर फैलता है और सभी दिशाओं में शंका उत्पन्न करने का कारण बनता है। पथरीले मार्गों पर अग्नि का फैलाव होता है जिससे धरती धकधका उठती है, थरथराहट होती है, मेघ-माला जैसे बरसते समय नीचे को झुक आती है वैसे ही शेष की फण-माला झुक जाती है। इधर मलेच्छ लोग गोलों की मार से दुर्ग को हिलाते हैं तो उधर मेवाड़ी तोपों की ज्वाला से म्लेच्छों के अवरोध को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। वह चित्रकूट (रहस्य का कूट) वास्तव में रक्त, धूम और अग्नि से मिल कर विचित्र बन गया है। भीषण अंधकार करके मानो धूल ने सूर्य के प्रतिकूल हठ ठान लिया है। गोलों की मार से गढ़ के अट्ट, गोपुर, कोट और कंगूरे गिरने लगे, इधर सेना (शत्रु की) में गोले लगने से हाथी घोड़े और वीरों के शरीरों के टुकड़े होकर कोसों दूर तक गिरते हैं। तोपों की मार से महल, गवाक्ष, गुम्मट, खंभे, छतरियां गिरती हैं, उधर रावटी कनातें, वितान और डेरे अग्नि ज्वालाओं को भेंट होते हैं। वज्र गर्जन की तरह तोपों की भयंकर गर्जना से गर्भिणियों के गर्भ गिरते हैं, दिनरात की निरंतर गर्मी से निवाणों का पानी जलकर अनेक सीढ़ियां नीचे उतर जाता है। घरों में धुआं घुमड़कर लोगों को अंधा कर देता है। धूम्रायित आकाश में अनेक पक्षियों के पंख और पूंछें जलकर पतंग की भांति लहराती हैं। युद्ध - दर्शन को उत्सुक देव-जनों के विमान भी धूमायित हो गये हैं। युद्ध-लीला की दर्शनेच्छा से प्रेरित सूर्य धूल का अभाव चाहता है (जो मिलता नहीं)।

हाथियों की सूण्डें कटकट कर यों उड़ती हैं मानो जनमेजय के यज्ञ में सर्प उड़ रहे हों। पीठों पर से पताकाएं यों उड़ रही हैं जैसे पर्वतों पर से मयूर उड़ रहे हों। अंधकार प्रसार में दाग के गोले प्रकाशित होकर ऐसे शोभित होते हैं जैसे अजपादि लोक के अंधकार में विष्णु का चक्र प्रकाश करता हुआ प्रविष्ट होता है। सेना में जाते हुए ऐसे लगते हैं जैसे मेघमाला में चमकता हुआ सूर्य अथवा अमावस्या के अंधकार में द्वारा जलाई हुई अग्नि। सनसनाते हुए इन अग्नि-पिण्डों को किसने उपमा दी आप पर्वतों के समूह यों हिलते हैं कि उनके टूटने के भय से लोग रास्ता छोड़ देते हैं। घोर साधक जन उस अंधकार में काल का ज्ञान खो बैठते हैं। अग्नि-गर्जना तथा वज्रपात कारण भूमितल यों फट गया है जैसे पका हुआ दाड़िम फट जाता है। जहां नाम मात्र स्थान को भी तोपें सहन नहीं करतीं उसे मिटा देती हैं। तोपों की गुरुता को परखने लिए भूमि उनकी पहियों को धस लेती है। वे पहियें फिर मनुष्य, बैल आदि के जोर नहीं निकलतीं, हाथियों के टक्करों से ही उन्हें बाहर निकाला जाता है। यथा—

... ... ।

दुहु ओर घोर सजोर ह्वै दगि सोर भूतल को दह्यो ॥ ३

मिलि दाव दुस्सह दावई अरराव शालिन को मच्यो।
तिहि बार भार पुलिंग फार प्रसार में गिरि जो तच्यो ॥
लगि धधक दक्कन यों भभक्कन धूम संकुल ह्वै मच्यो।
बहु बिज्जु मिश्रित अभ्र जाति अदभ्र काननपें बरषो ॥ ४

बढ़ि अप्प बैर नशात नैरन फेर फैरनपें बनें।
चहुं ओर यों सुनि सोर संकित मारग्यों तरकै घनें ॥
धकि वन्हि बिरघर परथ परघर भु थरत्थर ह्वै धुकी।
भर कुट्टनी घनमाललों फनमाल आलुबरी कुकी ॥ ५

जिम साह चाह सिपाह गोलन दुग्ग दोलन ओरिदै।
तिम राजके भट तोपजालन मिच्छ ढालन तोरिदै ॥
सह अर्य भो यह चित्रकूटह सोन धूम कृसानु सों।
भुव अंधकार अपार कै रज बादमढ़िय भानुसों ॥ ६

गढलग्गि गोलन अट्ट गोपुर कोट कगुर के गिरै।
बल लग्गि बारन बाजि बीर न बुल्यि कोसन लों फिरै ॥
इम सौध गौख लदावमंडप थंम छत्रिय उल्लटै।
उत कैंगिका झपटो बितान रु तल्प ज्वालन में अटै ॥ ७

पवि बाज गाज दराज तोपन गब्भ गब्भिमनि के परैं।
झहरत्ति सत्ति निवान पावटि नीर सीढिन उत्तरैं ॥
लहि धूम नैनन गैन अंजन अंधता चिरलोलगैं ॥
करिके अनेकन पच्छ केकन पुच्छ चंपन लों लगैं ॥ ८

रन कौतुकीन बिमान जे कछु उच्च घूमित ह्वै रहैं ।
चित चित्र चक्रमरीचि त्यों रजके प्रभावहिकों चहैं ॥
कटिजात हृथिन सुंडि पन्नगपात अब्बरज्यों करैं ।
भगतैं मयूर उडान ज्यों द्विप पिट्ठि केतन उत्तरैं ॥ ९

इम अंधकार प्रसार लोलक अग्नि गोलक उल्लसैं ।
हरिचक्र की कि अलोक के तमगाढ रंचक भा हसैं ॥
किमु भवक भंबुद चवक अंतर अग्नि प्रेतन की कुहू ।
सन नंकि जावन विविध भावत नां सभा उपमा गुहू ॥ १०

इगमग्गि सेलन सुंग फैलन लोक गैलनमें ढरैं ।
घुघ्घीर जाल त्रिकाल साधक काल भाग्हिक बीसरैं ॥
अति गाज जात दरारि भूनल पवक दारिम मोरलैं ।
तंहं थान नामहि जो लख्यो सहि जो निरंतर तोप लैं ॥ ११

गुरुता परक्खन के धरक्खन चक्र चक्खन भू ग्रसैं ।
नर बैल हल्लन जे हमल्लन नाग टल्लन निक्खसैं ॥ वंश० १९८९-९२ । १२

तोप-युद्ध के वर्णन अधिकतर विभावात्मक हैं । कवि ने एक दो प्रसंगों में कुलटा-नायिका का रूपक बांधकर तोप-युद्ध का कलात्मक वर्णन भी किया है । यथा—(वंश० ३३१६ । १२-१६) एक स्थान पर तोप द्वारा भावित विनाश का लंबा वर्णन करने में धातु-संभार की नाम गणना का अवसर भी निकाल लिया गया है—(वंश० ३३५५ । १-७) ।

(घ) शस्त्र-युद्ध—शस्त्र युद्धों के वर्णन प्रचुरता के साथ, किंतु विविधरूपों में, किये गये हैं । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक जिन-जिन शस्त्रास्त्रों का युद्धों में प्रयोग होता रहा है उन सभी के वर्णन के अवसर कवि ने इस ग्रंथ में निकाल लिये हैं । उनके प्रयोग-कौशल, घात-प्रतिघात, रीति रूप आदि के शास्त्रीय तथा कलात्मक चित्रण दर्शनीय हैं । ऐसे वर्णन कवि के विस्तृत ज्ञान एवं वर्णन चातुर्य का परिचय देते हैं । शस्त्र-युद्ध के वर्णन विराट् युद्ध-प्रसंगों में सर्वत्र बिखरे हुए हैं । पौराणिक-युग के गदा, शूल, मल्लक, चक्र आदि से लेकर मध्यकाल के तीर, तलवार, भाले आदि अनेकानेक शस्त्रास्त्रों के प्रयोग के सुन्दर तथा गत्यात्मक वर्णन वंशभास्कर में भरे पड़े हैं जिनमें कुछ की विवेचना तो 'सामान्य युद्ध-वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत हो चुकी है तथा कुछ के सविस्तार उदाहरण 'सेना-वर्णन' के अन्तर्गत लिए गए हैं ।

इस सम्बन्ध में अजपाल-रावण का आश्चर्यजनक युद्ध दर्शनीय है—रावण ने अजपाल की ओर पर्वत-खंड फेंका, जिसे अजपाल ने बाणों से विदीर्ण कर दिया । तब अजपाल ने रावण की ओर भाला फेंका जिसे उसने मुंह फाड़कर निगल लिया । राजा ने फिर तीखे तीर मारे जिन्हें दुष्ट ने बायें हाथ से ही मरोड़ डाले । रावण ने तब पांच फण वाला भाला (पंचशूल) चलाया जिसे राजा ने तीरों की सहायता से मार्ग में ही चूर-चूर कर दिया ।

हाथियों की शुण्डें कटकट कर यों उड़ती हैं मानो
पीठों पर से पताकाएं यों उड़ रही हैं जैसे पर्वतों
प्रसार में आग के गोले प्रकाशित होकर ऐसे शोभि
अंधकार में विष्णु का चक्र प्रकाश करता हुआ
ऐसे लगते हैं जैसे मेघमाला में चमकता हुआ सूर्य
द्वारा जलाई हुई अग्नि। सनसनाते हुए इन अ
पर्वतों के समूह यों हिलते हैं कि उनके टूटने के
और साधक जन उस अंधकार में काल का ज्ञान खो
कारण भूमितल यों फट गया है जैसे पका हुआ
स्थान को भी तोपें सहन नहीं करतीं उसे मिटा
लिए भूमि उनकी पट्टियों को ग्रस लेती है। ये
नहीं निकलतीं, हाथियों के टल्लो से ही उन्हें बाहर

... ...

दुहु ओर घोर सजोर ह्वै दगि सोर भूत
मिलि दाव दुस्सह तावदै धरराव तालिन
तिहि बार भार फुलिंग फार प्रसार में
लगि धवक ढवकन यों झलक्कन धूम सं
बहु बिज्जु मिश्रित अभ्र जाति अदभ्र का

बढि बज्र बैर नशात नैरन फैर फैरनपें
चहु ओर यों सुनि सोर संकिय भारज्यों
थकि बन्हि बित्थर पत्थ पत्थर भू थरर
झर बुट्टती धनमालतों फनमाल आलु

जिम साह चाह सिपाह गोलन दुग्ग दो
तिम रानके भट सोपजालन मिच्छ ढा
सह अर्थ भो वह चित्रकूटहु सोन घूम
भुव अंधकार अपार कैं रज बादमढि

गडलग्गि गोलन अट्ट गोपुर कोट कगु
बस लग्गि बारन बाजि बीर न बुट्टि
इन सौध गोल सदावमंडप थंभ छु
उड कैंणिका अपटी बितान रु तल्प

यदि बाज गाज दराज रोपन गवृभ
भहरंति हस्ति निवान भावटि नीर
सहि घूम नैनन गैन भैनन अंधता
धरिके अनेकन पच्छ केकन पुच्छ

फलकतास तिहि फारि सूर मंडिय बर समर।
सु लखि अयोमय मदन नैन लिय घोर गदाकर ॥
ताके प्रजंघ यूपाक्ष दुव हुव सहाय हरवल्ल बढि।
अंगद सहाय मैंदक द्विविद पव्वय डारिय विजय पढि॥ ४८

तब प्रजंघ तरवारि पकरि दौर्‌यो अंगद पर।
प्रस्वकरन द्रुत इक्क हन्यो खल वपु वासव हर॥
बलि मुट्ठिय यह बाहु प्रवनि डार्‌यो प्रजंघ अति।
खलहु मुट्ठि तब खिज्जि हनि अंगद ललाट हसि॥
कछुकाल सहि द लहि चेत क्रम कपि प्रजंघ सिर कट्टि लिय।
यूपाक्ष लखत भ्रातृज मरन रयसन क्रुद्धि कृपान लिय॥ —वंश० ६५० । ४९

(ड) माया-युद्ध—माया-युद्ध के वर्णन कवि ने पुराणकालीन ऐतिहासिक युद्धों में समाविष्ट किये हैं। माया-युद्ध वीर-रस-प्रकाशन में अद्भुत के संचार के साथ ही भयानक के विभावों को पुष्ट करते हैं। प्रतिहार के युद्ध-प्रसंग में जंभासुर का माया-युद्ध पौराणिक शैली में वर्णित हुआ है। प्रतिहार के प्रचंड आघातों से त्रस्त होकर जंभासुर गुप्त रीति से आकाश में चला जाता है। वहाँ से पत्थर, अग्नि-खंड, बिजली, पर्वतादि की वर्षा करके विस्मय और भय फैलाता है। यथा—

जबहि छोरि रथ जंभ गयो आकास पिहित गति।
उलका उपल अलात असनि पव्वय बरस्यो अति॥
धूम्रध्वज इत अनखि सूल पटक्यो नृप छत्तिय।
जंहि छत होत अचेत सूत रोके रथ सत्तिय॥
... ... —वंश० ३६१ । १३

इसी प्रकार चहुवान-युद्ध के प्रसंग (द्रष्टव्य वंश० ४२० । २२-२३) में मुर दैत्य आकाशगामी होकर पर्वत, वज्र, बिजली आदि की वर्षा करता है जिसे चहुवान पवनास्त्र की सहायता से दूर करता है। इसी प्रकार जंभासुर तथा चहुवान के बीच मायास्त्रों का युद्ध मचता है। जंभ आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके अग्नि-शिलाएं बरसाता है तो चहुवान वारुणेयास्त्र के प्रयोग से उनका निवारण करता है। वह माया-शक्ति से पर्वतों को प्रेरित करता है तो चहुवान वज्रास्त्र से उन्हें दूर करता है। यथा—

कछु काल में तजि मोह जंभ प्रयोग आनलको कर्‌यो।
वह ज्वाल जाल कराल भूपहु मुक्कि वारुन उद्धर्‌यो॥
खल सत्य पर्वत प्रेरयो पवि प्रस्त्रसों तिहि टारिकै।
किय श्राद्धको जजमान जंभहि बान बिसति मारिकै॥ —वंश० ४२१ । १६

धूम्रलोचन भी इसी प्रकार मारुत, आभ्र, वारुण आदि मायास्त्रों का सम्मिलित प्रयोग करता है तथा चहुवान उनका निवारण करता है (द्रष्टव्य वंश० ४२८ । ६६)। रामचंद्र-वर्णन (वंश० खंड २) में भी माया-युद्ध के प्रसंग आये हैं।

परिगणित करते आए हैं। किन्तु यह उचित नहीं। वीरानुभावों को प्रकाशक होने के कारण कबंध-लीला को वीर-प्रकृति का एक सामान्य अंग ही समझना चाहिए। साधारण-सी बात है कि एक बार जारी किये गये मस्तिष्क के आदेशों का पालन शरीर के अंग उस समय तक करते रहेंगे जब तक कि उनमें किंचित भी प्राण-शक्ति शेष है। युद्धरत वीर उत्साह-संपूरित भावों से प्रेरित अपने मस्तिष्क के आदेशों का पालन कर रहा है और इसी समय यदि शिरोच्छेद हो जाने पर जितनी ज्यादा देर तक उसका धड़ (कबंध) सक्रिय रहेगा, उसका आंतरिक बल तथा उत्साह-क्षमता उतनी ही अधिक प्रखर मानी जायगी।

वंशभास्कर में भी सूर्यमल्ल ने कबन्ध-योजना में यही लक्ष्य सामने रखा है और ऐसे ही वीरों के कबन्धों का वर्णन किया है जो वीर छक में छके मरण-राग मे मस्त है। मानी हुई बात है कि कबंध-वर्णन प्रत्येक सिपाही को लेकर नहीं हो सकता। युद्ध-प्रसगों में कबध-वर्णन भाव व्यंजना के उद्देश्य से ही कवि ने किये हैं। ऐसे वर्णनों में कवि की काव्य-प्रतिभा को खुलकर खेलने का अवसर मिला है।

कबंध-लीला-वर्णन का एक अच्छा स्थल अस्थिपाल और चालुक्य के युद्ध-प्रसंग में आया है। युद्ध में वीरों के अग आधोआध फांक होकर यों झड़ रहे हैं मानो बाप की सपत्ति बेटों में आधोआध बंट रही हो। कितने ही कबंध याचक शिव को अपना मस्तक भेंट कर रहे हैं। उनमें से कितने ही प्रसन्न बालकों की भांति 'मामामोरी' रच रहे हैं। तो कितने ही युद्ध-क्षेत्र में जलावर्त की भांति घूम रहे हैं। कितने ही कबन्ध अप्सराओं का स्पर्श करते हैं और उन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर गोदी दे देकर गिरा रहे हैं। अनेक अपनी आंतों को निकाल निकाल कर दोनों हाथों से ताना तानते हैं तो कहीं दो कबन्ध गुथकर नियुद्ध रच रहे हैं— जैसे दो शत्रु मल्ल बाहु-युद्ध करते हैं। कितने ही कबध उछल - उछलकर योद्धाओं पर रक्त का जाल फैलाते हैं तो कुछ शत्रुओं को अपना घातक जानकर उन्हें शीघ्र छोड़ देते हैं। कोई अप्सरा के विमान पर चढ़कर अपने कबंध का उछलना देखते हैं तो कोई शत्रु पर दौड़कर अंधी दौड़ सीखते हैं। यथा—

झार उद्दत धार यों तरवारि टोपनपै झनंकिय।
रोपि आरति दीपकी नियराइ झल्लरि ज्यों रनंकिय॥
उल्लटै न हटै कटै भटके कटै समभाग फंकन।
बप्पके अनु बप्पको बिहु बधु बित्त बटै असकन॥ ३४
कड्ढि कालिकहू परै कति छत्रु लोहित मुच्छ रगत।
मत्त रुंड ससपर्सै करसीस ईसहि देत मंगत॥
के कबंध असंध बाल प्रबंध ममहु मोरि खावत।
अच्छरीन छुवंतके अरि जानि गोदिन दै गिरावत॥ ३५
के स्वअन्त्रन छंन खैचि कुविंद ज्यों पटजाल तानत।
के नियुद्धरचैं उमैं अरिमल्ल ज्यों प्रतिमल्ल मानत॥
रुढ केक मलगि योधन जाल लोहित लाल मंडत।
के प्रमत्त स्वअग घातक जानि अप्पन छिप्पछंडत॥ ३६

अच्छरीन विमान के चढ़ि रबीव रंब मलंग रक्खत ।
शत्रु पै चलि वेग केक कबंध अंगन चाव गिरक्कत ॥
के कबंधन रत्त छुट्टत छिछ्छि जुग्गिनि पत्र झेलत ।
के विवाहुन व्याहकै पर मध्य पाह सु मौलि पेलत ॥—वंश० १४५४।३७

इतिवृत्तात्मक तथ्यों के बीच इस प्रकार के वर्णन भाव-सामग्री बनकर आये हैं। कई विशिष्ट वीरों के कबंधों के और भी सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य हैं। —वंश० २१६८ । २८-२९, २५५७ । ७४, २५७५ । २९, २८७० । ४७, २९७८ । ६, २९८५ । ५, २९९० । ४०, २९९१ । ४७, ३११० । ७५, ३२४७ । ६४, ३३०८ । ११, ३३०९ । २३ । इनमें रूढ़िगत शैली तथा कवि-समय का उपयोग अवश्य हुआ है किन्तु प्रसंग को गत्यात्मक एवं सजीव बनाने के उद्देश्य से ही लाये गये हैं। वस्तुतः कबंध-वर्णन कवि के अपने कौशल की उपज है। इनमें कवि का व्यक्तित्व और प्रतिभा स्पष्ट झलकती है।

(ज) युद्ध-रूपक—

नाना प्रकार के युद्धों का विविध शैलियों में विस्तृत वर्णन करके भी कवि को जैसे संतोष नहीं हुआ और इसीलिए एकाधिक अप्रस्तुतों को ग्रहण करके उसने कई सांग रूपक खड़े किये हैं जिनमें मुख्य हैं—

(क) कृषि-रूपक—वंश० २०६२ । ३४
(ख) बसन्त-रूपक—वंश० २५६४ । ४४, ३८८६ । ७३
(ग) वर्षा (मेघ) रूपक—वंश० २६८७ । १४-१७, ३१५० । ९-१०, ३४३८ । १४१-१४६ ।
(घ) नक्षत्र-रूपक—वंश० ३१७० । १२६-१३६
(ङ) निशा रूपक—वंश० ३१७२ । १३६-१४१
(च) त्रिवेणी-रूपक—वंश० ३३६५ । ४९-५१
(छ) दावाग्नि रूपक—वंश० ३४१६ । ३३-३७
(ज) सरित-रूपक—वंश० ४३२५ । ४७-५९
(झ) वाटिका-रूपक—वंश० ३५१२ । ८२-८३
(ञ) बाण का गंगा-रूपक—वंश० ३७६६ । १२-१३
(ट) दीपमालिका-रूपक—वंश० १६३६ । ४४
(ठ) यज्ञ-रूपक—वंश० २८६८ । ४२
(ड) फाग-रूपक—वंश० २९८६ । ७
(ढ) चौपड़-रूपक—वंश० ३१२५ । ४६
(ण) गरुड़-रूपक—वंश० ३०७३ । ३६

इन युद्ध-रूपकों के काव्यत्व का विवेचन अलंकार प्रकरण में आगे किया गया है।

४ – प्रकृति वर्णन—

साहित्य-दर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने प्रकृति— संध्यासूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्त-

वासरः—प्रातर्मध्याह्न मृगयाशैलर्तुवन सागरः—को महाकाव्य का आवश्यक लक्षण माना है। यही कारण है कि कविगण अवसर न रहते हुए भी—प्रसग निक्षेप करके—अपनी रचना में प्रकृति को स्थान देते आये हैं। कवि सूर्यमल्ल भी इसका अपवाद नहीं है। इतिहासाभिमुख एव युद्ध-प्रधान महाचम्पू वंशभास्कर में प्रकृति का प्रवेश काव्य-परम्परा के निर्वाह के लिए ही हुआ है। प्रकृति के स्वतंत्र और आलम्बनात्मक वर्णन इसमें नहीं हैं। युद्ध वर्णनों के अन्तर्गत प्रायः उपमान रूप में ही प्रकृति के उपकरण आये हैं। अन्यान्य प्रसगों में शरद एवं वर्षा ऋतु के जो कुछ स्वतन्त्र चित्र आये हैं उनको भी समास-रूप में रखकर कवि ने सकुचित किया है।

प्रकृति-वर्णन के प्रति इस संकोच अथवा समास-वृत्ति का पहला कारण है, ग्रंथ-रचना का उद्देश्य। कवि को राजाज्ञा (वंश-वर्णन) का अक्षरशः पालन करना है। अतः उसने काव्य के ऐसे अनिवार्य उपकरण को भी समास-रूप में निपटा दिया है। दूसरी बात है युद्ध तथा वीररसात्मक अभिरुचियां जिनके कारण इस महाग्रंथ में युद्ध-वीरता के प्रसंग इस कदर व्यापक हो गये हैं कि वहां प्रकृति का कोमल परिवेश उपेक्षित रह गया है। हाथी, घोड़ों, अस्त्रों, शस्त्रों की धूमधाम तथा तोपों की गड़गड़ाहट और विनाश के वीभत्स-भयानक वातावरण में प्रकृति की माधवी लीलाओं का उभरना संभव भी नहीं है। तीसरी बात है काव्य के रूढ़िगत उपकरणों के प्रति सूर्यमल्ल का नितांत ही क्रांतिकारी दृष्टिकोण। जैसे वीर सतसई में वैणसगाई अलंकार की उपेक्षा करके वह रस-पोषण में समर्थ हुआ है[1], वैसे ही उसने वंशभास्कर में प्रकृति-तत्व के अभाव में भी सुन्दर काव्य-रचना कर दिखाई है। इस प्रकार उसने काव्य में 'प्रकृति-प्रधानता' की रूढ़ि पर भारी आघात किया है। यही स्थिति भाव-व्यंजना के क्षेत्र में द्रष्टव्य है। रस राज-शृंगार को छोड़कर उसने वीर और वीर-मिश्र रसों के ही बल पर वंशभास्कर में काव्य-सृष्टि खड़ी करदी है। सूर्यमल्ल के ये क्रांतिकारी प्रयोग अभिनन्दनीय हैं। अस्तु।

प्रकृति के प्रति कवि की उदासीनता को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह प्रकृति-दर्शन की भावना से रीता था क्योंकि उसने प्रातःकाल और सध्या के जो प्रसंगोपात्त चित्र प्रस्तुत किये हैं वे उसके सूक्ष्म प्रकृति ज्ञान के सूचक हैं। ऋतु-वर्णन देखकर भी इस धारणा की पुष्टि होती है।

यों इस महाग्रंथ में खोज करने पर षड्ऋतुओं के वर्णन भी मिलते हैं और प्रातःकाल, संध्याकाल, ज्योत्स्ना, सूर्य चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, सरिता पर्वत, वन, उपवन, वाटिका आदि के भी। किंतु वे सभी (एकाध को छोड़कर) सेना अथवा युद्ध-वर्णनों में प्रसंगतः उभारे गये हैं—सक्षेप में। प्रकृति के ये वर्णन स्थूल हैं तथा प्रायः उपमान रूप में आये हैं।

(अ) ऋतु-वर्णन

क—शरद—वर्षा के उपरान्त शरद ऋतु का आगमन हुआ। सारग्राही योगी के समान मोर

१—वैण सगाई वालिया, पेखीजै रस पोस।
वीर हुतासण बोळ में, दीसै हेक न दोस।। ३ —वीर सतसई

मौन हुए। मेघों ने विस्तार की वृत्ति तजकर भाव की सुघरता धारण की। ममतायुक्त मन जिस प्रकार तपता है उसी प्रकार छोटे-छोटे तालाबों में मछली आदि जीव तपने लगे। गृहकार्यों में रत गृहस्थियों के उल्लास जैसे सूख जाते हैं वैसे ही मार्ग सूख गये। सागर चंचलता को छोड़कर मुनियों के मन की भाँति स्थिर हो गया। आकाश में चन्द्रमा तारों के साथ दीप्तिमान होकर यों शोभित हुआ जैसे श्रेष्ठ पुत्र के विजय-यश के साथ परिवार सुशोभित हो। आकाश ने बादलों के, भूमि ने कर्दम के और जल ने पंक के कालुष्य को उसी प्रकार छोड़ दिया जैसे योगाभ्यास से आत्मा सांसारिक विषय-वृत्तियों को छोड़ देता है। योग-विद्या-विद यति जैसे पूरक कुंभक और रेचक द्वारा वायु को अपने में भरता, अवरुद्ध करता और विरेचित करता है उसी प्रकार सूर्य जल को अपनी ओर खींचकर अवरुद्ध करता हुआ धीरे धीरे उसे छोड़ता है। तालाब, नदियों, झीलों, पोखरों आदि में कुमुद की शोभा छा गई है मानो सूर्य के ताप रूपी दस्युओं से घायल जनों को सरोवर ने शरण देकर प्रसन्नचित्त किया हो। यथा—

> इम विहरत इक समय भयउ घन मिटि सरदागम।
> वाचंयम हुव बरहि सारगाहक योगी सम॥
>
> तान घनन बहु गनन तज्यो लहि बोध विचच्छन।
> तनु पल्लव मीनादि तपिय ममता जुत जिम मन॥
>
> गृहरत गृहीव सुविजय सरनि हुव थिर सागर मुनि हृदय।
> ससि उडु विकास नभ इम लसत जिम सुपुत्र करि कुल सजय॥ २
>
> नभ वारिद भुव पंक सलिल कलिमल इम छोरिय।
> प्रत्याहारहि अक्षगोचरनतैं कि निहोरिय॥
>
> पूरक छवि जलपूरि रोकि रख्यो कुंभक छवि।
> पुनि रेचक छवि प्रचुर रचिय कल्लोहि जती रवि॥
>
> सर सरित झील पुष्कर सुभग लगे कुमुद सुखमा धरन।
> मुख सूर घाय सखन मनहुं सरनागत रक्खत सरन॥
>
> —वंश० ५६७। ६

यहाँ शरद ऋतु का आलंबनात्मक वर्णन है जो रूढ़िग्रस्त होते हुए भी अप्रस्तुत-योजना की नवीनता लिए हुए है। योग-वर्णन की गूढ़ता कवि की कल्पना का चमत्कार प्रस्तुत कर रही है। युद्ध-उपमान कवि की रुचि-विशेष का परिचय दे रहा है।

इसी प्रकार शरद का विभावात्मक संकेत-वर्णन अन्यत्र (वंश० ५७०। २१–२२) भी हुआ है जिसमें शारदी-राका तथा वंशी-निनाद उद्दीपक बनकर गोपियों में शृंगार के अनुभावों को अभिव्यक्त करते हैं (वंश० ५७०। २३ आदि) यह वर्णन विस्तृत होकर शृंगार रस का उपकारक बना है (द्रष्टव्य शृंगार रस) जो अपने आपमें अनूठा है तथापि राजाज्ञा की सीमा से बाहर रचना होने के कारण कवि को अपनी इस उन्मुक्तता पर पश्चा-

त्ता है (द्रष्टव्य वंश० ५७४ । ३५-३६) । कवि ने इसी नीति का निर्वाह करने के लिए अपनी प्रतिभा पर अंकुश लगाया है तथा युद्धेतर वर्णनों को यथाशक्ति परिसीमित किया है।

ख—वर्षा-ऋतु— वर्षा-वर्णन का भी आलंबनात्मक वर्णन द्रष्टव्य है। संवर्तक मेघों के समूह घुमड़-घुमड़ कर ब्रज पर छा गए। प्रचंड वायु,जल,ओले, पत्थर, बिजली, वज्र आदि के साथ प्रलयंकारी वर्षा होने लगी। अनेक पशु आघातों से मरने लगे, ओलों की मार से छत छिलने लगे, उनके भार से शाखाएं टूटने लगीं, वज्रपात से गृह-मंडप शिखरादि टूटने लगे, पवन-वेग से पर्वतों के शिखर तक डगमगाते प्रतीत होने लगे, बिजली के गिरने से धरती में दरारें पड़ने लगीं। कोई आपस में बोल-सुन नहीं सकता था, सभी मन में त्राहि-त्राहि करने लगे। यथा—

संवर्तक घन असद सुनत छाये ब्रज उप्पर।
अभ्रमुप्रिय आरोहि मोर हुव संग पुरंदर॥
पवन सलिल करका पखान तथा असनिन सह।
उपडि घोर आसार लगे डारन अति आग्रह॥
बहु सुरभि विविध प्रानहु तजत जानि बड्डर बासव करिय।
सांवर्त बाल सत्तम बरस इक नख वह गिरि उद्धरिय॥ ११

तरुन छलि करकान खुलत साखाभर तुट्टव।
असनिन पात सदाव गुमट मंडप गृह फुट्टव॥
पवन फेट गिरिकूट लगत लुंबत लहरावत।
बिज्जुन पात दरारि पुहुवि नैक न कल पावत॥
कहि सुनि न सकैं कहु कोउ किहिं कठिन त्राहि मन करि करिय।
सांवर्त बाल सत्तम बरस तदिन अद्रि नख उद्धरिय॥ —वंश० ५६१।१२

यहां प्रलयंकारी वर्षा का वर्णन प्रसंगवश किया गया है। इसमें साधारण-धर्म समाविष्ट नहीं हो पाया है। अन्य स्थानों पर वर्षा-वर्णन उपमान रूप से हुए हैं जिनमें तत्संबंधी कवि परम्पराओं का भी समावेश है। यथा—

पाउस घन घनघन प्रतिम पुहवीदलन प्रपात।
कहि सहस कि प्रसार कौं बनता जितें जात॥ ३

इन्द्रायुध केतन उदित चपला असिवर चंड।
गति खद्योत पुलिंग गन बक बारन द्विज दंड॥ ४

गज्जन बज्जन बैरिगन पुज्जहु तोरन फेर।
चातक घंटा भीरिका झिल्लि दिसबब सेर॥ —वंश० ११६१।५

यहां मेघों की सघनता, इन्द्र धनुष, चपला, खद्योत, बक पंक्ति, मेघ-गर्जना, कड़कड़ाहट, चातक, झींगुर की झनकार आदि उपमान रूप में वर्णित होकर युद्ध-रूपक को अनुभावित कर रहे हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी (वंश० २६८७। १४-१७) बिजली की दमक, दादुर

की दुरदुराहट, इन्द्र-धनुष मेघ के निर्घोष, ओलों का गिरना, बक-पंक्ति, खद्योत, मेघधारा आदि उपमान रूप में वस्तु समुच्चय हैं। एक स्थान (वंश० ३१५० । ९-१०) पर वर्षा-वर्णन उपमान रूप में आया है। सेना वर्णन के प्रसंग में वर्षा और सेना के धर्म का समानान्तर चित्रण भी दर्शनीय है—दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्र घटाटोप के कारण छिप गये, उल्लू रात्रि की तथा चकवे दिन की कामना करने लगे, रात-दिन की संधियों (प्रभात-संध्या का) ज्ञान नहीं रहा, ऐसा अखंड अंधकार मेघाडम्बर की भांति छा गया। इधर (सेना में) 'मादळ' घनघोर शब्द करते हुए चले और उधर (मेघ में) भाद्रपद के मेघ गर्जना करते हुए मिले। इधर पराक्रम बढ़ा और उधर पानी। इधर वीर-रस पराक्रम का सहायक हुआ और उधर समीराघात धाराधार का सहायक हुआ। इधर नौबत और उधर गर्जन का आराव फैला। इधर के संभार को कोई नहीं चाहता था, उधर के आगम की संसार आशा करता था। इधर बाण-वर्षा हुई और उधर जल-वर्षा। इधर अनेक रंग हैं उधर मात्र श्वेत और श्याम। दोनों ओर वेग की सुन्दरता विद्यमान है। इधर सेना का हरावल और उधर जल की लहरें शोभा देती हैं। इधर वीर हर्षित हो रहे हैं तो उधर मयूर। इधर गज-दंत और उधर बक-पंक्ति शोभायमान है—जो आगे को दौड़ रही है। इधर पाखरों का शोर है और उधर दादुरों की ध्वनि। इधर गिद्ध तो उधर चातक प्रसन्न हो रहे हैं। इधर तलवारों की दमक है तो उधर बिजली की चमक। इधर धरती तो उधर नभ आच्छादित होता है। इधर पराक्रम का और उधर मेघ-ज्योति का प्रकाश होता है। इधर रजोगुण का और उधर वीरबहूटियों का रंग फैलता है। इधर बाण-वर्षा है और उधर ऊसर पर जल-वर्षा। इधर राज-पुत्र हैं उधर ब्रह्म-पत्र (इन्द्र)। इधर धरती को लेने की तो उधर धरती को देखने की चाह है। इधर नीति-विस्तार का लक्ष्य है उधर अन्न-प्रसार का। इधर भूमि को अपना कहने की घोषणा है, उधर आकाश को अपना कहने की बात है। इधर 'खेह' सूर्य को ढकने का सामर्थ्य व्यक्त करती है तो उधर मेघ गर्जन-तर्जन से घोषित करते हैं कि उनका विस्तार उनसे कहीं बढ़चढ़ कर है। इधर धनुष तानने के यत्न हैं तो उधर मेघों में इन्द्र-धनुष का नया विस्तार है। इधर पर्वतों को रज-रज करने की हठ है तो उधर जल का कीचड़ बनाकर उसकी रक्षा करने की होड़ है। इधर तोपियों के गीत रचने की चर्चा है तो उधर से ओलों द्वारा संसार को बधिर कर देने की योजना है। इधर बाण-वर्षा से देश को आच्छादित कर देने की बात है तो उधर जल बूंदों का विशेष अन्वेषण। इधर शस्त्र-वर्षा है तो उधर प्रलयंकारी वृष्टि। इधर का नरेश बदशाह है तो उधर का सुरेश। दोनों साथ-साथ पृथ्वी पर अभियान करने को सजे हैं। इधर रक्त-प्रवाह का हठ है तो उधर जल प्रलय का। दोनों हठपूर्वक धरती पर रक्त और पानी का कीचड़ मचाने चल पड़े हैं। इधर हठपूर्वक बूंदी को घेरा गया तो उधर होड़ में आगे बढ़कर वर्षा ने संपूर्ण भूमि पर अपना फैलाव कर दिया। यथा—

... ... ।

दिप्यो निस चंद न बासर चंड, बढ़े निस घूक तथा दिन चंड ॥ २४
भुले सविता निस बासर संधि, छयो तम तोम प्रभा घन बंधि ।
चले इत मद्दल मद्दल चाल, मिले उत भद्दव मद्दल माल ॥ २५

छल्यो इत पानिप श्रो उत नीर, सहायक त्यों रसबीर समीर।
घुरै इत नौबति श्रो उत गज्ज, इतै भुव पाय उतै नभ सज्ज ॥ २६
इन्हें न चहै रु उन्हें जग श्रास, बनै इत शस्त्र उतै जल बास।
इतै बहुरंग उतै सित स्याम, लसै इत श्रो उत बेग ललाम ॥ २७
लखै इत श्रग्र उतै सहरून, दिपै मुद सूर मयूरन दून।
इतै गज दंत उतै बक व्रात, इतै उत दौरत श्रग्र दिखात ॥ २८
इतै उत पक्खर दद्दुर बुल्लि, इतै उत गिद्ध रु चातक फुल्लि।
इतै उत खग्ग रु बिज्जुल श्रोघ, इतै उत होत धरा नभ मोघ ॥ २६
इतै उत श्रोज दुरम्मद भास, रजोगुन बूढ़नि व्रात बिलास।
झरै सर यों उत झद्दर जुत्त, इतै उत भूपन मंमन पुत्त ॥ ३०
कहूँ इत लेन मही कछवाह, कहूँ उत पिक्खि हमें वह चाह।
कहूँ यह नीति बिचारन करथ, कहूँ वह श्रम्म प्रचारन श्रत्थ ॥ ३१
कहूँ इत है तव श्रप्पन भुम्मि, कहूँ उत श्रापन है घन घुम्मि।
कहूँ इत हैं रवि ढंकन हार, कहूँ उत बद्दल ज्यों न बिचार ॥ ३२
कहूँ इत चाप चढ़ावन बत्त, कहूँ उत सज्जित श्रायत श्रत्त।
इतै रज श्रद्रि उड़ावन बाद, कहूँ उत रवखहिं संबर साद ॥ ३३
कहूँ इत मंडहिं गोलिन गान, कहूँ उत मूक करैं करकान।
कहूँ इत श्रानन छावन देस, कहूँ उत बुंदनतैं न बिसेस ॥ ३४
कहूँ इत श्रायुध वुट्ठि श्रनल्प, कहूँ उत वुट्ठि करैं हम कल्प।
इतै प्रभु कुम्भ उतैं सुर ईस, इतैं उत सज्जित छोनिय सीस ॥ ३५
बढ़ै दल बद्दल यों रवि बाद, सु सोनित संबर मंडन साद।
दिपै प्रविसे इत बुंदिय देस, धरे बिथुरे उत भुम्मि श्रसेस। —वंश० ३४००।३६

वर्षा श्रोर सेना के इस समानान्तर वर्णन में कवि ने जहां सैन्य-संसार को विभावात्मक बनाया है वहां वर्षा-वर्णन को सुंदर उपमान रूप में प्रस्तुत करके श्रपनी कल्पना-शक्ति तथा कला-कौशल का भी प्रमाण दिया है। युद्ध तथा सेना के उपमानयुक्त चित्रण में वर्षा ही विशेष उपयुक्त साधन है। श्रतएव कवि ने वर्षा-रूपक श्रपेक्षाकृत श्रधिकता से प्रस्तुत किये हैं।

(ग) बसन्त ऋतु— कवि की कल्पना का चमत्कार वहाँ देखने को मिलता है जहां उसने बसन्त श्री को उपमान रूप में प्रस्तुत करके युद्ध की बीभत्सता को माधवी सौंदर्य प्रदान किया है। यथा—

उड़त तरत्तर श्रमित सीस जितितित श्रसि संक्रम।
सुमन गिनहु निज समय सुमन चटकत गुलाब सम ॥

कर पय पल्लव किरन तरुन लोहित किसलय लति।
गुटिका अलिगन गुंजि कुसुम लोचन बिकसे कलि॥
गज छिन्न भिन्न मानहु गिरि न सुम किंसुम थल बात सह।
केतन रसाल पिक घंट करि किय माधव माधव कलह॥

—वंश० २११२। ४४

यहाँ बसन्त शोभा—गुलाबों की चटक, ताम्रवर्णी किसलयों की कान्ति, भ्रमरों के गुंजार, पुष्पों की विकास-प्रभा, पलाश की रक्त-श्यामलता, आम्रमंजरी का प्रसार और कोयल की कूक द्वारा वीभत्स रस को सौंदर्य माधुरी में परिणत करने की यह योजना अनूठी है। हिन्दी के अन्य किसी कवि की तुलना में इसे रखा जाय—यह समझ में नहीं आता बसंत का वर्णन युद्ध-प्रसंगान्तर्गत उपमान रूप में ही हुआ है। (वंश० २८८१। ७१)

अभी तक यह माना जाता रहा है कि हिन्दी कविता-धारा को लोक-जीवन की ओर मोड़ने का प्रथम श्रेय भारतेंदु को है। किंतु सूर्यमल्ल के प्रकृति-वर्णन इस मोड़ की एक पूर्व पीठिका की ओर संकेत करते हैं। वंशभास्करकार द्वारा रचित युद्ध के होली तथा फाग रूपक देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि भारतेंदु से पूर्व लोकचित्रण की शैली हिन्दी कविता में आ गई थी। प्रातः तथा संध्या-वर्णन भी इस कथन के प्रमाण हैं। फाग रूपक में जहाँ कवि ने युद्ध के विभावात्मक चित्रों को उभारा है, वहाँ बसन्तोत्सव से संबद्ध लोक जीवन को भी उपमान रूप में प्रकाशित किया है। यथा—

रुहिर रंग बढ़ि बहत छेद छुट्टिय पिचकारिन।
डफ मद्दल डिंडिमय तान भडन सिव तारिन॥
पात गुरज पुट्टलिय पुहुप अंगार प्रकासत।
खग्ग खग्ग मिलि खिरत धुर अद्बीर विभासत॥
जुग्गिनि जमाति पननारि जिम आलापन झुकि उच्चरत।
दीदारबखस बुधसिंह दुव कलह फग्ग कौतुक करत॥ ७

पहुमि छत्र कटि परत जरत चामर ज्वालानल।
बरत बीर मच्छरिय झरत हेतिन कृसानुझल॥
कोसन कलह दरंत बाढ असि बर इक बज्जत।
बहु निसंग विक्खरत चाप तुट्टत सर सज्जत॥
तरफत प्रमत्त हिंदुव तुरक आलम दल जालम जर्यो।
नववय खिल्हार बुंदिय नृपति आजम सुत बढ़ि अंगर्यो॥

—वंश० २१८६। ८

यहाँ होली के हुड़दंग, रंगभरी पिच्चकारियों के खेल, डफ, डिडिम पर फैलती हुई तानें, अबीर गुलाल आदि के बुक्के बसन्तोत्सव का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। लोक-जीवन के ऐसे ही चित्र अन्यत्र (वंश० ३१७४। १४५–१४८) भी द्रष्टव्य हैं।

क—अन्य-ऋतुएँ—अन्य ऋतुओं के उपमान मूलक संक्षिप्त वर्णन भी यत्र तत्र बिखरे हुए

मिलते हैं। जैसे भय-प्रकंप आदि में शिशिर, उजाड़, पतन, विनाश आदि में हेमंत तो तोप-युद्ध में ग्रीष्म के उपमान-गत वर्णन आये हैं। दावाग्नि रूपक (वंश० १४३६। ११-३७) को छोड़कर इनमें से कोई उल्लेखनीय नहीं है।

आ—प्रातःकाल, संध्या तथा रात्रि-वर्णन—

क—प्रातःकाल-वर्णन—प्रातःकाल के वर्णन आलंबनात्मक तथा रूढ़ि-ग्रस्त होते हुए भी लोक-जीवन समन्वित हैं। इन वर्णनों में यद्यपि स्थूल-प्रकृति दृश्यात्मक नहीं हो पाई है तथापि उनमें लोक-जीवन मुखरित हो उठा है जो कविता को लौकिकता की भूमि पर आने का दिशा-संकेत कर रहा है।

देखिये—अब प्रातःकाल आया। मुर्गे बोलने लगे। कमल-कोष में कैद भँवरे उड़ने लगे। रसिक जन भी परकीया के वक्ष से वियुक्त हो गये। पर्वत की गुफाओं में अंधकार सिमटकर घनीभूत होने लगा। मंदिरों में शंख-घड़ियालों का घोष होने लगा। चकवा-चकवी संयोग-सुख प्राप्त कर हर्षित हुए। रवि-बिंब दिखने लगा, तारों का प्रकाश मंद हो चला। ग्वालों के घर दधि-मथन के शोर से भर उठे। चोरों ने मार्ग छोड़ कर घाटियों की शरण ली। उल्लू मौन होकर कोठारों में दुबक गये। उदयाचल पर फैली अनूठी आभा से चंचल चिड़ियाएं चहचहा उठीं। यथा—

अब प्रातकाल आया कुकवाकु कुकार्ने।
अरविंदतें उड़े के अलि रत्ति रुकानें॥
परदार छोडि छाती नर जार पलाया।
गिरिराज की गुफामें तम तोम चलाया॥ ६१

दर घंट देहुरों में दर नाद बजाया।
चहि भोग चक्क चक्की सुख मेल सजाया॥
तारेन मंद तेजी रवि बिंब दुराया।
मथान ग्वाल गेहों घनघोर घुराया॥ ६२

तजि पथ चोर चक्के छिपनों दरीन में।
गहि मौन घूक बैठे तह कोटरीन में॥
उदयाद्रिपें अनूठी इक रोचि लखाई।
चल चाटकेर चौंके चहकानि मचाई॥

—वंश० ३२७४। ६३

ऐसे वर्णनों में *काव्य-रूढ़ियों का निर्वाह भी हुआ है तथा लोक-जीवन के चित्रों का* समावेश भी।

ख—संध्या तथा रात्रि-वर्णन—

संध्या तथा रात्रि-वर्णन के प्रसंग भी इसी स्तर के हैं। प्रातः-वर्णन की भांति इनमें भी लोक-जीवन की झांकी दर्शनीय है।

कर पय पल्लव किरन तरुन लोहित किसलय तति ।
गुटिका अलिगन गुंजि कुसुम लोचन बिकसे कलि ।।
गज छिन्न भिन्न मानहु गिरि न सुम किंसुम फल बात सहु ।
केतन रसाल पिक घंट करि किय माधव माधव कलहु ।।

—वंश० २१६६ । ४४

यहां बसन्त शोभा—गुलाबों की चटक, ताम्रवर्णी किसलयों की कान्ति, भ्रमरों के गुंजार, पुष्पों की विकास-प्रभा, पलाश की रक्त-श्यामलता, आम्रमंजरी का प्रसार और कोयल की कूक द्वारा बीभत्स रस को सौंदर्य माधुरी में परिणत करने की यह योजना अनूठी है । हिन्दी के अन्य किसी कवि की तुलना में इसे रखा जाय—यह समझ में नहीं आता। बसंत का वर्णन युद्ध-प्रसंगान्तर्गत उपमान रूप में ही हुआ है। (वंश० २८८१ । ७१)

अभी तक यह माना जाता रहा है कि हिन्दी कविता-धारा को लोक-जीवन की ओर मोड़ने का प्रथम श्रेय भारतेंदु को है। किंतु सूर्यमल्ल के प्रकृति-वर्णन इस मोड़ की एक पूर्व-पीठिका की ओर संकेत करते हैं। वंशभास्करकार द्वारा रचित युद्ध के होली तथा फाग-रूपक देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि भारतेंदु से पूर्व लोकचित्रण की शैली हिन्दी-कविता में आ गई थी। प्रातः तथा संध्या-वर्णन भी इस कथन के प्रमाण हैं। फाग रूपकों में जहां कवि ने युद्ध के विभावात्मक चित्रों को उभारा है, वहां बसन्तोत्सव से संबद्ध लोक-जीवन को भी उपमान रूप में प्रकाशित किया है। यथा—

बहिर रंग बढि बहत छींट छुटिय पिचकारिन ।
डफ मद्दल डिंडिमय तान मडन सिव तारिन ।।
पात गुरज पुट्ठलिय पुहप अंगार प्रकासत ।
खग्ग खग्ग मिलि खिरत चूर यदुबीर बिमासत ।।
झुल्लिनि अमाति पनगारि जिम आसापन मुकि उच्छरत ।
हीदारबलख बुधसिंह दुव कलहु फाग कौतुक करत ।। ७

पहुमि छत्र कटि परत करत चामर च्वाफानन ।
करत बीर धम्मरिय भरत हैतिन हत्तानुभन ।।
कौसन कमहु दरंत बाड अभि बर इक बज्जत ।
बहु निसंग बिच्छरन चार टुट्टन हर सज्जत ।।
तरपत्र प्रमत्त हिंदुव तुरक आगम बस आगम बग्यौ ।
नवबन सिरहार बुंदिय नृपति आगम फुन बढि धगग्यौ ।।

—वंश० ३१८६ । ८

यहां होली के हुड़दंग, रंगभरी पिचकारियों के खेल, डफ, डिंडिम पर ढलती हुई तानें, अबीर गुलाल आदि के झुरके बसन्तोत्सव का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। लोक-जीवन के ऐसे ही चित्र अन्यत्र (वंश० ३१७४ । १४१-१४८) भी द्रष्टव्य हैं।

ङ—अन्य-ऋतुएं—अन्य ऋतुओं के उपमान मूलक संश्लिष्ट वर्णन भी जब तब बिखरे हुए

मिलते हैं। जैसे भय-प्रकंप आदि में शिशिर, उजाड़, पतन, विनाश आदि में हेमंत तो लोप-युद्ध में ग्रीष्म के उपमान-गत वर्णन पाये हैं। दावाग्नि रूपक (वंश० ३४३६। ११-३७) को छोड़कर इनमें से कोई उल्लेखनीय नहीं हैं।

आ—प्रातःकाल, संध्या तथा रात्रि-वर्णन—

क—प्रातःकाल-वर्णन—प्रातःकाल के वर्णन आलंबनात्मक तथा रूढ़ि-ग्रस्त होते हुए भी लोक-जीवन समन्वित हैं। इन वर्णनों में यद्यपि स्थूल-प्रकृति दृश्यात्मक नहीं हो पाई है तथापि उनमें लोक-जीवन मुखरित हो उठा है जो कविता को लौकिकता की भूमि पर आने का दिशा-संकेत कर रहा है।

देखिये—अब प्रातःकाल आया। मुर्गे बोलने लगे। कमल-कोष में क़ैद भँवरे उड़ने लगे। रसिक जन भी परकीया के वक्ष से वियुक्त हो गये। पर्वत की गुफाओं में अंधकार सिमटकर घनीभूत होने लगा। मंदिरों में शंख-घड़ियालों का घोष होने लगा। चकवा-चकवी संयोग-सुख प्राप्त कर हर्षित हुए। रवि-बिंब खिलने लगा, तारों का प्रकाश मंद हो चला। ग्वालों के घर दधि-मंथन के शोर से भर उठे। चोरों ने मार्ग छोड़ कर घाटियों की शरण ली। उल्लू मौन होकर कोठारों में दुबक गये। उदयाचल पर फैली अनूठी आभा में चंचल चिड़ियाएं चहचहा उठीं। यथा—

अब प्रातकाल आया कुकवाकु कुकानें।
अरविंदतें उड़े के अलि रत्ति रुकानें॥
परदार छोडि छाती नर जार पलाया।
गिरिराज की गुफामें तम तोम चलाया॥ ६१
दर घंट देहुरों में बर नाद बजाया।
चहि मोग चक्क चक्की सुख मैंन सजाया॥
तारेन मंद तेजो रवि बिंब दुराया।
मथान ग्वाल गेहों घनघोर घुराया॥ ६२
तजि पंथ चोर चक्के छिपनें दरीन में।
गहि मौन घूक बैठे तरु कोटरीन में॥
उदयाद्रिपें अनूठी इक रोचि लखाई।
चल चाटकेर चौंके चहकानि मचाई॥

—वंश० ३२७४। ६३

ऐसे वर्णनों में काव्य-रूढ़ियों का निर्वाह भी हुआ है तथा लोक-जीवन के चित्रों का समावेश भी।

ख—संध्या तथा रात्रि-वर्णन—

संध्या तथा रात्रि-वर्णन के प्रसंग भी इसी स्तर के हैं। प्रातः-वर्णन की भांति इनमें भी लोक-जीवन की झांकी दर्शनीय है।

सूर्य छिप गया, संध्या पार कर रात्रि का अंधकार संसार पर छाने लगा। कमल घो में डूब गये। देवालयों में झालर-घंटियां बजने लगीं। गायें अपने बछड़ों से मिलीं। उल्लू दि के छिपने की घोषणा करने लगे। चकवे चौंककर चकवियों को छोड़ने लगे। गिगिलि चिचियाहट करने लगीं, निशाचरों की निधियां खुलने लगीं। चोरों के घाव चौतरफ बढ़ लगे वैसे ही जारों के मन में परकीया-रति का मोद बढ़ने लगा। दिनचारी-जीव भय ग्रस होकर अपने निवासों में छिपने लगे। आकाश में नक्षत्रों की चित्रावली छिटकने लगी। घरों दीपावली का प्रकाश प्रसारित होने लगा। संध्या-भोजन के लिए चूल्हों में अग्नि प्रज्वलि होने लगी। गायक 'गौड़ी' राग गाने लगे। गणिकाएं भुजंगों (गणिका-प्रेमियों) का आलि गन करने लगीं। स्वकीयाओं के हृदय में पति-रति का भाव उदय हुआ और परकीयाएं अप पति से दूर होने लगीं। मुग्धा नवोढ़ाओं के मन भयपूर्ण हुए, उनके मन में बोध-रहित का का प्रच्छन्न विकास हुआ। प्रौढ़ा नायिकाओं ने रति-क्रीड़ा-सक्त होकर लज्जा छोड़ दी अधीराओं ने क्रोध के साथ रारि मोल ली। धीरा नायिकाओं ने पति के अपराधों को क्षम करके उन्हें वशीभूत कर लिया। उपपति-विदग्धा नायिकाओं के दाव-चातुर्य के शिकार बने रसानुभूति-रत स्वयं-दूतिकाओं का केलि-विस्तार होने लगा। समवयस्का लक्षिताएं भी छिपं न रह सकीं। कामुकी कुलटाएं घर छोड़कर उपपति की खोज में चल पड़ीं। मुदिताओं के मन में प्रीति घनी होने लगी। अनुशयाना-नायिकाओं के मन में संकेत-स्थल के नाश औ नायक न मिल पाने की आशंका होने लगी। संयोग-दुखिता नायिका के दुःख को देखक रूप-गर्विता एवं प्रेम-गर्विता नायिकाएं हर्षित हो उठीं। प्रोषित-पतिकाओं का विलाप औ खंडिताओं का क्रोध बढ़ने लगा। कलहांतरिता नायिका दिन भर की टेक छोड़ कर अब डरी हुई हिरनी की भांति उठीं। विप्रलब्धा इष्ट नायक के न मिलने पर दूती पर कुपित होने लगी। उत्कंठिता नायिका नायक के अनागम का निदान पूछने लगी तो वासक सज्जा-प्रसा- धनों सहित नायक की प्रतीक्षा करने लगी। स्वाधीन पतिकाएं गर्व में भरकर अपने पति की सेवा करने लगीं तो अभिसारिकाएं भी नये-नये वेश में सजने लगीं। कुवलय की गंध चौतरफ फैलने लगी और चन्द्रमा उदयगिरि पर प्रकट हुआ। चंद्र के योग से औषधियों ने पुष्टि प्राप्त की तथा चकोर मोदमग्न होकर गहकने लगे—

छपि भानु छटा सु जिहान छई, मिलि कंज बिरंज हु सोक भई।
बिबुधालय झल्लरि घंट बजे, सुरभीन स्वबच्छन मेल सजे ॥ १०

दिन मूकन घूकन हूक दई, चित चक्कन चौंकि तजी चकई।
चिलकारिन पिंगलिका चहकी, निधिसी निसचारन धारन की ॥ ११

चहुं ओरन चोरन चाय चढ़ें, बहु जारन दारन मोद बढ़ें।
दिनचार भयार अगार दुरें, फबि व्योम नछत्तन चित्र फुरें ॥ १२

जुरि दीप निवासन भास जगी, दहनोदय चुल्हिन हेति दगी।
रचि गायक गोरिय गान रहे, गनिकान उमगि भुजंग गहे ॥ १३

रस पीय स्वकीयन हीय रजे, परकीयन हीयन पीय तजे।
भय मुद्ध नवोढन चित्त भर्‌यो, हिय छुच्छय अप्पन बोध हर्‌यो ॥ १४

बसि प्रोढन केलि श्रपा बिसरी, कुछ धारि अधीरन रारि करी।
छमि आगस धीरन नाह छले, चढि चाव विदग्धन दाव चले ॥ १५
रसभूति स्वदूतिन क्रत्ति रची, बयवारिन लच्छि तिकान बची।
कुलटा तजि गेह सनेह क्रमी, जियमें मुदितान सु प्रीति जमी ॥ १६
अनुपुब्ब सयानन भीति भरी, पिय संग सहेट न भेट परी।
परभोग दु खीन सखी परखी, हिय रूप रु प्रेमवती हरखी ॥ १७
पतिपोषितकान बिलाप पर्यो, कुध मानस खडिताअन कर्यो।
दिन टेक निबाहे अबै दरिता, तजि मान उठी कलहंतरिता ॥ १८
फणि बिप्रसलब्धन सोक भिल्यो, मन सेट सहेट न आनि मिल्यो।
उतकठिनि पुच्छि निदान भली, लखयो मग वासक सज्ज लली ॥ १९
भर दर्प अधीनहनान भज्यो, अभिसारिनि वेस नयो उपज्यो।
बहुगंध कुबेलन को बिकस्यो, ससिहू व उदैगिरितै निकस्यो ॥ २०
ससि के बसि ओषधि पोष लह्यो, गहकाय चकोरन मोद गह्यो।
... ... ॥ वंश० २९१७ २१

संध्या तथा रात्रि का यह एकमात्र वर्णन है जो वंशभास्कर में मिलता है। इसमें नायिका-भेद की गणना करने का अवसर जो कवि ने यहां निकाल लिया है वह उस पर रीतिकालीन प्रभाव परिलक्षित कर रहा है।

प्रकृति-वर्णन के उदाहरण मात्र नमूने के लिए आए हैं। इन वर्णनों में कवि की प्रतिभा को उन्मुक्त विकास का अवसर नहीं मिल सका है।

विवाह वर्णन—

वंश-प्रकाशक ग्रन्थ होने के नाते इस महाग्रन्थ में विवाह-वर्णनों के लिए यथेष्ट अवकाश था किंतु कवि को प्रकृति-वर्णन की भांति हर बार विवाह की दकदक अथवा बरात आदि की सज्जा का विस्तार करना अभीष्ट नहीं है। विवाह के अधिकांश स्थल तो मात्र संकेत से ही निपटा दिये गये हैं। कुछ स्थल संक्षेप में वर्णन किये गये हैं जो विवाह के भेद, रीति आदि का ज्ञान कराने के उद्देश्य से आये हैं। कुछेक स्थलों पर कवि ने काव्य-प्रतिभा का उपयोग करते हुए विवाह-सज्जा, बरात आदि के वर्णन किये हैं जो सुन्दर बन पड़े हैं। विवाह-वर्णनों में बहुज्ञता प्रदर्शन का लक्ष्य सदैव सामने रहा है। रामसिंह के विवाह वर्णन की बानगी देखी जाय।

इस विवाह के प्रसंग में बारात के प्रस्थान का सेनाभियान के समान विभावात्मक वर्णन (वंश० ४१२५। ४२-४७) किया गया है। कवि ने इसका हेतु इन शब्दों में स्पष्ट किया है—

कुरीति गीत इहुन कहत, समिति ब्याह उच्छाह इक (वंश० ४१२६। ४४) इसे ही

सूर्य छिप गया, संध्या पार कर रात्रि का अंधकार संसार पर छाने लगा। में डूब गये। देवालयों में झालर-घंटियाँ बजने लगीं। गायें अपने बछड़ों से मिलीं। के छिपने की घोषणा करने लगे। चकवे चीत्कार कर चकवियों को छोड़ने लगे। चिचियाहट करने लगीं, निशाचरों की निचियाँ सुनने लगीं। चोरों के चाव बढ़ने लगे वैसे ही जारों के मन में परकीया-रति का मोद बढ़ने लगा। दिनचारी-जीव होकर अपने निवासों में छिपने लगे। आकाश में नक्षत्रों की चित्रावली छिटकने लगी। दीपावली का प्रकाश प्रसारित होने लगा। संध्या-भोजन के लिए चूल्हों में अग्नि होने लगी। गायक 'गौड़ी' राग गाने लगे। गणिकाएं भुजंगों (गणिका-प्रेमियों) का गन करने लगीं। स्वकीयाओं के हृदय में पति-रति का भाव उदय हुआ पति से दूर होने लगीं। मुग्धा नवोढ़ाओं के मन भयपूर्ण हुए, उनके मन में बोध का प्रच्छन्न विकास हुआ। प्रौढ़ा नायिकाओं में रति-क्रीड़ा-सक्त होकर लज्जा अधीराओं ने क्रोध के साथ रारि मोल ली। धीरा नायिकाओं ने पति के करके उन्हें वशीभूत कर लिया। उपपति-विदग्धा नायिकाओं के हाव-चातुर्य के रसानुभूति-रत स्वयं-दूतिकाओं का केलि-विस्तार होने लगा। समवयस्का सखियाँ न रह सकीं। कामुकी कुलटाएं घर छोड़कर उपपति की खोज में चल पड़ीं। मन में प्रीति घनी होने लगी। अनुशयाना-नायिकाओं के मन में संकेत-स्थल नायक न मिल पाने की आशंका होने लगी। संयोग-दुखिता नायिका के रूप-गर्विता एवं प्रेम-गर्विता नायिकाएं हर्षित हो उठीं। प्रोषित-पतिकाओं का विरह खंडिताओं का क्रोध बढ़ने लगा। कलहांतरिता नायिका दिन भर की टेक छोड़ कर हुई हिरनी की भांति उठीं। विप्रलब्धा इष्ट नायक के न मिलने पर दुःखी लगी। उत्कंठिता नायिका नायक के अनागम का निदान पूछने लगी तो वासक सज्जा घनों सहित नायक की प्रतीक्षा करने लगी। स्वाधीन पतिकाएं को सेवा करने लगीं तो अभिसारिकाएं भी नये-नये वेश को सजने लगीं। चौतरफ फैलने लगी और चन्द्रमा उदयगिरि पर प्रकट हुआ। चंद्र के योग से पुष्टि प्राप्त की तथा चकोर मोदमग्न होकर गहकने लगे—

छपि भानु छपा सु जिहान छई, मिलि कंज विरंज हु सोक भई।
विबुधालय झल्लरि घंट बजे, सुरभीन स्ववच्छन मेल सजे॥ १०

दिन मूकन घूकन हूक दई, चित चक्कन चौंकि तजी चकई।
चिलकारिन पिंगलिका चहकी, निषिसी निसचारन घारन की॥ ११

चहुं श्रोरन चोरन चाय चढ़ै, बहु जारन दारन दारन मोद बढ़ै।
दिनचार भयार अगार दुरै, छबि व्योम नछत्रन चित्र फुरै॥ १२

जुरि दीप निवासन भास जगी, दहनोदय चुल्हिन हेति दगी।
रचि गायक गौरिय गान रहे, गनिकान उमगि भुजंग गहे॥ १३

रस पीय स्वकीयन हीय रजे, परकीयन तीयन पीय तजे।
भय मुद नवोढन चित्त भर्‌यो, हिय छुच्छय मध्यन बोध हर्‌यो॥ १४

बसि प्रोढन केलि त्रपा बिसरी, कुछ धारि मधीरन रारि करी।
छमि मागस धीरन नाह छले, घढि चाव बिदग्धन दाव चले ।। १५
रसभूति स्वदूतिन ऊति रची, बयबारिन लच्छि तिकान बची।
कुलटा तजि गेह सनेह कमी, जियमें मुदितान सु प्रीति जमी ।। १६
मनुपुब्ब सयानन भीति भरी, पिय संग सहेट न भेट परी।
परभोग दु लीन लखी परखी, छिय रूप रु प्रेमवती हरखी ।। १७
पतिपोषितकान बिलाप पर्‌यो, कुच मानस खंडितिकान कर्‌यो।
दिन टेक निबाहे मबै दरिता, तजि मान उठी कलहंतरिता ।। १८
झगि बिप्रसलब्धन सोक भिल्यो, मन सेट सहेट न प्रानि मिल्यो।
उतकठिनि पुच्छि निदान मली, लखयो मग बासक सज्ज लली ।। १९
भर दर्प मधीनइनान भज्यो, धमिसारिनि वेस नयो उपज्यो।
बहुगंध कुबेलन को बिकस्यो, ससिहू ब उदंगिरितें निकस्यो ।। २०
ससि के बसि मोषधि पोष लह्यो, महकाय चकोरन मोद गह्यो।
... ... ।। वंश० २६६७ २१

संध्या तथा रात्रि का यह एकमात्र वर्णन है जो वंशभास्कर में मिलता है। इसमें नायिका-भेद की गणना करने का अवसर जो कवि ने यहाँ निकाल लिया है वह उस पर रीतिकालीन प्रभाव परिलक्षित कर रहा है।

प्रकृति-वर्णन के उदाहरण मात्र नमूने के लिए आए हैं। इन वर्णनों में कवि की प्रतिभा को उन्मुक्त विकास का अवसर नहीं मिल सका है।

विवाह वर्णन —

वंश-प्रकाशक ग्रन्थ होने के नाते इस महाग्रन्थ में विवाह-वर्णनों के लिए यथेष्ट अवकाश था किंतु कवि को प्रकृति-वर्णन की भाँति हर बार विवाह की दकदक अथवा बरात आदि की सज्जा का विस्तार करना अभीष्ट नहीं है। विवाह के अधिकांश स्थल तो मात्र संकेत से ही निपटा दिये गये हैं। कुछ स्थल 'संक्षेप ... गये हैं जो विवाह के भेद, रीति आदि का ज्ञान कराने के उद्देश्य से ... पर कवि ने काव्य-प्रतिभा का उपयोग करते हुए ... किये हैं जो सुन्दर बन पड़े हैं। ... रहा है। रामसिंह के विवाह वर्णन

... सैनाभियान के समान विभावात्मक ... ने इनका हेतु इन शब्दों में स्पष्ट

... इक (वंश० ४१२६।४४) इसे ही

सिद्धान्त वाक्य मानकर बारात का सैनाभियान-वत वर्णन करने में कवि ने अद्भुत और भयानक की विभाव कल्पना का उपयोग किया है—

प्रत्येक मुकाम पर सुकवि, पंडितों का सम्मान करते हुए, बरात के साथ उत्सव-दान आदि की प्रसिद्धि फैलाते हुए, प्रणव, दुंदुभि, पटह, मुरज, ढक्का, गोमुख आदि वाद्यों की ध्वनि से संपूरित हाथियों की चिंघाड़ और घोड़ों की हिनहिनाहट से निनादित मेघ गर्जना का सा आरव फैलाते हुए, पारवी हाथी पर बैठकर दूल्हे की बरात चली। गायक योग्य गायन करते थे, बंदी और भाट विरुदावली का बखान करते चलते थे। घोड़ों की खुरतालों से पर्वत की चट्टानें टूट-टूटकर रज चूर्ण बनती थीं; धरती की संधियाँ टूटती थीं; शेष के फण शिथिल होते थे; वन, पर्वत, बट-उब्बट, टूटकर समतल सीधे मार्ग बनते थे; हस्ति गर्जन और वाद्य-निनाद दिग्दिगंतर में गूंजकर घोषणा करते थे कि बूंदी नरेश की बारात जोधपुर विवाह करने जा रही है। हाथियों पर पताकाओं के समूह फहराते हुए शोभित होते थे। उनकी शुण्डों से धरती पर छिड़काव होता था जैसे भादों की मेघ-झारी हो रही हो। शेषनाग की फणमाला लचकने लगी। वाराह की दाढ़ें तड़कने लगीं। शत्रुओं के हृदय भय से धड़क-धड़ककर दरकने लगे। मार्ग में पड़ने वाले दुर्ग-पतियों के मन सशंक हो उठे और उनमें परस्पर मन्त्रणाएँ भी होने लगीं। सूर्य यों आच्छादित हो गया जैसे शरद के बादलों से चंद्रमा ढँक जाता है। बाणों के पत्रों से जैसे तरकश भर जाता है वैसे ही गगन-मंडल भालों से भर गया। वन्य जन्तु भागने लगे किंतु भागते-भागते भी सेना-विस्तार के भीतर ही थककर प्राण छोड़ने लगे। कितने ही पक्षियों के शरीर धनुर्धारियों के बाणों से छिदने लगे। हाथी की पीठ पर बैठे दूल्हे ने अपना यशगान सुनकर रकों को वैभव देने की घोषणा की। नकीब जन इस प्रकार राज-यश गाने लगे जैसे मेघ इन्द्र-महिमा का गान करते हैं। बरात की ओट पाकर पवन भी उल्टी गति से लौट जाता था। यदि दल से अग्र भाग को पानी मिलता था तो पश्च भाग को कीचड़ भी नसीब नहीं होता था। बारात की खबर से आसपास के मेवासी संत्रस्त होने लगे, राजा के गुणों की चर्चा आसमुद्र व्याप्त हो मित्र-मंडल प्रसन्न होने लगा और ग्राम्य-जन प्रसन्नतापूर्वक उत्सव करके बधाई-कलश पहुँचाने लगे। यथा—

प्रति मुकाम क्रम प्रचुर सुकवि पंडित सनमानिय।
सह बरात मह सुजह दिपत प्रस्थित तह दानिय॥
पणव स दुंदुभि पटह मुरज ढक्का गोमुख मुख।
बृंहित हैसा विविध तुमुलंघन तनित रनित रुख॥
रुचि भाग राग गायक रचत भनत बंदि ओपावलिय।
आरोच हिरद मातहि महिप चतुर रुच्य ब्याहन चलिय॥ ४२
फुट्टि फुट्टि हय खुरन गिरिन पाखान गरद मिलि।
छुट्टि छुट्टि छिति संधि सिथिल भोगीस सीस झिलि॥
तुट्टि तुट्टि तरु दुगम पृथुल पद्धति हुव पद्धर।
फुट्टि फुट्टि बत बज्ज कौन गत गज्ज दिगंतर॥

बिप्पनि बरात जस दिय विदिस बिदित बस हुव भर मरन।
बुद्धीस बिंद बहु बोधपुर बमत भग्ग उपयम करन ॥ ५३
गजन फरकि बहुरंग बरकि मन गगन बिराजत।
छोनी खमपुन छिरकि झार किमहुव मन साजत ॥
बरकि दग्गु बाराह मरकि फनमाल नाग इन।
धरकि धरकि भय पुरित दरकि उर मसह मरोनिन ॥
गड़गड़न संक प्रबर उपजि करत मंत्र मंत्रिन कलिक।
कुमरीति मीति हरुवन बहुत समिति व्याह उच्छाह इक ॥ ५४
गरद घटक घनछदिय तरद घन धरद सोम छम।
सोम मदन सोमरन प्रदर पुंजन कलाप तिम ॥
मग्गत मग्गत बन बतु कटक अंतर बकि सुट्टन।
करि समर्नेतन करन सरन बिकिरन बपु फुट्टत ॥
इम पिट्टि अप्प बिरहन गुनत मनत दैन रकन बिभव।
सुरनाह राह प्रति छबि घटत रटन कलेव नकीब रव ॥ ५५
उलटि उमटि दल घोट पवन मरुत प्रयागम।
सुगम हरोलन सलिल दुगम चंदोल न कर्दम ॥
धास पास इहि धाय घास मैवासन पत्तिय।
हैतुन हास हुलास बास हेतुन गुन बत्तिय ॥
गुनि धम्म धम्म धुबक गुजत धम्य बनत प्रतिमोद इत।
प्रति ग्राम ग्राम बयत अमत धाम धाम मंगल सहित ॥—वंश० ४।२७।५६

आगे कवि ने बरात के मुकामों, डेरों, दान, उत्सव आदि के वर्णनों के साथ राज-परिवार तथा राज्य के लोकोपकारी निर्माण-कार्यों के इतिवृत्त देकर वर्णन का विस्तार किया है (वंश० ४।२७।५७-५२)। तत्पश्चात विवाह-रीति का वर्णन सविस्तार करते हुए तत्कालीन लोक-तत्त्वों का चित्रण किया गया है (वंश० ४।२८।५१-५८)। इसी प्रसंग में नट, नर्तन, गायन आदि का समावेश करके कवि ने एतद् सम्बन्धी अपनी ज्ञान-बहुलता का प्रदर्शन करते हुए रचना-प्रयोजन (ज्ञातव्य ज्ञान का समावेश) की सम्पूर्ति भी करदी है (वंश० ४।२९।६०-८१)।

रूप – वर्णन—

आधिकारिक विषय पर केन्द्रित रहने के कारण कवि रूप-वर्णन का समावेश प्रसंगवश ही कर पाया है। जंभासुर, पहुवान, रामसिंह आदि के वर्णन-प्रसंगों में ही उसे रूप - वर्णन का अवसर मिल सका है। इस वीर-रसार्णव में नायिकाओं के नख-शिख वर्णन का तो भला अवसर ही कहाँ ? किन्तु इसकी क्षति-पूर्ति वीररसावतार ने हस्ति और अश्वों का नख-शिख वर्णन करके की है। (द्रष्टव्य हस्ति और अश्व सेना-वर्णन) रीति-काल में उत्पन्न आलोच्यकवि सूर्यमल्ल का कमनीय कामिनी की रंगशाला से रणांगण की ओर किया गया यह महाभिनिष्क्रमण अद्वितीय है। इसलिए उसे हमने युद्ध का कवि कहा है।

यों शृंगार-परक-वर्णनों का वंशभास्कर में नितांत अभाव नहीं है। प्रसंगोपात्त ऐसे विषय आये ही हैं पर कवि ने प्रायः उन्हें समास करके निपटा दिया है अथवा उपमान रूप में रखकर चलता कर दिया है।

जो रूप-वर्णन आये हैं उनका लक्ष्य कहीं भाव-व्यंजना का परिपोषण है तो कहीं ज्ञातव्य ज्ञान-सामग्री का समावेश। इन वर्णनों में कहीं रूढ़ उपमानों को निरूपित किया गया है तो कहीं नवीन उद्भावनाओं का आयोजन रखा गया है। कतिपय उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी—

विशालनैन घोर बैन लंबमान नासिका।
रु जीह तालु मध्यसादि नीलता प्रकाशिका॥
कठोर उत्तमांग रोम सहसकोश शूल से।
प्रवाल लाल गोपि देस औहृ केस धूमसे॥ —वंश० २२९। ७

आगे एक-एक अंग का जुगुप्साजनक आलंबनात्मक वर्णन रूप चित्र को और भी सजीव बना रहा है। यथा —

कुदाल दंत आलकी कराल नील राजिका।
अपा विलास चिक्कनी महाकुगंध माजिका॥
बराहतुंड कूट मुंड भो करोटि संबसी।
कृपान ज्यों भयान भेस भूलता प्रलंबसी॥ ८
कपोलनैन लोल ए पिसंग रंग में लसें।
प्रचंड बात पातसे निसर्ग सास निक्कसें॥
पलास कास दंतवास धूमरूप सुक्कणी।
अहूव बिस्र स्वास संग भेद भेद चिक्कणी॥ ९
रु संकु कान लंबमान छिद्र अद्रिखोहसे।
चकोर एव अंस जे धुयें कठोर लोह से॥
बिसाल लाल कंधरा कणीरमालकों धरें।
रु मुच्छभाग सुल्वराग आकपोल उब्भरें॥ १०
रु मेचकाभ जीह मध्य लोह लाल लग्गई।
अमर्ष खानि दिट्ठि ठानि ज्वाल जानि जग्गई॥
अकुंठ भाव बड्डिका जु दड्डिका कटारसी।
पिसंगपानि पाप जानि अज्ञके प्रहारसी॥ ११
सुतिक्ख पानि सुक्कहू कहार राग अद्दरें।
रु सेतबाहु मूल जे गड्डूल ज्योतिकों धरें॥
अतीव लम्ब रोढकाश्य पश्चि पिट्ठि उप्पयो।
मनों द्विसैल संधि मध्य तालदंड रुप्पयो॥ १२

बढ़े नितंब बच्छ यों गंभीर तुंदकूपिका ।
उदुंबराभ रोमराजि छोर घोर रूपिका ॥
कटिप्रदेश भूनमैं बढ़ोल बार उप्पजी ।
महाश्मशान भास डाकिनीन भूमि उप्पजी ॥ १३
विसाल सक्थि थंभ लाल मेघनील पिंडुरी ।
शरीर वेस जानुदेश मद्रि मोह ज्यों पुरी ॥
प्रचंड पाद श्याम रंग लंबमान अंगुली ।
बढ़े विरूप भाव ह्वै करै त्रिलोक व्याकुली ॥

—वंश० ९६८ । १४

इस तामसी रूप-वर्णन के साथ ही एक राजसी रूप-वर्णन भी विवेचनीय है । यथा—

अभ्रवल्ली निभ वदन बालदिनकर निभ बिंदु ।
जानु विलंब भुज ज्यारि अवहु विधुरात महामइ ॥
उरति यथा पति चक्र धीर प्रहरन चव धारत ।
रन प्रातुक दृग देखि सबन सताप निवारत ॥
कोटीर दिव्य कुंडल कटक अंगद भुज छबि उल्लसत ।
मुनि वरद अंब वनित सु वर्णित हरिन कहि आयो हसत ॥

—वंश० ६६६ । २

इस चित्र में उपमानों का रूढ़ि-तात्पर्य द्रष्टव्य है । दोनों चित्रों की वृत्ति-मूलक विभिन्नता भी उल्लेखनीय है । प्रथम चित्र लोक-विरोधी तामसिक वृत्ति का प्रतिनिधि है तो दूसरा लोक-मंगल में प्रवृत्त राजसी वृत्ति का प्रतीक ।

इन रूढ़ात्मक रूप-चित्रणों से पृथक् रामसिंह के रूप-वर्णन में कवि ने अपनी भाव-सबल सौंदर्यानुभूति का परिचय दिया है । यथा—

दृग अग्र धारहि पट्ट हरियव हष्ट परियव अप्प ।
धुति देखि दुर्लभ देवकों दुरिजात दर्शक दप्प ॥
उष्णीष सीस कुसुंभ अंचित रचीय बंध सुपट्ट ।
छह साहर मास्व किरीट केसर पंच रत्नक पट्ट ॥ ७४
मणि मुक्ति अच्युत धीर चंदन चंद छाप ललाट ।
विभ रत्न कुंडल कर्ण आलम भाल गहल ठाट ॥
दुद रोचि मुक्ति रत्न पंचक कंठ हिरक हार ।
बहुधा विचित्र अनेक मालनि यों अ मोल विदार ॥ ७५
सट्टा ललाम सु काय कंचुक विच्छुरैं वर वान ।
चायवतारत प्रभ छोम कि विज्जु पंति वितान ॥

कटिबंध मध्य समै करयो दगि पग्ग रासि प्रकास।
केयूर कटक प्रशाप भुजकर मध्यमनि मनि भास ।। ७६

बहु मुद्रिका बहु रत्न बेड दु पंच पल्लव पाइ।
पहिं ईं कि कप्पन पंच पंच उदरव मनि घधिकाइ ।।

कटि सान गुढ कृपान पट्टिस कलिका छुरिकाऽऽदि।
घड पुप्प प्रफुल प्रष्ट पादुक विट्ठि विट्ठि प्रसादि ।। ७७

उपवीत प्रति पप मेखला इय रत्न रोधि प्रपुब्ब।
उर देस खानि प्रगाध प्रर्णव एस बेस कि उब्ब ।।

सह पोत प्रावृत पघि कंचुक संव प्रापुट साजि।
बनि जुग्ग गोहिररत्न शृंखल नेम हेम बिराजि ।। ७८

प्रभिरूप यों बर भूर प्रपित पट्ट पीलु प्ररोहि।
सहचार प्रग्य बयस्य सचिय संकर्म्यों तिम सोहि ।।

नृप नाग के चहुं घोर ओर मरोर मंडल नाग।
परिवेश भेस सवेश प्ररिपत बेस देस बिभाग ।।

—वंश० ४।१६५। ७९

जैसा कि कहा जा चुका है, कवि या तो इस प्रकार के पुरुष-वर्णन में रमा है या फिर अश्व, हस्ति, उष्ट्र आदि के शृंगार-सज्जित रूप-वर्णन में। नारी-नख-शिख-वर्णन में उसकी कोई रुचि नहीं है। नारी-रूप-वर्णन के लिए वंशभास्कर में अवकाश नहीं है। यों भी चारणी-मर्यादा के अनुसार राज-महिषियों का सौंदर्य-चित्रण कवि को अभीष्ट भी नहीं—फिर पर्दा-प्रथा के कारण वह संभव भी नहीं था। विवाह-प्रसंगों में गणिका के शृंगार, लास्य आदि का वर्णन अवश्य हुआ है तथापि वह बहुलता प्रदर्शन के निमित्त ही है (वंश० ४।१३२-३३। ६६-७०)।

रूप-वर्णन के ये स्थल कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति, कुशल उपमान-योजना, सजीव चित्र-सृजन-क्षमता, भावाभिव्यञ्जन में समर्थ शब्द-सौष्ठव के जीवन्त प्रमाण हैं। रूप-चित्रों में तत्कालीन शृंगार-प्रसाधन एवं सज्जा-सामग्री का संचय करके कवि ने देश-काल चित्रण अपेक्षित लक्ष्य की संपूर्ति भी करदी है।

इस प्रकार वंश-प्रकाशन में नियोजित इतिवृत्त की मरु-भूमि में रस वर्णन करके नारिकेल-जल-न्याय का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह हिन्दी में अनूठा एवं अभिनन्दनीय है।

उत्सव वर्णन—

वंश-वर्णन ही निमित्त होने के कारण उत्सवगत जन-जीवन के चित्रण का भी कवि को उन्मुक्त अवसर नहीं मिल पाया है। अन्यान्य वर्णनों की भांति उत्सव-वर्णन भी आड-

रूप से ही आये हैं। और घमासान इस ग्रंथ में औरोग्मेयजन्य केसरिया की जहां एक-उत्सव पर्ववत् मानकर चित्रित किया गया है वहां होलिका (वंश० ३६८६ ७, ३१७४.१५५-४८) दीपमालिका (वंश० १६३६।४४) आदि लोकोत्सवों को युद्ध-वर्णन के अन्तर्गत उपमान रूप मे रखकर ही चलता कर दिया गया है। राजस्थानी जन-जीवन से सबद्ध गण-गौरी (वंश० ३१३६। ६-१०), हिंडोलोत्सव (वंश० ३५८१। ३-८) जलोत्सवों का भी (वंश० २८१६। २३) विस्तृत आलंबनात्मक वर्णन न करके उनके कुछ मोटे-मोटे प्रसंगोपात संकेत मात्र कर दिये गये हैं। शरदोत्सव का वर्णन कृष्ण के प्रसंग रासलीला के अन्तर्गत अनायास ही आ गया है। अलबत्ता राजन्य-वर्ग के विवाहोत्सवों का जमकर वर्णन किया गया है। इस प्रकार वंशभास्कर में निम्नांकित उत्सव-वर्णन ही उल्लेखनीय बन पड़े हैं—

(क) शरदोत्सव

(ख) केसरिया करने का उत्सव

(ग) विवाहोत्सव

शरदोत्सव—श्री कृष्ण के रास प्रसंग में शरदोत्सव का काव्यात्मक चित्रण हुआ है। शरद-पूर्णिमा की मादकता, वेणु नाद तथ तज्जनित मदन-भावना के साथ शरदोत्सव का समारंभ होता है। कृष्ण प्रत्येक गोपी के हाथ से हाथ मिलाकर रास-नृत्य आरम करते हैं। सामु-हिक ताल नृत्य के साथ मणिमय आभूषणों की झनकार-ध्वनि बढ़ने लगी। घेर वाले लहगों के पट पैरों की तरह फैलने लगे। अधो-वस्त्र सिर पर वितान की तरह छा गये, मेखला नूपुर आदि की झनकार झालर की भांति बजने लगी, ककणादि आभूषण खनक उठे, चपे पर कूकती हुई कोयल की कूक के समान, मंद्र, मध्य और उच्च तीनों ग्रामों में स्वर थिरकने लगे। परिवर्त-परिश्रान्त गोपिकाएं अपनी भुज-लताओं को कृष्ण के स्कंध-वृक्ष से वलयित कर श्रम-निवारण करने लगीं। कोमल कटि वाली किसी तन्वंगी गोपिका ने कृष्ण के कर-कमल का चुम्बन किया सो मानो कुच-भार के कारण, कटि टूट जाने की आशका से उसने कृष्ण का आश्रय लिया। नृत्य-परिवर्त की गति में उभरे वक्षो पर आन्दोलित मणिमय हार ऐसे लगे मानो चक्रवाकों की चोंच में फरफराती शैवाल-मञ्जरी हो। झेंकु-झेंकु से थेई-थेई तक नृत्य की जितनी गतियाँ होती हैं उन सबमें बिछिया, अनवट, पायल आदि आभूषण बजने लगे। कराभूषण, भुजबध, नोगरी आदि ने सजकर मानो कामदेव की पाठशाला का रूप-ग्रहण कर लिया। काले रेशम से गुंथी हुई केश-राशि पीठ पर उछलने लगी ... वेसर-मोर के भय से त्रस्त होकर नागिन ... लगी। गोपियों ने कोयल की कूक को ...
ढीला पड़ गया, फिर ...
भृंगी आदि
इस ...

प्रति गोपिका बनि कृष्ण हरषन हृत्थ बंधन दै नचैं।
मनि मंजु भूखन मोरि सिंजित सोर संकुल ह्वां मचैं ॥ २६

करके अधोपट घेर घुम्मि बनाय डंरन लौं भये।
सिर चोर वेग समीरसौं बिथुरे बितानन सौं छये ॥

कटि सूत्र नूपुर घंटिका झननकि झल्लरि लौं बनीं।
करफूल कंकन कूजना तब चंपके पिक ह्वै तनीं ॥ २७

स्वर मंद्र मध्य रु तार मग्गन हार ग्रामन में फिरे।
तउ दुरथ तीनहिं में थके न चतुर्थ सौं कबहू मिरे ॥

परिवर्त के श्रम काहु कन्हर कंध बाहु लता दई।
अवलंब के हित बल्लरी तनु कल्पपादपपै गई ॥ २८

कटिनम्र अंग त्रिभंग को करकंज लाहुक चुंबयो।
कुचभार लक विसंक तुट्टत जानि आश्रय कैं लयो ॥

इक्सार भेद प्रकार वलित रासको फिरनौं लस्यो।
आवर्त अद्भुत जानि यह शृंगार वारिधि में बस्यो ॥ २९

तार्तीय सप्तक मूर्च्छना जमुना प्रतिध्वनि पूर्ण ह्वै।
बढिवें लगि सु बिचारि वीचिन ज्यों छको सिर घूर्ण ह्वै ॥

वक्षोज घूघुकर्ते उठे मनिहार, हारन मल्लरी।
मनु चक्रवाकन चंचुतैं छुट दूर सेंवल मंजरी ॥ ३०

मनि भेंकु भेंकुत भेंकु भेंकुट धुंकु धुंकुट बिस्परैं।
बित्था तथुंग तथुंग तत्ता थेइ थेइ धुने परैं ॥

बिछिया अनोट अराव जेवर धाप पायल त्यों बजैं।
कर ताल घंगद भौंवरी चटसाल दर्पक की सजैं ॥ ३१

मखतूल मेचक गुच्छ पिट्ठि कलाप कुंतल उच्छरैं।
नचमोर के भय भोर कायर पन्नगी चमटा करैं ॥

जिनके धमाल बलतभव पर दुग्ग पंचम ढंकयो।
धृति जाति ताल प्रबंध छम्मकि भाव मायपमो भयो ॥ ३२

श्रम मायहु पर हाथ ह्वै अंड ताप सबैंहिको करयो।
कटपैं छुट्यो पट मंडमान किरीट कानन लौं ढर्‌यो ॥

दिश कृष्ण भासत केलि चक्र अंडिका रु बखान ह्वै।
बनमाल, बैन विकीर्ण विलुप्त कर्णिकार न कान ह्वै ॥ ३३

... ...

लखि ताहि देवन छादमें निज नाक नगचहु वीथद्यो।

—वंश० २०१ : १४

यह वर्णन शृंगार के विभावात्मक चित्रण का एक मात्र उदाहरण है।

केसरिया करने का उत्सव —

'केसरिया' मध्यकाल न राजपूत-जीवन-दर्शन का एक उत्साह-प्रकाशक प्रसग है। मरणोत्सव की तैयारियों का यह जातीय एवं क्षात्र-संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष है। वंशभास्कर में कवि ने 'केसरिया' का एकाधिक-बार वर्णन किया है। जब कभी रजपूती-मान-बान का प्रश्न उठता था तब रजोगुण की आंच मे तपे मरण-खोजी वीर भौतिक वैभव को पुण्य कार्यों में न्योछावर करते हुए मृत्यु नायिका के बींद (दूल्हे) का बाना ले 'केसरिया' रचने को तत्पर हो जाते थे। मान-रक्षार्थ हल्लू का मरणोत्सव देखिये—

अपनी पाग (पगड़ी) के अपमान पर उबलता हुआ वह वीर कहता है—मेरे समवयस्क वीरों के लिए मृत्यु-वरण का अभीप्सित अवसर आ गया है। अब हम मरकर स्वर्ग-लाभ करेंगे या फिर मंडोवर के दुर्ग पर अपना झंडा फहराएंगे। इस निश्चय से राज्य-भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर वह अपने वीरों को इकट्ठा करता है—उन्हें अपने अंगों पर युद्ध-चिन्ह धारण करने का आदेश देता है। अखाड़े के कुण्ड में केशर घोलकर यह निश्चय किया गया कि मरणोत्सुक वीर अनकहे ही अपने वस्त्र उसमें डुबाकर मरणोत्सव के बींद बनें, किंतु तीस वर्ष से कम आयु वाला कोई ऐसा न करे (वंश० १८१०। १६–२०)। सर्व प्रथम बासठ वर्ष के राजा हल्लू ने स्वयं अपने वस्त्रों को कुंकुमी रंग दिया और अनचीन्ही उर्वशी का बींद बन गया, उसके साथ ही तीस वर्षों से अधिक आयु वाले पांच सौ भटों ने केशर के कुंड में वस्त्र डुबाये और मरण ब्याह के बराती होकर चले। यथा—

आपरा अजेय बीरांरो इसड़ो अभीष्ट जानि कुंकुमरो कुंड घुळाइ हाड़ांरो अधीस हालू बासठि वर्षरायव में पहली आपरा वस्त्रांरे बोळ दिलाइ उर्वसी रो बींद वणियो॥

जिकणरे साथ तीस वर्ष रा वयथी विसेस हूँता जिकों पंच सत ५०० सुभटां केसरराकुंड में वस्त्र बोळिया...। —वंश० १८११। २१

यहां केसरिया वस्त्र धारण करना तथा वीरता का उफान ही उत्सव के उपकरण हैं तथापि इनमें समग्र वातावरण को विभावात्मक चित्र रूप में उभारने की अद्भुत क्षमता है।

इसी प्रकार का वर्णन शत्रुसाल के प्रसंग में भी आया है (वंश० २६७२। ५२)। भाऊ के सिर राज्य का भार देकर राजा ने मरण का संकल्प किया। नवयुवक भी मरण-महोत्सव से विरत रहना नहीं चाहते हैं (वंश० २६७२। ४७)। समझा-बुझाकर (वंश० २६७२। ४६-५०, २६७३। ५३) किसी प्रकार उनका मरण-हठ छुड़वाया जाता है। समान आयु के वीरों सहित शत्रुसाल ने केसरकुंड में वस्त्र रंगे (वंश० २६७३। ५२)। पैरों में रण-नूपुर पहनकर कांतिमान आभूषण धारण किये (वंश० २६७१। १) केशों की रंग-रचना छोड़कर युद्ध-भावना के अनुकूल आचरण किया। फिर तो मरणोत्सव के योग्य तैयारियां की गईं (२६७४। २४)। सुरावानों के चक्र सनसनाने लगे, सद्य सनसने

लगीं, लोह-टोपों की रणकार और पखरों की झनकार होने लगी, वीरों के रोम चटचटाने लगे, नगारों पर टनटनाहट होने लगी, मदारों पर भमरों की भनकार होने लगी, हिन-हिनाहट के स्वर बढ़ने लगे और भाटों की कड़कड़ाती वाणी गूंजने लगी। गजघंटों की ठनठनाहट के साथ पलचारी पक्षियों की गणणाट बढ़ गई हाथियों के हौदों और घोड़ों के पाखरों पर वीरता की मान रखकर तोप-गर्जना करते हुए मरणोक वीरों का समूह मेघ-माला की भांति द्वारबहिर्गत हुआ। हस्ति रूपी मकर, घोटक रूपी बदल, ऊंट रूपी तिमिंगल, ढाल रूपी कच्छप, आभूषण रूपी रत्न (बाण की) अणियों रूपी मुक्ताजाल, वीर रूपी सीप, धर्म रूपी मर्यादा को लिए हुए मरणीक वीरों का समुद्र उफना। मोठी-मीठी सुगंध वाले चून के उबटन का मर्दन कराके यवनों का तप जीतने हेतु 'मैं आगे, मैं आगे' कहती हुई हाड़ों की सेना एकत्रित हुई। जैसे विवाह के उत्सव में दूल्हे जुड़ें वैसे ही हाड़ों की वीर-भूमि पर मरण-खोजियों की भीड़ जुड़ गई। हाड़ों की भूमि पर एकत्र कीर्ति रूपी दुल्हन पर रीझे हुए मरणीक वीरों का यह पट्ट मोटी गर्दन वाले तुर्कों को खड्ग रूपी गाड़ों में जोतने की उमंग से भरा हुआ है (वंश० २६७४। ५-८)।

वीरों के मरणोत्सव के समानान्तर ही वीर रमणियों के सहमरणोत्सव के वर्णन भी चित्रित हुए हैं। यद्यपि सहमरण के अधिकांश प्रसंग सूचनात्मक ही हैं तथापि कुछ वर्णनों मे इस उत्सव के संकेत प्राप्त हैं जैसे—वंश० १७३५। ५८, १७३५। ६१-६७, २४६८। ४७-४८। सहमरण के इन उत्सवों में कवि ने सतियों के उत्साह एवं हर्ष की व्यंजना की है।

विवाहोत्सवः— विवाह के विस्तृत प्रसंगों में कवि ने वैवाहिक उत्सवों का वर्णन किया है। इनमें नृत्य, नटकला, क्रीड़ा, मनोरंजन आदि के युग-सापेक्ष चित्रण के साथ साथ एतद्सम्बन्धी कवि की ज्ञान-सामग्री का भी समावेश है। दूल्हे राजा के मनोरंजनार्थ हेतु नट और पातुरियों के समूह ने सम्मुख आकर नृत्यादि प्रारंभ किये। लकड़ी के बड़े पटियों पर सुन्दर चित्रकारी की हुई थी। वे पटिये मनुष्यों के कंधों पर थे और उन पर वेश्याओं के नृत्य हो रहे थे। वेश्याएं अपने तरुण शरीर की लोच के साथ नृत्य-पटु चरणों से घुम्मर बांधकर लहंगे का पट-मंडन कर रही थीं। विविध राग-रागिनियों को स्वर-ताल और वाद्य में बांधती हुई वे अपनी उत्तम कला के प्रदर्शन में रत थीं। नूपुर-गुंजन तीव्र होकर भूषणों की झंकार के साथ फैलने लगा। आरोह-अवरोह की गतियों में, मूर्छना में मोदमय नाद निकलने लगा। आलापों के समूह कदुक तथा सर्प की गति मे आरोह-अवरोह करने लगे जिससे राजा का मन अनुरंजित हो उठा। यथा—

... ... ।
अभि मुख मंडिय आनि नट न गान पातुरि निकर ।। ६०
पृथुल दारु पट्टिय कमन चित्रित लिपिकारिन।
अस नरन चित अटन नच्च उप्पर पनतारिन ।।
तंडव पटु बप तरुन भोक रायन भुम्मावत ।
चंडाकत चल चरन घेर घुम्मर घुम्मावत ।।

श्रुति जाति ताल वादन कुसल मोहत तत गीतन सुमति ।
भारोह ग्राम प्रति अवधि ग्राम प्रथम अवरोह गति ॥ ६१
घुरि नेउरि घंटकिन झमकि सिंजित झहनावत ।
विधि-क्रम ताल बढ़ाइ बहुरि प्रति लोम बनावत ॥
मिलि संक्रम मुच्छनन मोद निकसंत नाद मय ।
कंदुक महि गति कमन चढ़त उतरत अलाप चय ॥
भानद्ध बितत वादन उचित मादन मुदित नरेस मन ।
... ... ॥

— वंश० ४।३०।६२

इसी प्रकार के विवाहोत्सव रामसिंह के दूसरे विवाह-प्रसंग में भी वर्णित हैं।

विवाहोत्सव के वर्णन एक ओर जहां तत्कालीन राज-समाज की रीति-परंपराओं को लक्षित करते हैं वहीं दूसरी ओर नृत्य, गीतादि सम्बन्धी कवि की बहुज्ञता के प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं।

नगर-वर्णन— रामसिंह के विवाह-वर्णन के मिस जोधपुर और बूंदी नगर का वर्णन हुआ है। बूंदी नगर का वर्णन द्रष्टव्य है—

"विवाहोपरान्त राजा रामसिंह सेना-सहित उत्तर द्वार से नगर में प्रविष्ट हुआ (वंश० ४।३६।१)। वह सजा-धजा दीप्तिमान नगर इंद्र की अमरावती की भांति सुन्दर लगता था, कुबेर की अलकापुरी भी उसके सामने लज्जित होती थी। कहीं मिट्टी के परकोटे, कहीं प्राकार, कहीं कंगूरे तो कहीं साफ-सुथरी सुन्दर अटारियां दीख रही थीं। कहीं पत्थरों पर सुन्दर मूर्तियां टांकी जा रही थीं, कहीं कुम्हार अपने मकानों में चाक उतार रहे थे। कहीं लोहारों के घरों में घन बज रहे थे तो कहीं चित्रकारों की तूलिका के रंग चमत्कार दिखा रहे थे। कहीं सुथार रथों के सुधार में रत थे तो कहीं कंदुजीवी कड़ाहों में घी उडेल रहे थे। कहीं जुलाहे उत्तम वस्त्रों की बुनाई कर रहे थे तो कहीं प्रतवांली श्रीजनों के पग पर उबटन मल रहे थे। कहीं सिकलीगरों के चक्र घूम रहे थे और शस्त्रों की धार से चिनगारियों के फूल झड़ रहे थे। कहीं तुन्नकार फटे वस्त्रों की तुनाई कर रहे थे तो कहीं पिंजारे रुई पींज रहे थे। कहीं पारे और कांसे के समूह खुली में पड़े हुए थे तो कहीं सीसा और कथीर के ढेर लगे हुए थे।

कहीं तूलिकाकार मकानों पर रंग पोत रहे हैं तो कहीं भाट नई-नई स्तुति-रचना में लीन हैं। कहीं मालिनें पुष्पहार गूंथती हैं तो कहीं रंगरेज विविध रंगों में वस्त्र रंग रहे हैं। कहीं धान्य और गेहूं के पहाड़ द्रोण तथा खारी के मापों से भर रहे हैं तो कहीं तांबे-पीतल के भंडार लगे हुए हैं। बाजार में कहीं सिक्के बिखराये लोग बैठे हुए हैं। कहीं स्वर्णकार स्वर्ण तौल रहे हैं तो कहीं इत्र-विक्रेता सुगन्धि की हाट फैलाये बैठे हैं। कहीं थंभ से बंधे तराजू से तौल हो रहा है तो कहीं दोनों ओर स्वर्ण के हिंडोले बंधे हुए हैं।

कहीं नहरों से पानी निकल रहा है तो कहीं कृषक बीज बो रहे हैं। कहीं घरट-यंत्र चल रहे हैं तो कहीं पर नीतिचर्चा से लोग बुद्धि बढ़ा रहे हैं। कहीं अखाड़ों में खड्ग-विद्या की साधना हो रही है तो कहीं भाला साधने का प्रयास किया जा रहा है। कहीं बाण-विद्या से उड़ते पक्षियों को गिराने के यत्न हो रहे हैं तो कहीं तुपक यंत्र से निशाना साध कर चिरमी उड़ाने का अभ्यास हो रहा है। कहीं पटेबाजी और ढाल के करतब दिखाए जा रहे हैं तो कहीं नियुद्ध-कौशल का रियाज हो रहा है। कहीं हर्षोत्फुल्ल बालकों के ऊधम हो रहे हैं तो कहीं भटों की ललकार व्याप्त है। कहीं नटों के नृत्य हो रहे हैं तो कहीं सजड़ी, झांझर और ढोलों की गर्जना। कहीं डिंडिम दुंदुभि, चंग आदि बज रहे हैं तो कहीं तंतुवाद्यों पर जिराव खनक रही है। वार-नारियां द्वार के सामने नृत्य कर रही हैं कहीं शृंगार-रस का चढ़ाव है तो कहीं उल्लास के साथ हास्य-रस का प्रसार। कहीं करुणा का वातावरण है तो कहीं रौद्र का मंचन मंड रहा है। कहीं वीर रस का आतंक व्याप्त हो रहा है। कहीं भयानक तथा वीभत्स की रचना हो रही है तो कहीं शांत रस का मनोरम वातावरण निर्वेद उत्पन्न कर रहा है। यथा—

उदीचि दिसा द्वारयों भूप आयो, प्रवेस्यो पुरी सज्ज सेना सुहायो।
दिप्यो अप्पनों ढंग श्रृंगार सज्ज्यो, लसे इंद्रको वीद को नैर लज्ज्यो ॥ ३

पइट्ठो तहाँ ढंग यों जेब पायो, अकस्मात ज्यों कायमें प्रान आयो।
कहों वप्रप्राकार साहैं सुधारें, कहों कांगुरे मंजु ऊँचे अटारें ॥ ४

कहों प्राकपें टंक मा मंजु मंडै, कहों मौन चक्री धरें चक्र मंडे।
कहों सार व्योकारके कूट बज्जैं, कहों वर्ण अंबून के सेल रज्जैं ॥ ५

कहों वर्द्धकी स्यन्दनाली सुधारें, कहों कन्दुजीवी हवी कंदु डारें।
कहों चैल चंगे बने तन्तुवाई, कहों उब्बटें अंग अंतावसाई ॥ ६

भ्रमासक्त मजें कहों हेमिकारी, धरें सान झंझान कुल्लिश धारी।
बढ़े वस्त्र जोरें कहों तुन्नवाई, धमंकें कहों जिजरी तूल छाई ॥ ७

कहों सूत कासी चितीभूत चोरें, कहों सीस कत्थीर के जाल जोरें।
कहों चित्र आवास मंडै चितारे, कहों स्तोत बंदी पढ़ें नव्य न्यारे ॥ ८

कहों के करें मालिनी माल्य भगें, कहों रंगरेआवली चैल रगें।
कहों ब्रीहि गोधूम के गंज मारी, कहों राशि अप्पें गहें द्रोन छारी ॥ ९

कहों रक्त री तौन के गंज डारे, कहों नैर नाना रचैं विचारे।
कहों स्वर्णकारावली हेम तुल्लै, कहों ग्राम गंधीन के गंध खुल्लै ॥ १०

कहों धंम संबद्ध तुल्लैं तराजू, कहों हेम हिंडोल बंधे दु बाजू।
कहों निक्कसैं नीर कुल्या प्रणाली, कहों वृच्छ सोहैं बनें आलवाली ॥ ११

कहों के घटी यंत्र चल्लैं घरट्ठं, कहों नीति की प्रीतिधी मीति नट्ठं।
कस्तूरी कहों खग के मग रुद्धैं, कहों तोतु के राहमें साह मद्दैं ॥ १२

अध्याय ६

पात्र - विधान

'वंश-प्रकाशक-ग्रंथ' (वंश० १५३। १२) के अर्थ में वंशभास्कर एक वीरधर्माख्यानक रचना है, जिसमें चौहान-कुलोद्भूत हाडा-शाखा के लगभग दो सौ वंश-धरों का चरित्र वर्णित हुआ है। प्रसंगवशात् अन्यान्य वंशों के प्रसिद्ध एवं महत् व्यक्तियों को भी पात्र रूप में निरूपित किया गया है। यों कुल मिलाकर विषयवस्तु के समान ही इन पात्रों का भी विराट् कांतार बन गया है, जो एक जीवन का ही नहीं अपितु एक-एक यु के देश-जीवन का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

इन ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त पुराणों के प्रसिद्ध पात्रों की चरित्र-सृष्टि भी इस हुई है।

इस प्रकार पात्र-विधान की दृष्टि से इस महाचम्पू के पात्रों को दो कोटियों में रख जा सकता है—

१—पौराणिक-पात्र

२—ऐतिहासिक-पात्र

१—पौराणिक पात्र—

सुविधा के लिए पौराणिक पात्रों को हम दो वर्गों में विभक्त करके चलेंगे—

(क) पौराणिक—देव-चरित्र

(ख) पौराणिक—राज-चरित्र

(क) पौराणिक देव-चरित्र — पौराणिक देव-चरित्र साधारणीकृत ढाँचों के भीत विकसित किये गये हैं। वे आदर्श तथा प्रतिष्ठित मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवि क उनके ईश्वरत्व में संदेह नहीं, तथापि वह उन्हें यथा संभव मानवीय धरातल पर ही प्रति करने का प्रयास करता है। कृष्ण-चरित्र में अतिमानवीयता, अलौकिकता तथा अमो शक्ति-सम्पन्नता के स्वर्गों का अभाव है। इसी प्रकार राम के चरित्र-चित्रण में देवत्व क अपेक्षा मनुजत्व-पक्ष अधिक मुखर है। रामचरित्र के अन्तर्गत मानवीय दुर्बलता, आवेश आशा-निराशा के संघात-प्रघात आदि के निरूपण में कवि को अभिनन्दनीय सफलता मिल है। सीता-आगमन के समय राम की प्रतिक्रिया तो एकदम यथार्थवादी बन गई है। यथा—

रोवत लखि प्रभु पुनि कहिय, कुटिल भौंह अतिक्रुद्ध।
अरजस मेटन काज यह, जित्यो मैं अव जुद्ध ॥ १६

आनन मैं परवाद हौं, तू नहीं कारण तत्व।
दुख दूसर क्यों दीन रचौं, जाहु मनोरथ जत्थ ॥ १७

निलय परायो नारि, बिनु निज बांधव जो बसी।
चित्त सनेह बिचारि, को पटुजन वामें करन ॥ १८
जातें अवद्रुत जाहु, दिसा दस हि ताकों दई।
बलि उच्छ्रसिक बाहु, मिले न अगदरम्य मम ॥

—वंश० ५६१ । १६

प्रकरण - वस्तु में अलौकिक तत्व तथा चमत्कृत करने वाली अति-मानवीय कल्पनाओं के रहते हुए भी कवि ने इस प्रकार के रंग और छाया-प्रकाश के जो प्रभवनीय संस्पर्श पौराणिक पात्रों को दिये हैं, उनसे वे सहज-सप्रेष्य बन गये हैं। आगे वीर-भाव का अधिकारी बनाकर उनके गुण, कार्य, आवेग आदि का जो अनुभावात्मक वर्णन हुआ है उससे वे सहृदय के और भी अधिक निकट आ गये हैं।

(ख) पौराणिक-राज-चरित्र— पौराणिक-राज-चरित्रों के प्रकाशन में यथार्थ का आश्रय अधिक लिया गया है। देव-चरित्रों की अपेक्षा इनके उभार में अलौकिकता तथा अतिरंजना न्यूनतर है। देव-चरित्र-विधान मात्र नाटकीय (कार्यपेक्षित) है जबकि राज-चरित्र-प्रकाशन की शैली विश्लेषणात्मक है। राज-चरित्रों में यथार्थ का सचार करने हेतु कवि की ज्वलन्त अनुभूतियां मुखर रही हैं जो कभी देश-द्रोह की निन्दा में, कभी दुराचार की प्रताड़ना में तो कभी आदर्श-कर्तृत्व की प्रशंसा में और कभी उद्बोधन में प्रकट हुई हैं। अर्जुन, सुर्जन, वसुदेव, बिंदुसार, गोग आदि के चरित्र इस विचार से द्रष्टव्य हैं। वर्णन-कौशल, सूक्ष्म कल्पना-शक्ति, रसानुकूल विभाव-योजना और सटीक अप्रस्तुत विधान से मनुष्य-प्रकृति के विविध अंगों का चित्रण करके कवि अपने पात्रों में व्यक्ति-वैशिष्ट्य आधान करने में समर्थ हुआ है। यही कारण है कि एक पात्र दूसरे पात्र की अनुकृति नहीं जान पड़ता।

२—ऐतिहासिक पात्र

वंशभास्कर का अधिकारिक विषय इतिहासाश्रित है। अतएव ऐतिहासिक पात्रों का विधान कवि ने विशेष कौशल और मनोयोग से किया है। ऐतिहासिक पात्रों को भी दो श्रेणियों में आबद्ध किया जा सकता है—

(क) वे पात्र जिनका चित्रण पुरा-तथ्यों तथा किंवदंतियों के आधार पर हुआ है।
(ख) वे पात्र जो नव ऐतिहासिक तथ्यों और कवि कल्पना के योग से विकसित किये गये हैं।

(क) प्रथम श्रेणी में पूर्वमध्यकालीन इतिहास के वे पात्र आते हैं जिनके चरित्र-प्रसंगों में इतिहास के तथ्यों के साथ-साथ अलौकिक घटनाओं तथा चमत्कारपूर्ण अतिरंजनाओं का समावेश हो गया है। भर्तृहरि, विक्रम, पृथ्वीराज, बीसलदेव (ढूंढा) आदि ऐसे ही पात्र हैं जिनके सम्बन्ध में प्रकरण तथ्य जैसे प्रचलित थे प्रायः वैसे ही रखे गये हैं। कहीं-कहीं विवेचनात्मक-विश्लेषणात्मक संकेत देकर कवि ने इन्हें मानवीय परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य किया है जिससे उनमें 'व्यक्ति-वैशिष्ट्य' का गुण आ गया है।

(ख) द्वितीय श्रेणी में आने वाले वे ऐतिहासिक पात्र हैं जो वंशभास्कर के आधिकारिक विषय से सम्बन्धित हैं। इन ऐतिहासिक पात्रों के प्रकृति-विधान के माध्यम से कवि ने मध्यकालीन राजपूती जीवन के ऐसे मुँह बोलते नाना-रंगी चित्र प्रस्तुत किये हैं कि उनमें सम्पूर्ण क्षात्र-संस्कृति समूर्तित हो उठी है। इस क्रम में स्वतः राज-चरित्रों के साथ नाना-सहायक चरित्रों की सृष्टि खड़ी की गई है। सहायक पात्रों के रूप में सामन्तों, श्रीमन्तों, चारण कवियों, सैनिकों, राज-रानियों आदि को भी पात्र-रूप में ग्रहण करके कवि ने अपने चरित्र-विधान को बड़ी व्यापक परिधि में प्रस्तुत किया है।

अर्वाचीन ऐतिहासिक पात्रों के विधान में 'व्यक्ति वैशिष्ट्य-संरक्षा' एक नियामक त
है। कवि-कौशल, प्रवृत्ति-वक्रता के इस विधान में है कि ऐतिहासिक तथ्यों या घटना
में सर्वत्र एकरसता होने पर भी पात्रों की व्यक्ति-सत्ता एक दूसरे से भिन्न है। दूदा
नारायणदास, राव सूर्यमल्ल और रत्नसेन, सुर्जन और भाऊ, बुधसिंह और उम्मेदसि
जयसिंह और ईश्वरीसिंह — सभी अपने-अपने व्यक्ति-प्रकर्ष में एकान्तिक हैं। कोई (दूदा
धर्म, स्वतंत्रता और मान-बान की लपट है तो कोई (सुर्जन) धूमकेतु की भाँति युग-ध
के साथ संक्रमणशील प्रभावकारक बिंदु, कोई (प्रताप) परतंत्रता के अंधकार में टिमटि
माते दीपक की अंतिम सांस है तो कोई (जयसिंह) सर्वग्राही छल-कपट, और नीति-चातु
का आगार, कोई (बुधसिंह) ज्योतिर्मय नक्षत्र की भाँति उदित होकर उल्का की भाँति बिख
जाने वाला व्यक्तित्व है तो कोई (उम्मेदसिंह) झंझा के थपेड़ों में निमज्जन-उतरण कर
वाला साहसी खिवैया। कोई (नारायणदास) व्यक्ति-प्रमाद का संश्लिष्ट है तो को
(भावसिंह) परार्थ साधन का विष्णु रूप। सारांश यह कि ऐतिहासिक होते हुए भी
समस्त पात्र कवि-प्रतिभा का प्रसाद पाकर अपनी व्यक्ति-सत्ता के साथ जीवन्त हो उठे हैं
आधिकारिक पात्रों के चरित्रान्तर्गत जिन अन्य पात्रों को उठाया गया है, कवि ने उनके सा
पूर्ण न्याय बरता है। उल्लेखनीय है कि विविध पात्रों की व्यक्ति-सत्ता किसी एक ही आद
की लीक पर नहीं उभारी गई है वरंच घात-प्रतिघात, अनुकूलता-प्रतिकूलता, खण्डन-मण्डन
गति-बाधा आदि के संघात में ही निरूपित की गई है।

ऐतिहासिक पात्रों के विधान में यदि कहीं विस्मयोंद्बोधक आचरण (जैसे नारायणदा
का इक्कल प्रसंग) मिलता है तो वह अपवाद-स्वरूप तथा कल्पना-संभाव्य है। अन्यथा इ
पात्रों के चित्रण में अलौकिक अथवा अतिलौकिकता का विधान कवि को इष्ट नहीं रहा है
यही कारण है कि सभी पात्र यथार्थ बन गये हैं। यथार्थ-निर्वाह हेतु कवि को प्रकरण-क्रम
प्रासंगिक वृत्तांतों का समावेश (द्रष्टव्य सूर्यमल्ल और उम्मेदसिंह चरित्र) क्रियात्मक
घटना-वर्णनों का विस्तार (द्रष्टव्य नारायणदास और बुधसिंह चरित्र) तथा चरित्र-ग
सूक्ष्मताओं को प्रकाशित करने वाले आनुषंगिक चित्र (द्रष्टव्य राव सूर्यमल्ल चरित्रान्तर्ग
उपहास-प्रसंग) आदि समाविष्ट करने पड़े हैं। यथार्थ-सम्पादन के लिए एक और नियाम
तत्व है—पात्र-जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन, जिसमें कवि पूर्णतः सफल हुआ है। वंश
भास्कर जीवन-वैविध्य की एक ऐसी रंगस्थली है जिसमें एक के बाद एक रंग बिखरते च
गये हैं—यदि अटूट साहस, अटूट उत्साह, निरंतर अध्यवसाय, अनवरत-यत्नशीलता और शील

सदाचारके अभिजात्य गुणों में आपकी रुचि है तो उम्मेदसिंह के साथ रहिये। छल-कपट,पाखंड, प्रपंच से आक्रान्त पातक-ग्रस्त व्यक्तित्व धारण करना हो तो जयसिंह कछवाहे की संगति कीजिये। परार्थमूलक शिव-भावना और जातीय आन-मान की दीपशिखा प्रज्वलित करना हो तो भाऊ का साथ कीजिये। स्वाभिमान और व्यक्ति-टेक के निमित्त मौन-बलिदान का गुण संभार देखना हो तो राव सूर्यमल्ल से रचाव रखिये। स्वामी भक्ति सीखनी हो तो अभयमल्ल से सीखें, परोपकार की मंगल-वेदी पर स्वयं को न्यौछावर करने की कामना हो तो देवसिंह से मिलिये। मातृ-भूमि की संरक्षा तथा संस्कृति के वर्चस्व-संस्थापन से यदि आपका अन्तस् तनिक भी मोह रखता हो तो हम्मीर, राणागढ़, लक्ष्मण, दूदा, राणा प्रताप आदि से भाव-स्रोतस्विनियां प्राप्त होंगी। निष्कर्ष यह है कि गुण-वैविध्य और व्यक्ति-वैचित्र्य वंशभास्कर के पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है।

एक बात और—*नारायणदास, बुधसिंह और जयसिंह* कछवाहे के चरित्र में विशेष प्रकार की विरोध-वक्रताएं दीख पड़ती हैं जो कवि-कल्पना-प्रसूत अथवा नवोद्‌भूत न होकर सम्बन्धित ऐतिहासिक पात्रों के यथार्थ जीवन की ही वास्तविकताएं हैं। कवि ने इन्हें मात्र काव्यात्मक उभार दिया है—इस कौशल से कि ऐतिहासिक यथार्थ की सरक्षा भी हो जाय *और कवि-धर्म भी रह जाय। कवि ने पात्रों के यथार्थ जीवन के मोड़ों का क्रम-संयोजन* इस चातुर्य से किया है कि उनके चरित्र की विरोध-वक्रताएं आकस्मिक नहीं लगतीं। यही कारण है कि गौरव-मंडित पात्रों (बुधसिंह) का हीन पर्यवसान देखकर भी उनके प्रति हमारी सहानुभूति का क्षय नहीं होता।

रचना के अधिकारिक विषय 'हाड़ा-वंश' के नरेशों का चरित्र-चित्रण वंशानुक्रम से किया गया है। किसी एक युग के राजा का चरित्राख्यान करते हुए उसके अंतर्गत ही प्रसं-गवश अन्य गौण-पात्रों का समावेश हो गया है। जहां आवश्यक समझा है वहां अन्यान्य गौण पात्रों का वर्णन भी विस्तार से कर दिया गया है। यथा सोलंकी भीम, कछवाह *जयसिंह, राठौड़ जसवंतसिंह, चित्तौड़ के एकाधिक राणा आदि।*

नवेतिहासिक पात्रों को भी सुविधा के लिए दो श्रेणियों में आबद्ध किया जा सकता है—

१—प्रधान-पात्र	२—गौण-पात्र
(क) पुरुष-पात्र	(ख) नारी-पात्र

इनमें से कतिपय प्रतिनिधि पात्रों का विश्लेषण अपेक्षित है—

प्रधान पात्र

हल्लुव—बंबावदाधीश हरराज सुत हल्लुव (हल्लू) उन मध्यकालीन मरणीक वीरों का प्रतिनिधित्व करता है जो सर हथेली पर लिए आसगक अवमर्द बने मृत्यु खोजते फिरते थे (वं०भा० १७०२।१०), जो भीष्म की भांति शर-शय्या के अनुरक्त थे, गृह-मरण को हेय समझते थे।

दुर्दान्त वीर हल्लू ने अपनी जीवन-वेला में एक से एक विकट और प्राणलेवा युद्ध रचे किंतु, मृत्यु उसके हाथ नहीं आई जैसे वह उससे डरती थी—वह बिन बात के रणों में जूझा पर हर बार मृत्यु उससे आंचल बचाकर निकल गई और अन्ततः रणमरणेच्छा को मन में लिये उसे अपने घर में ही मरना पड़ा ।

उद्दाम रण-वासना, अतुल वीरत्व, हठीली टेक तथा मरण-छाक के छींटों से ही कवि ने उसकी व्यक्ति-छटा उभारने का प्रयास किया है। इसके लिये उसने हल्लू के अटूट उत्साह तथा रण-कौशल के चित्र प्रस्तुत किये हैं। यथा—

> बढि तंहं नृपहल्लू भीम वेस, मूर्छित मतंगपति किय महेस ।
> छत विकल भुकत खिच्चिय सछोह, आयो हरराजसु रचत रोह ।। ३१
> सरदुव तस हल्लू सहि विसेस, वहु हनिय खग्ग अरि सिर प्रदेस ।
> कटि टोप द्वि तिल पैठत कृपान, भौलुक सु छोड मजिगो विमान ।।
>
> —वंश० १७२१।३१

कवि ने उसकी शौर्य-भावना की अभिव्यक्ति के लिए उसे 'कुलटेक' 'बानधारक वीर' 'इच्छन मृति रन एक (वंश० १७८४।१) जैसे विशेषणों से विभूषित किया है। विरोधियों और शत्रुओं के लिए साक्षात् 'भय' बनकर वह अपने पिता के सिंहासन पर विराजमान होता है और तत्काल ही परम्परागत वश-वैर का विष उगलता हुआ वासुकि की भांति उन पर चढ़ दौड़ता है।

उसमें प्रतिकार का आवेश अमाप है—दो वर्ष तक स्थिर रहने का उसमें धैर्य नहीं। वैर-प्रतिकार हेतु रण-रचना में विलम्ब होने पर वह अपने भटों को उपालम्भ पर उपालम्भ देता है (वंश० १७८४।४-६)। बंधन से छूटे हुए सिंह की भांति जब वह अभियान पर निकलता है तब शत्रु उसके यों वशवर्ती हो जाते हैं जैसे अजगर की श्वास-प्रक्रिया में क्षुद्र जन्तु उसके उदरस्थ हो जाते हैं। सत्रह वर्ष की कच्ची वय में वह वीर अपनी खोई हुई भूमि को जीत लेता है। (वंश० १७८५।१२)।

वह बांका रतु-रसिक विलास और वैभव के स्थान पर शस्त्र और युद्ध को तरजीह देता है—उसके विवाह तक तलवारों की झनझनाहट और तोपों की गड़गड़ाहट के साथ सम्पन्न होते हैं।

राजनय में भी वह खरे वक्तृत्व तथा स्पष्ट चेतावनी का समर्थक है। चित्तौड़ के राणा को लिखे गये उसके पत्र की हठीली भाषा उसके उद्दाम चरित्र की साक्षी दे रही है (वंश० १७८७।२१-२८)।

शक्ति-पुत्र हल्लू, इस प्रकार, अपने शास्त्र-विस्तार के साथ भारतीय वीर के रूप में उदित हो जाता है (वंश० १७८२।४३)।

युद्ध के लिए तैयार खड़े रहना, पराये वैर-प्रतिकार के लिए अनामंत्रित दौड़ पड़ना (वंश० १७९८।३-४) मृत्यु-रहित बनकर हठात् युद्ध ठान लेना (१७९८।११) इन्

की दिनचर्या के अंग हैं जिनका चित्रण कवि ने इस ढंग से किया है कि रजवट के आदर्श समूर्तित हो उठे हैं।

हल्लू की 'नियति' उससे कभी सहयोग नहीं करती। बारंबार मृत्यु उससे छिटककर दूर भाग जाती है। मृत्यु का बावला बींद उसका वरण करने के लिए विचित्र उपाय (वंश० १८०१। २६-३०) करता है फिर भी उसका अभीष्ट उसे नहीं मिलता। यद्यपि मृत्यु-वरण का एक सुअवसर भी आया और हल्लू ने अपने रण-दूल्हेपन की सजावट में कोई कोर-कसर भी न छोड़ी किंतु धारा-मृत्यु उसे न मिलनी थी सो न मिली। उसकी मरण-वासना का काव्यात्मक- चित्रण द्रष्टव्य है—

> जठै हाडै कह्यियो ए कुंकुमरा दुकूल तो अप्छरी गणारै उचित
> जाणी कीधा जिणथी बिवाहणरो वय व्यतीत हुवो जाणि
> *केवल मरणरै ही मनोरथ आया तिकांरै विवाह कीधा तो दो*
> हो लोक में जस री रीत न रही............ अर म्हांरै तो धरावै
> धराधवांरै धाम धाम धारां धारां री धमचक देखि औरठै भी
> मरणरी पूर्णता मारबीजै (वंश० १८१६। ३४)।

धनड़ तथा अक्खड़ होते हुए भी हल्लू नीति-निपुण तथा विवेकशील है। मंडोवर में अपनी मरणेच्छा का साधन सम्प्राप्य होते हुए भी नीति-समर्थित राजमाता के प्रस्ताव को वह स्वीकार कर लेता है (वंश० १८१७। ३५) और मंडोवर-विनाश का विचार त्याग देता है (वंश० १७१६। ४४-४५)।

निरन्तर खोजने पर भी जब उसे रण-मरण नहीं मिलता तब उसके स्वभाव में एक विशेष प्रकार का अवसाद और उदासीनता का भाव भर जाता है (१८१६। ४५) और वह उसी अवस्था में बयानवे वर्ष तक जीवित रहकर अंत में घर की मौत ही मरता है।

जीवन के कतिपय उदात्त प्रसंगों के आधार पर ही कवि ने हल्लू को रक्त का वह रंग दे दिया है कि वह राजपूत मरणीक वीरों का आदर्श बनकर हमारे सामने आ गया है।

सुर्जन

अर्जुन का पुत्र सुर्जन एक विकसनशील चरित्र है जो चारित्रिक गुणों के कारण साधारण स्तर से उठकर उन्नति करते हुए अपने युग के समस्त वातावरण में सूर्यवत् प्रतपित हो उठता है। *बूंदीय सुरताण की ईर्ष्या का शिकार होकर यह वीर चितौड़पति राणा उदयसिंह* (वंश० १९६। १) के यहां सामंत जीवन प्रारम्भ करता है और शनैः शनैः चारित्रिक विकास के सोपानों को पार करता हुआ बूंदीश बनकर (वंश० १६०। १) समस्त देश पर अपने व्यक्तित्व की मोहर लगा देता है। मुगल और राजपूतों के बीच समन्वय की परिपाटी का सूत्रपात करने वाला यह अनोखा वीर इतिहास में जैसा अद्वितीय है वैसा ही चरित्र-प्रकाशन की दृष्टि से भी बेजोड़।

चितौड़ाधिपति की सेवा में रहते हुए वह अपनी अखूट वीरता और युद्धपटुता का

सिक्का जमा देता है। दुर्जेय वैरियों को जीतकर चित्तौड़पति का मान बढ़ाता हुआ अपने कीर्ति-प्रसार के साथ-साथ लोकप्रियता प्राप्त करता जाता है। उसकी वीरता परार्थ साधन तथा संत्रस्त जनों के परित्राण का लक्ष्य रखती है (वंश० २२१२ । ४)।

सातों-राजप्रकृतियों (अमात्य आदि) को अपने पक्ष में लेकर वह बूंदी-नरेश सुरताण के विरुद्ध अभियान करता है। उसके नय-कौशल परिणामस्वरूप शत्रु राज्य में उसका मार्ग स्वतः निष्कंटक होता जाता है (वंश० २२२५ । २१-२४) और बिना रक्तपात के वह बूंदी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है (वंश० २२२६।२५-२६) । तुच्छ से तुच्छ सहायक चाकरों को भी पट्टे देकर वह उनका मान बढ़ाता है। इसलिए उसके पक्ष-धरों की संख्या काफी बढ़ जाती है।

अपने सामंती सुभटों आदि के साथ उसकी सहानुभूति जितनी प्रशस्त है (वंश० २२२। । ११) उतना ही उसका क्रोध भी प्रखर है (वंश० २२२८ । १५) । उत्तम शासन का यह प्रथम गुण है। वणिक नारायण का सचिव-पद के लिए चुनाव(वंश० २२२८ । ३६) उसकी मति-प्रियता और व्यक्ति-परीक्षा का परिचायक है।

वह अनढ़ शक्ति माराधनत और अपने संकल्प को कार्यरूप देने की अपूर्व क्षमता रखता है। यवनों के अधिकार में पड़े हुए कोटे के मुक्ति-अभियान में इसके प्रमाण मिलते हैं। पराक्रमी सुर्जन पद-पद पर विजय-श्री का वरण करते हुए अकबर जैसे शक्तिशाली के भी घुटने टिकवा देता है (वंश० २२४१।४८)। उसकी विजय का रहस्य है—देशकाल के पूर्वानुमान में सक्षम उसकी मेधा।

रणथंभ-अभियान के तुरन्त बाद ही वह मुगलों के आक्रमण का अनुमान कर लेता है। तदनुसार उचित व्यवस्था सुभट-संचय, संधि, मैत्रि (वंश० २२४७।१७) आदि से अपनी शक्ति को सुदृढ़ करके वह विकट प्रत्याभियान के लिए तैयारियां कर लेता है जिसके कारण अकबर की विशाल-वाहिनी को मुंह की खानी पड़ती है।

सुर्जन में रजवट की मान-मर्यादा एवं धर्म-गौरव की भावना अमाप है। यवनों को कन्या देने वाले, रजवट से पतित यशेच्छुक, भगवंत कछवाहे को वह गढ़ में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं देता। उसका रूखा और कठोर उत्तर (वंश० २२६० । १-५) उसकी धधकती धर्म-भावना धकधकाता प्रमाण है। भगवंत की कपट-नीति, वैभव प्रलोभन, शक्ति-प्रभाव आदि का उस पर कोई असर नहीं पड़ता उलटा वह कटु से कटुतर हो जाता है। 'कुम्भ प्रति आइ हम वंन क्रम यों कहो लुब्धि तुम अप्पि दहितानु वसु भूल हो'। (वंश० २२६२ । २२)।

यह जानते हुए भी कि शाह की प्रचण्ड-वाहिनी के सामने टिक पाना कठिन है, वह हठीला राजपूत धर्म की टेक पर मरण तक को अंगीकार करने के लिए तत्पर हो जाता है। अशरण शरण्यता (वंश० २२ ६२।१४) तथा स्वाभिमान-भावना उसके चरित्र को अन्यतम उपलब्धियां हैं। उसकी अखंड वीरता का लोहा उसके शत्रु भी मानते हैं (वंश० २२६४। २१-२६) और इसीलिए संधि-समाधान से अपनी प्रतिष्ठा से रक्षा करते हैं (वंश० २२६४।

२६) सुर्जन द्वारा शाह के सम्मुख प्रस्तुत संधि की सात शर्तों में तो जैसे उसका जातीय गौरव और वीर-दर्प मूर्त हो उठता है। इन्हीं शर्तों के बल पर युगयुगान्तर तक हाड़ों का वर्चस्व अस्पर्श्य एवं अक्षत बना रहा है। वे शर्तें थीं—

१—कछवाहों ने जैसे अपनी कन्याएँ यवनों को ब्याही हैं वैसा हम नहीं करेंगे।

२—नौ रोज़ के नग्न-प्रदर्शन में हमारी कुल-वधुएँ नहीं जाएँगी।

३—हम युद्धार्थ अटक नदी के पार नहीं जाएँगे।

४—आम और खास दरबार में हमारे वीर निःशस्त्र नहीं रहेंगे, कम से कम एक इच्छित शस्त्र अपने पास अवश्य रखेंगे।

५—लाल कोट तक हमारा नगाड़ा बजेगा।

६—हमारे घोड़ों पर शाही दाग लगाना हमें मंज़ूर नहीं होगा।

७—किसी कार्य के संपादन में हम किसी अन्य राजा के अनुगामी नहीं होंगे।

राजपूती आनबान को मिटाने की कूट-नीति में यत्नशील शाह को यद्यपि ये शर्तें स्वीकार्य नहीं थीं तथापि सुर्जन के ज्वलंत व्यक्तित्व के सामने (वंश० २२६६।३३-३६) उसे झुकना पड़ा। उसके व्यक्तित्व में दृढ़ता, वीरत्व का तेज, कोप का प्रलय-ज्वार और निश्चयात्मक निर्णय अविकल्प-रूप में वर्तमान थे जिनके सामने शत्रु को हतप्रभ होना ही पड़ता था। वह बूंदी को तिनके के समान छोड़ सकता था, युद्ध में ध्रुव-मरण स्वीकार कर सकता था किंतु धर्म की मर्यादा का परित्याग नहीं कर सकता था। इसी दृढ़ता के कारण उसने जो परिपाटी स्थिर की उसके आधार पर अंत समय तक हाड़ों की गौरव-परम्परा जीवित रही। इस प्रकार वह वीर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव युग-युग तक अमिट बना गया। धर्म की यह ज्वाला या तो सुर्जन में मिलती है या फिर भावसिंह में इसकी लपटें लपलपाती हुई देखी जा सकती हैं।

संधि के बाद बिना शाही सहायता के ही (वंश० २२८४।५) वह अविजित प्रदेशों को जीत-जीतकर अकबर को नज़र करता है। युद्धाभियान में उसके व्यक्तित्व की अनड़ता शत्रुओं को आतंकित करती है (वंश० २२८६।१५)।

'मारन सन धारन सरनौं भलो' (वंश०२२८७।१७) का विचार उसकी हृदयगत उदारता का संकेत है। उसके चरित्र की महानता निर्बलों और शरणागतों के प्रति सद्व्यवहार में है जिसके कारण वह पूजनीय बन गया है (वंश०२२२८।२१-२३) *शरणागतों के लिए वह विवेकशील संरक्षक है*(वंश० २२२८।२४-२५)। *यह उसके मानव का* अत्यन्त उज्ज्वल गुण है जो उसे मानवीयता के उच्चासन पर आसीन कर देता है। उसके चरित्र में पारिवारिक मर्यादा—सौहार्द तथा समता का पक्ष भी न्यून नहीं।

सुर्जन के चरित्र का निर्बल पक्ष है—अपने पुत्र भोज के प्रति उसका एकांगी प्रेम और दूदा के प्रति अनादर-भाव (वंश० २२६२।४६) जिसके कारण उन दोनों भाइयों में

वैमनस्य का बीजारोपण होता है और बूंदी का सिंहासन खींचतान में पड़ जाता है। स्वयं पिता को अपने विद्रोही पुत्र के विरुद्ध अभियान करना पड़ता है। इस विडम्बना में भी उसका स्थिर मतित्व धैर्य, वीरत्व, प्रदाता, विश्वास टस से मस नहीं होता। (वंश० २३३०।२६, २३३१।३०)। एक ओर पितृ हृदय की पुकार है—'कुमार दुर्जनसाल ...पचास ही घोड़ांनूं सूना छोड़ि निकारैं हानैं माला लगाई जनकरे नैप्रणामपूर्वक माथो नमायो ॥ नरेस सुर्जन भी पुत्ररो कांधो पावलित हृदयहूं लगाई विश्वासलियो (वंश० २३३।३०)' तो दूसरी ओर मानवान तथा कर्तव्य-पालन की झलक... चाकरी करणों न माने तो दूदा नै पकड़ि आणों ॥ अर नहीं तो भेजवो उणरा सीसरो नजराणों (वंश० २३३२।३२)॥

पिता-पुत्र के इस मान-संघर्ष का चित्रण करने में कवि की कला निखर उठी है। इस प्रसंग में सुर्जन के मनःसंसार के प्रभावशाली तत्वों का परस्पर विरोधाभासों के साथ प्रकाश हुआ है। पुत्र की वीरता और अनड़ता पर उसकी प्रशंसा, मर्यादा-निर्वाह पर प्रेम-स्नेह, पुत्र में अपनी प्रतिच्छाया के दर्शन से उत्पन्न अपूर्व प्रसन्नता आदि उसके आचरण, व्यवहार और वाणी में व्यक्त है। पुत्र के विरुद्ध लड़ते हुए भी उसकी न्याय-भावना जाग्रत रहती है। भोज द्वारा चेतावनी दिये जाने पर भी वह अपना डेरा पृथक नहीं करता, दोनों पक्षों को स्वकीय मानता है (वंश० २३३५।४६) और अपने पुत्र दूदा से पराजय पाकर भी वह उससे खिन्न नहीं होता, बल्कि उसकी प्रशंसा करता है।

इस पारिवारिक कलह के बाद वह अपने को काशी में ही मग्न कर लेता है। उसकी धर्म-वृत्ति में विकास होता जाता है। काशी के ब्राह्मणों को बूंदी में बसाने, तीर्थ-मार्गों को सुरक्षित बनाने जैसे दान-धर्म के कार्यों में उसके चरित्र का अवसान होता है।

इस प्रकार वह साधारण सामंत से पूर्ण चरित्रवान आर्य राजा के रूप में उठता है और भारतीयता का अखंड प्रकाश-स्तंभ बनकर अंत में अपना शरीर गंगा की पावन धारा में विलीन कर देता है (वंश० २३५६।५३-५४)।

भावसिंह

परार्थमूलक शिव-भावना, अटूट साहस, अतुल आत्म-विश्वास के साथ आतंककारी वीरत्व से सधा हुआ बूंदी-नरेश भावसिंह (वंश० २९१५।१) वंशभास्कर का अत्यन्त प्रभावशाली तथा उद्बोधक चरित्र है। इस देश के राजपूत जब लोभ की प्रताड़ना से ताड़े जाकर धर्म-लोप, मान-लोप, वंश-लोप, संस्कार-लोप, नीति-लोप जैसे जघन्य कर्मों में रत रहकर रजवट को लज्जित कर रहे थे तब औरंगशाही कोप से वज्र बनकर टकराने वाला यदि कोई था तो वह भावसिंह ही था। तत्कालीन देश-काल के परिप्रेक्ष्य में कवि ने उस चरित्र की मंगलमुखी वृत्तियों द्वारा तथा नैतिक कृत्यों का नितान्त ही सुन्दर चित्रण किया है।

'ललित-ललाम' (मतिराम वंश० पृ० २७९१) के नायक और प्रातःस्मरणीय (वंश०

२८३४ । ४०) भावसिंह एक ऐसा गौरवशाली पात्र है जिसमें आर्य-धर्मादर्श मूर्तिमत हो उठे हैं। बूंदी के गौरव-शिखर को ढाहने वाली बाढ़ को रोकने वाला वह ऐसा विशाल स्तंभ है जो वंशभास्कर के दो अधिकारी पात्रों के विधान-क्रम में अलग से दीख रहा है।

युवावस्था में ही इस राजकुमार को विलास-वासना से दूर वीरोत्साह के कार्यों में तत्पर देखा जा सकता है (वंश० २९८५ । ७२)। अपने पिता शत्रुशल्य के निर्देशन में उसमें धर्मनयता का तथा दुष्ट दमन का अपूर्व गुण विकसित होता है (वंश० २९२८ । २४, २९२९ । १३) जो बाद में उसके व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग बनता है।

विनय तथा आज्ञा-पालन का भाव उसमें कूट-कूटकर भरा है जो उसे अपने पिता से मिला है (वंश० २९८४ । ६५)। बूंदी में बैठा वह, काबुल-सीमा पर जमे हुए अपने पिता की हर आज्ञा का अक्षरशः पालन करके पुत्र धर्म का निर्वाह करता है (वंश० २९३० । ३५-३७) यही कारण है कि शत्रुशल्य उसके सिर पर पाग रखकर अपने हाथों से उसका राज्याभिषेक करता है (वंश० २६७२ । ४७)।

यद्यपि भावसिंह के राज्यारोहण का आरंभ औरंगजेब के क्रोध और बूंदी राज्य के गौरव को चूर-चूर करने की उसकी कोप-नीति के बीच हुआ था तथापि वह अपनी धीरता, वीरता, यत्न, नीति तथा अपने प्रबल आतंककारी निर्मम व्यक्तित्व से स्थिति को संभाले रखने में सफल होता है। उसका सारा जीवन इसी संघर्ष में बीतता है। उसके चरित्र का सौंदर्य बाह्य और अंतःसंघर्ष के बीच ही उभर कर प्रकाशित हुआ है।

कुल-गौरव-रक्षा के निमित्त वह औरंगजेब को अन्य सामंतों की अपेक्षा द्विगुणित उमदा भेंट करता है (वंश० ३०३९ । ६०-६७) तथापि वह बूंदी के गर्व पर आघात करता हुआ, न केवल उसकी शक्ति घटाने की कुटिलता करता है बल्कि भाऊ और भगवन्त दो सगे भाइयों के बीच ऐसी दीवार खड़ी कर देता है कि हाड़ा वंश टूटकर बिखराव की स्थिति में आ जाता है। ज्यों-ज्यों शाह का कोप बढ़ता है त्यों-त्यों भाऊ का निर्भय व्यक्तित्व भी विद्रोह और संघर्ष के लिए उफनता रहता है। दोनों का यह संघर्ष आजीवन चलता रहता है।

उसकी सहनशीलता, गंभीर एवं नय-बुद्धि की प्रशंसा हमें उस समय करनी ही पड़ती है जब वह शाही कोप के परिणामस्वरूप अपने पद को घटा हुआ पाकर (वंश० ३०४२।१२-१३) तथा अपने भाई भगवन्त को अपने समान, बल्कि अपने भी ऊंचा अलग पद दिया जाता देखकर (वंश० ३०४२ । १४-२४) क्रोधावस्था में भी अपने उफान पर अंकुश लगाए रखता है (वंश० ३०४६ । ४३-४७)। उसका पद सातहजारी से घटाकर ढाईहजारी कर दिया जाता है, तब भी उसकी सदाशयता में कमी नहीं आती— नेगदारों के नेगों में, कवियों के आदर में और वीरों के सम्मान में वह कोई कमी नहीं करता।

उसे अपने प्रिय भाई की मूर्खता पर खेद है, इसलिए कि वह औरंगजेब द्वारा खेली गई कूटनीति को नहीं समझता और बूंदी के शक्ति-भंजन पर उत्सव मनाता है (वंश० ३०६५ । १-२) अन्त में भाऊ एकता भंग तथा विभेद नीति के समर्थक भगवन्त से नाता तोड़ लेता

है (वंश० २७६६ । ४) । यह प्रावरण उसकी ज्वलन्त ऐक्य-भावना का प्रमाण है।

तत्कालीन देश-काल विधान ही ऐसा था कि राजपूत राजा मुगल बादशाहों की रीझ पर ही अपने राज्य-विस्तार की आशाएँ रखते थे अतः भाऊ भी बारंबार अपनी युद्ध-वीरता से औरंग की प्रसन्नता जगाने-बढ़ाने के कार्य करता है (वंश० २७७२ । ४८-४६, २७७२ । ५२) पर हर बार कोई न कोई ऐसा कारण निकल आता है (वंश० २७७२ । ५३-५४) कि जिससे उसे शाही रोष और दमन का शिकार बनना पड़ता है (वंश० २७७३ । ५६)। इस प्रकार भाऊ को अपने आहत वैभव और गौरव की पुन स्थापना के निमित्त शाही कोप से निरन्तर वज्र संघर्ष करना पड़ता है (वंश० २७६३ । ६४-६६)। उत्थान और पतन, आशा और निराशा इसी घात-प्रतिघात में उसका चरित्र विकसित हुआ है।

मरण - राग में उबलती हुई उसकी वीरता, न्याय - परायण वृत्ति हर बार (वंश २७७४ । ६७-७३) औरंगशाही को हतप्रभ कर बूंदी का यश-प्रसार करती रहती है। शा की प्रसन्नता प्राप्त करने के उसके यत्नों, उन यत्नों को असफल बनाने वाले कारणों तथ सैनिकों के मूढ़ाचरण पर उसकी खीज (वंश० २७७३ । ६१-६३) जहां उसके मानसि अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करती है वहां उसके धर्म तथा न्याय-विवेक का भी प्रकाशन करती है औरंगशाही और भाऊ के वज्र व्यक्तित्वों की टक्कर के कई प्रसंग कवि ने चित्रित किए हैं- जैसे भगवन्त को भाऊ से अधिक मान देने का प्रसग (वंश० २७८८ । ३४), बीकेश कर्ण के नाश हेतु भाऊ को लुभाने का कपट-जाल (वंश० २८१४ । १५, २८१५ । २०) हिन्दू धर्म-लोपी शाही नीति और भाऊ का विरोध (वंश० २८१६ । २१, २८२० । ४१)। इस प्रकार के संघर्षों में कवि ने भाऊ को आर्यत्व की जलती हुई मशाल के रूप में निरूपित किया है। ऐसे कौनसे उज्ज्वल गुण हैं जिनका संभार भाऊ के चरित्र में नहीं—सहनशीलता (वंश० २७८८ । ३४-३५), व्यावहारिकता (वंश० २७८६ । ३८), धर्म के लिए मर मिटने और जूझने की उद्दाम वासना (वंश० २७६८ । १२), निडर वीरता तथा भयंकर प्रतिकार (वंश० २८०० । २०), देशकाल-विवेक (वंश० २८०५ । १४), नीति-चातुर्य तथा काल के मुंह में रहकर भी उसके दांत तोड़ने का अनड़ साहस (वंश० २८०६ । ३६, २८१६ । २१, २८२२ । ४८), ओज में उबलता आत्म-विश्वास (वंश० २८०८ । ४१-४२), कुल-मान और आदर की भावना (वंश० २८१४ । २८१५ । १५-२०), वीरता और मरण - राग का निनाद (वंश० २८१६ । १७), परोपकारार्थ मर मिटने की उमग और विश्वास की रक्षा सभी कुछ तो इस महान व्यक्तित्व में समाहित है। इसीलिए वह महाकवि की श्रद्धांजलि (वंश० २८२६ । २३, २८३० । २४ । २६) का अधिकारी बन गया है। अन्त में बूंदी का यह यश.सूर्य दक्षिण में अपनी कृपाण के प्रसव का विस्तार करता हुआ दिवगत होता है (वंश० २८५० । ६४)।

इस महान व्यक्तित्व के अवसान के साथ ही बूंदी के भाग्याकाश में अवसाद की तिमिर घटाएँ घिर आती हैं जो बुधसिंह के समय उसे पूर्णतः आच्छादित कर लेती हैं। उम्मेदसिंह के समय फिर ज्योति-किरण फूटती है।

बुधसिंह

अंतर्मुखी और बहिर्मुखी विरोध-वक्रताओं में प्रस्फुटित तथा विकसित बुधसिंह के चरित्र-विधान में सूर्यमल्ल ने अपूर्व काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है।

बूंदी के गौरव-सूर्य पर छाई हुई मेघ-घटा के सन्निपात काल में बुधसिंह का उदय होता है। अनिरुद्ध के समय में बूंदी के लड़खड़ाते हुए गौरव का उत्तराधिकारी बनकर वह वीर एकाएक ही अपनी अपूर्व वीरता तथा प्रचंड चरित्र के कारण धूमकेतु की भांति सम्पूर्ण देश पर छा जाता है और तुरन्त ही उल्कापात की भांति बूंदी का कलंक बनकर लुप्त हो जाता है। भावसिंह के समय बूंदी के यश-विनाश के जो यत्न बादशाह की ओर से किए गए थे उनका फल बुधसिंह के समय परिपक्व हुआ। विधि की विडम्बना ही कहिये कि बुधसिंह दुर्धर्ष वीर होते हुए भी आलसी बना, कर्मण्य होते हुए भी प्रमादी बना, धर्मपरायण होते हुए भी अधर्मी बना और अततोगत्वा अध:पतन की स्थिति में मारा गया।

अपने प्रभुत्व काल में निरन्तर पन्द्रह वर्षों तक युद्धरत रहकर वह बूंदी के परगने पुनः प्राप्त करता है। कठिन से कठिन स्थितियों में आत्म की रक्षा का भार अपनी भुजाओं पर झेल कर, सारे देश के विरोध की चिन्ता न करते हुए, उसे दिल्लीपति बनाता है।

बीरोत्साह में अनुपम, साहस में अपरिमेय और रण-कौशल में अद्वितीय बुधसिंह हल्लू की भांति अपराजेय होकर उभरता है और अपनी वीरता के बल पर आजम की हिन्दू-सम्मत विशालवाहिनी को तहस-नहस करके आलम को बहादुरशाह बनाकर अक्षय कीर्ति का अर्जन करता है (६३० । २६)। उसके आतंक का लोहा कछवाहे जैसे अनड़ वीर भी मानते हैं और अपने कल्याण के निमित्त उसका निहोरा करते हैं (३००५।२२-२३)। वह वीर-जातीय प्रेम तथा स्वामिभक्ति का निर्वाह करता हुआ हरामियों को हलाली बनाने का दुष्कर कार्य साधता है (३००० । ३८-४५)। विश्वसनीय सेवा और कर्तव्यपरायणता उसकी वीरता के आभरण हैं। जब आजम के प्रपंच में गणिका धर्म अपनाते हुए सभी राजा भू-लोभी बनकर पतित होते हैं (२६५६ । ५, २६५५ । ६) तब बुधसिंह अपनी एकांत वीरता और अविचल आत्म-विश्वास के साथ धर्म, न्याय तथा कर्तव्यपरायणता के उत्साह में धधकता रहता है (२६५५।७-१२)। रण-कौशल, अनथक अध्यवसाय, लक्ष्य की एकाग्रता आदि गुणों से उसका वीर-चरित्र सपूरित है। बहादुरशाह उसकी भुजाओं के भरोसे ही निश्चिन्त सोता है। वह अनड़ वीर तत्कालीन शाही-नीति के सुदृढ़ स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित होकर (२६६६ । २६) प्रचंड मान-मद में डूबकर अपनी कीर्ति को अपने ही हाथों अपकीर्ति में बदल देता है (३०२५ । २-४)। फलतः विरोधवक्रता का विस्मयजनक पर्यवसान पाता है।

आगे चलकर उसको आचरण, मति, प्रतिभा आदि में ऐसा प्रमाद मार जाता है कि वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता। सब ओर से संकुचित होकर वह कच्छप की नांई स्वयं को इस प्रकार आलस्य-आवरण से ढक लेता है कि बाह्य-जगत की कोई दुर्घटना, उसका कोई दुर्भाग्य उसे सक्रिय और बहिर्मुखी नहीं बना पाते। बहिर्मुखी वृत्तियों का यह अंतर्मुखी पर्यवसान, कर्मठता का यह आलस-रूपान्तरण, आश्चर्यजनक किन्तु मनोवैज्ञानिक प्रत्यावर्तन

है, जो संभवतः उसके पन्द्रहवर्षीय कर्मठ-जीवन तथा अनथक युद्धों से उत्पन्न अप-थकानता का ही परिणाम कहा जायगा। यह थकानता प्रमाद के साथ संयुक्त होकर उसके अवचेतन में संचलित होती रहती है तथा अनुकूल अर्थात् विश्राम का अवसर आते ही प्रधानाध्यर-देशीय बनकर उसके समस्त व्यक्तित्व को आच्छन्न कर लेती है। उसके स्वभाव में आने वाली लापरवाही, घोर आलस्य, मति-भ्रम, विवेकशून्यता इत्यादि सब यही स्पष्ट करते हैं कि वह इतना थक चुका था कि अब कुछ भी करने की वांछा उसमें शेष न रही थी। उसकी वीरता, कर्तव्यपरायणता, धर्म-नयता, अडिग हठ, विनय-संपृक्त व्यावहारिकता, राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा, सब न जाने कहां दफन होकर रह जाती हैं। बुधसिंह किसी रसायन की भांति बदल जाता है। यही विस्मय है और इस विस्मय-वक्रता का निर्वाह करने में कवि का काव्य-कौशल स्तुत्य है।

उसके चारित्रिक - प्रत्यावर्तन का प्रारम्भ उस समय से होता है जब वह पुरोहित गजमुख की प्रेरणा से कौलाचार्य नित्यनाथ को गुरु बनाने की इच्छा प्रकट करता है। कवि ने इसे बूंदी का दुर्भाग्य और भावी की प्रबलता कहा है (वंश० ३०२७ । १८)। किन्तु बुधसिंह के इस आचरण के पीछे उसकी दुर्दमनीय शक्ति-वांछा, मद-प्रमत्तता तथा अहम्मन्यता का प्रसुप्त लोभ (३०२७ । १६-१७) निहित था। इस प्रत्यावर्तन तथा विरोध-वक्रता का विधान कवि ने शकुन शास्त्र की शैली (३०२६ । १८-३६) में प्रस्तुत किया है।

यहीं से बुधसिंह के चरित्र में विरोधी-वक्रताओं (वंश० ३०३०।१, ३०३१।५-६) का समारम्भ होता है। आलस्य उसके पूर्व गुणों को इतना प्रतिहत कर देता है कि वह राज-काज से विमुख होकर (वंश०३०३७।१,३०३८।६-१०) विवाह उत्सवादि के प्रति उपेक्षा-वृत्ति अपना लेता है (वंश०३०३८।११-१८)। जहां पड़ जाता है वहीं रह जाता है (वंश० ३०३६ । १६-२३)। उसे न दिल्ली की उथल-पुथल सक्रिय कर पाती है, न अपने घर का उलट-फेर प्रभावित करता है, न बादशाहत के फरमान उसमें प्राण-संचार करते हैं और न ही उसके हितैषियों के प्रयत्न उसे स्फूर्त कर पाते हैं। इस अलस भाव के कारण वह सामान्य व्यावहारिकता का भी त्याग कर देता है (वंश० ३०४० । २६-३०)। शाही फरमानों की उपेक्षा (वंश० ३०४१ । ३५-३६) और अपने हितेच्छुओं के सदप्रयत्नों को असफल कर के उन्हें इतना खिजा देता है कि वे उसके विरोधी बन जाते हैं (वंश० ३०४० । ३१, ३०४१ । ४२-४३) यहां तक कि सालम जैसा स्वामि-भक्त भी हरामी बन जाता है (वंश० ३१४० । ३४)। वह वचन-विवेक तथा देश-काल ज्ञान भी खो देता है (वंश० ३०४१ । ३७-४१, ३०४२ । ४६-५२, ३०४६ । १४-१६)। परिणामस्वरूप बूंदी उसके हाथ से निकल जाती है (वंश० ३०४५ । ३)। असामयिक क्रोध (वंश० ३०४५ । ६-१०) भयंकर अनुत्तरदायित्व (वंश० ३०४६ । १२-१४), राज्यादि के प्रति घातक तटस्थता (वंश० ३०५३ । ३६-४१), घोर अकर्मण्यता (वंश० ३०५४ । ४१-४३), युद्ध-कर्म से विरति (वंश० ३६५६ । ८४), विवेकहीनता, मूर्खता, अयाचित आत्मीय-घात (वंश० ३०५६ । ८५-८६), पलायन वृत्ति (वंश० ३०६५।११७-११८, ३०६७।१२४), असूया, द्वेष, कपट-भावना (वंश० ३०१४ । ४-१२, ३०२५।१६-२०), सम्बन्धियों तथा हितेच्छुओं

पर अत्याचार (वंश० ३०६६ । २३, ३०८१ । ८५-८८) इत्यादि उसके स्वभाव में यों आकस्मिक प्रवेश करते हैं कि उसे उन पर सोचने का मौका ही नहीं मिलता। अपनी मूर्खताओं से वह सब ओर द्वेष और शत्रुता फैला देता है, यहां तक कि अपने पुत्र की हत्या का कारण बनता है (वंश० ३१२३।२८-३१)। बूंदी को निराश्रित छोड़कर स्वामिभक्त सेवकों का विनाश करता है किन्तु उसके माथे पर शिकन तक नहीं आती। सब प्रभावों में प्रभावनीय नारी-प्रभाव तक से वह विरक्त हो जाता है (वंश० ३१४२ । ३४-४०)। इस प्रकार की विरोध-वक्रताओं की प्रताडना में पड़कर वह पराक्रमी वीर वात्याचक्र में पड़े हुए पत्र की भांति, कभी इधर तो कभी उधर उड़ता हुआ, अत्यंत दुर्दशाग्रस्त अवस्था में जीवन का अवसान पाता है (वंश० ३२८५ । १६८-१७१)।

इन समस्त विरोध-वक्रताओं के मध्य एक सद्गुण-रेखा उसके चरित्र में ऐसी चमक रही है जो उसके समस्त अवगुणों को अपने प्रकाशवलय में लेकर स्वरूप कर देती है। वह सद्गुण रेखा है — वंश-रक्षा (उत्तराधिकारी की रक्षा) का प्रबल आग्रह जिसके लिए वह न जयसिंह की परवाह करता है, न बूंदी के जाने की चिन्ता, न कपट-अन्याय को पाप समझता है, न वचन मानता है, न लेखादि स्वीकार करता है। अपने पुत्र उम्मेदसिंह की रक्षा का मोह उसके पतन-काल का वह स्तुत्य गुण है जो बूंदी के भविष्य की आशा का सम्बल और नष्ट गौरव के पुनरोदय का हेतु बनता है। अवगुणों के बीच इस गुण का उभार कवि ने अनुपम काव्यकौशल के साथ दिखाया है। यह उभार अत्यन्त नाटकीय तथा मार्मिक बन पड़ा है जिससे बुधसिंह एकाएक पुनः सहृदयों की सहानुभूति का पात्र बन जाता है। अपनी लुप्त प्रतिष्ठा को पुनर्प्राप्ति कर लेता है।

जयसिंह के साथ किये गये अपने लेख-प्रमाण में बुधसिंह ने प्रण किया था कि चूंडावतों का पुत्र बूंदी का अधिकारी नहीं बनेगा। यदि उसके पुत्र हुआ तो वह जयसिंह को सौंप दिया जायगा और बूंदी पर जयसिंह की इच्छानुसार कोई व्यक्ति बुधसिंह का पुत्र बनाकर रखा जायगा। किंतु बुधसिंह उचित अवसर पर चेत जाता है, उसमें सद्बुद्धि जाग जाती है (वंश० ३१३४।४०-४२)। पुत्र-जन्म (वंश० ३१२७।३) पर वह प्रसन्न होता है (वंश० ३१२८।१५), मोहजनित क्रोध और रोष (वंश० ३१२८।१६) में भरकर एक बार पुनः उसका सोया हुआ तेज जागता हुआ दिखाई पड़ता है (वंश० ३१३०।१६) एक बार फिर कर्मण्यता और सक्रियता करवट लेती है (वंश० ३१३१।२६-३१) और उसमें अनम्रता तथा अटल हठ के भाव सकलित होते जान पड़ते हैं (वंश ३१३२।३६-३७)। जयसिंह के क्रोध और प्रपंच (वंश० ३१३२।३८-४०, ३१३३।४७-५०) की अपने सुभटों के हरामी आचरण (वंश० ३१३२ । ४१ ४२) की बूंदी के हाथ से निकल जाने की (वंश० ३१३५।५७-५८) जयसिंह के अन्याय के कारण असफल हुए अपने प्रयत्न की (वंश० ३१३४।५४-५६) वह कोई चिन्ता नहीं करता। अपनी जाग्रत शक्ति और चेतना को वह एक ही लक्ष्य-उम्मेदसिंह की प्राण-रक्षा-में साधता है तथा उसमें सफल होकर अपने प्रत्यावर्तन के कलक को धो देता है।

उसकी यह मोह-भावना उसके वात्सल्य-जगत में दावाग्नि बनकर उसकी वीर-भावना

को प्रज्वलित करती है। यद्यपि अब समय निकल चुका था तथापि अपनी खोई हुई भूमि को हस्तगत करने हेतु वह उत्साह में छलकता हुआ बूंदी पर चढ़ता है (वंश० ३१३६।१)। स्वामि-भक्त वीरों (अभयसिंह और देवसिंह) का अटूट सहयोग पाकर एक बार फिर उसकी वीरता शत्रु-दल को प्रकंपित करने का हौसला करती है किन्तु उसका हतभाग्य कि पराजय और पलायन, अपकीर्ति और उत्खनन (वंश० ३१८६ । २४) के सिवा उसे कुछ नहीं मिलता। यह निराशा उसमें फिर अविनय, उद्दतता, मति-भ्रम आदि (वंश० ३१६६। ६-१७; ३२०२ । ४-५; ३२०३ । १६) का संचार कर उसे पुनः अकेला (वंश० ३२०४। २१-२४) बना देती है। अंत में वह देवसिंह के आश्रय में बेगमपुर (बेगू) आकर रहता है (वंश० ३२०४ । २५) और साधारण उत्थान-पतन के बीच प्रमाद में बहता हुआ (वंश० ३२१३ । १५-२०) बूंदी के येन केन प्रकारेण जीते जाने के समाचार सुनकर मां मा[न] में डूबा रहता है (वंश० ३२२० । २७-३४)। इस प्रकार बूंदी-कुल का कलंक बन दिवंगत हो जाता है (वंश० ३२८५।१६८)। उसके साथ उसकी कोई रानी भी सती होती।

उम्मेदसिंह

बूंदी का सौभाग्य सूर्य उम्मेदसिंह 'ओजित' वंशभास्कर का नितान्त ही गौरवशा[ली] पात्र है। बाल-रवि की भांति कभी डूबता, कभी उभरता प्रताप और यश के धवल पथ निरंतर अग्रसर होता हुआ वह बूंदी के लुप्त गौरव की पुनर्स्थापना करता है और अ[पने] जीवन का जीवन्त प्रतीक बनकर इतिहास के पथ पर अपने चरण-चिन्ह छोड़ जाता है।

उसका जन्म दुर्दशाग्रस्त अवस्था में होता है (वंश० ३१२७ । ३)। संघर्ष और दीन झपटों के वातावरण (वंश० ३१२६ । १३-१४) में उसकी आंख खुलती है। बाह्यान्त[रिक] के घात-प्रतिघातों के मध्य उसे सर्व कठिन उपायों से सुरक्षित किया जाता है (वंश० ३१२[..] १५-२४)।

दस वर्ष की कच्ची अवस्था में उसे अपने पिता बुधसिंह से जो मिला था, वह था *बेगमपुर का आश्रय, न पुरोहित न राज्य, न कोई सगो न साथी (वंश० ३२६२।१७-२३)* अपने गुण-संस्कारों का अवलम्बन लेकर (वंश० ३२६७ । १९) वह बूंदी के पाट पर बैठ[ता] है। दान, शान, धर्म, नय, सत्य, सदाचार, राजोचित शूरता आदि के गुण-संभार (वंश० ३२६५ । १-७) *उसमें बाल्यावस्था से ही प्रकट होने लगते हैं।*

वय-वृद्धि के साथ विकसित उसका नैपुण्य — समर्थ क्षत्रिय राजपूत भटों को अपने झंडे के नीचे लाकर खड़ा कर देता है— और इस प्रकार निराश्रित उम्मेदसिंह एक महत्वा-कांक्षी राजनेता के रूप में उभरकर सामने आता है। उसके मार्ग-पथ में कछवाहे ईश्वरसिंह की अमोघ शक्ति और उससे आतंकित दल्लाराम राजा सालम आदि अनेक अवरोध बनकर खड़े हुए हैं। वे हर संभव यत्न से उम्मेदसिंह के अस्तित्व को मिटा डालने की ताक में हैं (वंश० ३३२० । ४-८; ३३२१ । १८-१९; ३३२२ । २१) फिर भी उसके उत्साह में उतार नहीं आता। *विधि-प्रदत्त संयोग (वंश० ३३२३ । २५)* का बल पाकर उसका

उत्साह बढ़ता है (वंश० ३३२३ । २६) और वह अपने लक्ष्य की एकाग्रता में लीन हो सैन्य-सामग्री का संचय करता रहता है। उसके मित्र-मुख-शत्रुओं के छल-प्रपंच भी कम घातक नहीं हैं (वंश० ३३२३ । २१-३१) । कछवाहों के पेट में समाई बूंदी को लेना भी सहज नहीं है (वंश० ३३२६ । १२) तथापि उसके स्वभाव की उद्यमशीलता, अध्यवसाय-वृत्ति तथा साहसिकता कम नहीं होती (वंश० ३३३८ । २७-३०) । उसका उद्दाम साहस और प्रदम्य आत्म-विश्वास इसी से स्पष्ट है कि वह १४ वर्ष की आयु में अपनी खोई हुई भूमि छीन लेने का महान अभियान रचता है (वंश० ३३३९ । ३१-३३) । उसके इस वीरत्व का कवि ने भावुकता के साथ वर्णन किया है—

> सटा धूनिकै सिंह उम्मेद सज्ज्यो, गदा लै कि दुज्जोधपैं भीम गज्ज्यो ।
> बिडोजा मनों जम्भपैं छोह छायो, लग्यो लंककैं अजनी को लड़ायो ॥ १
>
> किधौं कुंडली में बली पन्नगासी, रिसानौं कि अबारपैं तेजरासो ।
> किधौं सिंधुके सुनुपैं संभु त ्यो, मनो चंडपैं कालिका कोर मढ्यो ॥ २
>
> जटाजूटतैं वीर भद्रेस जग्यो, महासेनकैं क्रौंचकों लैन लग्यो ।
> फटा टोप कै रागपैं नाग किन्नौं, कुवेलास्व कै धुधुपैं दाव दिन्नौं ॥ ३
> किधौं है हयाधीसपैं राम कुप्यो, किधौं राम सकेस के आजि ढ्प्यो ।
> रच्यो चाप गांडीव टकार रंज्यो, मज्यो कै गुडाकेस राधेय गज्ज्यो ॥ ४
> सज्यो कन्द्र कै साहगौरीस सत्थैं, मुर्यो लगरी वानि अंथद मत्थैं ।
> चख्यो सोखिबैं सिंधु बातापि ब्वसी, अर्यौं हट्टपैं बालि ज्यों इन्द्रअसो ॥ ५
> बलाधीस मूलै न यो भूप बड्ड्यो, चमू संकलीभद्दर्यो मेघ चड्ड्यो ।
> लगे सान भंभ्फान धारालधारी, भ्रमासत्त दग्भै भरै फूल भारी ॥
>
> —वंश० ३३४० । ६

उसके ये वीर-कर्म बूंदी-विजय तथा दलेल-पराभव के रूप में फलीभूत होते हैं (वंश० ३३७१।२२-२३) । किन्तु पर-सहाय से प्राप्त फल का उपभोग उसे अभीष्ट नहीं। इसीलिए वह कोटेश से विग्रह करने की अपेक्षा बूंदी को छोड़ देना वह श्रेयस्कर समझता है। उसका महत आत्म-विश्वास स्तुत्य है—

> तसमात उचित नहीं पर सहाय, लैहैं बहुहि भुजबल दिखाय ।
> उम्मेदनृपति यह मंत्र लाय, अजमेर गयउ बूंदी बिहाय ॥ —वंश० ३३७१।२७

उसके सिंह-व्यक्तित्व तथा वीर-भावावेश की व्यंजना कवि ने उसकी रानी की उद्बोधक वाणी में करके अपने काव्य-कौशल का परिचय दिया है (वंश०३४०२।११-२१)।

उसके अमित प्रताप एवं पराक्रम के मध्य उसका दुर्भाग्य पुनः प्रबल होता है (वंश० ३४३१।१४७-५१) । बूंदी उसके हाथों से फिर निकल जाती है, तथापि उसका ओज नहीं घटता(वंश० ३४३१।१५२) । निराशा अथवा पलायन तो जैसे उसकी प्रकृति में है ही नहीं। बाधाओं के विरुद्ध जूझने और लक्ष्य प्राप्त करने का प्रबल आग्रह ही उसमें प्रमुख है (वंश० ३४४८।१६) । इतना सबुद्ध होने पर भी वह अविनीत अथवा दुराग्रही नहीं है (वंश०

था, भला इस प्रस्ताव को कब स्वीकार कर सकता था। अग्रज के सामने रावण-हठ पर अड़ जाता है। उसे अब सिवा मरण के कुछ भी अभीष्ट नहीं है।—

> चूको लाज समुद्र बिच, लखि अग्रज लंकाळ।
> पाणि जोड़ि दै घण सपथ, पुणियो तदि रोपाल॥ ३६
> नारि सती बळती नहीं, बिणु अब तो भी याह।
> करतो आत न आपक्रम, राखे जस कुल राह॥
>
> —वंश० १८१७। ३७

उसके ये वचन उसके अनड़ स्वभाव व मरण-व्रत के दिग्दर्शक हैं। बड़ी कठिनाई से हल्लू उसे मनाता है (वंश० १८१८। ४१) परन्तु अपने विवाह का मंगल कार्य निपटाने का तो उसे रोपाल की मरणेच्छा पूर्ण करने के लिए आयोजन करना ही पड़ता है। देखिये—

इण रीतिरो आदेस आपरा अनुजरै अंगीकृत कराइ हालू नरेस·········कहियो भाई रोपाल रो प्रण पूरण करण नूं एक सिरदार पधारो। अर जिकणरै मरियां ही मंगळ होइ तिकणरा बचावण में कोई भी जतन न धारो। जरै मरणरौ ही मानि अठोरा अठी जोवतां हम्मीररी सभा हूं महाराज पड़िहार ढाल तरवारि पकड़ि अखाड़ै आयो। अर अठी हूं खड्ग खटक समाहि अहूनी अणीरो बीद रोपाळ हरराजोत चलायो। ४२।··············· उण समय आपरो वार जाणि पड़िहार महराजरो सांचो हाथ छूटो। जिकणपी अचलरा उपमान रोपाळ हरराजोतरो सीस शृंगरै समान तूटो। ४३। सीस उड़तांही पड़िहार हथिया अर महराज मरड़ि चालियो तिकणरै लार लागे रोपाळ रै रुंड खंग पटकि कटारि काढ़ि साठगै पेड जावतां कटिबंध पकड़ि पड़िहाररा पिंडमें सात घाव जड़िया।

सो च्यारि ऊभां तीन घड़ियां देर इण रीति दो ही बानैत एक ही काल में खेत पड़िया।
··················वंश० १८१८–१८१९। ४४

इस प्रकार वह वीर मरते-मरते अपने प्रतिद्वन्द्वी को कटार के आड़े-तिरछे घाव देकर अपने ही साथ ले जाता है और अपने मरण-हठ की टेक पूरी करके धारा-तीर्थ को प्राप्त होता है।

सुमाण्डदेव

एक ओर हल्लू और रोपाल जैसे मरण-हठी वीरों की व्यक्ति-सत्ता उभारी गई है तो दूसरी ओर सुमांडदेव जैसे हत-श्रम और चाल बुद्धि-प्रधान कायर पात्र भी उठाये गये हैं।

वैरी-शल्य के तिल-तिल कर मर जाने के बाद सुमांडदेव बूंदी का अधिपति बना था। बाजबहादुर श्याम-श्यामा को उड़ाकर ले जाता है। बच्चों का हरण होता है तब भी सुमांड चुप्पी साधे रहता है जब कि उसके सहायक क्रोध में उफन कर रतिवाह करने की तैयारी करते हैं (वंश० १८९९। १७–२०)। चायल जावडू तो इस दुर्घटना के समाचार सुनकर

इतना उत्तेजित हो जाता है कि उसके भरते हुए घाव फट जाते हैं और वह मर जाता है। (वंश० १६०१। १५)। इतना होने पर भी सुमाण्ड अपने हठीले वीरों को मना-मना कर लज्जा को पी-जाने के लिए प्रेरित करता है (वंश० १८६६। १४)। उसके स्वभाव की इसी निर्वीर्यता का लाभ उठाकर उसके भाई-बन्धु सर उठाते हैं और अपनी सीमाएँ बढाते चले जाते हैं (वंश० १६०८। १)।

सुमांड की दुर्बलता, उसकी तुष्टीकरण की नीति में झलकती है (वंश० १६१२। २४) जिसके कारण उपद्रवी-जन और अधिक उग्र बनते हैं। स्वामि-भक्त भी भनला जाते हैं और इस प्रकार बूंदी के दुर्भाग्य (वंश० १६१२। ३) का सूत्रपात हो जाता है। सुमांड को ओर से किसी को कोई आशा नहीं रह जाती (वंश० १६२०। १–२)। इन चारित्रिक निर्बलताओं के कारण ही वह हीन-दर्प शासक समरकंद के अभियान के समय (वंश० १६५५। ५८-५६) भूमि-रक्षा या वीर-मरण की बात नहीं सुनकर पलायन की बात पसंद करता है (वंश० १६६१। ६–१०) और आक्रान्ता के सामने झुककर अपनी भूमि का त्याग कर देता है (वंश० १६६२। १२–१४) और इस प्रकार बूंदी के इतिहास में अपनी कायरता का कलंक छोड़ जाता है (वंश० १६६२। १५)।

उसकी इस कायर-वृत्ति के मूल में वह वणिक्‌वृत्ति सक्रिय है जो प्रतिकूल समय को बिना रक्तपात के टाल देती है और अनुकूल समय की प्रतीक्षा करती है (वंश० १६६१। ६) तथापि उसकी दया-भावना, क्षमाशीलता, सरलता, प्रजा-रक्षण और भोलेपन का चित्रण करके कवि ने उसे नितांत ही हेय बनाने से बचा लिया है। भयानक दुर्भिक्ष पड़ने पर वह अटूट सहायता कर प्रजाजनों एवं भटों में लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है (वंश० १६१६। ४५) वह अंत में अपनी सरलता के कारण ही समरकन्द द्वारा छल से मारा जाता है (वंश० १६६९। ६०–६५)।

अभयसिंह

स्वामि-भक्ति तथा स्वाभिमान के गुणों से वलयित बलवन का अधिपति अभयसिंह ज्वालामुखी के पिघले लावे की तरह बहता हुआ चित्रित किया गया है।

बूंदीश बुधसिंह के प्रति आलम तथा कछवाहों का अपमान जनक संदेश (वंश० ३१५३। ३०–३२) सुनकर वह भड़क उठता है—उसका स्वाभिमान तथा स्वामिभक्ति की प्रचंड भावना बुधसिंह के समझाने पर भी नहीं दबती क्योंकि उसके साथ आहत स्वाभिमान का सर्प भी फण उठा चुका है। अतएव केवल दस साथियों के बल पर ही वह कछवाहों की विशाल-वाहिनी का दर्प-दलन करने को उद्यत हो जाता है (वंश० ३१५५)। उसकी इस स्वामिभक्ति का रंग उसके दूसरे साथियों पर भी असर करता है (वंश० ३१४५। ५१–५२)। स्वामी की चिंता, उसकी रक्षा की महती भावना उसमें इतनी प्रबल है कि वह स्वयं स्वामी की बात भी मानने को प्रस्तुत नहीं है (वंश० ३१४६। ६)। स्वामि-भक्ति की इस ज्वाल भावना से परितप्त वह वीर ब्रह्मलोक को अपने सिर से घिसता हुआ मृत्यु का वरण करने के लिए चल पड़ता है। यथा—

कहि कुबैन उठि कूरमन, निज दल विलिय जाय।
यह सही न बलवन भ्रधिप, लगिय सोर बिच लाय ।। ५७
भ्रमर्यसिंह भरु देव इत, कुप्पि चलिय जिम काल।
सिर घरसत भ्रजलोकसों, पय परसत पायाल ।। ५८
सालम भरु कूरम सुभट, जुरि इत प्रबल जरूर।
बुंदिय दल सिर भ्रग्गलैं, सकल चढ़े बढ़ि सूर ।।

—वंश० ३१४६ । ५९

युद्ध में भ्रपने हिस्से की भ्रप्सरा को भ्रतीव भ्रानन्द का प्रसाद देता हुभ्रा वह भ्रपने स्वामी का भ्रपमान करने वाले एक-एक दुष्ट को ललकारता है भ्रौर उन्हें उनके कुकर्मों का उत्तर कृतान्त काली करवाल से देता है। उसका जोश भ्रपरिमित है—

पय दब्बत भ्रहि पुच्छ मुच्छ भ्रंचत मयंद जिम।
सोर मनहु साबात भ्रग्गि लग्गत प्रचण्ड द्रुम ।।
हेलि मयूख हजार जेठ दुपहर जनु भ्रग्गिय।
प्रलय उग्र जिम प्रथित लाय भ्रखिल भ्रति लग्गिय ।।
कानन प्रमान बानन करखि कूरम देह सुसेह किय।
मदमत्त लखहु हहु मरद गहे पद भ्रगद गतिय ।।

—वंश० ३१५४ । २५

वह वीर उस क्षण तक स्वधर्म की प्रचण्ड धक में धधकता रहता है जब तक वह सभी भ्रपमानकर्ताभ्रों को यमलोक नहीं पहुंचा देता। तदनतर ही वह वीर गति को प्राप्त होता है। —वंश० ३१६३ । ८६-९२

भ्र—नारी-पात्र

वंशभास्कर के पुरुष-पात्र यदि रजवट की मशाल हैं तो नारी-पात्र उसे प्रज्वलित करने वाले भ्रग्नि-स्फुलिंग।

रजपूती इतिहास-फलक पर 'काळ सूं चाळा' (वंश० १३५८ । ६) करते हुए 'सूना धँर जगाकर' (वंश० १३६१ । २१) 'खळां घर कूक मचाने वाले' (वंश० १०९२ । ४३) 'मालिक रो नमक उजाळने वाले' (वंश० १३५१ । ४२) 'मरणीक सिपाही' (वंश० १८१५ । ११) को 'जस लुब्ध' (वंश० १२६६ । २८) करके 'भ्रहुतो भ्रणोरा बोद' (वंश० २०१६ । ३१) भ्रथवा 'राहि दुसह' (वंश० १८९२ । ४३) *किसने बना दिया ?* उन्हें ऐसे ज्वाल-संस्कार कहां से मिले कि वे 'कीर्ति-कंद' (वंश०) 'भ्रहली रो कटस सची रो नाळेर' (वंश० १८१७ । ३५) बन गये ? इन प्रश्नों का उत्तर होगा उस माता से जिसने पालने में उसे 'इळा न देणी भ्रापणी' (वीर सतसई) *का मारण-मन्त्र* सिखा दिया। उस जीवन-सहचरी से जिसने उसे 'मूंडिया मिळसी मींदवो बळें न धणरी बाह'

(वही) की चेतावनी दी, उस बेटी से जो प्रसूति-गृह में तपती अंगीठी की ज्वाला को देखकर हर्षित होती है, उस बहिन से जो राड़ मांडने के लिए सदैव तत्पर रही है—

> भाभो ढोढ़ी हूं खड़ी लीधां खेटक रूक।
> में मनुहारो पामणा मेंडो भ्राल बंदूक ॥ (वही)

कहा जा सकता है कि वंशभास्कर की नारी की कोख से ही वीर-सतसई की नारी का जन्म हुआ है।

वंशभास्कर में दो वर्ग के नारी पात्र आये हैं—पहला राजरानी-वर्ग और दूसरा चारणी-वर्ग। इनमें द्वितीय वर्ग अपवाद-स्वरूप ही आया है। कवि को रानी-वर्ग का चित्रण ही अभीष्ट रहा है।

यहां कतिपय विशिष्ट नारी-पात्रों का चरित्र-विश्लेषण प्रस्तुत है।

उमादे भटियाणी

संकल्प-शक्ति, उदात्त शील एवं सुकुमार-सौंदर्य से विभूषित, जैसलमेर के भाटी नरेश की कन्या उमादे के संस्कारों में जो अनड हठ समाया हुआ है, उसके रक्त में स्वाभिमान का जो लावा बह रहा है, उसी के आधार पर कवि ने उसके चरित्र-वैशिष्ट्य का आधान किया है।

अति कामुक और निर्लज्ज राठौर मालदेव से उसका विवाह होता है (वंश० २०११। १२)। मालदेव की लंपटता और हेय आचरण से उमा का दर्प फुंकार उठता है। फलतः *वह उस किंकरी-रमण को आजन्म अपना पत्नी-प्रसाद न देने की भीषण प्रतिज्ञा करती है—*

> ... ...
> निज दासीसह निरतबर्गहि लखि गहि बहु बानिय।
> याहि उचित अब अप्प भनिय सिहनी भटियानिय ॥
> चढ़िबो जु प्रात सज्जा उचित तो चढ़िहों तावक तलप।
> किंकरी रमन बिनु मोहि कढ़िवयों न जाहु अगनित कलप ॥
>
> —वंश० २०१२। १५

इस हठवादिता के साथ उसकी नारी—भावना मर चुकी है, ऐसी बात नहीं है। किन्तु वह अपने नारीत्व को किसी जार के हाथों का खिलौना नहीं बनने देना चाहती—बल प्रयोग से स्वयं को कलंकित नहीं होने देना चाहती। अपने टेक-रक्षा एवं मान-रक्षा हेतु वह पति का घर छोड़कर पीहर चली जाती है (वंश० २०१४। २२-२४)।

उस सिंहनी को जाने से रोकने की सामर्थ्य उसके कलंकित पति में नहीं (वंश० २०१५ । २१)। वह अंत तक अपने लंपट पति का मुंह नहीं देखती, किन्तु उसके मरने पर अपने पीहर में ही बैठी सती हो जाती है। उस पुण्यमयी नारी की धर्म-भावना के योग से पतित मालदेव भी मुक्त हो जाता है (वंश० २०१७। ४१; २२७४। ११)।

वर्णन करके कवि ने राजपूत नारी के पातिव्रत-धर्म का निरूपण किया है (वंश० २४६७)। एक ओर तो बुधसिंह जैसे आलसी और भू-लोपी राव के साथ रानियां सती नहीं होतीं दूसरी ओर लम्पट गोपीनाथ के साथ ऐसी पतिव्रता नारियां हैं। यह तथ्य इस बात का स्पष्ट संकेत करता है कि उस युग में राजपूत नारी के लिए पति का परदार भोगी होना उतना हीन नहीं माना जाता था जितना उसका अकर्मण्य या मर्यादा-लोपी होना। राजपूत नारी के पातिव्रत-धर्म के प्रतिनिधि-चरित्र के रूप में कवि ने अम्बा के गुणों का वर्णन किया है।

गोपीनाथ की हत्या (वंश० २४६६) से दो दिन पूर्व ही पतिव्रता अम्बा मर चुकी थीं, अन्यथा वह अग्रणी होकर सबसे पहले चिता में कूद पड़ती (वंश० २४६८। ४४)। उस का पातिव्रत-पालन देखिये कि वह पति के दुःख में दुःखी और सुख में प्रसन्न रहती है। उसने कभी पति से पहले भोजन नहीं किया (वंश० २४६७। ४२)। पति के उपासे रहने पर वह स्वयं उपासी रहती है। उसे चोट आने पर स्वयं को भी वैसी ही चोट पहुंचा लेती है (वंश० २४६७। ४२–४३)। पति में जारत्व का अवगुण होने पर वह अपने धर्म से विचलित नहीं होती।

इसी सदर्भ में गोपीनाथ की चौथी बाघेली रानी का अद्वितीय सहगमन भी स्मरणीय है। यह बाघेली रानी रोग-ग्रस्त होने पर भी अपने को सहमरण के सौभाग्य से वंचित नहीं रखना चाहती। कपट-मृत्यु का प्रपंच रचकर वह श्मशान तक पहुंचती है और सती हो जाती है (वंश० २४६८। ४१–४६)।

मरणीक-भावना के प्रसंग में चारण विजयसूर की पत्नी को भी नहीं भुलाया जा सकता। वह वीर चारणी गर्भावस्था में ही सती होना चाहती है। वर्जन करने पर कोख चीरकर गर्भस्थ बालक अपनी ननद को सौंप देती है और स्वयं सती हो जाती है।

वंशभास्कर की विषय-प्रकृति के कारण क्षत्रिय नारियों के चरित्र उत्कर्ष का प्रतिपादन करने का कवि को पूरा पूरा अवसर नहीं मिला है। पूर्व पृष्ठों में जो कतिपय नारी-पात्रों का परिचय दिया गया है उनमें क्षत्रजाति के इस कीर्ति-कलश की सम्पूर्णता उजागर नहीं हो सकी है। यही कारण है कि कवि ने उम्मेदसिंह चरित्रान्तर्गत, प्रसंग निक्षेप करके, उसकी रानी के 'उद्बोधन' में नारी-वर्चस्व को मूर्तिमंत करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में उसे अभूतपूर्व सफलता मिली है। वीर-क्षत्राणी की ज्वलत शौर्य भावना के ये मुंह बोलते चित्र ही मानो रस-विभव के साथ चित्रित किये गये हैं। मानवीय अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति को यदि कविता कहा जाय तो इससे बड़ी कविता और क्या होगी ?

निद्रा मोड़ में सभी निद्रा मग्न है—महाराव उम्मेदसिंह भी। एकाएक ही जयपुर की विकट-वाहिनी बूंदी पर चढ़ आयी है। सूचना मिलने पर महारानी उम्मेदसिंह को जगा रही है—वीरत्व के प्रबोधन के साथ। देखिये—

> सिंहनि अविसय सिंहसों, चित्त सचहु अब कंत।
> बिन हत्थन कुंभन अमभ, ते धावत घुमडंत॥ ११

जिनहित लंघन संधि कैं, सद्यो श्रोर न मंस ।
सहजैं तैं भावत सुनैं, वारन भद्दन वंस ॥ १२

लंबी हुरल लंकतनु, उद्भट परखहु भ्राज ।
भूख न कट्टहु भावते, रोसिल्ले मृगराज ॥ १३

जिन कुंभन नख नाह के, बनैं घटा जिम बीज ।
हम कौतुक यह पिक्खहैं, खुल्लहु रंचक खीज ॥ १४

इतर मृगन अपराधपैं, नयन उधारत नाहिं ।
त्यौं ही ज्यों यह तक्किहों, यौं ही तो यह मांहिं ॥ १५

भूख निकासहु भौनतैं, गंजि गजन बल गड्डु ।
कुंभ सांन तिक्खी करहु, दड्डारे घसि दड्डु ॥ १६

इक तरच्छु चित्रक बहुल, इत सिव स्वान अयप्प ।
सरभ भरोंति जियत सब, अब दृग खुल्लहु अप्प ॥ १७

रमनी के सुनि बच रुचिर, चंड गुमर अलसात ।
सिंह कह्यो जगि सिंहनी, होवन देहु प्रभात ॥ १८

होत होत यह बत्त हुव, कुकवा कुन ध्वनि कान ।
उट्ठ्यो तजि गलबाहु अब, चंड सरभ चहुवान ॥ १९

इत रानिय बज्जत सुनैं, गहन गिद्धनिन गैन ।
बुल्लि अब देरन बहिनि, चित तुम रक्खहु चैन ॥ २०

दंतहार गज कालिकन, गूद पलन अवगाह ।
तिहिं मम कतहिं नेंक तुम, सज्जन देहु सलाह ॥ २१

बीरन के बहुबिधि बसा, मामज धारचि मेहु ।
अतिमुट्ठि र हय तिट्ठि अब, पतिकौं पावन बेहु ॥ २२

हम रानिय इत गिद्धनिन, अक्ख्यो बिहित बिलास ।
इत कर दैखि मुच्छ सूर, पगि रस बीर प्रकास ॥

—वंश० ३४०२-३४०४। ११

अध्याय ७

वंशभास्कर : शैली-समीक्षा

शैली—मानव के अगोचर भाव-जगत में गोचर की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति ही कला है। अभिव्यक्ति के माध्यम भेद—रंग-रेखा-तूलिका, छैनी-प्रस्तरखंड, तंतु, सुरताल शब्द आदि— से चित्र, मूर्ति, संगीत, काव्यादि विभिन्न कलाओं का आविर्भाव होता है। अभिव्यक्ति की नव-नव पद्धतियां वैलक्षण्य का आधान कर इन्हें विशिष्ट बना देती हैं। अभिव्यक्ति का यह वैशिष्टय ही शैली है। इस प्रकार 'भाव' कला का बीज, 'अभिव्यक्ति' कला का रूप और शैली' कला का व्यक्तित्व है। वस्तुतः यही वह तत्व है जो उसे असमान ही नहीं अपितु समानधर्मी कला से भी पृथक् कर वैशिष्ट्य प्रदान करता है।

सृजनोन्मुख कलाकार अथवा कवि की शैली के स्वरूप-विधान अथवा संस्कार-संपादन में जो तत्व क्रियाशील रहते हैं वे हैं—

क—कवि-व्यक्तित्व   ख—प्रयोजन   ग—अधिकारी

घ—विषय वस्तु

कवि का व्यक्तित्व और शैली

कवि की कृति काव्य है।[1] कृति में कर्ता (कवि) का व्यक्तित्व मुखर हो यह सहज है। इसी सत्य की साक्षी में काव्य को कवि की मानस-संतान कहा गया है। काव्य की प्रत्येक गतिविधि में, उसकी प्रत्येक सांस में कवि जीवित रहता है। क्या विषय-निर्वाचन, क्या वस्तु-संयोजन, क्या स्वरूप-संपादन, क्या रस-भाव-समुन्मीलन और क्या शैली-संघटन अर्थात् कृति निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया में कवि-व्यक्तित्व भास्वर होकर रहता है। कवि-व्यक्तित्व का यह आग्रह विशेषतः शैली-संघटन में अपने ज्वलंत रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार कवि का व्यक्तित्व शैली में मूर्तिमंत होता है। अतएव कला का व्यक्तित्व (शैली) वस्तुतः कवि का ही व्यक्तित्व है। शैली कवि की वह वैयक्तिकता है जो उसकी कला के माध्यम, तत्वों और संघटन में स्पष्टतः झलकती है।[2] यह कवि-व्यक्तित्व का घनिष्ट और

१—कवेः कृतिः काव्यम्

२—"Style is the personality of the artist showing through the medium eliments and organisation."

—Luie Dudley : The Humanities, Page 413

—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त कृत 'साहित्य-विज्ञान' पृ० २११ से उद्धृत

अविभाज्य तत्व है[१]— उसकी प्रकृति का अंश ही नहीं अपितु स्वयं व्यक्तित्व है।[२]

विश्लेषण में सूर्यमल्ल के व्यक्तित्व के दो ध्रुव सिद्ध होते हैं—एक पांडित्य और दूसरा कवित्व। कहना कठिन है कि इन दोनों में कौन प्रबल है ? वस्तुतः वह जितना बड़ा पण्डित है उतना ही बड़ा कवि भी और जितना बड़ा कवि है उतना ही बड़ा पण्डित भी। वह काव्य-सम्पदा[३] सहज-प्रतिभा, विविध शास्त्र नैपुण्य तथा सतत अभ्यास का धनी है। उसने अपनी निःसर्ग-सिद्ध सहज प्रतिभा की व्युत्पत्ति[४] और अभ्यास द्वारा संवार-निखार कर स्वयं को 'पूर्ण कृतित्व' से अभिमण्डित कर लिया है।

इस प्रकार वंशभास्कर में सूर्यमल्ल एक पूर्णकवि के रूप में अवतरित हुआ है। इसकी शैली में उसके व्यक्तित्व के दोनों पक्ष मुखर होकर व्यक्त हुए हैं। सूर्यमल्ल का 'कवि' और 'पण्डित' वंशभास्कर में साथ-साथ चले है। जहां जिसको अवसर मिला वहीं उसने दूसरे के साथ मिलकर अपना चमत्कार दिखलाया है। ग्रंथ के विषय की प्रकृति-प्रवृत्ति और कवि प्रयोजन को देखते हुए यद्यपि सूर्यमल्ल के 'पण्डित' को खुलकर खेलने का अवसर मिला है तथापि उसका कवि कुंठित नहीं रहा है। युद्ध-प्रसंगों तथा वर्णनों में उसके करतब दर्शनीय हैं। किन्तु जहां पाण्डित्य कवि पर हावी हो गया है वे प्रसंग मात्र 'शास्त्र-संग्रहन' बनकर रह गए हैं (द्रष्टव्य वंश० ४।११।६५, ३६८१३०) जिनका प्रवेश काव्य में वर्जित ही कहा जायगा। पर जहां उसके कवि ने कोरे पाण्डित्य से हटकर रचना की है वे स्थल निश्चित ही उच्च काव्य की कोटि में स्थान पाने के अधिकारी हैं।

प्रयोजन और शैली—

सहृदयहीनता का भाव मानव-कर्म का विधायक नहीं बन सकता। प्रयोजन अथवा संकल्प के अभाव में कर्म का अस्तित्व ही क्या ? 'कला कला के लिए' मानिये या 'कला जीवन के लिए'—कला का कोई प्रयोजन अवश्य रहता है। कवि अथवा कलाकार किसी न किसी प्रयोजन को लेकर ही रचना की ओर अग्रसर होता है। प्रयोजन की यह चिन्तना जहां उसके विषय को निश्चित करती है वहीं उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप भी निर्धारित

१—Style is the intimate and inseparable fact of the personality of the writer. —E. P. Wripple

—वही पृ० २११

२—Style is a man's own, it is a part of his nature. —Buffon.

—वही पृ० २११

३—नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगो स्याः, कारणं काव्यसम्पदः ॥

आ० दण्डी—काव्यादर्श १। १०३

४—बहुज्ञता व्युत्पत्तिः : राजशेखर काव्य-मीमांसा पृ० १-२

कर देती है। यदि कवि का प्रयोजन मात्र काव्य चमत्कार है तो उसकी कृति में उक्ति-वैचित्र्य, अलंकरण, रीति-निर्वाह, गुण-संयोजन आदि आयेंगे किन्तु इसके विपरीत यदि कवि का लक्ष्य मानवीय रागात्मक वृत्तियों का उद्‌घाटन और उसके भाव जगत की निर्मल झाँकी उपस्थित करना है तो उसकी रचना-शैली ऐसा रूप लेने का प्रयास करेगी जिससे वह रस के स्रोतों से आप्लावित होकर हमें भाव-विभोर करने में सामर्थ्यवान सिद्ध हो सके। और भी यदि कवि का लक्ष्य पाण्डित्य-प्रदर्शन होगा तो वहां उसकी शैली सहज ही शुष्कता, दुरूहता आदि से प्रमिमंडित हो कहीं वर्णनात्मक, कहीं विवरणात्मक और कहीं विवेचनात्मक रूप ले लेगी।

सूर्यमल्ल अपने युग का प्रकाण्ड पंडित होने के साथ ही उत्कृष्ट कवि भी था। राज्याश्रित चारण-कवि होने के कारण उसका लक्ष्य अपने आश्रयदाता और दरबारियों को अपने शास्त्रज्ञान से प्रभावित और अनूठी उक्तियों द्वारा चमत्कृत करना रहा है—पर साथ ही उसका कवि-व्यक्तित्व भी कुंठित नहीं रह सका है। जहां-जहां उसने मुंह खोला है वहीं अनूठे काव्य का सृजन सहज ही हो गया है। यही कारण है कि वंशभास्कर की शैली में पाण्डित्य और काव्य-चमत्कार के एक साथ दर्शन होते हैं। 'प्राकृतादि पाण्डित्य पूर्व प्रस्तुत पुरुषार्थ प्रयोजनक' इस वंश-प्रकाशक ग्रंथ में काव्य-शैली और शास्त्र-शैली का अपूर्व सामंजस्य द्रष्टव्य है।

अधिकारी और शैली—

समाज की अभूत इकाई होने के नाते मानव का कोई भी कर्म एकान्ततः निर्लेप नहीं हो सकता। तुलसी का *'स्वान्तः सुखाय'* भी *'लोकहिताय'* के रूप में परिवर्तित हो सका है उस के मूल में भी यह तथ्य है। कवि-कर्म का मूल प्रेरणा-स्रोत प्रकृति और उसका प्रयोजन आत्म-प्रसार है। यह आत्म-प्रसार तभी संभव है जब कि कवि की अभिव्यक्ति सर्वग्राह्य हो अभिव्यक्ति की यह सर्वग्राह्यता का भाव सृजनोन्मुख कवि की कल्पना में अधिकारी की मूर्ति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बनाए रखता है। रचना के संशोधन-संस्करण के पीछे भी अधिकारी अथवा पाठक की प्रेरणा कार्य करती हुई देखी जा सकती है। अतएव कहा जा सकता है कि अधिकारी या सामाजिक का दृष्टिकोण रचनाकार को किसी न किसी सीमा तक अवश्य प्रभावित करता है। यही दृष्टिकोण उसकी शैली को भी किंचित् प्रभावित करता है। अतएव जिस वातावरण और रुचि के लोगों से कवि का संबन्ध होता है उनका थोड़ा बहुत प्रभाव उसकी शैली पर अवश्य आता है।

सूर्यमल्ल ने विविध-विषय-सम्पन्न काव्य की कामना रखने वाले व्यक्तियों को ही वंशभास्कर का अधिकारी[1] बतलाते हुए इसे 'कविकुल पूरन काम' कहा है और विद्यादि से दूर दंभी व्यक्तियों से विनती की है कि वे इसे पढ़कर दूषित न करें।[2] इस अधिकारी

१—विविध वैषयिक काव्यकमन कामाधिकारी। —वंश० १। १

२—जो विद्या गुन बोध बिनु, रहत दंभ धरि चित्त।
तिनसों विनती ग्रन्थ यह, न पढ़ि बिगारहु मित्त॥ —वंश० ८७। ४

विचार से ही वंशभास्कर की शैली शास्त्र-निष्ट होकर दुरूह-सी हो गई है। वंशभास्कर की रचना वक्ता-श्रोता शैली में हुई है—वक्ता है सूर्यमल्ल और श्रोता है रावराजा रामसिंह। रामसिंह भी बड़ा विद्यानुरागी और शास्त्र-निष्णात नरेश था। इस कारण से भी वंशभास्कर की शैली में साधारण शैली का अवतरण नहीं पाया है।

सूर्यमल्ल के लिए कविता केवल शगल नहीं है—यह उसकी जीविका का साधन है जो उसे वंशाधिकार में मिला है। वह हिन्दी साहित्य के रीति-काल के तट पर खड़ा राजदरबार का एक रत्न है जिसमें ऐसे महाकवि और पण्डित विद्यमान हैं जिनके सम्मुख सद्कवि तक गर्व नहीं कर सकते। यथा—

रची सुखधाम सभा-नृप राम, लसै भट पंक्ति दक्खिन वाम।
रजे-कवि पण्डित सम्मुख सर्व, तजें गुरु-काव्य जिन्हें लखि गर्व॥

अतएव उसकी काव्य शैली में रीतिकालीन दरबारी काव्य के अनुरूप शब्द क्रीड़ा, उक्ति-वैचित्र्य और अलंकरण के साथ ही पाण्डित्य-प्रदर्शन के निमित्त नाना शास्त्र सम्पदा का समन्वय हो जाना स्वाभाविक ही है।

विषय और शैली—

शैली स्वरूप का अन्य महत्वपूर्ण विधायक तत्व है 'विषय' (सब्जेक्ट मैटर)। जिस प्रकार व्यक्ति-वैशिष्ट्य शैली-वैशिष्ट्य का कारण बनता है उसी प्रकार विषय वैशिष्ट्य भी। शैली और विषय का पारस्परिक सम्बन्ध मोटे रूप से कुम्भकार और मिट्टी का सा है। जिस प्रकार प्रयुक्त मिट्टी के गुण धर्म कुम्भकार की शैली (कला) पर प्रभाव डालते हैं। उसी प्रकार विषय की प्रकृति-प्रवृत्ति शैलीकार (कवि) की शैली को प्रभावित करती है।

भले ही अभिव्यंजनावादी 'सौंदर्य' को एकान्ततः रूपाश्रित[1] घोषित कर कह दें कि काव्य के उपादान सभी आत्माओं में समाहित हैं, मात्र अभिव्यंजना 'कवि' नाम सार्थक करती है[2] और उनके इस मत की पुष्टि पश्चात्यानुयायी भारतीय विद्वान् राजशेखर की 'उक्ति विशेषः काव्यम्' से कर दें; फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि अभिव्यंग्य के अभाव में अभिव्यक्ति अपूर्ण है। इसीलिए अरस्तू 'प्लोट' को सर्वोपरि महत्व देते हैं। दांते का कथन है कि इसमें संदेह नहीं कि भाषा-गत रूप एक ऐसा शक्तिशाली साधन है कि इसके बिना समर्थ साहित्य का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता किन्तु अभिव्यंग्य (मैटर) को प्राथमिकता देनी ही होगी। अतः अकिंचन भाव अथवा नगण्य वस्तु-तत्व के लिए भव्य शैली की आकांक्षा करना

१— "The Aesthetic is form and nothing but form."

—B. Croce—Aesthetic Page 9-19,

२—"Poetical material permeate the Soul of all. The expression alone, that is to say the form makes the Poet." Ibd. Page 68

व्यर्थ है।" आचार्य शुक्ल भी इसी विचार का समर्थन करते हुए लिखते हैं "काव्य का प्रस्तुत वस्तु या तथ्य विचार और अनुभव से सिद्ध लोक-स्वीकृत और ठीक-ठिकाने का होना चाहिए क्योंकि अभिव्यंजना उसी को होती है। ...... अनूठी से अनूठी उक्ति काव्य तभी हो सकती है जब उसका सम्बन्ध कुछ दूर का ही सही, हृदय के किसी भाव या वृत्ति से होगा।[1]

वस्तुतः अभिव्यक्ति (फार्म) और अभिव्यंग्य (मेटर) के सुन्दर सामंजस्य द्वारा ही सफल काव्य-कृति का निर्माण संभव है। भामह के 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' से भी यही सिद्ध है।

वक्रोक्तिवादी आचार्य कुंतक काव्य में उक्ति का प्रमुख्य स्वीकार करते हुए भी वाच्य अर्थात् वस्तु या भाव की उपेक्षा नहीं करते।[2] कालिदास ने भी शब्द और अर्थ को शिव और पार्वती की उपमा देते हुए "वागर्थाविव सम्पृक्तौ" कहकर वाणी (शब्द) और अर्थ को अभिन्न-रूप से सम्बद्ध बतलाया है।[3] गोस्वामी तुलसीदास 'गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न' कहकर इसी मान्यता का समर्थन करते हैं।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि अभिव्यंग्य (विषय) और अभिव्यक्ति (शैली) परस्पर अविभाज्य रूप से सम्बद्ध है। विषयानुरूप शैली ढलती है और शैली के अनुकूल विषय रूप लेता है।

विविधबाहुजवंशविभक्तिविशिष्टवेदनीय— वरविद्याविषयक (वंश० १।१)। वंशभास्कर मूलतः एक शास्त्र-ग्रंथ है जो 'विविधकथाजुत' (वंश० ८६।४५) है और जिसमें 'सब ही मत सुगंध' रीति से समाहित किये गये हैं। ग्रंथ-सूची का वर्गीकरण करके भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसके मूल विवेच्य विषय इतिहास,पुराण विविध विधाएं और पुरुषार्थ-चतुष्ट है। इस प्रकार वंशभास्कर की मूल सामग्री अथवा उसका अभिव्यंग्य (विषय) शुद्ध काव्य की कोटि में न आकर शास्त्र की सीमा में आता है। परंतु चूंकि वंशभास्करकार एक कवि है इसलिए उसने एक शास्त्र-ग्रंथ में कवित्व का समावेश भी कर दिया है।

इस प्रकार वंशभास्कर की शैली के दो रूप बन गये हैं—

१ *विषय-प्रतिपादन-शैली* (*शास्त्रीय शैली*)
२ साहित्यिक शैली (काव्य-शैली)

१— विषय प्रतिपादन शैली

वंशभास्कर का वस्तु-पक्ष चतुर्दश विधाओं, ऐतिहासिक वंशावलियों, तथ्यों, घटनाओं

१—आ० रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि, भाग २, पृ० ६८
२—वाचको वाच्यं चेति द्वौ सम्मिलितौ काव्यम्।
कुंतक-वक्रोक्ति जीवितम्॥
३—वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ —रघुवंश १।१

तथा राज-प्रासंगिक विविध विषयों की ज्ञान-सामग्री से बना है। जहाँ कवि का आग्रह शास्त्र-शैली में इस वस्तु-पक्ष का ही निरूपण करने जा रहा है वहाँ काव्यात्मकता लेशमात्र भी नहीं है। इस प्रकार की अवश्य-पठितव्य ज्ञान-सामग्री का निरूपण कवि ने शास्त्र-शैली के निम्नांकित रूपों में किया है—

(क) इतिवृत्तात्मक-शैली—इस ग्रंथ में अधिकांशतः इतिवृत्त-शैली का आश्रय ग्रहण किया गया है। प्रथम राशि की रचना तो प्रायः इतिवृत्त शैली में ही हुई है। कवि ने इतने अधिक विषय-तत्वों के समाहार के साथ ग्रंथ-रचना की है कि उसके लिए विशुद्ध काव्य-शैली का अधिग्रहण न तो संभव ही था और न उचित ही।

इतिवृत्त शैली में जिन दो तत्वों का आधिक्य मिलता है वे हैं—१ वर्णन तथा २ विवरण।

१—वर्णन-रूप : वर्णन-रूपों में ऐतिहासिक घटनाओं, राजाओं के विवाह, युद्ध, रति-क्रीड़ा, वेदान्त इत्यादि का प्रकाशन हुआ है। स्थूल वस्तु-वर्णन यथा — सभा-स्थिति, नृत्य-वाद्य-संगीत (वंश० ६६। १७-१६), राजधानी-राज गुण (वंश० ६२-६४) आदि के वर्णन शास्त्रानुसारी हैं। यथार्थ की अपेक्षा परम्परा-निर्वाह ही यहाँ कवि को अभीष्ट है (वंश० ६१। १८-४०)।

कहीं-कहीं तथ्यों को यथातथ्य रखकर ही वर्णनों को काव्य-कल्पना का रंग-विन्यास देकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। युद्ध वर्णनों में यह कल्पना दूर-दूर तक पंख फैलाती दृष्टिगोचर होती है (द्रष्टव्य युद्ध-वर्णन)। उपमानों की शास्त्राश्रित योजना से यदा-कदा वर्णन क्लिष्ट प्रसंग बन गये हैं (वंश० १८०। ८१-८२; २६५०। १२)। किन्तु जहाँ (द० युद्ध तथा सेना-वर्णन) शास्त्राश्रित परम्परा से हटकर उसने स्वतंत्र रचना की है वहाँ इतिवृत्तात्मक प्रसंग भी काव्य की रमणीयता से चमत्कृत हो उठे हैं।

२—विवरण रूप : विवरण-रूपों — प्रकृति-सर्ग, परम्परा, वंश वर्णन, पुराण ज्ञान, ऋषि-कथन (प्रथम राशि) आदि का निरूपण हुआ है; जो मात्र सूचनात्मक है। शास्त्र-सिद्धान्तों के समास-कथन में अवश्य ही कवि-कौशल परिलक्षित है। अति विस्तृत ज्ञान-राशि को व्यवस्थित रूप से सार-सूत्रों में बांधकर रख देना न तो किसी साधारण विद्वान से संभव है न साधारण परिश्रम से साध्य ही।

इन विवरणों में कवि किंचित् मात्र भी विस्तार की बात नहीं सोचता; अपितु प्रस्तुत विषय की सारभूत बातों का संकलन करना ही उसका प्रयोजन है। ऐसे विवरण-रूपों में कवि को अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेपण तनिक भी अभीष्ट नहीं है—न टिप्पणी, न मतान्तर, न भेद। कवि की कुशलता इसी बात में सन्निहित है कि उसने उपयुक्त अधिकारी के मत का चयन करके उस विषय का सार-संकलन प्रस्तुत कर दिया है।

यहाँ कवित्व का कल्पना का दूरस्थ सम्बन्ध भी नहीं है। कवि को शास्त्रार्थ ही अभीष्ट है। ऐसे स्थलों में कहीं-कहीं तो कला-वैचित्र्य भी आ गया है (वंश० २१८। १-४)।

स्थान-स्थान पर शास्त्रानुकूल अभिधेयात्मक शब्द-संख्या आदि के लंबे विवरण (वंश० ७३ । ८१; ३७० । ३८३) ऊब पैदा करने वाले हैं। ये विवरण ग्रंथ प्रयोजन-पूर्ति के निदेशक (वंश० ६७ । ५) होने के साथ ही कवि की ज्ञान-बहुलता के परिचायक भी हैं। इनसे कवि के अतुल धैर्य तथा आवेग-नियंत्रण-क्षमता का आभास भी मिलता है। सूर्यमल्ल का कवि अटूट धीरज के साथ इन शुष्क विवरणों में रमता चला जाता है जब कि पाठक का मन बारबार पलायन कर जाता है।

(ख) *नामपरिगणनात्मक-शैली*— *वंशभास्कर में विविध-विषय ज्ञान का समावेश* करने का यत्न प्राचीन काव्य-रूढ़ि के अनुसार हुआ है। वन, पर्वत, तीर्थ, नदी, देश, देशान्तर, जाति-स्वभाव, ग्रह, नक्षत्र, वनस्पति, पुष्प, पशु आदि की नाम-गणना संस्कृत प्रबन्धों की एक रूढ़ि रही है। (द्र० नैषध परिशीलन) वंशभास्कर में कवि ने बहुज्ञता-प्रदर्शन के लिए इस शैली को अपनाया है। यों भी 'अवश्य पठितव्य' विषयों के आकलन का *प्रयोजन रहने के कारण कवि का यह कर्तव्य अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता।*

वंशभास्कर में आये विधि-शास्त्र, विद्या आदि से सम्बन्धित विषयों का समाहार यहां अपेक्षित नहीं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि शास्त्रीय अथवा लौकिक ज्ञान-सम्बन्धी *शायद ही कोई ऐसी बात शेष रही होगी जिसका अभिधात्मक संकेत वंशभास्कर में न किया* गया हो। भारतीय धर्म-अध्यात्म, वेदान्त, दर्शन, शिल्प संगीत, साहित्य-कला, देवता-ऋषि-मुनि, ऋद्धि-सिद्धि, गणित-ज्योतिष—ग्रह-नक्षत्र, तीर्थ-पर्वत—अरण्य-सरोवर—पुरी-वनस्पति—बीज-सुमन-फल, नदी-द्वीप-सागर, अप्सरा-राक्षस-गन्धर्व, पिशाच-डाकिनी-शाकिनी, नाग-यक्ष-दिग्गज, राज-प्रकृति-नय-कौशल आदि (वंश० ३४०।३५८, ४०१। ४१४, ४४३। ४३६) वंशभास्कर में नाना-विधि से समाविष्ट हुए हैं।

इसी प्रकार विशिष्ट देश और नगर-निवासियों की प्रकृति (वंश० ३२५६।१-१०), यवन-पैगम्बरों तथा तीर्थों के नाम (वंश० ३२१०।१-१०) जैन बौद्धादि धर्मों के सिद्धान्तों का कथन किसी न किसी व्याज से प्रस्तुत किया गया है। सैन्य तथा युद्ध-प्रसंगों में अस्त्र-शस्त्र, दाव-पेंच, छल-घात, व्यूह-रचना आदि का यथास्थान समावेश किया गया है।

नागर-जीवन, धन-धान्य, व्यापार-विधि, वस्त्र-वस्तु, गृह-गवाक्ष, मंदिर-भवन, प्रासाद-अट्टालिका आदि की विस्तृत जानकारी नगर-वर्णन के अन्तर्गत प्रस्तुत की गई है। चतुर्दश विद्या एवं तत्सम्बन्धी नाम-कोश प्रथम खंड में दिया गया है।

नाम-गणना शैली में दो विधियों से काम लिया गया है— प्रथमतः विवक्षित-विषयान्तर्गत सीधी नाम-गणना प्रस्तुत करना, जैसे—तीर्थ, नदी, पर्वत आदि द्वितीयतः वर्णन प्रकरणों में काव्य-प्रवाहान्तर्गत प्रसंग-सापेक्ष्य, शास्त्र-कला आदि के ज्ञान का समावेश। युद्ध, सेना, विवाह, नगर, अभिषेक इत्यादि के वर्णनों में ये दोनों विधियां प्रयुक्त हुई हैं।

काल-गणना में कवि ने भट्टिक की 'अंकानां वामतो गतिः' का अनुसरण करते हुए *'अंकों द्वारा संख्या का संकेत' किया है जो इंगित विधियों से संयुक्त होकर अनावश्यक दुरूहता* का कारण बन गया है।

पर्यायवाची नामों के प्रयोग की कला में भी कवि मुदस है। वस्तु - वर्णनों में जैसे उसने 'पदे - पदे नूतनता' का सिद्धान्त निर्वाहित किया है। एक ही वस्तु के अनेक पर्यायवाची शब्द इस ग्रंथ में मिल जाते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति नामों के लिए भी एकाधिक प्रयोग रखे गये हैं। स्वयं अपने नाम को भी सर्वत्र एकसा रखना कवि को प्रिय नहीं है — कभी 'सूर्यमल्ल' तो कभी 'अर्कमल्ल' तो कभी 'रविमल्ल' के नाम से वह स्वयं को अभिहित करता है। वंशभास्कर में प्रयुक्त पर्यायवाची शब्दों के आधार पर एक अच्छे-खासे 'पर्यायवाची' शब्दकोष का निर्माण हो सकता है।

२—साहित्यिक शैली

साहित्यिक शैली का अध्ययन प्रधानतः युद्ध - सेना - विवाह - वर्णन, भाव - प्रकाशन और चरित्र - विधान आदि में लिया गया है।

वंशभास्कर में अन्यान्य विषयों के साथ पद्भाषा में काव्य-रचना भी कवि का लक्ष्य है। मूलतः युद्ध - प्रधान - ग्रंथ होने पर भी वंशभास्कर में काव्य - शैलियों के किसी भी पक्ष की उपेक्षा नहीं हुई है। भारतीय साहित्य की समस्त शास्त्रीय और लौकिक शैलियों के दर्शन-क्या पद्य में और क्या गद्य में—यहां हो जाते हैं। अस्तु।

वंशभास्कर में प्रयुक्त साहित्यिक शैली के विशिष्ट रूपों का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है। —

(क) नरकाव्य - शैली — चारण कवि की रचना होने के कारण वंशभास्कर में नर-काव्य शैली का अभिग्रहण सहज ही हो गया है। ग्रंथ के प्रारंभ में कवि ने अपने आश्रयदाता महारावराजा रामसिंह का काव्यरूढ़ात्मक रीति से स्तुति - गान किया है। सम्पूर्ण ग्रंथ में 'माधुरी - वृत्ति' (कोमलावृत्ति) के दर्शन यहीं होते हैं। यथा —

बानी को सरवस्व पुरी बुंदीय प्रसिद्ध जंहं ॥
रामसिंह नरनाह हड्ड चहुवान हेलि तंहं।
... ... ॥ १
जंहं केतन बिच कंप चक्र चाकहि बियोगवस।
बंधन सर वापीन रहत कैतव मृगया रस॥
नीचगामि जंहं नीर चलन मावन व्यभिचारी।
स्वानजात परसद्य बात स्वच्छंद बिहारी ॥
सरमात्र रहत उल्लंघि श्रुति छिद्रत पट हिलहि सुलछत।
इक सयकर्म वित्तहि हरत राज्य रामनृप आचरत ॥ २
चापल नारिनचच्छु बचन नन सुरत समागम।
धर्म सुनें बिनु बधिर धमनि मुखित नाडिघम ॥
दुब्बल जुवतिन उदर थाम आभाव मृदंगन।
दोषाकर कुमुदेस मलमाव सु मातंगन॥

सूवाहि छिपावत द्रव्य निज कुच कठोर भार्वाहि धरत ।
इक लूट पुष्पलूटन उचित राज्य रामनृप आचरत ॥ ३

महत प्रकृति मिटवाय करत ज्ञानहि गुन कर्तन ।
इक अरघट्ट घटीन उच्चनीचन परिवर्तन ॥

सफरादिन अरुसग जोहू बाधक इक घातक ।
मलिसादनकर प्रगि घोर सुहि आश्रयघातक ॥

विपरीत चित्रकाव्यन विहित सरहि छोरि गुन निस्सरत ।
वृर्षासह बैर रासिन रहत राज्य रामनृप आचरत ॥ ४

उदर विदारित अवनि स्याम आनन गुंजाफल ।
कलापटन सलिकर्म्म कटन विघटन विधि करमल ॥

सहत लोह संताप ब्रह्मचारी त्रिय वर्जित ।
निहु छिपन सन्यस्त नर्म्म होरिन मह अर्जित ॥

कृपनत्व भूमि अरि बसकरन सर्प बक्रगति अनुसरत ।
गोपय निचोर बच्छहि करत राज्य रामनृप आचरत ॥

—वंश० ४३-४५ । ५

यहाँ परिसंख्या अलंकार से आश्रयदाता की स्तुति की गई है। पद-लालित्य, उक्ति-चमत्कार और उपमान-योजना में रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट झलक रहा है। राजस्तुति के अंतर्गत कवि-कल्पना की उड़ानें अन्यत्र भी द्रष्टव्य हैं।—

रनजिम सुरनकों मुदिर मयूरनकों ।
विधु बिससूचनकों कंजकों कठोर घाम ॥

वल्लिकों बयारि विटपावलिकों बारि सह—
कार ज्यों सफल पथिकन के पृथुलकाम ॥

रोगी को सुधा ज्यों कालभोगीकों रुचिरराग ।
रति रमनीनकों धनीनकों कलाके ग्राम ॥

सुभटकों साधुकों सुकविकों सभाकों असें ।
पंडितकों पटुकों प्रजाकों राव राजा राम ॥

—वंश० ४६ । १४

जैसे 'मनहर' छन्दों से पद्माकर कवि की याद सहज ही ताज़ा हो जाती है। ऐसा ही एक और उदाहरण देखिये—

साहन को साल विधा विटपी को आल बाल ।
हिंदुन की ढाल काल अहित अनन्त पैं ॥
वीरता को बारिधि गंभीरता को घन घन ।
धीरता को धाम मल्लिनाग नयमतपैं ॥

यजिकोविदक वाजिकोसलको आडो अङ्क।
भाजिको निधक टंक दुरितके दंतपै ॥
छविको छरेस छत्र महल के छाजा सीस।
राजें राम राजा ज्यों विडोजा वैजयन्त पै ॥

—वंश० ५४।२१

नरकाव्य शैली के अन्तर्गत अन्य उल्लेखनीय स्तुति-परक छंद हैं — वंश० ५१।१८; ५२।२१; ५३।२२; ५४।२४।

भावात्मक-शैली

ऐतिहासिक युद्धों, सैन्याभियानों तथा वीर-कृत्यों को जीवन्त बनाने के लिए कवि ने भावात्मक शैली का अवलम्ब ग्रहण किया है। भाव-व्यंजना में दो तत्व सक्रिय हैं—मानवीय संवेदना तथा कवि व्यक्तित्व। इस प्रकार भावात्मक-शैली के दो रूप बन गए हैं—एक वह जिसमें किसी भाव विशेष को मानवीय संवेदना के आधार पर रसोत्कर्ष तक पहुंचाया गया है और दूसरा वह जिसमें प्रसंग-प्राप्त किसी भाव-खंड को कवि व्यक्तित्व के संप्रेषण द्वारा काव्य-विभव प्रदान किया गया है।

सूर्यमल्ल ने अपनी भावात्मक शैली, प्रसंगानुकूल अप्रस्तुत-विधान, सटीक रूपांकन, उपयुक्त अनुभाव योजना, रमणीय चित्र-कल्पना, भावाभिव्यक्ति में समर्थ शब्द-चयन और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति द्वारा समृद्ध बनाया है।

ऐतिहासिक परिवेश में प्रस्तुत नाना घटनावलियों अथवा वर्णन-प्रसंगों में से किसका काव्यात्मक चित्रण किया जाय यह इस बात पर निर्भर है कि कवि अपनी प्रबन्ध-रचना में उस घटना अथवा वर्णन-प्रसंग को कौनसा स्थान देता है। विवक्षित प्रसंग अथवा घटना नानाभाव-दशाओं के चित्रण अथवा कहिये काव्य-संभार का वहन करने में सक्षम है या नहीं और मुख्यतः यह कि उसका सम्बन्ध आधिकारिक विषय—चहुवान वंश—से है या नहीं। इन निकषों पर खरा उतरने पर ही उस सामग्री का काव्यात्मक चित्रण किया जायगा।

यदि कवि को किसी युद्ध का काव्याभिषेक वर्णन अभीष्ट है तो वह उसके हेतु-प्रयोजन, कोष-रक्षण अथवा मान-रक्षण आदि की पृष्ठभूमि निर्मित करके ही अग्रसर होगा जिससे कि सहृदय उसमें रम सके।

आलम्बन और आश्रय के विभावात्मक वर्णनों में कवि की कल्पना रूप-चित्रों को उभारने में सक्षम हुई है। एक छोटी-सी घटना को लेकर कवि अपनी कल्पना के रंगों से उसे सजाकर जीवन्त-व्यापार का रूप दे देता है। आलम्बन और आश्रय की बहुविध भाव-दशाओं की व्यंजना में समर्थ यह जीवन्त व्यापार सहृदय को दोनों पक्षों के भाव-संसार का अनुभव कराता चलता है। कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा तथा कल्पना-कौशल, वर्णन-विस्तार से विभानुभावों के नाटयात्मक चित्र ऐसी कुशलता से प्रस्तुत करती चलती है

कि मानस रसानुभूति की आस्वादन-प्रणाली में निमग्न हो जाता है। इस आस्वादन-प्रणाली में कवि की अंतर्दृष्टि छोटी से छोटी बातों को भी साकार करती चलती है—एक एक योद्धा की मनोदशा, तत्कालीन रीति-नीति, परम्परा-संस्कार, आमोद-प्रमोद, वाणी-विलास आदि सभी कुछ इस प्रक्रिया में मूर्त हो उठते हैं। कवि-कर्म की सफलता इसी में निहित है कि वह अपनी अनुभूति को सहृदय की अनुभूति बना देता है—उसे सहृदय में सम्प्रेषित कर देता है। यही कारण है कि इतिहास-संभूत रहते हुए भी यह वर्णन विशुद्ध भाव-दशा और उसके संघात-संक्रमों के विषय बन सके हैं। काव्य-प्रयोजन की सिद्धि पर कवि का इतिहासज्ञ वापस आ जाता है और पुनः तथ्य और विवरण का क्रम चल पड़ता है। सहृदय भी उसके साथ भावलोक से निकलकर तथ्य की कठोर भूमि पर आ खड़ा होता है।

भावात्मक शैली का यह प्रसादन प्रत्येक युद्ध-वर्णन (द०वीर-रस) में देखा जा सकता है। कवि वीर-रस की उद्दण्ड मूर्ति है। अतः भाव-व्यंजना के सम्पूर्ण उपकरणों का निखार 'वीर-रस' के प्रसंगों में विशेष रूप से हुआ है। यों अन्य रसों के वर्णन में भी इसी शैली का निर्वाह किया गया है। विस्तार-भय से हम यहां उन उदाहरणों का विश्लेषण नहीं करेंगे।

वंशभास्कर पर आक्षेप आता है कि वह कई मार्मिक प्रसंगों की अवहेलना कर गया है। चित्तौड़ के कुमार खेतल के विवाह-प्रसंग में ऐसी मार्मिक घटनाएं घटी हैं कि कोई भी सहृदय कवि उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

बूंदी-प्रासाद में टिकी मेवाड़ी बारात आमोद-प्रमोद में निमग्न है कि बात ही बात में राणा और हाड़ा-वंश के यश-गौरव का प्रसंग निकल आता है। दोनों पक्ष स्वयं को एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर मानने के लिए अड़े हुए हैं। प्रमाणस्वरूप राणा का चारण अपना मस्तक काट कर बूंदी वालों के पास भेज देता है। फिर क्या था, युद्ध ठन जाता है। फलतः श्वसुर के हाथों जामातृ का वध होता है और बूंदी की राजकन्या, जिसने कभी अपने पति के दर्शन तक नहीं किये, जिसके हाथों की मेंहदी अभी तक नहीं सूखी, जिसकी कलाई में बंधे कंगन-सूत्रों की आभा अभी तक नहीं मिटी, जिसके कानों में शहनाई के स्वर अभी तक गूंज रहे हैं, वह अपने दिवंगत-शत्रु के साथ केवल इसलिए सती हो जाती है कि उसके नाम के साथ उसका सुहाग-सम्बन्ध जुड़ गया है।

स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने तो इस प्रसंग को लेकर 'रंग में भंग' जैसे संक्षिप्त किन्तु सुन्दर काव्य की रचना कर डाली। किंतु सूर्यमल्ल ने अपने हाड़ा-चरित्राख्यानक ग्रंथ वंश-भास्कर में इसे केवल कृष्णकुमारि जिहि निज कनि पावक करत प्रवेश' (वंश० १८३५।२४) कह कर चलता कर दिया है। इस उपेक्षा का कारण समझ में नहीं आता, संभवतः इतिहास लेखन क्रम आग्रह-स्वरूप ही ऐसा हुआ है।

मार्मिक स्थलों की उपेक्षा सर्वत्र नहीं हुई है। कहीं-कहीं तो नवीन उद्भावनाओं द्वारा कवि ने ऐतिहासिक क्रम में ऐसी सुन्दर अवतारणा की है कि सहृदय विभोर हो उठता है—सुर्जन चरित्रान्तर्गत परस्पर शत्रु पिता-पुत्र—सुर्जन-दूदा की एकान्त भेंट की योजना बड़ी

मार्मिक बन पड़ी है। चेतावनी पाकर भी पिता विद्रोही पुत्र के डेरे से अपना डेरा अलग नहीं करता। यथा—

इसड़ी कहाई तो भी नरेस सुजंन आपरा डेरा जुदा न टाळिया। अर एक ही घर रो जुद जाणि अठी उठी द्रोही सर्कंध सबंही स्वकीय भाळिया।... (वंश० २३३१। ४८)

अनुरूप में खड़े पिता के प्रति सरकश पुत्र का विनय भाव देखिये—

> कवर अर्रे जोडिकर प्रणमि कहियो नरेस प्रति।
> प्रभुरो आयो पत्र निडर आतो धारे मति॥
> पणरण मस्त पठंग मोज भाई करि भेला।
> भ्रण अवसर इम आइ छोनिदीवी उर छेला॥
> जिण हेतु कालिह रणएक जुडि पछै लागि प्रभुरै पगां।
> कंद थै चानी मुजरो करूं लार सुजस अजमस लगां॥
>
> —वंश० २३३२। ११

कर्तव्य प्रेरित पिता की अटल नीति पर भी दृष्टिपात कीजिये—

जठै नरेश नबाब है हूं कहियो आपणै आवतां अकबर रो आदेस इसड़ो हुवो सो बूंदी रै एवज और स्थान लेर चाकरी करणों न मानैं तो दूदानैं पकड़ि आणों। अर नहितो भेजणों उणरा सीसरो नजराणों।

अब ए दूदा रा साथी भी पचास ही दूदा रै साथ है जिणपो समस्ठराही सीस बढो सलिठो भरि दिल्ली पुगावो। अर पुत्र रा मारण में पितारो अखंड अपजस उगावो।

—वंश० २३३२। २२

अन्तिम वाक्य में वीरवर सुर्जन के कोपानलपूर नेत्रों में जैसे पितृ हृदय की पुकार आँसू बनकर ढल गई है। आग और आँसू का यह समन्वय कितना मार्मिक—कैसा करुण-बन पड़ा है। वंशभास्कर में ऐसे मार्मिक स्थलों की योजना स्थान-स्थान पर हुई है।

लक्षणा-व्यंजना शैली—

इस शैली के दर्शन विशेषतः युद्ध-वर्णनों में तथा चेतावनी, ललकार, उपालम्भों के प्रसंगों में होते हैं। लक्षणा-व्यंजना का प्रयोग यद्यपि पद्य में अधिकता से हुआ है तथापि गद्य भी उससे रीता नहीं है। यथा—

"भूखो केहरी रो केहर खोजिया नागराज रो मणि माडाणी झाटकि लेणरो बळ होय तो म्हांरा प्रस्थान रो राह रोकण री सलाह छै।

अर आजरा समय में गुजरात रूपी काचा कळसरै सीस चाहुवाणांरा समुद्ररो सीमा-लोपियो प्रवाह छै इसड़ा कन्हुरा बचन गिरिनारी रागरै समान श्रवणमें पड़िया तिकांसूं काळो होतो तो पाछो पलटणरी जेज करतो नहीं।

पर मणिहूल परबंबी में पाथरोही आप पैंठणरो संकल्प धरतो नहीं।

—वंश० १३७४-७५। ४६

लक्षणा के दो पद्यात्मक उदाहरण देखिए—

(क)—बिम्ब ह सिंहन बीर परत खित्तल पछतावत।
मेवारन दल मुरिग छिप्र हड्डन भय छावत ॥
बिनु नृप खिच्चियबलहु भीत भव लग रहि मज्जिय।
इम हल्लू करवाल ब्याल पीवत असु अज्जिय ॥
सुर्जन हु भ्रातगज भीम सहजीरन दलहनि किन्नजय।
मेवार द्रवत प्रामार मुरि सबन भग्ग मग्ग सु समय ॥

—वंश० १६७०। ३६

(ख)—मति प्रमाद भालम मरत दिल्ली तिय बिरजोर।
तवकी मारि कटाच्छ दृग, सहर सितारा ओर ॥ २५
देस देस मचि दंग चंग भूखन चमकाये।
पुर पुर बाटिन पात पयन घुंघर घमकाये ॥
अलस अंस अन्याय हावभावन बिसतारत।
भासव पान अपार मार भातुर दृग मारत ॥
गनिकान बिभव अधिकार गत घड़ी तक धुम्मर रचिय।
दिल्लिय नवोढ़ दुलहनि बनिय सहर सितारा वरन प्रिय ॥

—वंश० १०३४। २६

इसी प्रकार व्यंजना शैली के भव्य रूप निम्नांकित उदाहरणों में द्रष्टव्य है—

पंकजता पाई बिप्र बिबुध विविधवृन्द।
पाई चक्रताई नीठि निगम बिचारेनें ॥
असुर अन्धारेने महादुसह मोति पाई।
जोति पाई जितजित सुजस उजारेनें ॥
सोनपुर पाइ व हरदाई अरदाई कर।
दाई ज्यों लुकाई पाई त्रास बगतारेनें ॥
अंसुमालि अतुल चुहानके उदय होत।
उदयता पाई श्री सदासिव के सारे नें ॥ ७
मूंजे से मजि बलि बंसिन के नैजा भये।
नेजा भये गाढे कवि निगम निसानके ॥
रंभाकि हल्लीसक रुचिर रचाये छाये।
ठान के बितान देव यायनन यान के ॥

दीन भवभूत दु:खबंधनतैं छूटे बजे ।
फूटे बजें बाजे भव भव पापके प्रमानके ॥
प्रानके निधान चहुवान के कठन फुरैं ।
दाहिनें पुरंदर के बाम भग भानके ॥ —वंश० ४००-४०१ । ८

उल्लेखनीय है कि मरुभाषा गद्य की शैली प्रधानतः व्यंग्य-विशेषण पदों की शैली है। ये विशेषण-पद कहीं लक्षणा-शक्ति से तो कहीं व्यंजना से विशिष्ट गुण, शक्ति, भाव अथवा दशा का रेखा-चित्र सा प्रस्तुत कर देते हैं। यथा–'कालीरा कंठस ललीरा नाळेर (वंश० १८१७ । ३५) बारूद रा गंज में दमग, खीजिया नागराज री पूछ (वंश० १३५८ । ७) चालता काळसूं चाळो (वंश० १३५८ । ७) काढ़ी मिलाय ऊधाणों वीररस तत्काल जगायो (वंश० १३६६ । ३५)। इस प्रकार की सशक्त अभिव्यक्ति से गद्य भी पद्य के समान प्रभावशाली बन गया है जिसकी सहायता से कवि अपने वर्णनों में गति, ओजस्, प्रवाह तथा चित्रात्मकता लाने मे सफल हुआ है। इन रूपों में लोकोक्ति-प्रयोग कवि को विशेष अभीष्ट है। यथा–प्राणांरी बाजो रा खेलणहार, काळरा किंकर, मरणविंदा पाहुणा साकड़ै ही भाय पूगा (वंश० २२२६ । ६)। घणां सावंतांरी सुंदरियां री कांकणा रो कोलाहल मिटाय पड़ियो (वंश० १३५० । ३८)।

लक्षणा-व्यंजना के अन्य द्रष्टव्य उदाहरण हैं–वंश० १३५८ । ७-८; १७२१।८-११; १७३२ । ४८; १८२४ । १८-४८; १९३० । १-२; २००८ । ४५-४६; २१६३ । २-११; ३०१२ । १८; ३३७३ । ३८ ।

चित्रात्मक शैली—

वर्णन-विस्तार—विशेषतः युद्ध-वर्णनों— में क्षिप्रता तथा प्रवाह लाने के लिए कवि ने चित्रात्मक शैली का उपयोग किया है। यहां वाक्य लाघव, वृत्ति-साम्य, दिव्य योजना तथा अनुप्रासात्मक पद-विधान से कवि भाव-सम्प्रेषण में सफल हुआ है। चित्र-सज्जा से वर्णन-प्रसंग जीवन्त हो उठे हैं, जिनसे झरते हुए भाव-प्रवाह मे सहृदय भी बरबस बह निकलता है। यथा—

झार उद्धत धार यों तरवारि टोपनवैं भंनकिय।
रोपि धारति दीपकी नियराइ झज्झरि ज्यों रनंकिय ॥
उच्छटै न हटैं कटैं झटके कटैं समभाग फलन ।
बच्छके अनु वच्छको बिहु बपु बित्त बटैं भलकन ॥ ३४
कहिं कामिनकहु परैं कटि मनु मोहिन मुक्ख रवत ।
मत्त मत्त उछंवनं करसीस ईसहि देत मगत ॥
कै कबन्ध असंध धाम अबध संमहमोरि धावत ।
कण्ठहीन हुवत के परिजानि मौलिन द मिरावत ॥

—वंश० १४२४

युद्धवर्णनान्तर्गत वीरों के प्रबुद्ध होने, सजने तथा रण-घमासान का यहाँ कितना सुंदर भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

सहृदय के मानस-लोक में कवि-अभिप्रेत भाव-संघात उत्पन्न करने की क्षमता सूर्यमल्ल की चित्रात्मक शैली की बड़ी विशेषता है। तथ्यात्मक चित्र देखिए—

"दक्षिणरैं द्वारपाल महामूक सलखारा पुत्र सुणतांहीं अरर उठाय मांहि लीधा। जठै तोमरा सिपाहां तोरणरैं बाहिर आया जिके राजा सहित प्राकार में प्रविष्ट कीधा। या बात कर्णगोचर पड़तां ही गढ़रा सिपाह आमार बीर अलीरा अगरो स्पर्श करतां अलरा चालवामें विलंब न होय तिण रीति सुणतां ही समीप आया। अर चक्रीरा चक्रैं समान मही मार्थ प्रतिबिंब पाड़ता चतुरंग चक्र मेघमालामे चचळारा चपळभावमें चूक पाड़ता चंद्रहास चलाया।" (वंश० १३६१। १५)।

सुभटों की त्वरा का चित्रण करने के लिए बिच्छू के डंक मारने की जो अप्रस्तुत योजना यहां खड़ी की गई है उससे सम्पूर्ण चित्र सहृदय की पुतलियों में घूम जाता है। इसी प्रकार असि-संचालन से उत्पन्न उसकी गतिशील प्रतिच्छाया को मेघाडम्बर में चमकती विद्युत-छटा से भी बढ़कर बताते हुए कवि ने ऐसा पूर्ण प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है कि नयनाकाश तलवारों की चकाचौंध से भर उठता है। कहीं-कहीं वीप्सा के साहचर्य से चित्रात्मक शैली और भी खिल उठी है। चित्रात्मक शैली के अन्य द्रष्टव्य उदाहरण हैं— वंश० २०५७। २५-२६; २२८५। १०; २३१७। १६; २६६०। ३३-३४; ३२५१।३।

वाग्विलास—

वर्णनों के बीच वाग्विनोद तथा चुटीली उक्तियों की योजना द्वारा कवि ने वातावरण को सजीव एवं सवेदनशील बनाने का प्रयास किया है। वाग्विलास के अवसर प्रसंगोपेत हैं। सैय्यद तथा राजपूतों के बीच हुए वाग्विलास का एक उदाहरण देखिये—

> हरवैं राउत हंकिये, आपत करत उभेल।
> श्रमजल हरय पसोजिहै, सुट्टिन पैं है मेल।। ५
> सुनत एह सय्यद भटन, दिय उत्तर अति आघ।
> छोहानल बिच छिज्जिकैं, नट्ठो दरित निदाघ।।
>
> —वंश० ३०२१।१

वाग्विलास के दो रूप हैं—एक तो आलंबन-आश्रय के मध्य व्यंग्योक्तियों के रूप में तथा दूसरा कवि की टीका-टिप्पणियों के रूप में (द्रष्टव्य भाव-व्यंजना तथा वंश० ३००८।१)।

प्रथम रूप की अवतारणा विशिष्ट प्रसंगों में अवस्था-चित्रण अथवा विभाव-रचना के दृष्टिकोण से की गई है। यहां वाणी-विलास मनोरंजन का लक्ष्य रखता है या फिर व्यंग्य-ध्वनि से तिरस्कार-उपेक्षा का (द्रष्टव्य वीर रस)। इस प्रकार का वाग्विलास रविमल्ल, रत्नसिंह, जगमाल और बुधसिंह के प्रसंग में विशेषरूप से आया है। राणा खेतल के विवाह प्रसंग में वाग्विलास से हुए रंग में भंग का उल्लेख किया जा चुका है।

प्रसंगगर्भत्व, लाक्षणिकता तथा अत्यन्त तिरस्कृत ध्वन्योक्ति इस वाग्गी विलास में की विशिष्टता है और उक्ति-चमत्कार प्राण तत्व। यथा—

क—"अर नीच अव्यादरा कुलनूं दुहिता देणरी किण मूढ़ कही छै। जिण रीति मुकुन्दरा मंदिरनूं बिहाय खेत्रपाळ पूजणरी श्रद्धा किसो कापुरुष चित्त धरै। अर अनीत तिरस्कार करि किसड़ो नीच चंडाळी मजरो सापन करै।" —वंश० १३४६।१८

ख—सुनि मम बिन्नति सदय जाहु निजगृह दुलही जुत।
दुहिता विष कोदोस नारि तुमरी कुलीन नुत॥
बरसिंह हि इम बिदित खित्रि बुल्लिय सठ खित्तन।
नहि साजित तुमसंद में न तिम नियत महाबल॥
प्रभावति सत्त सहि सु समय रहत तिम न कुल नृप रहैं।
बरसिंह नयन इतनी बदत दवजग्गिय जनु सब दहैं॥ ४१
बुंदियपति खिजि बदिय प्रथित लायक नृपत्वपन।
जनकमाइ जिम जाइ सीर हुंकिय पटुलासन॥
सिंचिय खेतन सलिल स्वकुल नारिन भोवन सम।
तास उदर तवसाल हुव सु कुलतान भजै हम॥
इतनी सुनाइ रानहि उचित भूप मनुज सहित भयो।
आदित्य चढ़त घटिका उभय लरन चावे दुव दिस सयो॥
—वंश० १८३२-३१।४२

वाग्विलास का दूसरा रूप कवि की टीका-टिप्पणियों में द्रष्टव्य है—

निरखहु हाहा राम नृप, ऐसी बस्तन अज्ज।
बरतैं मिच्छन हुकमबस, अचिरज बढ़त अकज्ज॥ —वंश० २०७५।१५
मिच्छनसौं इक को बनै सुसवनैं समस्तनको पराजय।
इक कारन एहु भो मुव जाय दुष्टन के सु पै भय॥
— वंश० ७१६।१०

कहीं-कहीं मर्मस्पर्शी स्थलों को प्रभविष्णु बनाने के लिए भी वाग्विलास का उपयोग किया गया है। यथा—

सिंहनि भविखय सिंहसौं, कित सोवहु अब कंत।
जिन हरियन कुंभन जलज, ते आवत घुमडंत॥ ११
जिन हित लंघन लंघिकै, खद्धो घोर न मंस।
सद्दजै ते आवत सुनै, बारन मंडन वंस॥ १२
अबो हत्थल संकरनु, उद्धट परबलहु आज।
भूख न कढ्ढहु आवते, रोसिल्ले मृगराज॥ १३

जिन कुंभन नख नाहके, बनें घटा जिम बीज ।
हम कौतुक बहु विविधहैं, खुल्लहु रंचक खीज ॥

—वंश० ३४०२ । ११-१४

इत रानिय बज्जत सुनें, गज्जत गिद्धनिन गैन ।
बुल्लि अब देर न बहिनि, चित तुम रक्खहु चैन ॥ २०

देनहार गज कालिकन, गूद पलन अवगाह ।
तिहिं मम कर्तहिं नैंक तुम, सज्जन देहु सनाह ॥ —वंश० ३४०३।११

अन्य उदाहरण हैं—वंश० १३५८ । ७ ८; १७२५ । ८-१३; १७३२ । ४८; १८२४-८४८; १९३० । १-२; २००८ । ४५-४६; २१६३ । २-३६; ३०१२ । १८; ३३७३ । ८; ३३३१ । १-४-५ ।

अप्रस्तुत विधान

अप्रस्तुत विधान काव्य का मूलाधार है । वर्ण्य-विषय को सहृद-संप्रेष्य बनाने के लिए नाना-विध 'अप्रस्तुत' खड़े किये गये हैं ।

सूर्यमल्ल के 'अप्रस्तुत-विधान' को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—

१—शास्त्राश्रित अप्रस्तुत २—लोकाश्रित अप्रस्तुत
३—काव्य रूढ़ात्मक अप्रस्तुत ४—नवीन उद्भावनाजन्य अप्रस्तुत

१— शास्त्राश्रित अप्रस्तुत—शास्त्रगत विश्वासों और मान्यताओं पर आधारित है जो लोकगम्य न होकर रूढ़ बन गये हैं । यथा—

(क) रह्यो बुध रोहिनिहिं तहं आय, जुर्यो ग्रह आर बिसाखहिं जाय ।
लियें ढिग रुक्क धूमल केतु हत भ्रम भानु लस्यो खम हेतु ॥

—वंश० ६८० । ८१

(ख) अरु द्विपुस मास के सूत्र के समान कितेक कातरन सस्या हो देखिवेको विवेक लयो । —वंश० ११०२ । ३

(ग) चक्रहृयच्छट भुकि बहुंत कोदंड हुलोकर ।
पच्छें छुवत उठावपाय दगि भू बेंसंदर ॥
ससिखुर सम खुरतार सग बिहरैं जनु बिज्जर ।
क्रम नल कीलन मल किलीन घनघन धूग घत्तर ॥

—वंश० २६५० । १२

२— लोकाश्रित अप्रस्तुत—लौकिक अनुभवों की रूढ़ मान्यताओं पर आधारित है जिनमें मुहावरों का समावेश विशेष रूप से हुआ है । यथा—

(क) कथित सु विप्रन मोख होय कब ,
उरग गयो ह रहि लेखा अब ॥ —वंश० ११६६ । ४०

(ख) पै गोधूम कुसंगहिं पावत, जंत्र पट्ट कृमिहु पिसि जावत।

—वंश० १६६५ । १७

(ग) उस समय बगड़ चहुवाण घणा मेरांरा माथांसूं माथा भिड़ाय भेजा काढ़िया। अर केही वैरियांरा थाट किवाणरा आघात देर साबणरी तरह काढ़िया।

—वंश० १३४६ । १७

(घ) चालता काळसूं चाळो कीधो किना मुवा मृगराजरी नासिका रो लोम ताणियो।

—वंश० २३१८ । ७

अर चांडाळरै मुख सावित्री रै केहरीरो विभाग फेरणरै मृढ्ढण्डै कदापि न हटावें।

—वंश० १३२८ । ८

कहीं-कहीं लौकिकता सीमा-लोप कर गई है। यथा—

(क) बालपनहु यह आयुध तिय न छलि बिजन प्रहारहिं।
मोचत लिन बलित मन पिट्ठि लत्ताहनि परिहिं॥
कतिकन छोवत कुमति पयन बिच सल्य प्रवेसहिं।
अंसुक नारिन अटत दूर करि लखत कुदेसहिं॥
सामत आदिगुरु बधु सब बाहिर लखि बरजै बहुत।
निजजननि आदि अवरोधन हु सूचहिं सब जाके कुसुत॥

—वंश० २११७ । ४

(ख) ... ... ।
सुनि एह हुव भगवंत के कटि ग्रोप फुल्ल समान॥

—वंश० २२५० । ३०

३- काव्यरूढ़ात्मक अप्रस्तुत—कवि-परम्परा की लीक पर आधारित है जो कहीं उपमान-विशेषण के रूप में तो कहीं कवि-प्रसिद्धि तथा विशेषण-विशेष्य के रूप में आये हैं।

कतिपय उदाहरण उल्लेखनीय हैं—

(क) प्रतिभट मुत्तिन भुजन पुञ्जि लहि हित उर लाये।

—वंश० १३११ । १५

(ख) पार बुल्लत के कर्हं जिम लोक तित्तिरवं सिचानन॥
... ... ।
नक्ख गावत रासमैं चउसट्ठि बावन हास हुंकत॥

—वंश० १४५७ । ४६

(ग) वाह वाह कहि उभय कटक मिलतहिं हय हंकिय।
रव बढ़ि मेह जिम खेह किरन बिकिरन रवि ढंकिय॥
सहसा चलि संकलित बान असि कुंत बरच्छिय।
अग छिन्न उच्छलतै मनहु बिनुदक झक मच्छिय॥

—वंश० १७८६ । ३१

(घ) घोलन गति दुहुं घोर घसहु गोलन घाडंबर।
सलिल निशानन सुविक तजतपत्तन मुरसे तर ॥

—वंश० १८८३ । २१

(ङ) चलंत थवक होत हवक रीभि मवक दवकयो।

—वंश० १८८३ । ३३

(च) बहु घोक सोक बग्गी, सिवकी समाधि जग्गी।

—वंश० १९११ । ७

(छ) घट फुट्टि कैक घुम्में, भट जुट्टि कंठ झुम्में।

—वंश० १९१२ । १२

ऐसे घोर भी उदाहरण संकलित किये जा सकते हैं।

४– नवीन उद्भावनाजन्य अप्रस्तुत—विरल है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। यथा—

(क) कति बपुहेति बिसत हिय बिकसित चिह्नित जिम रामानुज चक्र··· ।

—वंश० २५७५ । २८

(ख) लसैं ग्रसि कुंभन फांक चलाव।
बढ़ैं रद सम्बुव तति बनाव ॥ १४
कटैं सर तोमर देसन दौरि।
फबैं पृथु रोम कि जालिय फारि ॥ —वंश० ३४१६ । १५

(ग) घर धाजरा समय में गुजरात रूपी काचा कळसरै सीस चहुवाणांरा समुद्ररो सीमारोपियो प्रवाह छै इसड़ा क्रमहरा वचन गिरिनारी रागरै समान श्रवणमें पड़िया तिकांसूं काळो होतो तो पाछो पलटणरी जेज करतो नहीं।

—वंश० १३७४-७५ । ४६

ऊहात्मक शैली

ऊहात्मक शैली दरबारी काव्य की विशेषता है। तर्कना तथा गूढ़ रचना द्वारा पाण्डित्य-प्रदर्शन ही इसका लक्ष्य है। वंशभास्कर में ऊहा पद गत भी है और छंद-गत भी। जैसे तीन छंदों के १५ चरणों के आदि अक्षरों को क्रम में रखने पर भावसिंह की प्रशंसा का एक चरण बनता है—भाउ का भरोसा ज्यों भरोसा दीनानाथ का। यथा—

भाख्यौ तहां इक जंगलभूप महीप को निर्मित वृत्त मनोहर।
ऊहा करो इहि पद्यकों आदिमैं अक्षिन आदिकै जोरिकैं अक्षर ॥
काव्य मनोहर के जिम ग्रंतके पन्द्रह वर्ण जे क्यात बरापर।
भव्य मनोहर कीरति भाऊ की पद्म प्रतीक जनातजो प्रब्बर ॥ १०
रोधक सत्रुन संगरराय सहाय सज्यो न सज्यो भय साह के।
साथी स्वकीय प्रबीरन साथ लहै पट पष्ट त्रिविष्टपलाहके ॥

ज्यों ससि आइहि बढ़िसौं बैन कहै गुन कर्न मह्यौ इमबाहुके ।
मल्ले इहां पहुचे पहु और गढ़ाधव जेते तमें गढ़ बाहु के ॥ ११
रोकि करीन बिलोकि अरीन तुरंगन ओकिहु तानि त्रिमानन ।
साधन सोहि तुरानय को नयको बब ससय कोहु निराजन ॥
दीवन बोस उदाह के दै अवनीतन आदपोर्यों तनु त्यागन ।
नामी नरेस मिल्यो इम मित्र हो, इष्टि ज्यों मिलतौं सुकते आवन ॥ १२
नाकी बिमान भई बहुनाकिम मानिकै प्राये मनीकन ऊार ।
पट्ट सजे दुब धो रनधम्म बढ़े रबर निपुन बंध मुरै वर ॥
बास इतेहके मतर काम ज्यों साहु—है साहसूम धनि संगर ।

— वंश० २८२७ । १३

ऐसी ही दो एक तर्कनाएं और भी द्रष्टव्य हैं –

(क) सुदे मर रीत रथोनमं मान, सुने हय जैत हुने गुडर:न ॥
मराक सु मेह सजे दह सेतु, समान सबीर सरीरमदैतु ।

—वंश० ३४२० । ३०

यहां प्रत्येक चरण के अर्धांश को सीधा और उल्टा पढ़ने से पूर्ण छन्द बन जाता है तथा उसका अर्थ बदल जाता है ।

(ख) भो जैहंस भूपं परे तिन्हें पवि पिरसा याग ।
ध्याज सेन बुंबदीसैं राह बहु रोहे जे ॥ —वंश० १९९६ । ४१

यहां भी छन्द के प्रथम दो चरणों के चौदह शब्दों तक प्रत्येक शब्द का आदि वर्ण लेकर जो वाक्य बनता है, वह छन्द के साधारण अर्थ से पृथक् एक नया अर्थ देता है जैसे– भो, जै, भू, प, ति, पं, भि, या, ध्या, (सा), सै, बुं, दी, रा, ब, (र) अर्थात् भोजै भूपति पंभिया वाले बुंदी राव । इसका अर्थ है बूंदी का राव अकाल के समय दुर्भिक्ष-ग्रस्तों को रोककर अपने यहां भोजन करवाता है अथवा भोजन देकर उनकी रक्षा करता है ।

सोदा बारू चारण द्वारा कराई गई मूर्ति-भंगिमा की व्याख्या(वंश० १७९२ । ३१-३८) मे दरबारी कवियों की ऊहा का प्रतिनिधि रूप द्रष्टव्य है । राज प्रशस्ति का यह रूप रीति-काल में राज-दरबारों की शोभा माना जाता था और ऐसी तर्कना पर राजा-जन प्रसन्न होते थे ।

नाम-वाची पदों में भी ऊहा का समावेश हुआ है । यथा—'समादिक ग्राम'– संग्रामसिंह (वंश० २०५५ । २०); 'नरादिक अयन'– नारायणसिंह (वंश० २०५५ । २०); 'वर्णद्रुतं पत्र (वंश० १३५७ । ५); 'सिंहनड़'– सिंहासन (वंश० १९७४ । ४) ।

कहीं-कहीं दीर्घ वाक्य-रचना द्वारा भी ऊहा की गई है (वंश० १२७१ । १०) ।

इसी प्रकार वाक्य-रचना में विभिन्न भाषाओं के शब्द-प्रयोग द्वारा भी ऊहात्मकता लाई गई है (वंश० २७१४ । ४३-४५) ।

वीप्सा शैली—

वीप्सा-शैली का प्रयोग युद्ध-प्रसंगों में क्रिया और भाव का आधिक्य प्रकट करने हेतु हुआ है। इससे ये वर्णन सजीव होकर गत्यात्मक बन गये हैं। यथा—

> चल्यो इत भूप तें भारत खग्ग, झरैं भरि घायल डारत झग्ग।
> इतैं उत घोर मचैं भवमद्द, इतैं उत भावहिं भावहिं नद्द ॥ १२९
>
> इतैं उत मुंडन छादित भूम्मि, इतैं उत डोलत घायल घुम्मि।
> इतैं उत संकुलि लुत्थिन लुत्थि, इतैं उत बाढ़ बिखेरत बुत्थि ॥ १३०
>
> इतै उत खञर होत दुसार, इतैं उत फुट्टस पट्टिस पार।
> इतैं उत होत तुपक्कन मग्ग, इतैं उत वेधत सेलन भग्ग ॥ १३१
>
> इतैं उत तोरन ढकत गैन, इतैं उत उढ्ढत सगित सैन।
> इतैं उत उग्र रचैं रन रोर, इतैं उत पात गदा अति जोर ॥ १३२
>
> इतैं उत चाप चटट्टुत चक्क इतैं उत घूघन की चमचक्क।
> इतैं उत या गति आयुध बुट्टि, इतैं उत मुट्ठिन मारत मुट्ठि ॥
>
> —वंश० ३४३७ । १३३

1086

यहाँ 'इतैं उत' की एकाधिक आवृत्ति द्वारा कार्य व्यापार की वेगशील आत्यतिकता व्यक्त की गई है। ऐसे प्रयोग एकाधिक स्थलों पर आये हैं। जैसे—

'जंहा तहां' (वंश० ३१५९-६० । ६४-७२)
'चहे' (वंश० ३१६६ । २७)
'चले' (वंश० ३३१७ । १७-१८)
'यों' (वंश० ३४०५ । २९-३२)

इसी प्रकार क्रिया-रूपों और विशेषण-पदों की आवृत्ति द्वारा भी वीप्सा के प्रयोग हुए हैं। यथा—

(क) क्रिया रूप की आवृत्ति—

> दुरें कहुं आनक दुंदुभि फुट्टि, डरें कहु केतन तेगन तुट्टि।
> गिरे कहुं पट्टिस खग्ग कमान, गिरे कहुं खेटक तोमर बान ॥ १७१
>
> गिरे कहुं बाहुल कव्ट टोप, गिरे कहु कोस तुरंगम ओप।
> गिरे कहु गंज अमेलक खंड, डरें बनिजारन के धनु टंड ॥ १७२
>
> गिरे कहु पक्खर अग्ग खसीन, गिरे कहुं तुंग खरे खग खीन।
> गिरे कहुं गुच्छ बनें गजगाह, गिरे कहुं ओप बनावत बाह ॥ १७४
>
> गिरे कहुं गैवर मोहि अमाप, गिरे कहुं अंकुश घंट कलाप।
> गिरे कहु पुक्कर आसन वान, गिरे कहुं पेचक औ प्रतिमान ॥ १७५

ज्यों ससि जातहि बदिसी यैन कहुँ मुर कर्नैं यहाँ इमबाहुके ।
मत्ले इहाँ पहुचे पहु भीर नदाप्रभ जैसे समैं गम ग्राहुके ॥ ११

रोकि करीन बिघोकि प्रवीन तुरंगन भौंकिहुँ ताकि त्रिमागन ।
साधन सोहि गुरातप को मनको अब ससय कोहु निरागन ॥
दीपन बोस उछाह के दै अबनीपन आदरयोत्यों तनु त्यागन ।
नामी नरेस मिल्यो इम मित्र सों, वृष्टि ज्यों चित्रनों मुक्ते बागन ॥ १२

माकी बिमान चढ़ें सहनातिन आनिकें छाये मनीकन ऊपर ।
घट्ट सजे दुव धां रनधम्म बजे स्वर सिधुन बंब घुरें बर ॥
काम इतेकके मतर काम ज्यों साह—है साहभुम चमि संगर ।

—वंश० २८२७ । १३

ऐसी ही दो एक तर्कनाएं और भी द्रष्टव्य हैं –

(क) तुदे मर रोस रवीगम लास, तुमे हय जेत हंमे गुंदरास ॥
सराक सु लेह सजे यह सेतु, ममाम सबीर सरीरमदेतु ।

—वंश० ३४२० । ५०

यहां प्रत्येक चरण के अर्धांश को सीधा और उल्टा पढ़ने से पूर्ण छन्द बन जाता है तथा उसका अर्थ बदल जाता है।

(ख) भो जँदँल भूपं परे तिन्हें पथि पिरसा याग ।
ध्याज सँन बुंघदोर्ह राह बहु रोहे जे ॥ —वंश० १६६६ । ४१

यहां भी छन्द के प्रथम दो चरणों के चौदह शब्दों तक प्रत्येक शब्द का आदि पद लेकर जो वाक्य बनता है, वह छन्द के साधारण अर्थ से पृथक् एक नया अर्थ देता है जैसे– भो, जैं, भू, प, ति, पं, भि, या, ध्या, (वा), सैं, बुं, दी, रा, ब, (व) अर्थात् भोजैं भूपति पथिया वालैं बुंदी राव । इसका अर्थ है बूंदी का राव अकाल के समय दुर्भिक्ष-ग्रस्तों को रोककर अपने यहां भोजन करवाता है अथवा भोजन देकर उनकी रक्षा करता है।

सोदा बारू चारण द्वारा कराई गई भूति-भंगिमा की व्याख्या (वंश० १७६२ । ३१-३८) में दरबारी कवियों की ऊहा का प्रतिनिधि रूप द्रष्टव्य है। राज प्रशस्ति का यह रूप रीतिकाल में राज-दरबारों की शोभा माना जाता था और ऐसी तर्कना पर राजा-जन प्रसन्न होते थे।

नाम-वाची पदों में भी ऊहा का समावेश हुआ है। यथा—'समादिक ग्राम'– संग्रामसिंह (वंश० २०५५ । २०); 'नरादिक अयन'– नारायणसिंह (वंश० २०५५ । २०); 'वर्णद्रुत' पत्र (वंश० १३५७ । ५); 'सिहनद्'– सिंहासन (वंश० १८७४ । ४)।

कहीं-कहीं दीर्घ वाक्य-रचना द्वारा भी ऊहा की गई है (वंश० १५७१ । १०)।

इसी प्रकार वाक्य-रचना में विभिन्न भाषाओं के शब्द-प्रयोग द्वारा भी ऊहात्मकता लाई गई है (वंश० २७१४ । ४३-४५)।

वीप्सा शैली—

वीप्सा-शैली का प्रयोग युद्ध-प्रसंगों में क्रिया और भाव का आधिक्य प्रकट करने हेतु हुआ है। इससे ये वर्णन सजीव होकर गत्यात्मक बन गये हैं। यथा—

> चल्यो इत भूरि ति भारत खग्ग, भरैं भरि घायल डारत भग्ग।
> इतैं उत घोर मचै भवमद्द, इतैं उत मारहिं मारहिं नद्द ॥ १२९
> इतैं उत मुंडन छादित भूम्मि, इतैं उत डोलत घायल घुम्मि।
> इतैं उत सकुलि लुत्थिन लुत्थि, इतैं उत बाढ़ बिखेरत बुत्थि ॥ १३०
> इतैं उत खंजर होत दुसार, इतैं उत पुट्टस पट्टिस पार।
> इतैं उत होत तुपक्कन भग्ग, इतैं उत वेधत सेलन अग्ग ॥ १३१
> इतैं उत तीरन ढक्कत गैन, इतैं उत उड्डत संगित सैन।
> इतैं उत उग्र रचैं रन रोर, इतैं उत पात गदा अति जोर ॥ १३२
> इतैं उत चाप चटट्टत चक्क इतैं उत धूमन की धमचक्क।
> *इतैं उत या गति आयुध बुट्टि, इतैं उत मुट्टिन मारत मुट्टि ॥*

—वंश० ३४३७ । १३३

यहाँ 'इतैं उत' की एकाधिक आवृत्ति द्वारा कार्य व्यापार की वेगशील आत्यंतिकता व्यक्त की गई है। ऐसे प्रयोग एकाधिक स्थलों पर आये हैं। जैसे—

'जहाँ तहाँ' (वंश० ३१५६-६० । ६४७२)
'बहै' (वंश० ३१६६ । ३७)
'चले' (वंश० ३३६७ । १७-१८)
'यों' (वंश० ३४०२ । २६-३२)

इसी प्रकार क्रिया-रूपों और विशेषण-पदों की आवृत्ति द्वारा भी वीप्सा के प्रयोग हुए हैं। यथा—

(क) क्रिया रूप की आवृत्ति—

> दुरैं कहुं आनक दुंदुभि फुट्टि, दरैं कहुं केतन तेगन तुट्टि।
> गिरे कहु पट्टिस खग्ग कमान, गिरे कहुं खेटक तोमर बान ॥ १७१
> गिरे कहुं बाहुल कंकट टोप, गिरे कहुं कोस उरंगप ओप।
> गिरे कहु गंज कमेलक खंड, दरैं अनिआरन के जनु टंड ॥ १७३
> गिरे कहु पक्खर अग्ग खलीन, गिरे कहुं सुंग खरे खग छीन।
> गिरे कहुं गुच्छ बनैं गजगाह, गिरे कहुं ओप बजावत बाहु ॥ १७४
> गिरे कहुं मैवर मोहि प्रमाय, गिरे कहुं अंकुस घंट कलाप।
> गिरे कहु पुष्कर आसन बान, गिरे कहुं केवक भी प्रतिमान ॥ १७५

1086

गिरे कहुं कुंतल मुच्छ कपाट, गिरे कहुं मुण्डक तुंड ललाट।
गिरे कहुं नैन रदच्छद लल्ल, गिरे कहु नक्क स्वनिग्रह गल्ल ॥

—वंश० ३४४१ । १७६

(ख) विशेषण पद की आवृत्ति । यथा—

धनें रिपुन रमनीन भारि कंकन कुवेल किय।
धनें रिपुन रमनीन बिब बंदन पखान दिय ॥

धनें इभन घन घाय कियउ मंहगे सौदागर।
धनें गजन सिर फारि रंग मुत्तिन किय मागर।

भुज दंड गिरि बासुकि उरग मंदर असि गहि उच्च मन।
सिवसल कुमार नागर कियउ ढुंढाहर सागर मथन ॥

—वंश० १४६३ । १२

शब्द-सौष्ठव—

षड्भाषाविद् सूर्यमल्ल का शब्द-भण्डार नितांत ही समृद्ध है। शब्द उसकी चाकरी में करबद्ध हो मतवार खड़े रहते हैं और आदेश होते ही उपयुक्त स्थान पर जा बैठते हैं। एक-एक भाव और गति-चित्र के लिए उसके पास अनेक शब्द हैं जिनका सटीक सुष्ठु एवं प्रभावनीय प्रयोग देखते ही बनता है।

सूर्यमल्ल ने शब्दों के प्रसंगानुकूल उपयोग का निरंतर ध्यान रखा है। स्तुति, विनय, दैन्य, रति आदि प्रसंगों में कोमलावृत्ति पदों का उपयोग किया गया है। यथा—

हाटक में हीर जिम हीर मांहि नीर जिम।
इन्दु में अमृत अबला में लाज ज्यों ललाम ॥
रोहिनीस रासा में पताका में विजय वर्ण।
सोहै सत्य में ज्यों प्रिय बचन विसेस बाम ॥
समर में सूर पय मांही ज्यों सिताको पूर।
कवि रसना में रस विद्या में विनय धाम ॥
साधुमान मान दान पात्र दान रिद्ध प्रान।
नीति में यों धर्म को निहारे राव राजा राम ॥

—वंश० ५० । ११

इसी प्रकार युद्ध-वर्णनों में परुषावृत्तियों का प्रयोग हुआ है। (द्र० युद्ध-वर्णन)

वंशभास्कर में प्रयुक्त शब्दावली को मोटे रूप में निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) अनुरणनात्मक शब्द—ध्वनि-प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अनुरणनात्मक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इनसे वर्ण्य-विषय में चित्रात्मकता आ गई है। यथा—

क—सणणंकै खुरसाण साणधारी खणणंकै।
रणणंकै रणराग झलम पाखर झणणंकै॥
घणणंकै भड़ विहुर छोजि कातर छणणंकै।
ठणणंकै घंट गदळां ठहे गणणंकै पळचर गगण॥
हणणंक होस है गाम हय जय कणणंकै वंदिजण।

—वंश० २६७४-७५। ५

ख—गज घंट ठनंकिय भेरि भनंकिय रंग रनंकिय कोच करी।
पखरान झनंकिय बान सनंकिय चाप ठनंकिय साप परी॥ ३
घमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन कोल मचक्कन छोल कढ्यो।
पखरानल भार खुभी खुरसालन ब्याल कपालन साल बढ्यो॥
डगमग्गि सिलोच्चय शृंग डुले झगमग्गि कृपानन अग्गि झरी।
बजि खल्ल तबल्लन हल्ल उझल्लन भुम्मि हमल्लन घुम्मि भरी॥

—वंश० ३१४८। ४

ऐसे ही अन्य उदाहरण हैं—वंश० २६२६। ६-११ ; २६७७। १-३; २६८४। २ ; २६६१। ४५ ; ३१४६। ८ ; ३१६४। १०१-१०५ ; ३२४१। ५२ ; ३२४१। ५६ ; ३३२६। ३-६ ; ३३६६। ५६-६० ; ३४१५। ८ ; ३४१६। १०-१४।

(आ) विशिष्ट शब्द—

धचार (गए) खुरलो (शस्त्र) लांगली (नालेर) घस्र (दिन) रिरी करीर (पीतल के कलश) थंहित (विघाड़) खज्जूर (चांदी) सुसीम (शीतलता) रढ (हठ) उपनाह (मरहमपट्टी) पाजो (मर्यादा) अनेह (समय) माढाली (बलात्) सेकिम (मूली) अघन (युद्ध) पुद्गल (पग) पाथ (हाथ) समीथि (युद्ध) खिनदागम (रात्रि) प्रवमर्द (युद्ध) भोद्राव (भगदड़) उद्दण (फंदा) परिवार (म्यान) दकालिया (ललकारे)।

(इ) पारिभाषिक शब्द—

रतिवाह (रात में छापा मारना) छत्रीना (पहरेदार टुकड़ी) मंत्र केणिका, बप्र (मिट्टी का कोट) प्राकार (२० हाथ से ऊंचा कोट) बरत्त (रस्से) दल थाल (बड़े डेरे) डाक देना (हाथी को हूलना) प्रतिश्रय (सभा-स्थल)।

(ई) तोड़-मरोड़ द्वारा निर्मित शब्द—

हये (हते) तनूगई (शरीरांत हुआ) प्रम (परम) गर (गैल) सगर (संकट) धाप (अपथ जल)।

(उ) विदेशी शब्द—

पुरबयान, मिसल, कंफ, हूर, नूर, राह, मुरब्बिय, अरब, बखसीस, मगरूरी, सिकार,

हुकुम, मधीन, शिकस्त, मुकाम, माफिक, जेर, जजीर जवाहर, सिरताज, जंग, तहखानन।

(ऊ) विदेशी तद्भव शब्द—

मासान (महसान) फ़ैरस (फायर्स) कप्तान (केप्टिन) लैन (लाइन) पलट्टनि (प्लाटून) आदि

(ए) मुहावरे और लोकोक्तियां—

अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त एवं संप्रेष्य बनाने के लिए सूर्यमल्ल ने मुहावरों का और लोकोक्तियों का भी उपयोग किया है :

१– जवां परट्ट कृमहु पिसि जावत (वंश० ११६५ । ३७)
२– उरग गयो रु लेसा अब (वंश० ११६६ । ४०)
३– प्रानलयें बालहिं कैसो पय, सूर्के कहा धन संचय (वंश० ११६६ । ४७)
४– माथा सुं माथा भिड़ाया भेजा काढ़िया (वंश० १३४६ । ३७)
५– मालिक रो लवण उजळो दिखाय (वंश० १३२१ । ४२)
६– सूता वैर जाग्या (वंश० १३६५ । २३)
७– भीम नाम न कहाऊं (वंश० १३६६ । २५)
८– हक निमक चुकाये (वंश० १४०२ । ११)
९– नीचा नैन करि (वंश० २३२६ । २३)
१०– हिय खुल्लि (वंश० ५३६ । ७७)
११– नीर छीर ज्यों मिले (वंश० २६७७ । १)
१२– बणी दासी बिणमोल (वंश० ११६५ । ५७)
१३– बिणरे मन घूलि (वंश० ११६४ । ६३)
१४– नहीं ठाम ठठाये (वंश० १३६८ । ६)
१५– फल हाथ चढ्यो (वंश० १३२३ । ४७)
१६– चालता काळ सूं चाळा कीधा (वंश० १३२८ । ६)
१७– मूछरै माथे हाथ दीधो (वंश० १३२८ । ७)
१८– अब महट्टन दिन उदित (वंश० २६४५ । १५)
१९– नींचा तदी कीधा नयण (वंश० १८१२ । २२)
२०– बैठे हक मासन जानु जोरि (वंश० ३२३८)
२१– लियां हाथ माथा (वंश० २६८३ । ६०)
२२– नक्क कटाय अपसोन देजिय (वंश० ७५४ । १)

इस प्रकार वंशभास्कर की शैली का पाट बड़ा विस्तृत है। इसका एक कगार प्राचीन संस्कृत-काव्य-परिपाटी का स्पर्श कर रहा है तो दूसरा रीति-कालीन दरबारी काव्य की प्रवृत्तियों तक विस्तृत है।

अलंकार बहुलता, विविध छन्दों का प्रयोग, वृत्ति-रीति का अनुशासन, प्रकृति वर्णन की संक्षिप्त चमत्कारिक शैली (द्र० प्रकृति-वर्णन) पूर्वानुराग, प्रेम, हरण (१७७१।६) नायिका

भेद (वंश० २९९६ । १४-२०; २४६७ । ४१-४२; २९३३ । ३; ३२४३ । ८-७; ३३६३। ३७; ३३७१ । २३;) चौर्य-रति, अभिसार, संकेत-स्थल, रति-क्रीड़ा (वंश०२४१८ । ४१-५१; २४६४ । २८-३४; २३७३ । ३१-३३; २४६६ । ५२) विट, चेटकादि का वर्णन, हाव, भाव, हेला, प्रमाद रत्योन्माद (द्र० रहीम-प्रसग) इत्यादि में रीति-कालीन दरबारी काव्य का प्रभाव देखा जा सकता है तो 'निशाणी' छंद में प्रयुक्त रेखता शैली के युद्ध-वर्णन (वंश० २९५४ । ३-६; ३१७४ । १४५-१५२; ३२५८ । १-१६; ३२७० । ७८-९३; ३२७५ । ९८-१००; ३२७९ । १२१-१२५; ३४०४ । २५-५३; ३६०७ । १-२८) दक्खिनी खड़ी बोली की काव्य-शैली का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं । एक ओर संस्कृत की काव्य-शैलियां हैं तो दूसरी सीमा पर प्राक् भारतेंदुकालीन नवोदित काव्य-शैलियां (द्र०प्रकृति-वर्णन) इन सीमाओं के परिवेश में कवि ने सभी प्रतिनिधि शैलियों के रूपों का समावेश कर दिया है। इसी अर्थ में उसने वंशभास्कर को 'कविकुल पूरन काम' (वंश० १५३ । १२) कहा है।

उपसंहार

वंशभास्कर मूलतः एक इतिहास-ग्रंथ है और सूर्यमल्ल नि.सशंत: कवि। इतिहासकार और कवि अर्थात् तथ्य और कल्पना—दो विभिन्न वस्तुएं और दो सर्वथा पृथक छोर। किंतु भारतीय साहित्य के अध्येता के लिए यह कोई नवीन स्थापना नहीं है। संस्कृत साहित्य में ऐसी कृतियों का ठाठ लगा हुआ है। भारतीय चिंतन में इहलोक और परलोक—वही तथ्य और कल्पना—सदा रसे बसे रहे हैं। अधुना विद्वत् जगत में हमारे आर्ष ग्रंथों—वेद *पुराणादि—के विषय में ऐतिहासिकता - अनैतिहासिकता सम्बन्धी जो ऊहापोह व्याप्त है* उसका मूल भी सुचित तथ्य की अवहेलना में ही निहित है।

वंशभास्कर भी तथ्य और कल्पना के इन धारों से रीता नहीं। उसमें भी तथ्य-संचार *और कल्पना के खेल हैं और खूब हैं —पर एक खूबी के साथ—वह यह कि कवि - कल्पना* के रेले इतिहास संभूत तथ्यों से मिलकर तथ्य और कल्पना की यों गड़बड़ नहीं करते कि जिससे एक दूसरे को पहिचानना भी कठिन हो जाय। सूर्यमल्ल ने इतिहास-फलक पर बाणादि संस्कृत कवियों की भांति कल्पना - घट संचित कवि - मन के रंगों को उंडेल कर तथ्यों की दुनिया को ठोकर नहीं मारी है। तथ्यों के आकाश में कल्पना की स्फुट गुलाल उड़ाने में ही उसने अपने कवि - कर्म की सिद्धि देखी है। परम्परागत ऐतिहासिक काव्य - परम्परा से यह पार्थक्य निश्चित ही सूर्यमल्ल की अपनी विशेषता है। यह कहते हुए हम यह भी मानलें कि यह विशेषता (मूलतः) कवि के युग की देन है। सूर्यमल्ल आधुनिक कवि है। उसके सामने इतिहास की स्वरूप - रेखा—अस्पष्ट रूपों में ही सही—विद्यमान रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से उसका युग चंद के युग का सा धुंधला नहीं अपितु इतना साफ है कि उसके पहले ही इतिहास की भूमि में टाड जैसे अनुसंधित्सु 'एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज ऑव राजस्थान' (प्रथम जिल्द, प्रथम प्रकाशन सं० १८८६) जैसे गढ़ खड़े कर गये हैं।

उसने प्राचीन भारतीय कवियों की भांति ऐतिहासिक नाम मात्र लेकर काम चलता नहीं कर दिया। शैली में पुरातनता रहते हुए भी नवीनता है जिसमें काव्य-निर्माण की ओर ध्यान रखते हुए भी विवरण संग्रह का महत्व कम नहीं, कल्पना विलास को मान देते हुए

भी तथ्य-निरूपण की अवमानना नहीं, संभावनाओं की ओर रुचि रहते हुए भी घटनाओं की अवहेलना नहीं, उल्लासित आनन्द की ओर झुकाव होते हुए भी तथ्यावली की उपेक्षा नहीं। इस प्रकार यहां इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त नहीं होना पड़ा"[१] अपितु इतिहास की ज़मीन पर कविता की गुलकारी बड़े ही मनोज्ञ रूप में उपस्थित है।

१—मिलाइए—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७६

अध्याय ८

अलंकार-योजना

वंशभास्कर को 'कवि-कुल पूरन काम' कहते हुए सूर्यमल्ल ने नाना-विषय गर्भित· में रुचि रखने वालों को ही इसका अधिकारी बतलाया है (वंश० १ । १) सो इसलि तथ्य-संभृत कथ्य के अधिकारी विषय रहते हुए भी वह इसमें कवित्व के अवसर नि लाया है । युद्ध, सेना, विवाह आदि के वर्णन, रूप-चित्रण, पात्र-प्रवृत्ति-विधान, रसोन इत्यादि ऐसे प्रसंग हैं जिनमें सूर्यमल्ल का कवित्व उभर कर सामने आया है । अस्तु ।

यद्यपि *सूर्यमल्ल रीतिकाल की परिपक्वावस्था का राजदरबारी* कवि है फिः अलकरण के प्रति उसका दुराग्रह नहीं है । अलंकार-प्रयोग में वह प्रायः संयमित रहा तथ्यों के देश में तो अलंकारों का नाम मात्र भी नहीं है । इसी प्रकार इतिवृत्त विवरणों में वह अलंकारों को ध्यान में भी नहीं लाता । जहां युद्ध-सेना आदि के प्रसंग हैं वहीं कवि-कल्पना पंख पसारती है और वर्णन-राशि में अलंकार स्वतः जुटते चले जा शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का वंशभास्कर में प्रचुर प्रयोग हुआ है ।

अनुप्रास और वयण सगाई तो कवि की भाषा के सहज अंग बन कर आये हैं । बिना किसी वाक्य की कल्पना हो जैसे कवि नहीं कर सकता । यहां तक कि पिंगल के में भी वयण-सगाई का मेल हो गया है ।

अंत्यानुप्रास की भी भरमार है । ग्रंथ-नियमान्तरगत कवि ने अंत्यानुप्रास—प्रयो अपनी नीति को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया है । यथा—

> कहि दुव अर्धन अंत अरु, कहुं दुव चरनन अंत ।
> अपभ्रंस मत लहि इहां, अनुप्रास बिलसंत ॥ २२
>
> एक बरन सों अष्टि लग, करी अवधि इनकेर ।
> इनमें व्यजन आदि को, बदलत दूजो बेर ॥ २३
>
> उदाहरण क्रमतैंहि सुनहु सो जो पुनि जस तस ।
> समर अमर सरसाय बहुरि दरसाय रीति बस ॥
> रन करन रु मनकरन सदन चहत रु मदन चहत ।
> ग्योंहि सहल सरवर रु महल सरवर प्रबंध मत ॥
> तैसैंहि वीर विक्रमवलिय बलि हमीर विक्रम बलिय ।
> अनुप्रास अत्यनामक इमें सुलघु बढ़ि बढ़ि बरगहु चलिय ॥ २४
>
> पुनि सभंगपद अरु अभंगपद, है प्रकार दुव करि याको हद ।
> उदाहरन षष्ठ रु अष्टम जंहं, है सभंग तिलमैं अभंग तंहं ॥ २५

अनुप्रास पदमुख केवल स्वर, सोहि सर्वजन मान इमहु वर।
उदाहरन पुब्बहु महं भैंसें, करहु विलंब अबन जिम कैसें ॥

—वंश० १४१ । १४२ - २६

वयण - सगाई के विषय में भी उसने लिखा है कि "इस ग्रंथ के चौथे भाग में तो यह नहीं है किंतु शेष तीनों भागों में नियमपूर्वक इसका निर्वाह किया गया है—

ग्रंथ चतुर्थ भाग बिचनो यह, सेसमांहि सब ठाम नियम यह ॥

—वंश० १४२ । २८

आगे और भी वयण सगाई के विषय में कवि ने इस प्रकार सूचना दी है।—

समरसिंह सुर चरित सन, लहि प्रारम्भ उदंत।
यह अजमेर सन रावरे, आगम सब जिहि अंत ॥ १

इते ग्रंथ बिच लिप अनिष्ट, विदित बरन संबन्ध।
त्यागि मनोहर आदि त्रिक, सबहि छंद दृढ़ संध ॥ २

मनोहरास्य घनाक्षरी, सकृत हु इन माहि।
इति टेक बहु पै नियत, बरन सगाई नाहि ॥ ३

सब लिख छंदन नियम यह, बिहित बरन संबन्ध।
इक्क चरन गत इक्क मत, त्रिधा दिहु धृत संध ॥ ४

चरन केर अदद चरन, इनके अरहु अंत।
तिन्हसें आदि रु अंत तक, सुहि संबन्ध प्रसंत ॥ ५

स्मृत न भयो कहुं तो सुबुध, न गिनहु कठिन व नैन।
मनको धर्महि बिस्मरन, यहहि सनैन मनैन ॥ ६

कथित प्रयत्न प्रबंध करि, अन्छर समपन आनि।
अब प्रयत्न तजि अविसयत, ठां ठा नियम न ठानि ॥

—वंश० ४२६४ । ७

अनुप्रास—

वंशभास्कर में *अनुप्रास का ठाट - सा लगा हुआ है।* उसके तमाम भेदोपभेदों के प्रयोग यहां मिल जायेंगे।

शब्दालंकारों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

छेकानुप्रास—

१—जिण दहिया वहिया जुड़े पावक दाम प्रमाण ॥ वंश १२६४ । २६
२—कुल धलाउत सल रा कहै'''॥ वंश०१२६६ । ३५
३—विस्वकर्मा कलस बनायो''' ॥ वंश० ४०३ । १६

४—काहूनो निहोरो तू दिगतन लौं दोरो पै ॥ वंश० ५३ । २३

भृत्यनुप्रास—

१— मेघमाळा में पंचळारा चपळ भाव में चूक पाड़ता चंद्रहास चलाया ॥

—वंश० ११६१ । १५

२—घर म्हारै घरापै घरां घंवारै घाम घाम घारां घाएंरी । घमचक देदि घोर ठैमी घणरी पूर्णता मरावीजै ॥ वंश० १८१९ । ३४

३—लबी लंबी लपट लतासी लौंनी लाइ लाइ ॥ वंश० ४०३ । १८

४—चित्रित बिचित्र चारु चामीर को चतुर ॥ वंश. ४०३ । १६

५—घुम्मत घटा के घतुरन में घटा के घाट ॥ वंश० ५२ । २१

६—छबिको छपेस छत्र महल के छाजा ससि ॥ वंश० ८४ । २५

७—प्रखिल बिवधल प्रग्नि प्रग्न प्रायत प्रालय इम ॥ वंश० ५४४ । २३

८—रानिन समेत बसि बसि बिपिन बीतराग बिधि बपु तजिय ॥ वंश० ७२७ । १३

९—दुद्दर दिस दिस दौरि लुट्टि परधन जे लावत ॥ वंश० ११४० । ४२

१०—कहै एम पच्छे लगै पाय ज्यौं प्रान के प्रेम ॥ वंश० ११५५ । ५६

११—लुत्थिन लुत्थि लगाइ जुत्थ जुत्थिन बहु घज्झिय ॥ वंश० १६०० । ३३

१२—सणणंकं सुरसाण खागधारां खणणंकं ।
रणणंकं रणराग झलम पाखर भणणंकं ॥
चणणंकं मड़ चिहुर छीजि कातर झणणंकं ।
टणणंकं टामक प्रमर फौला भणणंकं ॥
ठणणंक घट गबजो ठहे गणणंकं पळचर गयण ।
हणणंक हींस हैगाम हय जय कणणंकं बदिगण ॥ वंश० २६७५ । ५

अंत्यनुप्रास—

१—चल्यो इत भूपति झारत खग्ग, झरै प्ररि घायल कारत झग्ग ।
इतै उत घोर मचै धवमद्द, इतै उत मावहि मावहि नद्द ॥ १२९
इतै उत मुंडन छादति भुम्मि, इतै उत डोलत घायल घुम्मि ।
इतै उत संकुलि लुत्थिन लुत्थि, इतै उत बाक्र बिलोरत जुत्थि ॥ १३०
इतै उत खभर होत दुसार, इतै उत फुट्टत पट्टिस पार ।
इतै उत होत लुथक्कन मग्ग, इतै उत बेधन खेलन खग्ग ॥ १३१
इतै उत तोरन ढंकन गैन, इतै उत उड्डत संगिन सैन ।
इतै उत उप रचै रन रौर, इतै उत पात गदा प्रतिजोर ॥ वंश० १४१७ । १३२

२—यह मेहको फन खेलको बल देहको खलको भयो ॥ वंश० ४२० । २४

३—साहुन को साख बिदा बिदरी को मान काम ।
हिंदुन की हाल चाल चहित धनन्त पै ॥ वंश० १४ । २५

श्रुत्यनुप्रास—

श्रुत्यानुप्रास के उदाहरण वंशभास्कर में पग-पग पर मिलते हैं। विस्तार भय से उनके उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

यमक—

वंशभास्कर में यमक प्रयोग भी बहुलता से हुआ है। भिन्नार्थक शब्द प्रयोग से अभिव्यक्ति को कलात्मक और संप्रेषणीय बनाना ही कवि का लक्ष्य रहा है। उसने वाणी की निरी सजावट की अपेक्षा उसकी कसावट और अर्थगुणसम्पन्नता पर अधिक ध्यान दिया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१ सो मानी सचिव मांहा सों मानी फिराई मायो ॥ वं० २३०१ । ११
२ लक्खन मित जनपद कर जनपद कर लाइकै ॥ वंश० २२८८ । २३
३ अदिय भूप तुव बंधु सहृद मामक मामक सुत ॥ वंश० ११७८ । १३
४ असन बसन को मास मनन मनन सब प्रमानैं ॥ वंश० १६६० । ६
५ समर समर मारे समर ॥ वंश० १६७६ । ४२
६ जंपिय कति जवन हु जवन अप्पन सीमा आई ॥ वंश० १६११ । २६
७ ढूंढ तहां ढूंढत रहे प्रानिन पालन प्रान ॥ वंश० १००६ । २
८ बहिया दहिया जुड़े ॥ वंश० १२६४ । २६
९ कटि बाहुल बाहुल बाहु कटैं ॥ वंश० ३१५३ । १७
१० सुरन सुरन प्रतिहत समुझि, परबल परबल जाचि ।
सबन सबन गिरि तजि भजन, मनन मनन लिय मानि ॥
११ द्रुघन द्रुघन वितरन दिय पत्तशाल ॥ वंश० ४०२ । १२
१२ मुरकी अनी मुरकी अनीर रही अनीर विचारिकैं ॥

श्लेष—

वंशभास्कर में श्लेष रूप का उपयोग बहुत कम हुआ है। ढूंढने पर भी कठिनाई से इसके दर्शन होते हैं। कतिपय उदाहरण देखिये—

१ मग रक्खन व्यय मेटि नृपन जलकरि तोरे मग ॥ वंश० ११६३ । १
२ बच्यो दिनेश गुप्ति एस लेस लेस बैरसों ॥ वंश० १८६२ । ५४
३ मानव मतगज मलीदमतैं मोहेजे ॥ वंश० १६६६ । ४१
४ अनुचितस्य अपलभ्य इक प्रिय तुम द्विमुख प्रसिद्ध ॥ वंश० १७३५ । ९२

पुनरुक्ति प्रकाश—

१ खिरि खिरि गिरे··· ॥ वंश० १०६२ । १७६
२ धंधा हसी सु तब भट्ट भट्ट··· ॥ वंश० १०६६ । २११
३ गय सिर इम भजि भजि··· ॥ वंश० १०७६ । २६५
४ ······इक इक उकप क थाम··· ॥ वंश० ११०४ । ८
५ तिम तिम कायन तुट्टि भमे सुरलोक बीर वर ॥ वंश० ११०८ । २६

६ नृप पाये निज निज निलय ।। वंश० १११८ । ३०

७ रवखन नव नव रारि ।। वंश० ११३६ । ३७

८ ......तब सो भजि भजि त्रास ।। वंश० ११४१ । ४६

९ पुनि पुनि हृदय कढ्यो सुदयो पुनि पुनि ताको पल ।।

—वंश० ११४७ । ७

अर्थालंकार—

अर्थालंकारों की दृष्टि से भी वंशभास्कर नितान्त ही समृद्ध ग्रंथ है। अंगुलियों पर गिने जाने योग्य कुछ ही अलंकार ऐसे हैं जिनका उपयोग वंशभास्कर में नहीं हुआ है। अन्यथा शेष सभी अलंकारों के उदाहरण इसमें मिल जाते हैं। कवि के विशेष प्रिय अर्थालंकार हैं— उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति और लोकोक्ति।[1]

उपमा—

"चित्रमीमांसाकार ने 'उपमा' को अलंकारों का बीज माना है— *उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालंकार* बीजभूतेति- (रूय्यक)। वंशभास्करकार ने भी इसे इसी रूप में ग्रहण करके प्रयुक्त किया है। काव्य, रूढ़, शास्त्राश्रित, लौकिक आदि सभी प्रकार के उपमानों में कवि ने विशेष रुचि दिखलाई है। शास्त्राश्रित उपमान प्रायः दुरूह हो गये हैं। यथा—

१ ज्यों चुम्बक सान्निध्य सन, चेष्टित ह्वै जड़ लोह।
अधिष्ठान बिच प्रकृति इम, सुवन लगी संदोह।। ८
चेष्टित भय मुनि चंवकहिं, घिसि जिम अनहिं कृसानु।
त्यों महान हुव प्रकृति सन, प्रज्ञा रूप प्रमानु।। ९
जिहिं कृसानु सन होत जिम, ज्वाल ताप आलोक।
यों महान सन त्रिविध हुव, अहंकार जग थोक।। वंश० १६६ । १०

२ बर दैवोंहि बुरो सदा, *जानि दुष्टतम जाति*।
ज्यों प्रातहिं कपि कानड़ा, अरु भैरव अधराति।। वंश० २६५ । ४४

३ राजा सुधन्वा कुलीर के, रवि की रजनी जिम वृद्धि पाय।।

—वंश० ५२६ । १

लोकाश्रित उपमानों में कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा निखर कर सामने आई है। जनजीवन से सबद्ध अप्रस्तुत से उसने प्रस्तुत की ऐसी सटीक संगति बिठलाई है कि *प्रस्तुत-सादृश्य, साधर्म्य, वर्णसाम्य आदि सभी-अप्रस्तुत में मूर्त हो उठे हैं। यथा —*

... ...

भद्र बारन मत्थ फट्टि गिरत मुत्तिय ज्यों पयोधन।
यों गदा सिरपैं बजे जिम लोहबारन के अयोघन।। २७

१—टीकाकार-मध्य-पीठिका पृ० २

गोन को प्रति चलिय गिरद्धन जिम गहुन की तचारिय ।
लुत्थियँ लगि सुरिय क्यों बनिजार मोकन टंड डारिय ॥
भड़के झर की प्रभा चहुवान के सर की भई जब ।
चाहु में घर की मधुकर की चली करषी चली तब ॥ वंश० ७६१ । २८

हाथियों के माथों पर मार करती हुई गदा यों बजी जैसे लोहार के एरण पर घन (बड़ा हथोड़ा) बजता है । गज-मस्तकों से गज-मुक्ता ऐसे बरसने लगे जैसे बादल से जल-कण बरसते हैं । गोन चहुवान के करारे वार से म्लेच्छ वीरों की लाशों की ऐसी थप्पियां लग गई जैसे बनजारों ने गुणातियों के टंड लगाये हों । भाद्रमास की झड़ी के समान जब चहुवाण के बाणों की झड़ी लग गई तो मधुकर की सेना घर की चाहना करके पीछे लौट पड़ी ।

यहां हाथियों के माथों और गदा के लिए लाए गए अप्रस्तुत एरण और घण में न केवल सादृश्य और साधर्म्य है अपितु वर्ण साम्य भी आ गया है । कवि का कौशल देखिये कि उसने 'बजे' शब्द से उपमेय और उपमान के ध्वनि-साम्य तक का बोध करा दिया है । रणांगण में पटी लाशों के लिए भी बनजारों की गुणातियों के टंड से अधिक सटीक उपमान और क्या हो सकता है ? चहुवाण की तीव्र-बाण-वर्षा को भादों की झड़ी बतलाकर शत्रु सेना को घर की ओर उन्मुख दिखा देने में कवि का अपूर्व कौशल द्रष्टव्य है । साधारण-सी बात है कि जब भादों की झड़ी लगती है तो बाहर निकले हुए लोग घर की ओर ही रुख करते हैं। उपमान योजना में इस प्रकार का कारण-कार्य सम्बन्ध सूर्यमल्ल की अपनी विशिष्टता है ।

युद्ध वर्णनों के अतिरिक्त भी अन्य-प्रसंगों में कवि ने कहीं कहीं बड़ी सुन्दर उपमाएं जड़ी हैं ।

किन्न गमन चल कोस प्रजा लग्गिय पहुंचावन ।
बारि गहिर गुन बद्ध नैंक छोरत जिम नावन ॥
दसरथ नरेस करतैं बिछुटि किय तथहि ठहरन कहैं ।
अखतूल-रज्जु साकेत मन रामचंद्र सगहि रहैं ॥

—वंश० ८१३ । १८

वनगमनोन्मुख राम को प्रजा चार कोस तक पहुंचाने के लिए गई—जैसे गहरे जल में स्थित रज्जु-बद्ध नौका किंचित् ढील पाकर अपने स्थान पर नहीं ठहरती अर्थात् आगे बढ़ जाती है—वैसे ही राम के निर्वासन के फलस्वरूप राजा दशरथ के हाथों से छुटी हुई प्रजा अयोध्या में भला क्यों ठहर सकती—साथ ही रूपक की छटा भी देखिये कि स्नेह के रेशमी धागों में बंधा साकेत का मन राम के साथ ही रहता है ।

सूर्यमल्ल ने स्थान-स्थान पर सूत्रात्मक शैली में ऐसे अर्थगुण-सम्पन्न उपमानों की योजना की है कि उनमें कवि का अभीष्ट भाव मुंह से बोलता हुआ प्रतीत होता है । तेग की त्वरा प्रदर्शित करने के लिए देखिये कैसा प्रभावशाली चित्र खड़ा किया गया है—

कुंभ ज्यों गज कुंभ उतरि जात तेगन की तराकन ।
... ... ॥ वंश० ७६० । २४

तलवार से हाथियों के कुम्भस्थल यों उतार लिए जाते हैं जैसे कुम्भकार तन्तु द्वारा चाक से घड़े उतार लेता है—

भरि दंडज्यों खल कंद नैं ध्वजदंड मबर यों खुले ।
... ... ॥ वंश० ४१७ । ८

दंड मुगतकर जैसे चोर जेल से छूटते हैं वैसे ही ध्वज-दण्डों से पताकाएं छूटीं—

कुलटा कनिनी विधि तरल बाजि ।
उद्धत मलगि आगागि आजि ॥ वंश० ३२४० । ६०

जैसे कुलटा नारियों की यौवनोन्मत्त पुत्तलिकाएं आगे से आगे चलती रहती हैं वैसे ही मदमत्त घोड़े मलफ भर कर आगे ही बढ़ते रहते हैं।

साधर्म्य और सादृश्य सपादन के लिए भी कवि ने नितान्त ही प्रभाव-शाली उपमानों की रचना की है—

छिरको दयें तृनकूर्च ज्यों जिनके तनूरुह उब्भरैं।
—वंश० ४१८ । ६४

पानी छिड़कने से जैसे सूखी घास के तृण फूलते हैं वैसे ही उत्साह-मद से दैत्यों के रोम उभरने लगे—

... ...
पवमानतैं तरु ताल सन्निभ धूम्रलध्वज भू परयो ॥
—वंश० ४२६ । ६०

प्रभजन प्रवाह से जैसे ताड़ का वृक्ष गिरता है वैसे ही धूम्रध्वज गिरा ।

मुलक लूटि मेवाड़ कियो फग्गन-तरु की भांति ।
... ... ॥ वंश० १२०० । ३३

मेवाड़ को लूट कर फाल्गुन मास के वृक्ष की तरह कर दिया ।

उपमा के ऐसे ही और भी उदाहरण द्रष्टव्य हैं—वंश० ४२३ । ३३; ७६० । २५-२७; ८७८ । ६३; ११५२ । १६; ११६८ । १२०; ११८० । १७६; ३११६ । २२; २६३ । ३३; ४१६ । ३; ४१६ । ३६; ४१७ । ७-८; ४१७ । १०; ४१८ । १२-१३ ।

मालोपमा के भी कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१ सरदकाल जिम सलभ प्रचुर तप प्रत पिपीलक ।
पावस मसकन प्रसर मुदिर सीकर उम्भीलक ॥

षट्पद पद्म प्रसार अतुल रजकन अवनीतल ।
फबत दाव फुल्लिग विपिन तरु तरुन पुल्ल फल ॥
अगनित समूह कपि रिच्छ इम बढ़त जंग इच्छन बलिय ।
रघुबंस तिलक रावन तरफ कटक कूंच दरकूंच किय ॥

—वंश० ८८४ । ११

२ रन जिमं सूरन कौं मुदिर मयूरनकौं,
बिधु बिससूचनकौं कंज को कठोर घाम ।
बल्लिको बयारि बिटपावलिकौं बारि सह-
कार ज्यौं सफल पथिकन के पृथुल काम ॥
रोगी को सुधा ज्यौं काल भोगिकौं रुचिर राग,
रति रमनीनकौं धनीनकौं कला के ग्राम ।
सुभटकौं साधुकौं सुकविकौं सभाकौं जैसें
पंडितकौं पटुकौं प्रजाकौं रावराजाराम ॥ वंश० ४६ । १४

३ माता जिम सुत मरण जाणि गुरु मरण छात्र जिम ।
भ्रात मरण जिम भ्रात तात निज मरण पुत्र तिम ॥
मग्गण बित्तद मरण मरण सरणद सरणागत ।
कृषिकार मुदिर निष्फल कढ़त माता जिम सुत लखि मुवो ।
पड़तो नरेस बिक्रम पुहवि हाहा जग रोवत हुवो ॥

—वंश० १२६० । १

रूपक—

सांगरूपक सूर्यमल्ल का सिद्ध अलंकार है। युद्ध-रूपकों का जो बहुविध ठाठ उसने रचा है, मात्र उसी के आधार पर उसे वीर रसावतार कहा जा सकता है।

सूर्यमल्ल के इस युद्ध-देश—वंशभास्कर में कहीं युद्ध-त्रिवेणी प्रवाहित है तो कहीं युद्ध की वसन्तश्री में रण-खेती लहलहा रही है, कहीं समर-मेघों की रिमझिम में युद्ध-फाग चल रहे हैं तो कहीं रण-रात्रि में उत्साह-उडुगन वीररस का आलोक बिखेर रहे हैं, कहीं विग्रह-वाटिकाएं महक रही हैं तो कहीं युद्ध की दावाग्नि धधक रही है, कहीं युद्ध की दीपावली सजी है तो कहीं राहु-ग्रस्त हो रहे हैं, तात्पर्य यह कि इसमें युद्ध ही युद्ध है, किन्तु अपनी विविध-रूपा भंगिमाओं के साथ।

सूर्यमल्ल की रूपक रचना की यह अनन्य विशेषता है कि युद्ध के एक ही कोटि के समान-धर्मी दो रूपक एक दूसरे से नहीं मिलते। इसमें कहीं चतुरंगुल युद्ध चौर है तो कहीं अष्टगुण युद्ध चौर। कहीं उत्तररात् युद्ध है तो कहीं युद्ध। कहीं विशिष्टता भिन्न-भिन्न रूपकों पर आरोपित युद्ध के दो भेद रूपकों में द्रष्टव्य है—

क—कटि खग्ग कलाप र दंत कढ़ैं, कटि कुम्भ मढ़त्तिन मेद्द फुरैं।
तरिता तनु तेग तहां तरकैं, घन गज्ज मतंगज गज्ज घुरैं ॥
बक पंतिय दंतिय दंत बढ़े, चहुं मोर अचानक अम्म चढ़े।
कटिक्कैं उड़ि चातक घंट कढ़े, प्रति पक्खर भेक अनेक पढ़े ॥ ६
यह भांति सुभाकर मैं बरखा बढि माधव मास अमा बिपुर्‌यो।
लखि नायक सूरन हूरन हूरन मगन अंग अंगन पुर्‌यो ॥
इत सूरन चंदन अस्त्र चढ़े, रसकैं इत हूरन राग रचे।
उमहे इत सिंधुन की ध्वनितैं समुहे उत सिंजित सद्द मचे ॥

—वंश. ३११५० । १०

ख—इतै उत पक्खन घंटन घोर, इतै उत अग्गि गिलग्गत सोर।
इतै उत बद्दल के अनुसार इतै उत लोहित बुद्बुद धार ॥ १४१
इतै उत चाप सु बासव चाप, इतै उत गज्ज सु गज्ज प्रमाप।
इतैं उत सीकर गोलिन गोट, इतै उत दंतिन दंत बकोट ॥ १४२
इतै उत ओज इरम्मद धारि, इतैं उत त्यौं तड़िता तरवारि।
इतै उत व्है लहरू हरवल्ल, इतैं उत घुग्घुर दद्दुर गल्ल ॥ १४३
इतैं उत बीर सु उत्तर बात, इतैं उत भूर मयूर सुहात।
इतैं उत चातक घंटनमालि, इतैं उत पत्थि फिरै कर कालि ॥ १४४
इतैं उत कातर भालि उदास, इतैं उत हूर कृपीबल आस।
इतै उत ओगन व्है खिनगिन, इतै उत स्यामघटा कटदीन ॥ १४५
रच्यो नृप यों रन पावस रूप, धपावत सत्रुनतें निज धूप।
लखो ढिग आय नारायणदास, प्रहारन भार रची चहुपास ॥

—वंश० ३७३८ । १४६

युद्ध की बीभत्स लीलाओं को माधवी सौंदर्य से युक्त कर चित्रित करने का यह अभूत-पूर्व प्रयास वंशभास्कर में मिलता है। युद्ध की वासन्ती छटा का तनिक दर्शन कीजिये—

उडत तरत्तर अमिल सीस जित तित असि संभ्रम।
सुमन जिनहु निज समय सुमन चटकत गुलाब सम ॥
कर पय पल्लव किरन वदन सोहिन किसलय तति।
गुटिका अलिगन गुंजि कुसुम लोचन बिकसे कति ॥
गज छिन्नभिन्न मानहु गिरि न सुम किंसुम चल बात सह।
वैतन रसाल पिक घट करि किय माधव माधव कलह ॥

—वंश० २१६६ । ४४

जिधर भी तलवार चलती है, वीरों के मस्तक तड़ातड़ गिरते हैं। इस युद्ध-वेला में

श्रेष्ठमना वीरों के मन गुलाब की भांति खिल उठते हैं। युद्ध-रक्त के प्रवाह में कट—कट कर गिरी हुई हाथ पैर की अंगुलियां किसलय दल के समान सुशोभित हो रही हैं। शूरमाओं के विकसित नेत्र-कुसुम पर बंदूक की गोलियां अलि अवलियों की भांति गुंजार कर रही हैं। शस्त्राघात से हाथियों के अंग खंड-खंड होकर यों बिखर रहे हैं जैसे पर्वत-स्थित किंशुक कुसुम वायु-वेग में इधर-उधर उड़ रहे हों। इस प्रकार माधवसिंह ने छत्रदण्डों को आम्रवृक्ष, और घटिकाओं को कोयल की कूक में परिवर्तित कर युद्ध-संयोजना को वसंतश्री से विभूषित कर दिया है। समर-संसार में ऋतुराज वसन्त की आभा-शोभा को उंडेलने का कवि ने यहां कितना सफल, समर्थ और सुष्ठु प्रयोग किया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत की कैसी मनोहारी संगति स्थापित की गई है। वीरों के उत्साह—विस्फारित नेत्र-पुष्पों पर बंदूक की गोलियों का भ्रमर बनाकर गुंजारित कर देना सूर्यमल्ल की-सी युग-प्रवर्तक प्रतिभा का काम है। विग्रह-विदग्ध इस कवि ने अपनी समर-सृष्टि में रागरंग के जो अभिनव सरपर्श दिये हैं वे वस्तुतः अभिनन्दनीय हैं।

युद्ध का एक कृषि-रूपक भी देखिये—

> *रान क सिदान ए कुटंबी भाग सीरी उभं।*
> सीसोदे र हाडे हठी हालिक बड़े विधान ॥
>
> *हेति हल रासी बाजी, बैलन गरिष्ट गदा।*
> कोटि सन कोनें सिर, ढैलन कचरघान ॥
>
> *लगे सेत खेत नर खेत प्रेत टीडी टार।*
> बोइ रजपूती बीज सोनित सलिल थान ॥
>
> *पीत खार कुल्यासन सींचि निपजाये नीकें।*
> ... ... ॥
>
> —वंश० २०६३ । ३४

बूंदीश और मेवाड़ धिपति रण खेती के सांझीदार हैं। हाड़े और सिसोदिये हाली हैं। शस्त्र हैं सो ही हल हैं और अश्व-बैल हैं। बड़ी गदा से ढेले रूपी मस्तक फोड़े जाते हैं। युद्ध-क्षेत्र ही खेत है जिसमें मनुष्य रूपी लागत भरने और प्रेत रूपी टिड्डियों को तोड़ने के बाद बोये गये रजपूती के बीज को पीली खाल रूपी नहर से निकाले गये रक्त जल से सींच कर उत्तमता से अंकुरित किया जाता है।

यहां उपमेय युद्ध में उपमान कृषि का आरोप है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के प्रायः सभी अवयवों का यहां समाहार हो गया है।

युद्ध के और भी रूपक द्रष्टव्य हैं। यथा—

दीपमालिका रूपक	वंश०	११३६ । ४४
यज्ञ-रूपक	,,	२८६८ । ४२
फाग-रूपक	,,	२१८६ । ७; ३१७४ । १४६-१४८
गरड़-रूपक	,,	२०७३ । ३६ । १-४

चौपड़-रूपक	,,	३१२५ । ४६
नक्षत्र-रूपक	,,	३१७० । १२६-१३६
निशा-रूपक	,,	३१७२ । १३६-१४१
त्रिवेणी-रूपक	,,	३३६५ । ४६-५१
कृषि-रूपक	,,	२०६३ । ३४
सरित-रूपक	,,	३४२५-२६ । ४७-५१
दावाग्नि-रूपक	,,	३४१६-२० । ३३-३७
वाटिका-रूपक	,,	३५१२ । ८२-८३

उत्प्रेक्षा—

वंशभास्कर में उत्प्रेक्षाएं सर्वत्र भरी पड़ी हैं। युद्ध-वर्णनों में तो इनकी भरमार है। परम्परा-प्रसूत उपमानों के साथ अनेकानेक नवीन और अनोखे उपमानों की योजना से वर्णन नितान्त ही प्रभावशाली एवं भावाभिव्यंजन में समर्थ बन गये हैं।

वर्णन-विदर्त में उत्प्रेक्षाओं का ठाठ लगाकर कवि वर्ण्य-विषय के अंग-प्रत्यंग का ऐसा सर्वांगपूर्ण और सूक्ष्म अंकन करता है कि आखों में एक चित्र-सा झूम जाता है। यथा—

नचैं निकसे हियमैं कढि नैन, सरोज कि सोन सिलीमुख सैन।
कढे फटि बुक्कन टुक्क विकास, मनों सुभ किंसुक माधव मास।।

—वंश० ३१६० । ७६

उडैं सिर भवर पच्छिन पेलि, करैं जनु कालिय कंदुक केलि।
उछट्टहिं ढालन मैं कढि अंत, भुजंग दिवारन मैं कि भ्रमंत।। ७७
दरैं सिर अद्ध फटयों दृहिं रारि, दया जनु जुग्गिनि खप्पर ढारि।
सिखा कटि सूरन की फहरात, किधौं जयकेतु प्रभंजन पात।। ७८
फिरैं पटि टोपनतैं करवाल, फटा बिनु लेन भुजंग कि काल।
सुहावत के झरि नक्क समून, फबैं इस मास मनों तिलफूल।। ७९
लगं असि घोठ झरैं कटि लाल, पके जनु बिंब कि पुंज प्रवाल।
उडैं कटि दंतन घोघ अखंड, खिरैं कटि हीरनके जिम खंड।। ८०
फिरैं सह मुत्ति प्रहारन कान, बनैं सह मुत्ति सु सुत्ति विधान।
जहां झरि हृत्थ गिरैं प्रति जुद्ध, किधौं फन पंचकके अहि क्रुद्ध।। ८१
तिरैं बहु खेटक सोनित ताल, मनों कि सरस्वति कच्छप माल।
झुकैं बहु सूर झटक्कन झार, गिरैं जिम आसव मत्त गमार।।

—वंश० ३१६१ । ८२

प्राणों पर खेलते हुए जूझारों के बाहर निकले हुए हिये पर पड़े नैत्र ऐसे लगते हैं मानों अरुण-कमल पर भ्रमर शयन कर रहे हों। फटे हुए गुर्दों के टुकड़े यों लगते हैं जैसे वैशाख

मास में ढाक के पुष्प खिले हों। आकाश में, पक्षियों को परे कर, उड़ते हुए मस्तक ऐसे लगते हैं जैसे कालिका कन्दुक-क्रीड़ा कर रही हो। ढालों पर उछल उछल कर गिरती हुई आँतें ऐसी लगती हैं मानो पिटारों में सर्प हों। इस युद्ध में आधा-आधा फटा सिर यों लुढ़कता है मानों योगिनी का खप्पर लुढ़क रहा है। वीरों की शिखाएं हवा में यों फहराती हैं जैसे विजयवैजयन्तियां लहरा रही हों। योद्धाओं के टोपों पर की गई मार से टूक-टूक होकर उछलती हुई तलवारें ऐसी लगती हैं मानों फण हीन सर्प उछल रहे हों। समूल कटी हुई नासिका ऐसी दीखती है मानों आश्विन मास में तिलफूल खिले हों। तलवार की धार से कट कर गिरते हुए ओष्ठ ऐसे लगते हैं मानों बिम्बफल और मूंगे झरते हों (यहां ओष्ठों के आंतरिक रक्ताभ भाग को बिम्बफल और बाह्य श्यामल भाग को मूंगे से उपमित किया गया है—क्योंकि बिम्बफल लाल और मूंगा काला होता है)। उखड़े हुए असंहित दांत यों उड़ते हैं मानो हीरक खंड खिरते हों। कट कट कर गिरते हुए वीरों के मुक्ता-विभूषित कान मानों मोती युक्त सीपी के समान हैं। प्रचंड युद्ध में शस्त्राघात से विलग हुए वीरों के हाथ पांचों अंगुलियों सहित यों उछलते हैं जैसे पंच फणाधरी सर्प क्रुद्ध होकर फण पटकता है। रक्त-ताल में ढालें यों तैरती हैं मानों सरस्वती के जल में कछुए तैर रहे हों। तलवार के झपाटों से दो टूक होकर जूझार यों गिरते हैं जैसे अत्यधिक मद्य-पान से गंवार (ग्रामीण) गिरते हैं।

श्री कृष्ण की रास लीला के अन्तर्गत रति-प्रसंगों में भी उत्प्रेक्षा के नितांत ही रमणीय स्थल आये हैं। युद्ध-विभीषिका के चित्रण से हट कर जैसे यहां कवि का कुसुम-कोमल हृदय सरल-सरस वाणी में फूट पड़ा है—

> परिवर्तके श्रम काहु कन्हर कंध बाहु मेला दई।
> अवलम्ब के हित बल्लरी, अनुकल्प पादपपैं गई॥ १८
> कटि नम्र अग त्रिभंग को करकज काहुक चुंबयो।
> कुचभार सक बिलंक टुट्टन जानि आश्रय कै लयो॥
>
> —वंश० ५ २९
>
> बढ़ोज चूचुकनि उद्दै मनिहार हारन बल्लरी।
> मनु चक्रवाकन चंचुनैं हुव दूर संकल मञ्जरी॥ वंश० ५७२ । ३०

युवा गोपिकाओं के उभरे हुए वक्षों पर आन्दोलित मणि-मालाओं को चक्रवाक की चोंच में फरफराती हुई शैवल मञ्जरी से उपमित करने का कवि ने जो अभिनव प्रयास किया है, संभवतः वहां तक हिन्दी के किसी सिद्ध-हस्त शृंगार-कवि की भी प्रतिभा नहीं पहुंच पाई है।

उत्प्रेक्षाओं की अनुपम छटा से युक्त और उदाहरण प्रस्तुत हैं—

> कटक बिदारि प्रविसत कटार, बिल बिच पन्नग कि भव्यद्वार।
> खबर कढ़ि पंजर पार बात, सोनित सम्योमु मनि धरि सुहात॥ ८६

मानहु गवाक्ष रज दिन दिखात, कर पटु क्रिया कि जावक चुवात।
दिपि गुरज मत्थ पारत दरार, कीर को तरबूजन मुट्ठिमार ॥ ८७

पल असिन होत गज कुंभ चीर, जगदीस भत्त जुत कि करीर।
सोनित तिरात धमनिन समूह, जल भरत जानि अल गद्दं जूह ॥ ८८

सरधा सम छुट्टत बिसिख बात, मधु जाल छत्तमरथन बनात।
खिंचिजात सरासन करन कानि, जमराज लपन जमुहात जानि ॥ ८९

मिलिजात कोटि लस्तक मचक्कि, सुकुमार नारि लक कि लचक्कि।
तुण्णीर तुट्टि उड्डत प्रमाप, केकीन केकि चन्द्रक कलाप ॥

—वंश० ३२४६ । ९०

उत्प्रेक्षा के और भी सुन्दर स्थल हैं—यथा० ३२४७ । ९१-९४; ४२६ । ४६-४८; ७२६ । २१; १४४६ । ६; १४५१ । ३०; १४५४ । ३४; ३४०४ । २४; २६५० । १२; ३११ । १७; ३१६० । ६४; ३१६० । ७६; ३२४५ । ७९; ३२४५ । ८४; ३२४६ । ४५; ४२५ । ४२।

प्रतिशयोक्ति—

वीरोत्साह, युद्ध-विध्वंस एवं सैन्य-संभार की अतिशयता प्रकट करने के लिए वंशभास्कर में प्रतिशयोक्ति का भरपूर प्रयोग हुआ है। वीररसात्मक काव्य में वैसे भी अतिशयोक्ति अपरिहार्य है। सूर्यमल्ल ने अपने काव्य में जो प्रतिरंजनाएं की है, वे परम्परा-प्रसूत भी हैं और मौलिक भी।

युद्धाभियानों से प्रकंपित होकर पृथ्वी का दाड़िमवत् फट जाना, शंकर की समाधि का भंग होना, शेष-वराह का कसमसाना और उससे ब्रह्माण्ड का दोलायमान होना साधारण-सी बात है—

> धुज्जिय दरारि भूतल धमंकि।
> संकर समाधि छुट्टि असुर संकि॥
>
> डगमगिय अद्रि ब्रह्माण्ड डोल।
> कसमसि भुजंग कमठेस कोल॥ वंश० ५८१। ५५

अपनी उर्वर-कल्पना शक्ति एवं नवीन उद्भावना सामर्थ्य द्वारा कवि ने परम्परागत उपमानों में भी चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

> मिलि तहं तीन हजारन अग्गि, बड़ी अकलंत दुहूं दिस दग्गि।
> भयो नभ धूमित धुंधरि मान, लगे दृग मीचन देव बिमान॥ ४
>
> ... ...
>
> भुजगम के सिर नच्चत भुम्मि, धरै फनतेकन घायन घुम्मि।
> नचे जिम कन्हर कालिय कध, बनें इम छोनिय तड्डव बंध॥

—वंश० २६७२। ६

> भयो रवि उगत क्यों तम सान, किते सब मुक्त अग्गिहु काम
>
> —वंश०

> चहुंदिस मंड चढ्यो रज पूर, पर्यो रजताचल को उडिदूर।
> जटा अट जूटहु धूसरि जान, भगे कुव कंजन पुंज समान ॥ ६१
> भज्यो ससि भीरुक भाल छिछोरि, रहे रज सेत सुधा सम बोरि।
> चकम सकम भये इम ईस, समाज न साद भयो भर छीस ॥
>
> —वंश० २६७३

तीन हजार तोपें एक साथ दनदना उठी। दोनों (पक्ष-प्रतिपक्ष) ओर अग्नि-शिखाएं मिलने लगीं, नभ धूमायित होकर धुंधला हो गया—

युद्ध-प्रधान काव्यों में हम प्रायः देखते आए हैं कि आकाश में धूमाच्छा सूर्य अदृश्य हो गया है, यहां भी लगभग यही योजना है। परन्तु इस नवीन व साथ कि आकाशचारी विमानों में बैठे हुए देवताओं की आंखों में भी धुंआ भरने उनकी आंखें मुंदने लगी हैं। इसी प्रकार शेष की कसमसाहट एवं तद्जन्य पृथ्वी एक आम बात है। किंतु सूर्यमल्ल की उद्भावना का कमाल देखिये कि भाराक्रांत को एक फण से दूसरे फण पर साधने के प्रयास में रत है। शेष के अनुभावों कितना प्रभावशाली चित्रण बन पड़ा है और फिर शेष-फण पर आन्दोलित धरा क नाग के कंधे पर नर्तित कृष्ण से उपमित करके कवि ने कमाल ही कर दिया है। मेघाच्छादित तो कोई भी बता सकता है किंतु यह कहना कि धूप में डूबा रवि सा दीखने लगा, साधारण कवि का काम नहीं है।

'रज-राशि से चारों दिशाएं भर गई हैं। कैलाश भी धूल से ढंक गया। ि कुवलयकंज-सी हो गई। भयभीत चन्द्र शिवभाल को छोड़कर भाग खड़ा हुआ। यों हाकर शिव सकमल हो गये। शिव-समाज में भय व्याप्त हो गया।'

यह चित्रण खेह से परिपूर्ण सृष्टि की अनुभूति कराने में जितना समर्थ है उ कलात्मक और प्रभविष्णु भी।

अतिशयोक्ति का एक और सुंदर स्थल दशरथ-नन्दन राम के सैन्याभियान-प्र आया है—

> उलटि सेस सिर सहँस सहँस दुव बढि चर पट्टिय।
> दब्बत दंतुलि दारि पुहवि सूकर कनपट्टिय ॥
> कमठ पिट्ठि कंहन्निय घसत किरि पयचउ मूसल।
> धवनि दरारन उमंगि जंत्र जिम कढ़त गर्भजल ॥
> मृतगति गिरंत दिग्गज विमद पलट देत दुस्सहपवन।
> ... ... ॥ वंश० ८८२।

प्रकारान्तर से ऐसा ही वर्णन हुआ है—जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणों में, किंतु
ग्रथ, श्रम-क्लान्त शेष दो सहस्र जिव्हाएं बाहर निकाल कर अपना वक्ष चाट
ह भार से वराह की दंतुलि दब गई है और उसकी कनपट्टियां फटने लगी हैं।
पीठ भार से दब कर ऊखल के समान गहरी हो गई है जिसमें वराह के पग
गति धस गये हैं। धरा में दरारें पड़ गई हैं और उनमें से फव्वारों की भांति जल
है—पवन असह्य वेग से पछाड़ें ले रहा है—और दिशाओं के हाथी प्राणरहित
रहे हैं।

प्रयोक्ति के अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण हैं—वंश० ८८१ । १४; ८८३ । १८;
११; ३१७० । १२७; ३१७६ । १७४; ३२८६ । १०; ५२३ । १८; ५२४ ।

—

व्यक्ति को सहज संप्रेष्य बनाने के उद्देश्य से कविगण लोकोक्ति का आश्रय लेते
सूर्यमल्ल लोकजीवन का सफल चितेरा है (द्र० नगर-वर्णन)। उसने उपमा,
प्रेक्षा आदि सभी प्रमुख अलंकारों में अधिकतर लोकजीवन सबद्ध उपमानों का ही
है। वंशभास्कर में आये लोकोक्तियों के कतिपय विशिष्ट उदाहरण देखिये—

१ मूरिमायु भजतँहु सिंह डरिहै न डराये ।
... ... ॥ वंश० १३६८ । १२

२ गहिली सिर जिम घट गये हि पच्छे मन पाये ।
कर सहगामिनी नालिकेर बलि न दृग बताये ॥
—वंश० १३६६ । १६

३ अन्नसग घुन घरट इम जिम इम पीसे जांहि ।
गंजहु तिहिं वग्घोर भिरि मरें मंडन माहिं ॥
—वंश० १८०० । २१

४ जोधपुर भूप जसवंत मुख धूरि भरि ।
... ... ॥ वं[illegible] ५ । २३

५ लहिकैं गदा गति घातके तुसकी [illegible]

६ सनि [illegible]

१६.

११:८ : १२

८ ... ...
करिबो पोरुष अवधि पुरुष पर, नियति अधीन फलहिं पावरतर ॥
—वंश० ११४८ । १७

९ कांपत सु विप्र मोष होय कब, उरग गयो र रही लेसा अब ।
फुनि र गुरकुल पास कुमायो, अब भावी सो सुधि आयो ॥
—वंश० ११३६ । ४०

१० उदय उमा सखि तिनहिं सुनाई, रक्खहु प्रभु न यहै निठुराई ।
प्रान जायँ बालहिं कैसे पय, सूकें खेत कहा घन संचय ॥
—वंश० ११६६ । ४६

११ दिन बहु तदीय अरि घोर दमि, तिवश पाय सिर दिव वसत ।
... ... ॥ वंश० ११७० । ७२

१२ ओलों अरि सिर देत ओर, अच्छी नहिं तोलों लूट और । २४
कपूरे पकराये वनिक बात, कैसी यह अति बलता बहात ॥
—वंश० १२११ । २१

अन्य अलंकार—

'अनन्ता हि वाग्विकल्पास्तत्प्रकाराएव चालंकाराः'
—आनन्दवर्धन

सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर में शताधिक अलंकारों का प्रयोग किया है, उन सबका विवेचन यहां संभव नहीं । अतएव प्रमुख अलंकारों का उदाहरण देकर ही संतोष करना पड़ रहा है ।

अनन्वय—

१ भानु चहुवाननको भानुसो उदय भो ॥ वंश० ४५ । २६

२ ल सागर तुलय ल सागर जेम, यहै रन या रन तुल्यहि एम ।
—वंश० ६८४ । ११०

३ गंगा सम गंगा कही, सु परम सति सुजान ।
भीसम सम कैसे कहौं, अनई अमर अमान ॥ वंश० २६१० । २४

प्रतीप—

१ सारदससीरी चन्द्रिकानूं आपरो छायारो करणहार ।
चोतरफ चाह जस चलायो ॥ वंश० १२१० । ८

२ ढुंढु घोर की अति घोर उत्सुक चक्र तोर गदा फिरै ।
तप पूरको छबि सूरकी दबि बूरकी बिजुरी फिरै ॥
... ... ॥ वंश० ४२६ । ४८

३ इम हिन्दुव मिच्छ्र चलें रनकों छबि निंदत भट्टधके घनकों।

—वंश० २९२१ । ८

असंगति —

१ इम भूप भैंचत भासुरी लखि भासुरी रन मोदयो।

—वंश० ४२१ । २५

२ *मुच्छैं मोहन सों मिलन, जिम जिम सूरन जाइ।*
इत मति सम्मद अच्छरिन, उत तिम तिम अधिकाइ ॥

—वंश० २६६६ । ७६

व्यतिरेक

१ हाहा रहैं वाके यह हाहा देसमें न राखें,
यह सतसत्र यह अगनित सत्रधाम।
प्राचीपति वह यह सकल दिसाको वह,
गोत्र बल बैरी यह पूरें बल गोत्र काम ॥
पार्गें सतकोटि जो लुटार्गें यह वाके लेख,
है कवि विरोध याके लेख दे कवित ग्राम।
लाजको जिहाज सुभकाज को इलाज सुर,
राजको सिरोमनि बिराजें रावराजाराम ॥

—वंश० ४८-४६ । ११

भ्रांतिमान —

१ मोरेंगे अहोरैं दोरैं बाबर के रहे भीर।
जोर जब जोरे बढि आनन बिछोरैं फेरू।
लाघव के छोरे धार तोरैं सिर मोरे भीर ॥

—वंश० २०५७ ।२५

संदेह —

१ एक भिड़्यो अघमल्लहु उद्धत मान, अपावत धारहिं दै बलिदान।
मथ्यो कुवलाश्व कि धुंधुहिं मारि, किधौं रन रावन राम हकारि ॥ ६१

२ किधौं बलपै बल वासव क्रुद्ध, जटासुरपैं कि वृकोदर युद्ध।
कु अस्व अमावत हत्य कृपान, दिखावत संकर को मति दान ॥

—वंश० ३१५६ । ६२

३ नबोढ़न कै उरतें उरोज, उदैगिरितें कि दिवाकर ओज।
कि अंजनि के उरतें हनुमान, पराशर नंदनतैं कि पुरान ॥ ४१ ॥
सुराधिपके करतैं जिम संब, कढ़े मनु गांडीवतें कि दसंब।
कहो कपिलानलतैं मनु साप, मयायन वामन तैं कि प्रताप ॥ ४२ ॥

बघी जनु नीरदतैं जलधार, महाबल माधवतैं मनु भार।
त्रिलोचनकै करतैं कि त्रिसूल, मरुत्तिथतैं कि अमूल ।। ४३
कढ़े इम दोउन खापन खग्ग, मिले प्रलयानल ज्है रन मग्ग।
उभै करि लाघव दाव दिखात, परस्पर देह प्रहार निपात ।।

—वंश० ३१५६ । ४४

अपह्नुति—

१ इन्द्रलोरैं एवज उर्वसी देख आयो।

—वंश० १३ ७० । ३७

२ कुंत थंभ मण्डप करी, सर जव विष्टर बाजि।
ब्याहे ब्याहन अप्प तो, ब्याहे न करन आजि ।।५३७ । ४६

उदाहरण—

१ उततैंहुं सम्मुह वे अदेवहु भट्टके घन ज्यों झुके।
पय देत ज्यों नट पट्टरो घरनो मधोबिल यों धुकें ।।
कुलटा निसामुख गेहतैं जिम तेग केकन पैं कढ़ी।
बनसी कि मीनन कितेकन मुच्छ मंनन पैं चढ़ी ।। १०
मनरैस साधन ज्यों सरासन जोविका करखैं किते।
बुधका बिपत्ति समान प्रासन विल्लिकैं परसैं किते ।।
तिय ज्यों हिडोरन चढ़ि घोरन सिंदिपासन पैं चढ़े।
भुज चोर चोरन जंग घोरन कुराज्य चोरन त्यों बढ़े ।। ११
इस भंत मुद्गर बढ़ सुम्भय गदा किते कर पैं रही।
चहि गारक कर ज्यों कितेकन पास प्रेरनकों गही ।।
मधुमेल छात किरात ज्यों सम मोठ मोहन के करैं।
जिम मैन तैं उमका कितेकन नैनतै बिरगी भरैं ।।

—वंश० ४११ । १२

अर्थान्तरन्यास—

१ ए गोकुल कुमंचहि पावत, अब चाहूं हमि हु जिमि जन पत।
इम तुम पै हु भार यह आयो, मनु एक करि हमहि गुमायो ।।

—वंश० ११६२ । ३७

२ कै जिम सरस सहाय बिन, कुछ नैं सिद्ध दिखाय।
कुवि [illegible] लहि हम भयो, रविसुत भुजन बाय ।।

—वंश० २०६६ । १

प्रौढ़ोक्ति—

१ रंभा अरु रंभा सरी महादेव मव काज।
बुल्ली बृन्दहि में बरयो आई तू धरि भाज ॥ १८
सुरपति तिन मह रारि सुनि, बालक दोउन बंधि।
भूपहि रक्ख्यो मित्र भनि, सघन नेह गुन संधि ॥

—वंश० १०१६। १६

२ उदित इते बिध अवकपार, निज चक्क प्रकासन।
कलि पिक्खन बलि कुतुक, बिघ्नसम बिघ्न बिनासन ॥

—वंश० १७०५। २८

व्याजस्तुति—

१ अदिन सयन तृनतल्प चरन बाहन सयन सुन।
छदन मृदुच्छद दल्लि असन सुमधान सताटुन ॥
परघर सर पायो पास पत्रावलि पावन।
उबट सास भावास पाथ जामिक रोपासन ॥
बिरहुनि भोग उपहार बिधि पसुन सभ्य सगम दियउ।
उपवनन मरध राघव तदिन कनक ढंग बिरतन कियउ ॥

— वंश० ८८६। १२

श्लेष—

१ पंकजता पाई बिन बिबुध बिबिधवृंद,
पाई चक्रताई भीति निगम बिचारेनें।
असुर अधारेनें महादुसह भीति पाई,
भीति पाई बिन तिन सुजस उचारेनें ॥
छोनपुर पाई हरदाई बरदाई कर—
दाई क्यों लुहाई पाई बास अमरावरेनें।
दंसुमालि अंसुन सुहागके उदय होत,
उदयता पाई भी उदासिनके सारेनें ॥ ७
कूटेते भटिन बनि बंसिनके मेसा भये,
मेसा भये भाटे बरि निगम निदानके।
रखादिक हरषीवक बंबिर रखाये छावे,
तानके बिहार देव मानवन न नके ॥
दौब बर फून दूब बदनरैं टूटे बके,
फूटे बके बाजि बद बाटके प्रताबके।

मानके निधान मद्दवान के कढ़त फुरै,
दाहिने पुरंदर के वाम धन बान के।

—वंश० ४००-४०१।८

२ कुल्लें कटारीन तें कट्टते वच्छ, रेजा मनों दोहरे दारिवे दच्छ।
वष्काटतें कैं दही मथनी मांहि, धारावती बानिकैं निकली नाहि॥

—वंश० ११५२।३८

परिसंख्या—

१ जंहं केतन बिच कंप चक्रवाकहि वियोग बस।
बंधन सर बाणोन रसत कैतव मृगयारस॥
नीच गामि जंहं नीर चलन मावन व्यभिचारी।
स्वान जाति पर छद्म बात स्वच्छन्द बिहारी॥
सरमान रहत उल्लघि श्रुति छिदत पटहि महि मूल दर।
इक तैय कर्म चित्तहि हरत राज्य राम नृप आचरन॥

—वंश० ४४।१

पदार्थावृत्ति दीपक—

१ चक्रता पाइ विप्र बिबुध विविधवृंद,
पाई चक्रताई नीठि निगम विचारेनें।
असुर अचारेनें महादुसह भीति पाई,
जोति पाई जित तित सुजस उजारेनें॥
सोनपुर पाई हरदाई जरदाई कर—
दाई क्यों लुकाई पाई त्रास अवतारेनें।
अंसुमालि अतुल चुहान के उदय होत,
उदयता पाई यो सदाशिव के सनें॥

—वंश० ४०१।७

दृष्टान्त—

१ जो न निरखि राकेश चमक खद्योत दिखावहि।
जो न गरुड गति देखि मसक मन उड़न चलावहि॥
जो न रुद्र बैतंड जानि सिंधुहिं बलधारहि।
लवण जो न हनुमंत मलय मसि चाल सम्हारहि॥
जो राम राव राजेन्द्र लखि इतर भूप राज्य न करै।
कुल रीति छाडि रविमल्ल कवि तो न रुद्र कविता करै॥

—वंश० ८७।१

कारणमाला—

१ गहन मुच्छ चहुवान फांक दारिसमुव फट्टहिं ।
भुव फट्टन भवि भार भसत बितलादिउलट्टहिं ॥
भतल भादि उलटंत थान कच्छप भहि छोरहिं ।
थान तजत पाताल बारि उच्छलि जग बोरहिं ॥
जल तल उफान बुड्डत जगत मग्गहिं लोक प्रपंच भुव ।
प्रकटहिं कटाह भग्गन प्रलय मगहि मुच्छ मुर्वासिह सुव ॥

—वंश० ३४०४।२४

विकल्प

१ ज्यों चुंबक सामीप्य सन, चेष्टित व्है जड लोह।
अधिष्ठान बिच प्रकृति इम, सुचत लगी संदोह ॥

—वंश० १२६।८

उत्तर—

१ कौन समुद्र पवित्र किय, कौन कुमुद गुन गौर।
अह सु'मको सिसुमार अरि, कौन सुदिष्ट चकोर ॥ १२
कर्कोटक सुमनाक हयो, उदधि प्रयाह उदार।
कुमुद इन्द्रपस्थक प्रकृति, भोगवति सिसुमार ॥ १३
मम तय भवित प्रसन्न मुड, यह सूचत किय आज ।
बनिहै तोर चकोर विघु, राज चतुर्भुज राज ॥

—वंश० ५१०।१४

अध्याय ६

वंशभास्कर : छंद समीक्षा

छन्द : परिभाषा और महत्व—

यदि शब्द और अर्थ काव्य-पुरुष[1] का शरीर, रस आत्मा, ध्वनि प्राण एवं माधुर्यादि गुण हैं तो छंद निश्चित ही उसके चरण[2] हैं; जो उसे गतिशील बनाते हैं। काव्य-पुरुष की यह गति मात्रा अथवा वर्ण और यति-गति के नियमों से अनुशासित होती है। अतएव कहा जा सकता है कि 'मात्रा अथवा वर्ण और यति - गति के नियमों से आबद्ध पद रचना ही छंद है।'

छंद काव्य में रोचन,[3] आल्हादन,[4] दीप्ति[5] आदि गुणों का सचार कर उसे हमारे स्मृति - पटल पर आच्छादित[6] होने का सामर्थ्य प्रदान करता है। उसमें एक ऐसी आवेगमय लय - भंगिमा उत्पन्न कर देता है कि कवि की भाव - धारा हमारे मानव - कूलों मे तरंगा- यित होकर हमे सहज ही अपने साथ बहा ले जाती है। यही कारण है कि आदिकवि बाल्मीकि से लेकर आज के प्रयोगवादी कवियों तक छान्दसिक परम्परा—चाहे मुक्त - छंद के रूप में ही सही अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। कवि - मानस का भाव-बीज अपेक्षित भू - खण्ड और अनुकूल वातावरण में ही अंकुरित होकर पल्लवित-पुष्पित होता है। अतएव

१—राजशेखर-काव्य मीमांसा तृतीय अध्याय

२— छन्दः पादौ तु वेदस्यहस्तो कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१
शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥
—पाणिनीयशिक्षायाम।

३—छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्दः
—गैरोला— संस्कृत साहित्य पृ० १६० से उद्धृत।

४—छन्दयति आल्हादयति छन्द्यन्तेऽनेन वा छन्दः। वही पृ० १६०

५—चदि आल्हादने दीप्तौच्च पाणिनीय धातु पाठ्यादिगण
—डा० पु० शुक्ल-आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना पृ० ४ से उद्धृत

६—देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयी विद्यां प्राविशन् ते छंदोभिरच्छादयन्।
यदेभिरच्छादयं स्तंच्छन्दसां छन्दस्त्वम्। —छान्दोग्य उपनिषद्। वही पृ० ४

कवि - प्रतिभा अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए विविध छंदों के रूप में अनुकूल ढांचे में मुजित करती रही है। फलतः आज हमारे सम्मुख छंदों की एक सृष्टि खड़ी है।

सूर्यमल्ल का छंद नैपुण्य—

सूर्यमल्ल का 'विशिष्ट वेदनीय वरविद्याविषयक' वंशभास्कर छंदों की दृष्टि से भी एक नितान्त सम्पन्न काव्य है। छंद - वैविध्य के दृष्टिकोण से यह समूचे हिन्दी-साहित्य में एक अनूठा ग्रंथ है। इसमें प्रयुक्त छंदों का पाट भी इसमें वर्णित विषयों की भांति बड़ा विस्तृत है। वैदिक और लौकिक छंदों में से कुछेक को छोड़ कर शेष सभी छंदों का वंशभास्कर में ठाट लगा हुआ है। पृथ्वीराज रासो जैसे विकसनशील महाकाव्य में जहां कुल इकहत्तर[1] (७१) प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है वहां अकेले सूर्यमल्ल ने १०२ प्रकार के छंद लिखे हैं—और वह भी इस आत्मविश्वास के साथ कि—

सबहि तराजु तुलित से श्रुटिमित अंतर नाहिं। ४३। ४४ और इस घोषणा के साथ रासोकार चंद को 'छंदन को अरितम'[2] की उपाधि भी दे दी गई है। वस्तुतः सूर्यमल्ल एक निष्णात छंदशास्त्री के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुआ है। वंशभास्कर जैसे 'महाचम्पू की विराट-काया में समाहित नाना भगी छंदों में से किसी एक छंद के एक चरण पर भी हम अंगुली नहीं रख सकते। वह नितांत ही सावधान छंद-प्रयोक्ता है—उससे 'चूक' हो ही नहीं सकती। उसने छोटी से छोटी बात के प्रति सतर्कता बरती है। गण के शुभाशुभ फल को ध्यान में रख कर उसने अपने काव्य का समारम्भ रघुवंश की भांति मगण[3] से किया है जिसका देवता पृथ्वी और फल श्री है।[4] इस विवेचन के आधार पर यदि हम सूर्यमल्ल को 'छंद-श्री' कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। अस्तु।

सूर्यमल्ल का यह छंद नैपुण्य इस कोटि का है कि विशेष भाव अथवा विषय के निमित परम्परा-मान्य विशिष्ट छंद-प्रयोग के लिए वह बाध्य नहीं है। वह विषय अथवा भाव को मनचाहे छंद में करवट दे देता है, यही कारण है कि शृंगार और रौद्र रसों में फबने वाले 'शांति और 'भुजंगप्रयात' छंदों में क्रमशः सफल 'युद्ध' और 'नगर-वर्णन'[5] करने में वह समर्थ सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार वंशभास्कर में वर्णित 'ब्रह्मादिगतिस्थान' (वंश० २२९-४१ १०-१२२) वेद-पुराण विभाग' (वंश० २४६-५५, १-७८) प्रियव्रत वंश-वर्णन' (वंश० २०५-६, १०-४०) 'चहुवाण भरतअशेरासा वर्णन' (वंश० १३३१-३८, ४-६६) आदि कोरे इतिवृत्तों को पज्झटिका जैसे वेगवान और ऊर्द्धवमुखी छंद में प्रस्तुत कर उनकी रुक्षता का परिहार कर दिया है इतिवृत्त के लिए पज्झटिका के पश्चात् सर्वाधिक प्रयुक्त छंद

१—डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी : चंदबरदायी और उनका काव्य पृ० २५५

२—भट्ट चंद्र रसबीर मूर्ति छंदन को अरितम
सब्दन को नटसाम कुसल बहु बहु प्राकृत क्रम। वंश० ३३। १३

३—आम्नायः यन्निस्यं तस्य पावजा नगोषरीकृत्तुम् ॥— रघुवंश

४—डा० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना पृ० १४६

५—द्रष्टव्य वंशभास्कर पृ० ४१६-३०, १६८८-९४

पश्चात् है। वंशभास्कर में वीर, रौद्र, बीभत्स और भयानक— ये चार ही रस मुख्य हैं। कवि ने इनका वर्णन प्रायः इनके अनुकूल भुजगप्रयात— वंश० ३६७३-८२। ४-३५, मुक्तादाम : —वंश० २६८६-६३। २६-५८। त्रोटक:—वंश० ३२६३-७०। २७-७२ घनाक्षरी:—वंश० २०५०। ११-१२ आदि छंदों में ही किया है।

छन्द-क्रम—

सूर्यमल्ल ने किसी राशि अथवा मयूख में छंदों की विविधता का कोई क्रम नहीं रखा है। किसी मयूख में ८-१० तरह के ही छंद आये हैं तो पंचम राशि के अकेले ३६ वें मयूख में साठ तरह के छंदों का प्रयोग हुआ है।

बहु प्रयुक्त छन्द—

वंशभास्कर में बहु प्रयुक्त छंद दोहा, सोरठा, पज्झटिका, षट्पदी, मनोहरम् और मुक्तादाम आदि हैं।

सूर्यमल्ल की छंद नीति—

सूर्यमल्ल ने अपने ग्रंथ की रचना-प्रक्रिया एवं उसके स्वरूप सूचन के लिए 'प्रथम' राशि में 'पद्य-नियम' शीर्षक से एक पृथक मयूख की रचना की है। इसमें समूचे ग्रंथ की योजना, भाषा, अलंकार, छंद आदि के विषय में लेखक ने जो नियम निर्धारित किये हैं वे वंशभास्कर के अध्येता के लिए बड़े महत्व के हैं। इन्हीं नियमों से यह दिशा-बोध होता है और उन्हीं से प्रकाश ग्रहण करके वह इस महाग्रंथ के विराट अरण्य में प्रविष्ट होता है। कवि द्वारा निर्धारित छंद नीति का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

क—वंशभास्कर में 'वृत्तार्णव', 'नंदिताढ्य' (गाथालक्षणम्) और पिंगल-सूत्र' के मतानुसार छंदों का प्रयोग हुआ है।[1]

ख—'पिंगल सूत्र' के विविध छंद इस ग्रन्थ में प्रयुक्त हुए हैं। वे सभी तराजू में तुले हुए हैं, उनके प्रयोग में लेशमात्र भी त्रुटि नहीं है।[2]

ग—व्यंजन-संयुक्त 'ए' और 'ओ', 'इ' 'उं' 'हं' 'हु' अपभ्रंश नियमानुसार कहीं लघु हैं।[3]

घ—पिंगलानुसार व्यंजन-संयुक्त 'ए' 'ओ' शुद्ध 'ए' 'ओ' 'इं' 'हिं' और 'र' 'ह' के संयोगी अक्षरों के आदि का लघु लघु ही रहता है।[4]

१—कछु वृत्तार्णव के कहुंक, नंदिताण्ड्य के छंद।
कछु पुनि पिंगल सूत्र के, यंहु नृप गिनहु अमंद ॥—वंश० १४७। ४१

२—नागराज सूचित धरे, वृत्त बहुत यह मांहि।
सबहि तराजू तुलित से, त्रुटिमित अंतर नांहि ॥ वही १४७। ४४

३—कादि बरनजुत ए' रु ओ केवल इं उकार।
हं हिं हुं लघु कहुं इत, अपभ्रंस अनुसार ॥—वंश० १४८। ४५

४—नागराजमत मैं लिखे, ए ओ मिलित रु सुद्ध।
इं हिं रह संयोग के, आदि लघु हु लघु बुद्ध ॥—वही १४८। ४६

उपर्युक्त वर्ण विकल्प से गुरु होते हैं।[1]

ग—देसी प्राकृतानुसार संयोगों का आदि लघु विकल्प से गुरु होता है।[2]

घ—स्व-वर्ग संयोगी सजातीय का आदि वर्ण सदा गुरु और तान्त संयोगी के अतिरिक्त विजातीय संयोगी का आदि वर्ण विकल्प से गुरु होता है।[3]

ज—न्ह म्ह और ल्ह आदि का लघु, लघु ही रहेगा।[4]

झ—इसके अतिरिक्त पद के मध्यवर्ती संयोगी के आदि का लघु विकल्प से गुरु होता है।[5]

ञ—चरणान्त का लघु (कहीं भी गुरु नहीं माना जायेगा और सानुनासिक लघु, लघु ही रहेगा।[6]

प—उपर्युक्त नियम 'ब्रजभाषा' के लिये ही हैं। ग्रंथकर्ता की प्रतिज्ञा से बाहिर जो शब्द हैं वे उसकी (ग्रंथकर्ता) की पराजय के सूचक हैं।[7]

१—दुव मत मैं हि इते न कं, कहिय गुरत्व विकल्प।
यह हि जनायत हित हमहु, सबके कहुं प्रति अल्प ॥—वही १४८। ४७

२—देसी प्राकृत काव्य मैं, रीति और इक तत्थ।
जु लघु आदि संजोग के, सु गुरु बिभासा सत्थ ॥—वही १४८। ५०

३—(क) हम रक्खो जो छंद इद, नव्य सु सुनहु नरेस।
सजातीय संजोग के, आदि सदा गुरु ऐस ॥—वही १४८। ५१

(ख) यकारान्त संयोग विनु, बिजातीय संयोग।
आदि ल कों ग करैं यहै, लेहु समुझि बुध लोग ॥ वही १४६। ५२

४— ... ... ।
नादि हांत संजोग सों, आदि लघु सु लघु इष्ट।—वही १४६। ५३
बहुरि हांत संजोग तंहं, आदिमकार लकार।
पूरव लघु को लघु करैं, जेम सम्हार सिल्हार ॥ —वही१४६। ५४

५—संस्कृत सम देसीय मैं, पदविच को संजोग।
गुरुहि करैं न बिकल्प सों, पहिलो है यु भोग।—वही० १४६। ५५
जुपद अनादि समास मैं, तास आदि संजुत्त।
ग करत लघुहि विकल्पसों, मकरध्वजप्रभु फत्त ॥—वही १४६। ५६

६—इत्त चरण के अंत लघु, सु महं कबहु गुरु नांहि।
त्यों अनुनासिक जुत्त लघु, इहि गिराहु लघु आहि ॥—वही १५०। ६२

७—ब्रजभाषा के विषय मैं, कवित प्रतिज्ञा काम।
सुद्ध इतर निजरीति सों, ठाई निज निज ठाम ॥—वही १५०। ६३
सब इत्यादि निदर्शना, बुधजन लेहु बिचारि।
ग्रंथा बाहिर सब्द जो, है अशुद्ध सुहि हारि ॥—वही १५०। ५८

वंशभास्कर में प्रयुक्त छंदों की अकारादि-क्रम-सूची

१ अनुष्टुप्*
२ अनुष्टुपयुग्मविपुला*
३ अमृतध्वनि कुण्डलिका
७ आर्या (आर्या गाथा)
८ आर्यागीति
९ इन्द्रवज्रा
१० इन्द्रवंशा*
११ उद्गीति
१२ उंद्धुर
१३ उपगीति
१४ उपेन्द्रवज्रा
१५ उपदोहा
१६ एकान्त्यानुप्रासिनी रोला
१७ औपच्छन्दसिकम्
१८ कर्पूरकम्
१९ कलहंस
२० कलापिनी
२१ कामक्रीडा*
२२ किरीट
२३ किरीटिनी
२४ कुंकुम
२५ कुण्डलिका
२६ केकिरवम्
२७ गगनांगण
२८ गीति
२९ गीतिका
३० घनाक्षरी
३१ चंचला
४ अष्टपात्
५ आधिरुचिरा
६ आपातलिका
३२ चटकप्लुत
३३ चतुष्पदी
३४ चर्चरी
३५ चाडूला दोहा
३६ चामर
३७ चित्रा
३८ चौपाई
३९ झम्पाताल
४० त्रिकूटबद्धम्
४१ त्रिभंगी
४२ त्रिष्टुबुपजाति (उपजाति)
४३ तोटक
४४ तोमर
४५ दोधकम्*
४६ द्वितीय रुचिरा
४७ दोहा
४८ द्रुतविलम्बित*
४९ नराच
५० नर्कुटकम्*
५१ निशाणी
५२ पथ्यागीति
५३ पद्धति (तिका)
५४ पादाकुलकम्
५५ प्रकृति
५६ प्रलम्बकम्

---

*चिह्न से अंकित छंद भाषा में प्रयुक्त नहीं हुए हैं, इसलिए उन्हें हमने अपने अध्ययन का विषय नहीं बनाया है।

५७ प्लवगमम्
५८ वस्तु वदनकम्
५९ वेताल
६० बैत
६१ वैतालियम
६२ भुजंगप्रयात
६३ भ्रमरावती (मो)
६४ मदनावतार
६५ मत्तमयूरम्[*]
६६ मत्तमृगेन्द्र
६७ मन्दाक्रान्ता[*]
६८ मनोहरम्
६९ मंजुभाषिणी
७० महाचच्चंरी
७१ महापद्धति
७२ महासुन्दरी
७३ मामनाकम
७४ मालिनी[*]
७५ मोहिनी (बरवती)
७६ मुक्तादाम
७७ रुचिरा
७८ रोला
७९ लीलावती
८० वसन्ततिलकम् (मधुमाधवी)
८१ वानवासिका
८२ वंशस्थ[*]
८३ विश्लोक
८४ विशेष पदाकुलकम्
८५ विशेषोपचित्रा
८६ शार्दूलविक्रीडितम्
८७ शालिनी[*]
८८ षट्पदी
८९ संयुक्ता (संयुक्तम्)
९० स्रग्धरा[*]
९१ शिखरिणी[*]
९२ स्वागता[*]
९३ सामान्याकुलकम्
९४ सामान्योपचित्रा
९५ सारंग
९६ सुन्दरम्
९७ सुपंखी (सुपंखरा गीत)
९८ सौराष्ट्री दोहा (सोरठा)
९९ हरिगीतम्
१०० हरिपदम्
१०१ हनुमत्फाल
१०२ हीरकम्

छंद — विश्लेपण

१ अमृतध्वनि कुण्डलिका – संयुक्त पूर्व गुरुत्वे :—इस नाम का छंद अप्राप्य।

मात्रिक छंद—

उदाहरण—

> प्रति भट लखि मान प्रगुन, हान ध्रुव असु हल्ल ।
> बधान प्रम पुनि बाहुरियो, मानक्रम रविमल्ल ॥

---

[*] चिन्ह से अंकित छंद भाषा में प्रयुक्त नहीं हुए हैं—इसलिए उन्हें हमने अपने अध्ययन विषय नहीं बनाया है।

मासकम रविमस्त प्रतिम व कान प्रमवित।
प्रानभय मुवदान यवन निशान प्रकुपित ॥
कान प्रमिति समान कमन विज्ञान वय विकट।
बान प्रखर कमान च्युत किय रात प्रतिभट ॥

—वंश० २१८१। १५

टिप्पणी—वस्तुतः यह 'कुण्डलिया' ही है। इसे 'ग्रमृतध्वनि' विशेषण देने का कारण है—संयुक्त-वर्ण के पूर्व के लघुवर्ण का गुरु हो जाना। यहाँ यति १२, १२ पर है।

षट्पात—इस नाम के छंद का उल्लेख छंद ग्रंथों में नहीं मिलता।

मात्रिक छंद— ६ चरण रोला के और २ चरण उल्लाला के मेल से यह छंद बना है। यथा—

उदाहरण—

नूरजहाँ अधिनम्र अरज माधव पठाइ यह।
यवनग निबसि अगार स्वीकन करि सम्हारि सह ॥
उदयनेर बिधि ऊड अधिप बूंदी जब आयउ।
माधव दै फरमान बहुरि तब साह बुलायउ ॥
समहि तस रंन सुव सज्जि निज सबं गवं गति।
पठ्यो दिलियमनत सिवख वगीन यता प्रति ॥
सुनतहि तदीय आगम सभा हजरत बुल्ल्यो हित सहित।
सेवन स्वकीय पहिलो सुमिरि उर लायो कर ऐंचि इत ॥

—वंश० २५६२। ३४

१ अविरविरा—इस नाम का छंद अप्राप्य है।

मात्रिक छंद—प्रति चरण ३१ मात्रायें; १६,१५ पर यति अन्त में गुरु लघु।

उदाहरण—पठयो तदपि महावतखान पर, देखन साह हृदय निजदास ॥
ताड़ितकरि जवनेस कुपित तिहि, बधि तबहि कारादिय बास।
सो सुनि असह महावत सकित, हठि बुल्ल्योहु गयो न हजूर ॥
प्रत्युत यह जवनेसहि पकरन, देखन लगिय जतन ढिग दूर।

—वंश० २५३६। ६

टिप्पणी—छंद ग्रंथों में इसका नाम वीर या आल्हा दिया गया है।

४ आपातलिका—

मात्रिक छंद—विषम चरणों में १४ मात्राएं अन्त में भ ग ग

सम चरणों में १६ मात्राएं अंत में भ ग ग।

उदाहरण—पहु मातुल कुंभ कह्यो जो, पहिलैं उत पहुच्यो नृप पै सो।
रिसवस जिनि दूर रह्यो जो, मति अरिपैं बिरदावन लावै ॥

—वंश० २१८६ । १६

५ आर्या (आर्या गाथा)—

मात्रिक छंद—विषम चरणों में १२ मात्राएं।
द्वितीय चरण में १८ मात्राए।
चतुर्थ चरण में १५ मात्राएं।

उदाहरण—विधि सब सिद्धि विवेकी,
किय सिव केदार पाठ दस पहिलैं।
कवि जन घन जनु केकी
सति सम्मद रीझ संत लगे।

—वंश ४१७५ । १

६ आर्या गीति—विषम चरण में १२ मात्राएं।

मात्रिक छंद—सम चरण में २० मात्राएं।

उदाहरण—पादाग्र उर पट्टो, अंगुट्ठ कढ्यो सु तोरि बंस उतैवौ।
दुर्जन पर जिम दिट्ठो, रन दुट्टर पाय मति संभरनामी।

—वंश० २१८५ । ११

७ इन्द्रवज्रा—

वर्णिक वृत्त—प्रति चरण त त ज ग ग।

उदारण—पाई नहीं पट्टनि ही लही जो, मातुन्द तें पुव्व पटा मही जो।
सोही मिली सोहु इहां सुहायो, पृथ्वीस तैसो सुरतान पायो ॥

—वंश० २१६० । ६०

८ उद्गीति—

मात्रिक छंद—विषम चरणों में १२ मात्राएं।
द्वितीय चरण में १५ मात्राएं।
चतुर्थ चरण में १८ मात्राएं।
विषम गणों में जगण न हो।

उदाहरण—अद्ध घरी बितायें हम, रान परिहि प्रान छोरि रह्यौ।
जावत इक घटिका जिम, सह नृप सत्तहि डरे रहे सूनें ॥

—वंश० २१५८ । ३२

९ उद्घुर—उद्धर अपरनाम : इस नाम का छंद नहीं मिलता।

मात्रिक छंद—प्रति चरण १४ मात्राएं पांचवीं छठी मात्रा।
गुरु सातवीं मात्रा लघु अन्त में गुरु लघु।

उदाहरण-बढि रन धँन रँन बरूथ, जित तित दब्बि परदल जूथ।
झारिय खग्ग इम मह झोकि, रिपु बहु संहरे रन रोकि॥
—वंश० २४९९। १९

टिप्पणी—छन्द प्रभाकरकार ने इसे 'सुलक्षण' (पृ० ४६) नाम दिया है।

उपगीति—

मात्रिक छंद—विषम चरणों में १२ मात्राएं।
सम चरणों में १५ मात्राएं।
विषम चरणों में जगण न हो।
अन्त में गुरु हो।

उदाहरण— एकाकि मरनवारी, पहुंची इत सुद्धि जब पहली।
मसि जरन प्रामारी, उठीसु सस्सू खिजि महोरी॥
—वंश० २१८६। ३३

उपेन्द्रवज्रा—

वर्णिकवृत्त— प्रति चरण ज त ज ग ग।

उदाहरण— बिसाल बंधू उत रान वारो, नरेस भो विक्रम नीति न्यारो।
बनै न जासों महिपत्व बत्ते, घनों नसा देह प्रमाद घत्तै॥
—वंश० २१९०। ६१

२ उपदोहा—

मात्रिक छंद— सम चरणों मे ११ मात्राएं।
विषम चरणों में १३ मात्राएं।
प्रत्येक चरण के अन्त में नगण।

उदाहरण—

सबन नृप सु रविमल्ल सुत, किय सुरतान जु कुमति।
जान्यों सिसुपन जाहि जब, सद्धहि कुलक्रम सुमति॥
—वंश० २१९०। ५८

टिप्पणी—उद्धृत छन्द के प्रत्येक चरण के अंत मे नगण है, जबकि दोहा छंद के 'जगण' या 'सगण' होता है। हेमचन्द्र कृत 'छन्दानुशासन' (६। २०-४१) में दिये गये लक्षण से यह मेल नहीं खाता।

११ एकांत्यानुप्रासिनी रोला—

मात्रिक छंद—जब रोला या काव्य के चरणों की तुक मिलती हो।

उदाहरण—

कतिकन मोहन बिछुरि मच्छ विकुरन चिरकानो।
कर जिनके तजते न मुट्ठि तिन मरय गहानी॥
जिन मानी ग्रीखम धनेहु निज गेह हिमानी।
तिन भूपन की तपत जेठ सम्भर थिति जानी॥

—वंश० ११२६। १४

१४ श्रौपच्छन्दसिकम्—

मात्रिक छंद— विषम चरण में १६ मात्राएं।
सम चरण में १८ मात्राएं।
चरणान्त में रगण यगण हों।

उदाहरण— चित करि गोदा तटो चिताको।
सुभट सनानी सगोत्त आदि संगो॥
तब सब विधि सद्धि दाहि ताकों
भट्ठ समा अयहो सही बड़ाई॥ वंश० २५५३। २

१५ कर्पूरकम्—(उल्लाला)

मात्रिक छंद— विषम चरण में १५ मात्राएं।
सम चरण में १३ मात्राएं।

उदाहरण— इत हुव गनेस आराम अब अंहं सुरान रानिय करिय।
समर प्रभुहि उपहार सब क्रम सह तंहं प्रेषित करिय॥

—वंश० २१८१। ५५

टिप्पणी— उद्धृत छंद के तृतीय चरण में 'समर' के 'र' को गुरु पढ़ा जायेगा। कवि ने इसे उल्लाला नाम भी दिया है (द्र० वंश० २६७१। ८)

१६ कमहस—

वर्णिक वृत्त—प्रत्येक चरण में गण— स ज ज भ र।

उदाहरण—भटरान के इकबीस प्रान बिना भये।
पहुरान संजुत पथ न्हो पहिले हुये॥
जुग सेनके सुर भाम आननरी जुरे।
मृत तत्थ तत्रइ रानके भजतें मुरे॥

—वंश० २१८८। ५०

टिप्पणी—'मनहंस' नाम से भी कवि ने यही छंद प्रयुक्त किया है (द्र० वंश० ३६११। ४) 'छंद-प्रभाकरकार' ने भी इसे 'मनहंस' नाम दिया है। 'मनहंस' का एक नाम 'रणहंस' भी मिलता है। 'कमागिनी' इसी का मात्रिक रूप है।

कलापिनी — इस नाम का छंद छंद-ग्रंथों में नहीं मिलता।

मात्रिक छंद— प्रति चरण में २१ मात्राएं।

उदाहरण— सामंत ग्रादि चतुष्क संजुत बीस जे।
बपु घाय पाइ बचे बली बिजई बजे॥
गत प्रान नृप जंह सुभट बंदिय के गये।
भल रीति दाहन भूपको करते भये॥ वंश० २१८६।५१

टिप्पणी—यह कलहंस छंद का मात्रिक रूप है। इसमें कलहंस के एक गुरु वर्ण के स्थान पर दो लघु वर्णों का प्रयोग हो सकता है।

अपभ्रंश हिन्दी में अनेक संस्कृत के वर्णिक छंद मात्रिक रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं जिनमें कई एक के अलग नाम भी मिलते हैं– शार्दूलविक्रीडित का मात्रिक रूप साटक कहा गया है। तोटक आदि छंद भी मात्रिक रूपों में प्रयुक्त हुए हैं पर उनको अलग नाम नहीं दिये गये।

१८ किरीट—

वर्णिक सवैया वृत्त—प्रति चरण आठ भगण।

उदाहरण - लै चउ बान सराहत रान कह्यो नृप रावहु जो मन ए बर।
त्योंहि लये लखि तून तदीय हुतें करखें गहि पुंख उभै सर॥
लेत सुजानि दब्यो पय रान तऊ चहुवान निकासि लये कर।
रोष फलै न बली बल भाग इतें हयको चरमंग उठ्यो पर॥
—वंश० २१७८।५

टिप्पणी—'किरीट' को सूर्यमल्ल ने 'राजसवत्तिका' नाम से भी अभिहित किया है।
(द्र० वंश० २८२७।१५)

१९ किरीटिनी—

वर्णिक वृत्त—प्रति चरण में गण—स ज ज भ र ल ल।

उदाहरण—पर तीर राघव की प्रजा तिनकी लुपक्कन।
जहं दाह तेहु दये भजाइ घुजाइ धक्कन॥
जिन भज्जि चम्मलि नानते बिच रान जारिय।
हठि चित्रकूट गये सबै इम धर्म हारिय॥
—वंश० २१८६।५४

टिप्पणी—यह ऊपर लिखे कलहंस' वृत्त से मिलता है। कलहंस के आगे दो लघु जोड़ देने से किरीटनी बन जाता है।

२० कुंकुम— इस नाम का छंद छंद-ग्रंथों में नहीं मिलता।

मात्रिक छंद— विषम चरणों में १६ मात्राएं।
सम चरणों में १२ मात्राएं।

उदाहरण— पहिलैं कहीहु नृप की प्रिया, बयहि जरी महत्तन तिम।
जिन्ह लखि मरो सु नृप की जननि गौस तेंहि गिरि वह इम ॥

—वंश० २१८६ । ३६

२१ कुण्डलिका (कुण्डलिया)

मात्रिक छंद— दोहा रोला
प्रतिपद २४ मात्राएं।
दोहान्त पद रोलादि पद हो।
रोलांत पद दोहादि पद हो।

उदाहरण— पानिप करि जुज्झे प्रबल, इम दक्खिन ईरान।
करन अजय दूरी करन, करन बिजय मतिमान॥
करन विजय मतिमान, रंग कुरुक्षेत जंग रचि।
रुचिधर महमदखान, भयो हुत अरि कृपान सुचि॥
न सुचि भजें मरहट्ट, न सुचि मज्जे स्यानिप करि।
निप करि लये बचाय, गये भच्छरि पानिपकरि॥

—वंश० ३९९४ । ४८

२२ केकिरवम्—

वर्णिक वृत्त— प्रत्येक चरण में स य स य।

उदाहरण— महिपाल यौं मोहन चप्पि मंत्री।
जग कित्ति बिस्तारि दिगंत यंत्री॥
बय वर्य भट्टारह भग्ग वर्त्ती।
प्रभिरूप दूरी कृत देस वर्त्ती॥

—वंश० ४२३० । १८

२३ गगनांगनम् (गगनांगना अपरनाम)

मात्रिक छंद—प्रत्येक चरण में २५ मात्राएं अन्त में रगण।
१२, १३ पर यति।

उदाहरण—चल्वहु नृप नीति चतुर, समय देस हिम लाइये।
किहि बिधि अवनेस हितु, समर सजिअ जय पाइये॥
नाथ जु निज मनुज ताहि, तुम दयो सु पुनि पेखिये।
गूढ़ गूढ़ सबकैं बढ़ैहि, राजरीति दृढ़ देखिये॥

—वंश० ३३३५ । ३

टिप्पणी—छंदप्रभाकरकार १६, ६ पर यति की व्यवस्था देते हैं। (छं प्र. पृ० ११)

२४ गीति—

मात्रिक छंद— प्रथम और तृतीय चरणों में १२ मात्राएं।
द्वितीय और चतुर्थ चरणों में १८ मात्राएं।
विषम चतुष्कल में जगण न हो, षष्ट में हो।

उदाहरण—

ऊधेहि रान उप्पर मरन दसा ज्यों चरन निज समेटयो।
तंहं बढ़ि छुवत कृपनतर, बन्धहि लत्ता प्रहार करि बैंध्यो॥
—वंश० २१८१। १०

२५ गीतिका—

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण में गण-स ज ज भ र स ल ग-२० वर्ण।

उदाहरण— मिलि दाव दुस्सह तावदै मरराव नालिन को मचयो।
तिहिं बार भार फुलिंग फार प्रसार में गिरि जो तचयो॥
लगि चक्क ढक्कन यों झलक्कन धूम संकुल ह्वै लस्यो।
बहु बिज्जु मिश्रित अभ्र जाति प्रदभ्र काननपै बस्यो॥ ४
—वंश० १६८६। ४

टिप्पणी—इसकी गति हिन्दी के प्रसिद्ध मात्रिक छंद हरिगीतिका जैसी होती है। दूसरे शब्दों में यह वर्णिक हरिगीतिका छंद है।

२६ घनाक्षरी —

वर्णिक मुक्तक वृत्त— प्रत्येक चरण ३२ वर्ण १६-१६ पर यति।

उदाहरण—आप बलहीन निज अयको अभाव जानि,
आश्रय बलिष्ट कोल दंडको दबायो जाइ।
आश्रय कहावत सो ताके तीन भेद जे,
सदाश्रय रु अन्याश्रय दुर्गाश्रय ते कहाइ॥

बैरी बलवान जो दबावै तो निबल ताकों,
धर्मवर जानि संत आश्रय तदीय आइ।
सो तो है सदाश्रय औ सत्रु को दबायो सं,
बलिष्ट और आश्रय सो अन्याश्रय नाम पाइ॥
—वंश० ३३६। २०३

टिप्पणी—छंदप्रभाकरकार ने इसे रूपघनाक्षरी नाम दिया है। (छं० प्र० पृ० २१४)

२७ चंचला—

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण र ज र ज र ल

उदाहरण—रस मैं भरे कबंध मत्त के फिरे
भूमिके तनूज मानि

टिप्पणी—चरणान्त में लक्षण के विपरीत गुरु लघु का विन्यास है। संभवतः 'पद्धरि' के स्थान पर 'चौपाई' छप गया है। सूर्यमल्ल जैसे सिद्ध कवि से चौपाई जैसे प्रसिद्ध छंद के प्रयोग में त्रुटि संभव नहीं।

१५ भग्गतास—

मात्रिक छंद—प्रति चरण में १४ मात्रायें अन्त में रगण।

उदाहरण—इक दास चढ भट जे चरी,
तिन कीहु दहन क्रिया करी
सह कुप तेरह साथ के
धरि दहिय सत्रह मायके ॥ वंश० २१८६। ५२

टिप्पणी—रघुवर जस प्रकास में इसका उल्लेख भंगतास नाम से हुआ है और लक्षण दिया गया है—प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं और अंत में गुरु। छन्दप्रभाकर में इसका नाम मधुमालती मिलता है। उसके लक्षण में ७। ७ पर यति का नियम दिया है जो उदाहृत छन्द में पूरी तरह लागू नहीं होता।

यह छन्द हरिगीतिका का आधा होता है किन्तु यहां चरणान्त में नियमतः 'रगण' का विन्यास द्रष्टव्य है।

१६ त्रिकूट बन्धम्—

मात्रिक वृत्त— १५ चरण।

तीसरे, चौथे और पंद्रहवें चरण में १६, १० और १२ मात्राएं। शेष प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं।

जिन चरणों में तुक मिलती है (क) १, २
(ख) ५, ६
(ग) ४, १५
(घ) ७, ८
(ङ) ९, १०, ११-१
(च) १२, १३, १४-१

तुरगी रचैं कति तेहरी किमु अद्रि संचित केहरी फटि मत्य-भेजन
जुत्थ फैलत नूतन को नवनीत ॥
छिकि टोप बाहुल उच्छटैं कटि कालि कंकटको कटैं, भट गरट
मिलि घट पुरब छुट पट कुघट घट परि अवट कट कट कपट
तट अति झपट रन घट उबट बट रट विकट रहचट, पलट नट

---

१ प्रो० नरोत्तमदास स्वामी—डिंगल गीतों की सारिणी : राजस्थान भारती भाग २ अंक १ जुलाई १९४८

. गति उलट झटपट उछट खगझट निपट अघ दट दपट दिय
मिलि निकट प्रविमट रपट मचि रन प्रकट रजवट जुरत चाहत जीत।।

—वंश० ३४२३ । ४१

टिप्पणी—उद्धृत छंद के सातवें चरण में १६ और अंतिम (पंद्रहवें) चरण में १० मात्राएं हैं।

३७ त्रिभंगी—

मात्रिक छंद—३२ मात्राएं ; १०,८,८,६ पर यति, चरणान्त में गुरु; १०, ८, ८ पर आंतरिक । तुक—

असवार उलट्टैं कंकट कट्टैं पूर पलट्टैं सूर सजैं,
पन्नग फन फट्टैं अवनि उछट्टैं त्रंब बजैं ।
बुंदीपतिवारी काल करारी तेग दुधारी वेग चली,
कोटेस मवाहन उग्र उछाहन मंडि महारन बीर बली ।।

—वंश० २६८१ । १६

३७ त्रिष्टुबुपजाति : वस्तुत: (उपजाति)

वर्णिक वृत्त—यह छंद इन्द्रवज्रा (त त ज ग ग) और उपेन्द्रवज्रा (ज त ज ग ग) के मिश्रण से बना है।

उदाहरण—इलेस ऐसैं सु वयस्य संगी,
संगीत नाट्यादि कला प्रसंगी ।
/ संगीयमानस्तव मानु संगी,
संगीणं अंवार ससी विसंगी ।

—वंश० ४२३२ । २०३

10864

३६ तोटकम्—

वर्णिक वृत्त—प्रति पद चार सगण ।

उदाहरण—धनु पट्टिस खेटक खग्ग कसैं,
वपुहान हिये तृनमान बसैं ।
इम हिंदुव मिच्छ चलैं रनकौं ।
छबि निंदत भद्दव के घनकौं ।। वंश० २६६५ ।८

४० तोमर—

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण गण स ज ज ।

उदाहरण —कलि तापिका नदि कूल, सुनि भो इतैं हिय सूल ।
रन रानके बहुबीर, भिरि ज्हां रहे पति भीर ।।

—वंश० २१८८ । ४६

टिप्पणी—चरणान्त में लक्षण के विपरीत गुरु लघु का विन्यास है। संभवतः 'पद्धरि' के स्थान पर 'चौपाई' छप गया है। सूर्यमल्ल जैसे सिद्ध कवि से चौपाई जैसे प्रसिद्ध छंद के प्रयोग में त्रुटि संभव नहीं।

१५ झम्पताल—

मात्रिक छंद—प्रति चरण में १४ मात्रायें अन्त में रगण।

उदाहरण—इक दास चढ भट जे मरी,
तिन कीहु दहन क्रिया करी
सहु कुप तेरहु तरप के
परि दहिय तरहु परपके ॥ वंश० २१८६। ५२

टिप्पणी—रघुवर जस प्रकास में इसका उल्लेख झंपताल नाम से हुआ है और लक्षण दिया गया है—प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं और अंत में गुरु। छन्दप्रभाकर में इसका नाम मधुमालती मिलता है। उसके लक्षण में ७। ७ पर यति का नियम दिया है जो उदाहृत छन्द में पूरी तरह लागू नहीं होता।

यह छन्द हरिगीतिका का आधा होता है किन्तु यहाँ चरणान्त में नियमतः 'रगण' का विन्यास द्रष्टव्य है।

१६ त्रिकूट बद्धम्—

मात्रिक वृत्त— १५ चरण।

तीसरे, चौथे और पंद्रहवें चरण में १६, १० और १२ मात्राएं। शेष प्रत्येक चरण में १४ मात्राएं।

जिन चरणों में तुक मिलती है (क) १, २
(ख) ५, ६
(ग) ४, १५
(घ) ७, ८
(ङ) ९, १०, ११-१
(च) १२, १३, १४-१

तुरगी रचै कति तेहरी किमु मद्रि संचित कैहरी फटि मत्थ-भेजन
जुत्थ फैलत नूतन की नवनीत ॥
छिकि टोप बाहुल उच्छटैं कटि कालि कंकटकी कटैं, भट भरट
मिलि घट पुरब छट पट कुघट घट परि प्रघट कट कट कपट
लट प्रति झपट रन घट उबट बट रट विकट रहचट, पलट नट

---

१ प्रो० नरोत्तमदास स्वामी—डिंगल गीतों की सारिणी : राजस्थान भारती भाग २ अंक १ जुलाई १९४८

गति उलट झटपट उछट खगझट निपट अघ दट दपट दिय
मिलि निकट प्रतिभट रपट मचि रन प्रकट रजबट जुरत चाहत जीत ।।

—वंश० ३४२३ । ४१

टिप्पणी—उद्धृत छंद के सातवें चरण में १६ और अंतिम (पदहवें) चरण में १० मात्राएं हैं ।

३७ त्रिभंगी—

मात्रिक छंद—३२ मात्राएं ; १०,८,८,६ पर यति, चरणान्त में गुरु; १०, ८, ८ पर आंतरिक । तुक—

असवार उलट्टे कंकट कट्टे पूर पलट्टे सूर सजे,
पन्नग फन फट्टे अवनि उछट्टे अंब बजें ।
बुंदीपतिवारी काल करारी तेग दुधारी बेग चली,
कोटेस अवाहन उग्र उछाहन मंडि महारन वीर बली ।।

—वंश० २९८१ । १६

३७ त्रिष्टुबुपजाति : वस्तुतः (उपजाति)

वर्णिक वृत्त—यह छंद इन्द्रवज्रा (त त ज ग ग) और उपेन्द्रवज्रा (ज त ज ग ग) के मिश्रण से बना है ।

उदाहरण—इलेस ऐसें सु वयस्य संगी,
संगीत नाट्यादि कला प्रसंगी ।
संगीपमानस्तव भानु संगी,
संगीएं अंघार ससी विसंगी ।

—वंश० ४२३२ । २०३

40864

३९ तोटकम्—

वर्णिक वृत्त—प्रति पद चार सगण ।

उदाहरण—धनु पट्टिस खेटक खग्ग कसैं,
बपुहान हिये तुनमान बसैं ।
इम हिंदुव मिच्छ चलै रनकों ।
छबि निंदत मद्दव के घनकों ।। वंश० २९९५ ।८

४० तोमर—

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण गण स ज ज ।

उदाहरण —कलि तापिका नदि कूल, सुनि भो इतैं हिय सूल ।
रन रानके बहुवीर, गिरि व्हां रहे पति धीर ।।

—वंश० ३१८८ । ४६

टिप्पणी—तोमर छन्द मात्रिक भी होता है—प्रत्येक चरण में १२ मात्राएं अंत में गुरु लघु।

४१ द्वितीय रुचिरा—

वर्णिक वृत्त— प्रतिपद ज भ स ज ग
४, ६ पर यति।

उदाहरण—धरे यहै, कथित पुरी अधीसता, कुलोभ में, मनहिं लगाइ कौसता।
अजोग्य हू, बदन उपाय मादरै, कहैहिगे, अवसर जो यहै करै॥

—वंश० २१२१। ११

४२ दोहा—

मात्रिक छंद— विषम चरण में १३ मात्राएं।
सम चरण में ११ मात्राएं।

उदाहरण—धार धनी लग्गी धुपन, लोहुन सानन लेहु।
पटु बारन रन पाहुनैं, दीसन लग्गे देहु॥

—वंश० ३६६६। ७२

४३ नाराच (पंचचामर अपरनाम)

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण गण ज र ज र ज ग।

उदाहरण—हरी बहोरि धेनु भीषम द्रोन आदि आयकैं।
तहाँ समस्त पत्थनैं जयैं कलंब धायकैं॥
बिराट भूप पत्थकौं सुता जु उत्तरा दई।
सुधर्म धीर पत्थनैं स्वकीय पुत्रकौं लई॥

—वंश० ६६४। १२

४४ निस्साणी—

मात्रिक छंद— प्रति चरण २३ मात्राएं, १३। १० पर यति।

उदाहरण—पुनि हसि हक्क हु बान पहु निज पास न आण्यौं।
निय रावत रानहि निरखि बध छद्म बखाण्यौं॥
बलि अपनौ अबहू बचं करतव्य हु किन्नौं।
जाहु जाहु कपटो जियत हक मैं प्रभु दिन्नौं॥

टिप्पणी—रघुनाथ रूपक में उल्लिखित चार प्रकार की निसाणियों में से यह 'मुढ आगड़ी' निसाणी है।

४५ पद्मावती—

मात्रिक छंद—विषम चरण में १२ मात्राएं।
सम चरण में १८ मात्राएं।

पदान्त यति पर पद पूर्ण हो।

उदाहरण— धुर नालि धुरिधानी।
जिम दूजी करक बिज्जुली जानी ॥
ए सुभटन धुर मानी।
तारागढ़ तेहु चरखन चढ़ाई ॥

—वंश० २२७१। ६५

४६ पद्धतिका— (पज्झटिका, पज्झड़िया, पद्धति, पद्धरि, पाधड़ी-अपरनाम)

मात्रिक छन्द—प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं अंत में गुरु लघु अथवा जगण।

उदाहरण— कछु तमक दई झटतहि उदार।
सो सरल भई लहि बपु सुढ़ार ॥
पट खेंचि कान्त चलिये स्वगेह।
बुल्ली इम भावना भर सनेह ॥

—वंश० ५८०। ५०

टिप्पणी— १६ मात्राएं साधारणतया चार चौकल से बनती हैं पर कहीं कहीं व्यत्यय भी देखा जाता है—प्रथम और तृतीय चौकल में जगण नहीं होता।

४७ पादाकुलकम्—

मात्रिक छन्द— प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं (चार चौकल)

उदाहरण—सदय उमा लखि सिवहि सुनाई।
रक्खहु प्रभु न यहै निठुराई ॥
प्रान लयें बालहि कैसो पय।
सूकें खेत कहा धन संचय ॥

४८ प्रकृति— (छंद ग्रंथों में इस नाम का छद नही मिलता।)

मात्रिक छन्द—प्रति चरण १५ मात्राएं अन्त में गुरु लघु।

उदाहरण—सचिव मुख्य खत्री हरसाहि, भरु बखसी गुरुसाहि उमाहि।
मिलि अधि वीर जट्ट बहु मारि, तूटि गिरे भारत तरवारि ॥

—वंश० ३७२४। १२

टिप्पणी— संभवतः यह 'चौपाई' (१५ मात्राएं अंत में जगण) का नामान्तर रहा हो। वंशभास्कर मे ४०७७। ५८ इसी छंद की १६ मात्राएं हैं, अंत में गुरु लघु नहीं अपितु लघु गुरु है।

४९ प्रलम्बकम्— इस नाम का छद अप्राप्य है। इस पर वीर छन्द के लक्षण—

मात्रिक छन्द— प्रति चरण ३१ मात्राएं।
१६, १५ पर यति।

अत में गुरु लघु पूर्णतः घटित होते हैं यथा—

उदाहरण— भजित सुता सोजी तिय इनमें अपज की साली जुहि भात ।
सुत जेहो सुरतानसिंह हुव तनया चन्द्रकुमारि हुव तास ॥
तिय चोथी अद्दोनि भनी तिम दूजी सुता बिचित्रकुमारि ।
परिनाई जयनेर अवासहि सो श्रीजित श्रुति विधि अनुसारि ॥

—वंश० ३२९१ । १४

५० प्लवंगमम्—

मात्रिक छन्द— प्रति चरण २१ मात्राएं (६+५+४+४+२=२१ मात्राएं)
चरणान्त में ज ग (पिंगल छन्दसूत्र)

उदाहरण— सालम दल बहु सज्जि मुलक निज मारयो ।
अप्पन यब इहि खेत सरन सतकारयो ॥
युद्ध नियति बलवान ततो हम जित्ति हैं ।
कोटापति सकुटुम्ब न तो यंह बित्तिहैं ॥

—वंश० १०७२ । १२

५१ वस्तु वदनकम् ('काव्य' अपरनाम)—

मात्रिक छन्द— प्रति चरण २४ मात्राएं ।

उदाहरण— सुभट वर्ग अब सनद्ध हरिय सीसोद अमरहर ।
विट्ठल नत्तिय प्रथित, संभु चालुक बघेल वर ॥
संकर नत्तिय सूर भीम, भट्टिय खंडित खल ।
गोवर्द्धन तिम गोर, बीर सुंदर सुब अतिबल ॥

—वंश० २१६७ । २६

टिप्पणी— वस्तु, वस्तुक, वस्तुवदनक, वत्थुम, वथुआ, काव्य—ये सब 'रोला' के विविध प्रकार हैं । 'वस्तु' कहीं–कहीं 'रड्डा' को भी कहा गया है (द्रष्टव्य–हेमचन्द्र कृत 'छन्दोनुशासन' अध्याय ५)

५२ बंताल—

मात्रिक छन्द— प्रति चरण २६ मात्राएं, १६, १० पर यति ।

उदाहरण— इक बिप्र बन्धु बधू हुती तिन मांहि सुन्दर अंग ।
सम रूप जुब्बन द्वै परस्पर उज्झले तस संग ॥
लखि बिप्र बन्धु बधू वहै चन्देरनी अतिलाग ।
राच्यो तहां सब तें बिसेस कुमार को अनुराग ॥

—वंश० २४६४ । २८

टिप्पणी— उदाहरण में यति के नियम का पालन पूर्णतः नहीं हुआ है ।

५३ वंत (वंत)—

दो मिसरों के छंद को 'वंत' कहते हैं—

(द्र० मु० मुस्तुफा—उर्दू-हिन्दी शब्दकोष)

उदाहरण—

मयेनी सिकंदर किते यों मनें, हुन्यों के भज्यो के गह्यो के मनें।
मनी जो रह्यो बात क्यों हू भई, सिजरखान पै पातसाही लई॥

—वंश० ११६१ । १८

टिप्पणी— यह फ़ारसी छद है। कवि ने इसे 'पावनी वृत्त' कहा है।

५४ वंतालियम— (वंतालियम, वैताली-अपरनाम)

मात्रिक छन्द— विषम चरण में १४ मात्राएं।
सम चरण में १६ मात्राएं।
विषम चरण में ६ और सम चरण में ८ मात्राओं
के बाद रगण लघु गुरु।

उदाहरण— बदे सिरह्यो बिराजिये।
जोलों जीवित दास के जया॥
सब पैं स्वनिदेस साजिये।
अनुचित बिन्नति दें न उभिक्कें।

—वंश० २८१२ । ३

५५ भुजंगप्रयात—

वर्णिक वृत्त— प्रतिचरण चार यगण

उदाहरण— इगों धीसता सांकळां सूत डोरा।
धरा यूं सर्ग ज्यूं बर्ग सेत धोरा॥
भला जूहवै बैरियां ब्यूह भेदी।
बिजै मित्र जे चित्र संग्राम बेदी॥

—वंश० २६७१ । ३४

५६ भ्रमरावली— (भ्रमरावती, मनहरण, नलिनी अपरनाम)

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण पांच सगण।

उदाहरण— इतमैं इम पत्तन इन्द्रप्रस्थ भयो।
रहिकैं वसु बासर केतन मट्टि दयो॥
पुनि सैन परग्गन कों घुजना पठई।
भटता बिच सुरय सुतोक भयो बिजई॥

—वंश०

५७ मदनावतार—

मात्रिक छन्द— प्रत्येक चरण में २० मात्रा (४ पंचकल)
१० । १० (या ५ + । १०) पर यति

उदाहरण—

भुम्मि डगमग्गि गिरि शृंग जंगम भये, छिप्पि निभ काल करभाल लहक्क छये।
साम विधि जानि कवि दुर्गडिग है सिविर, कदन निज टारि लहि तेहु गय दूर फिर ।।

—वंश० २२६३ । १८

टिप्पणी— छंदप्रभाकर में इसका नाम अरुण दिया गया है।

५८ महामृगेन्द्र— इस नाम का छंद अप्राप्य है।

मात्रिक छन्द—गणना से इसका लक्षण 'हंसाल' के अनुरूप (प्रति चरण ३७ मात्राएं अंत में यगण) बैठता है।

उदाहरण—

जैम सतरंजको सारि अनुकार मल्लार निज ओर आगे बढावे।
इहु प्रतिमल्ल हरवल्ल रचि हल्ल हम्मीर बरनीर बुंदी चढावे ।।
इहु सामन्तहर नाम हरजन सु नूर सचिव भे सेन इक ओर जुज्झै।
मेघ आसार अपकार संधार मिलि अप्पन रु पार नहिं नैक सुज्झै ।।

—वंश० ३५१६ । १२

५९ मनोहरम् —

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण ११ वर्ण १६ । १५ पर यति अथवा ८ । ८, ८ । ७ पर यति।

उदाहरण— निकसी हिमालय तैं, सुचक कालिंद करी।
इन्द्रप्रस्थहीसों लाह, चलतैं भयो करी ।।
हेमजुत बेदी थान, प्रमुख पुरातन।
पदार्थ परि कामों जाति, कविद मनोहरी ।।
संक्रमर पूरन व्है, विप्रनन लीनैं छत्र।
चामर हरखन दइ, चमन छयो करी ।।
मानुजा समुद्रनमों, मु कों भुगति के दुरि।
सजुन के सुबरि, निरंतर दरोकरी ।।

—वंश० ५१६ । ३८

टिप्पणी— उद्धृत छन्द के द्वितीय चरण में ८, ७ और ६, ७ पर यति है। यति का

ठीक निर्वाह नहीं हुआ है किन्तु लय-प्राधान्यमय। इस छन्द में इस यति-विपर्यय से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

६० मंजुभाषिणी (कनकप्रभा, सुनंदिनी, कोमलालापिनी, अपरनाम)

वर्णिक वृत्त– स ज स ज ग

उदाहरण– जिहिकाल भूप रविमल्ल जन्मयो,
गुणतर्क चंद्रह प्रमान साक भो।
श्रुति नाग भूत ससि भूपता भई,
गज भट्टबाज महि पै तनू गई॥ —वंश० २१८१। ६३

६१ महाचच्चरी (महागीतिका– अपरनाम)—

वर्णिक वृत्त– प्रति चरण गण– र त ज ज भ र ल ल

उदाहरण–

चिल्ह गिद्ध सियाल संगहि, जुग्गिनीन जमाति लग्गिय,
दीपमाल समान है सुर, लाल श्रावन ज्वाल जग्गिय।
रहै धरातल धुंधि लोकन, रुधिकैं चकचुंधि मढ्ढिय,
भायसों चहुकाय चंढिय, त्यों महाभट भाय तढ्ढिय॥ —वंश० ७५५। ३

टिप्पणी– चच्चरी वृत्त के चरण के अन्त में दो लघु जोड़ देने से महाचच्चरी बनता है।

६२ महापद्धति—

मात्रिक छंद– पद्धति या पद्धतिका या पद्धरिया या पज्झटिका या पाधड़ी : प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं अंत में जगण। प्रथम और तृतीय चौकल मे जगण नहीं (द्वितीय चरण में कभी-कभी जगण देखा जाता है) के दो चरणों का महापद्धति में एक चरण होता है।

उदाहरण—

सुनि यहहु रान गिनि जियत सूर, प्रेरिसु हय उप्पर कुपित पूर।
भूपति के मस्तक अग्रभाग, मारिय कृपान कछु भुकि कुमाग॥
अलिकारिय उलटि कटि हनन घात, पच्छो जमाइ तिहिं पेच पात।
आवत गर्तातट अहित अथ, बुंदीस गहिय हय जेरबंध॥

—वंश० २१८३। २१

६३ महासुन्दरी—अपरनाम दुर्मिल :

वर्णिक वृत्त– प्रति चरण ८ सगण

उदाहरण–

> गुनि यों मन मानों विमानों महा, महिपत्त सुसुन्दरि अैनो परयो ।
> दुव बेर बही हमरोही हुतो, तब दम्म त्रिसरब दै संनौं परयो ॥
> मुनि मोह समाप करी अपतिह, भयो तब रामको मैनो परयो ।
> लिय साहकौं सेय जो रामपुरा, गु हती कछवाह कौं दैनो परयो ॥

—वंश० ३१०१ । १६

६४ मानवाकम्—

मात्रिक छंद– प्रति चरण १६ मात्राएं, नवीं मात्रा लघु ।

उदाहरण —

> जब बुंदीस मनसु दृढ़ जाग्यों, तब छिग जाइ रुदन घन ठान्यों ।
> रनप्रभु भरि उर पाहि सुहायो, इम पुरमो ठिहि छबिहि उड़ायो ॥

—वंश० २१८६ । ३७

टिप्पणी—छंदप्रभाकर में इसका नाम मत्तसमक दिया है । गति चौपाई के जैसी होती है, वस्तुतः यह चौपाई का एक प्रकार है ।

६५ माहिनी—बरवती अपरनाम :

मात्रिक छंद—विषम चरणों में १२ मात्राएं ।
सम चरण में ७ मात्राए ।

उदाहरण—शुद्ध कनकमय सुंखल, प्रभु जुग पाय ।
नायक पदि बिच निर्मल, सुरुचि सहाय ॥ —वंश० २१८४ । २६

टिप्पणी—इसका प्रसिद्ध नाम बरवै है ।

६६ मुक्तादाम (मोतियदाम—अपरनाम)

वर्णिक वृत्त—प्रत्येक चरण में चार जगण ।

उदाहरण— पृथा तब पोखि । बडे किय बाल ।
रही मुनि आश्रम कोउक काल ।
तिन्हैं मुनि लै गजपत्तन आय ।
दये सिसु स्वीय कुटुम्ब मिलाय ॥ —वंश०

६७ रुचिरा —

मात्रिक छंद—प्रति पद ३० मात्राएं, १६।१४ पर यति
चतुष्कल में जगण निषिद्ध ।

उदाहरण—

> अमित जनन सब ऋतु जंहं पविसन माधव ऋतु सरबस्व मिलैं,
> अलि खगगन गुंजन कूजन इत खिनखिन जित तित कुसुम खिलैं ।

महकि सुगन्ध मन्द हिम मारुत हिय संगहि श्रम सबन हरैं,
वासन रुचिर अगार अखिल जग प्रथित न थोरहु जानि परैं ॥

—वंश० २६३६ । २४

टिप्पणी—छन्दप्रभाकर में यति १४।१६ पर बताई गई है। इसमें यति १६। १४ पर है, दोष लक्षणानुरूपता है।

६८ रोला—

मात्रिक छन्द— प्रति चरण २४ मात्राएं ११, १३ पर यति।

उदाहरण— तदनु सव्य कर नरवर। तदनु दाहिन पयके पुनि।
वाम चरन के विहित। लयं मुद्रक उतारि लुनि॥
पुनि सिर दक्खिन देस। कंस कंकन सवारि सब।
मंत्र सहित तिहिं कलस। तोय करि करिय प्राइं तब॥

—वंश०

टिप्पणी— रोला के चारों पदों में यदि ११वीं मात्रा लघु हो तो उसे 'काव्य' छंद कहते हैं। (छ० प्र० ६१) उद्धृत छद के चारों पदों में ११वी मात्रा लघु है अतः इसे 'काव्य छंद' भी कह सकते हैं।

६९ लीलावती—

मात्रिक छन्द— प्रति चरण ३२ मात्राएं (आठ चतुष्कल) अन्त में सगण (द्र० वाणी भूषणम्)

उदाहरण— अद्दो तटिनी पहुंचत नृप अविश्रय भट बर आवहु क्यों न भले।
संसे प्रभु बिनुहि भले तिन अविश्रय चलहु तुमहिं हम नाहिं चलैं॥
गिनि सब बदल सब बदन बिगारत सिटि परतट सुरतान गयो।
भूपति के अनुमत में जो जो खलजन हो सो सो संग भयो॥

—वंश० २३२५।

७० वसन्ततिलकम् (वसन्ततिलका अपरनाम)

वर्णिक वृत्त— प्रति पद त भ ज ज ग ग

उदाहरण— सो चित्रकूट सुनि अर्जुन अगना हू।
थो सुर्जनादि सुत सप्तक लै रु साहू॥
छत्रैहि निष्क्रमि सबै तिहिं सोक छाई।
बूंदहि आवत भई बहु भू बिहाई॥

—वंश० २१९०

टिप्पणी—कवि ने इसे

७१ वानवासिका—

मात्रिक छन्द— प्रतिपद १६ मात्राएं।
९ वीं, १२ वीं मात्राएं लघु।

उदाहरण—

रुकत न तदपि सु गहि भसि रुट्टो, बपु तिल तिल करि प्रहरन कुट्टो।
रन कूंप परत उठाइ राना, खलजन बहु भजि गये खिसाना॥

—वंश २१८७। ३१

७२ विश्लोक—

मात्रिक छन्द— प्रतिपद १६ मात्राएं, ५वीं, ८वीं मात्रा लघु।

उदाहरण—

इहिं अन्तर परजन कहि आये, रानहि गहि भजिवे बतराये।
हल्ल कहिय यह छवि छिन है हीं, इनके सबेहु इहां लखि लैहीं॥

—वंश० २१८६। ३८

७३ विशेषपदाकुलकम्— इस नाम का छंद अप्राप्य है।

मात्रिक छन्द— प्रति चरण १६ मात्राएं।

उदाहरण— पैं हम सबहिं जरहु ह्यां पुत्री।
तुम पिय छ मरि हुनै भतनुत्री॥
कम इम पुनि शृंगारहु कीजैं।
दहत रु निज हित यह सब दीजैं॥ वंश० २१८७। ४४

टिप्पणी— यह एक मिश्र छन्द है। इसके द्वितीय और तृतीय चरण 'उपचित्रा' के हैं।

७४ विशेषोपचित्रा— इस नाम का छन्द नहीं मिलता। इस पर 'उपचित्रा' का लक्षण घटित होता है। यथा—

उदाहरण— जतन कियउ रट्ठौरिहु जैसें, निज सत मास सुर्यो तहं तैसें।
सब भृति सुद्धि यहै जब आई, बंटिय बहु रट्ठौरि बधाई॥

—वंश० २१८७। ४२

टिप्पणी— उपचित्रा विशेषोपचित्रा और सामान्योपचित्रा में अन्तर स्पष्ट नहीं होता।

७५ शार्दूलविक्रीडितम्—

वर्णिक वृत्त— प्रति चरण-म स ज स त त ग–१२, ७ पर यति

उदाहरण— भज्जै नारदहू बजाय महती, घुम्में घराने घनें।
भूमैं रत्तन भूत डाकिनि भटी, बट्टैं बधाई बनें॥
भूमैं सीस गिरै न क्यों मदन के, ह्यों खेम संभू तनें।
भूमैं साकिनि भूत पत्त भभरें, धक्कै गिरै उप्फनें॥

—वंश० २११३। १

७६ षटपदी—

मात्रिक छन्द— रोला + उल्लाला

उदाहरण—

सतत छमा सौमित्रि। करत निन्दा अब अप्पन।
यातें सर धनु आनि। मोहि अप्पहु अब अप्पन॥
सुनत चाप सर संस। दये ओरे जगनायक।
हुव त्रिभुवन हाकार। देखि आकृति भयदायक॥
कटि भीर दृक्क जोजन अवधि। कांति हरित नीरधि कढ्यो।
रुचि दिव्य वसन भूषन धरत। पायन परि हायन पढ्यो॥

—वंश० ८८७। ३३

७७ सम्पुलता—

वर्णिक वृत्त—इस नाम का छंद नहीं मिलता। पिंगल सूत्र में 'सयुक्तम' और रघुवर-
जसप्रकास में 'संजुता' नाम से जो छंद विवेचित हुआ है उसका लक्षण
(प्रतिपद स ज ज ग) इस पर घटित होता है। यथा—

उदाहरण—रन भू धुराह दु रान को, कति लै भजे गत प्रानकों।
जिन्ह धम्मली छट जातही, धुनि बहु वाहन की थही॥

—वंश० २१८६। ५३

७८ सामान्यकुलकम्—

मात्रिक छंद—इस नाम का छंद अप्राप्य है। गणना से इसमें प्रत्येक चरण में १६
मात्राओं का नियम सिद्ध है।

उदाहरण—सह सट रिपु सुत मरत सुनत ही,
अन्य निजहि गिनि सीस धुनत ही।
तनय बधून थविय सेतू तब,
इच्छहु संग जु होहु भली अब॥

—वंश० २१८७। ४३

७९ सामान्योपचित्रा—इस नाम का छंद अप्राप्य है।

मात्रिक छंद—गणना से यह उपचित्रा (८ + ग + ४ + ग) सिद्ध होता है—

उदाहरण—

अविलय निज सम्मुहि बहू यों, जेठी भगिनी दृष्ट बनें ज्यों।
जिम पुरजन ढिग हास न आवै, रखिय हम दु उच्छाह रचावै॥

—वंश० २१८७। ४१

८० सारंग—

वर्णिक वृत्त—प्रत्येक चरण में चार तगण।

उदाहरण—वैरीन + कौ बंट + ते विन्कु + रे बीर,
मायै न ही दंस ज्यौं उफनैं छीर।
धायो सबै सेह के मेहं लौं पैन,
भ्युत्थान ह्वै उद्धरे ईसके मैन॥

—वंश० ११५०।२५

८१ सुदन्तम्—

वर्णिक वृत्त—प्रतिपद स य स ज ग

उदाहरण—

इत नैर आमेर कुलीम अपनी भगवंतसिंहाभिध आहि भुवनी।
मुगलेस सेवीसुत मारमल्लको, भगिनीसुता आदिन ईप्सुमल्लको॥

—वंश० ९१६१।६५

८२ सुपंखो (गीत सपंखरो)—

राजस्थानी गीत : लक्षण—चार दोहले, प्रत्येक दोहले के दूसरे और चौथे चरण के अन्त में गुरु लघु तथा तुक विन्यास प्रत्येक दोहले के विषम चरणों में १६ वर्ण और सम चरणों में १४ वर्ण किंतु प्रथम दोहले के प्रथम चरण में १८ वर्ण अर्थात दो वर्ण अधिक : जो गीत का प्रारंभ सूचित करता है।[1]

भूमी लागरैं लुभाणौं डाणौं संपाति रूपरा मड़ां,
लेतां ताणौं बगारैं भूपरा लग्गी लीह।
अघायो खागरैं बीसमागरैं ऊपरा आयो,
सालमेस नागरैं धूपरा भीमसीह॥ १

घटा बीज घाटकी उतौले खागां बीर घाचैं,
रटा अवाटकी बागां घोले नागां राढ़ि।
दै कावो रामरैं छटा बिहंगराटको दौळे,
फटा सेना बिरौळै झाटको फाड़ि फाड़ि॥ २

हाणा थोक कोक जांगी पंतरा रूड़ाया हाकी,
लोक चचा केवाणां छुडाया बीर ताज।
पाणां थोक संभरी असंख्या के उडाया प्राणां,
बाणां सोक पंखों के उडाया बूंदीवाळ॥ ३

---

१ प्रो० नरोत्तमदास स्वामी—डिंगल गीतों की सारिणी, राजस्थान भारती ..भाग २ अंक १ जुलाई १९४८

काटी मुंड मंडा ले किशोर दूजैं दाटी कोपि,
सैना फटा फटी मैं कटार पंजा भाजि।
गौनतंय भीमरी सपाटी तेग घायँ बचैं,
भोगी भोगीरामरो त्रिपाटी गयो भाजि॥ ४

—वंश० ३०७३-७४। ३६

८३ सौराष्ट्री दोहा (सोरठा)

मात्रिक छन्द— विषम चरणों में ११ मात्रायें।
सम चरणों में १३ मात्रायें।

उदाहरण— इत चित्तौर प्रसंग, सुर्जन जस सट्टिय प्रथम।
जित्ति सकरपति संग, पुर तानों लिखी प्रथम॥

—वंश० २१११। १

८४ हरि-गीतम् (हरिगीतिका अपरनाम)

मात्रिक छन्द— प्रत्येक चरण में २८ मात्राएं १६, १२ पर अथवा १४, १४ पर यति
अन्त में लघु गुरु।

उदाहरण—

कटि मग्न अंग त्रिभंग की करकंज काहुक चंपयो।
कुचभार लंक बिसंक तुट्टत मानि आश्रय कै लयो॥
इकसार भेद प्रकार वरजित रास को फिरनो भयो।
आवर्त अद्भुत मानि यह शृंगार वारिधि में बयो॥

—वंश० १७२। २६

८५ हरिपदम् (हरिपद अपरनाम)

मात्रिक छन्द— विषम चरण १६ मात्राएं।
सम चरण ११ मात्राएं अन्त में गुरु लघु।

उदाहरण— बसु चेतन जुत भूप रानको, मोहित मुच्छन भाइ।
तउ करवरहि रह्यो झुकि जो तब, रिपु सिर सिरहि मचाइ॥ २१

—वंश० २१८४। २१

८६ हनुमत्फाल (प्रसिद्ध नाम हनूफाल)

मात्रिक छन्द— प्रति चरण १२ मात्राएं।
चरणान्त में जगण।

उदाहरण— करुरी महाबल मान।
पटयो सु वंश प्रधान॥

तिहिं सिन्धु नदि पर तीर।
सुवा सम्हारि समीर ॥ वंश० २४७७ : १०

८७ हीरकम् (हीरक, हीर अपरनाम)

मात्रिक छन्द— प्रतिचरण २३ मात्राएं,
६, ६, ११ पर यति अंत में रगण

उदाहरण— कसमसि फन सेस सँह कुंकरि हुव कुंडली।
नासत किरि नाग मथकि नागुन बिष टुंडली ॥
पाधर निभ घन समिटि कच्छप पिचटौ परयो।
प्रोषित अवलादि पुटन संकट घन स्वीकरयो ॥

—वंश० २२८५ : ६

टिप्पणी— छन्दप्रभाकर के अनुसार आदि में गुरु होना चाहिये।
यह इस छन्द के प्रथम चरण में नहीं है।

अध्याय १०

भाव-व्यंजना एवं रस-निष्पत्ति

सूर्यमल्ल वीर-रसावतार है तो वंशभास्कर वीर-रसार्णव। वंशभास्कर का हेतु-भूत एवं प्रधान रस 'वीर' है। अन्यान्य रस इसके आश्रित अथवा उपकारक मात्र हैं; जिनका समावेश इसे व्यापक तथा महत् बनाने के लिए हुआ है।

महत्वानुक्रम से रस-योजना की स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

१ वीर
२ वीभत्स
३ भयानक
४ अद्भुत
५ रौद्र
६ शृंगार
७ करुण
८ हास्य
९ शान्त

वीर-रस

वीर रस के उदाहरण पग पग पर मिलते हैं। वंश-वर्णन, विवाह-वर्णन आदि के अतिरिक्त वंशभास्कर का समस्त कथ्य वीररसापूर है। पुष्ट वर्णन-योजना, विस्तृत विभाव वर्णन कलात्मक अनुभाव चित्रण; और भावानुरूप भाषा-प्रयोग से वीररसाश्रित सभी वर्णन अनोखे बन पड़े हैं। वीर के स्थायी भाव (उत्साह) को स्वार्थ, परार्थ, लोकसम्मत, लोक विरुद्ध आदि सभी रूपों में प्रस्तुत करके कवि ने वीर-रस का वर्णन किया है। वीर-रस सम्बद्ध वर्णनों की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन्हें अद्भुत, रौद्र, भयानक, और वीभत्स अर्थात मित्र रसों से सम्पृक्त करके उठाया गया है। कहीं-कहीं तो वीभत्स में शृंगार और वीर में हास्य तक का पुट दे दिया गया है। ऐसे स्थल शास्त्र-रूढ़ि के विपरीत कवि की इस मान्यता के प्रमाण हैं कि परस्पर विरोधी माने जाने वाले रस भी पारस्परिक उत्कर्ष का कारण बन सकते हैं। वीर सतसई में भी उसने 'वयण सगाई वाळिया पैखीजं रस पोस" कह कर यह सिद्ध किया है कि निरालकृत वाणी का प्रयोग करके भी रस का सपोषण भली भांति किया जा सकता है।

असुर - दलन के निमित्त अग्निकुण्ड से क्रमशः प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चहुवाण की उत्पत्ति होती है। एक के बाद एक वह्नि - पुत्र दैत्यों के साथ संघर्ष करते हैं। यहीं से वीर का उत्स फूटता है जो रचना के अंत तक प्रवाहशील रहता है।

प्रथम आहुति से एक तेजोमय पुरुष की उत्पत्ति होती है "तातैं सुतज प्रकट्यो पुरष पुंडरीक निज गोचपर" उसे प्रतिहार नाम दिया जाता है "नामधेय प्रतिहार ताहि प्रत्यिय विरंचि तब"। असुर - विनाश के लोक - सम्मत परार्थ हेतु उसका उत्साह देख अप्सराएं सजकर नाचने लगती हैं। "किय गान नच्च अच्छरिगन सज्जिय" वसिष्ठ जैसे महात्मा मुनि उस वीर - पुरुष की स्तुति करते हैं 'बुल्ले वसिष्ट बिरदाई तिहि तू सूर कारण सिद्धि हित।' अब वह वीर उद्धत उत्साह में भरकर रणहुंकार भरता हुआ शत्रु पर चढ़ता है (वंश० ३५६।६-७)।

आलंबन - पक्ष (शत्रु) भी कम नहीं हैं। उनके शक्ति-साधन—उल्का, उपल, अनल, प्रसनि, पव्वय (वंश० ३६१।१२) अपेक्षाकृत अधिक प्रखर, अजेय तथा मायावी हैं। दो विकट योद्धा आमने-सामने हैं— देव - सहायक प्रतिहार और देव-दाहक बाणासुर-सुत। युद्ध की विकराल त्वरा का हाल यह है—

> बिसिखन पर प्रति बिसिख त्रिसिख छुट्टत त्रिसिखन पर,
> सगिन उप्पर संगि कुंत पर कुंत भयकर।
>
> गदा गदा हल चलत खग्ग मुल्लत मरि खग्गन,
> मुत्तादिक आयुधन मचत इम वार समग्गन॥
>
> धकधकत घाय सोनित छलत चलत राह रविरथ थकिय,
> प्रतिहार राज इत उत प्रबल धूम्रध्वज जुज्झन छकिय॥ वंश० ३६०।८

वीरोत्साह-पूर्ण प्रतिहार की कर्म-चेतना भी कुछ कम नहीं—

> प्रतिहारहु बहु प्रदर मारि अद्रिन चूरन करि।
> जत्रकेतु उरजाय मल्ल बेधिय अमरख भरि॥
>
> सूचिलोमक सीस काट पंचक हनि कट्टिय।
> उल्मुक छर्दक कुम्भहि मारि मर्दक द्रुत दट्टिय॥
>
> रावन बिडाल किय तोरि रथ धूम्रध्वज हय सूत हनि।
> प्रतिहार बिंदु बुट्टत बिसिख पहुंच्यो पाउस मुदिर बनि॥
>
> —वंश० १३६१।१२

किंतु लोकसम्मत कार्य सदैव ही तो सफल नहीं होते। वीर प्रतिहार धूम्रध्वज के प्रखर प्रहार से अचेत हो जाता है—

> धूम्रध्वज इत अनिख सूल पटक्यो नृप छत्तिय।
> इहि छत होत अचेत सूत रोके रथ सत्तिय॥
>
> —वंश० ३६१।१३

देवगण भयभीत होते हैं, किंतु उत्साह स्थिर जीवन्त भाव है; वह तब तक रहेगा जब तक कार्य सम्पूर्ण नहीं हो जाता। अतएव विष्णु धैर्य देते हैं—

सोचहु मन मुनि सक्र सुर , प्रतिहत लखि प्रतिहार ।

—वंश० ३६१ । १५

नया आत्म विश्वास उत्पन्न होता है और पुनः कर्म-योग प्रारंभ हो जाता है—

इम अच्युत आदेस सुनि , सुरन लहिय विस्वास ।
कलस गढहु हुतिहार को , नासत्यन किय नास ।।

वशिष्ठ आदि मुनिगण देव-कर्म के सहायक हैं । तीन-तीन बार असफल रहने पर भी वे हिम्मत नहीं हारते और अध्यवसाय और धैर्य के साथ वीरातिवीरों की सृष्टि में रत रहते हैं ।

दूसरी बार चालुक्य का प्रादुर्भाव होता है । ब्रह्मा की कामना से उसके उत्साह में विशिष्ट उफान आता है । उसके धनुष की टकार सिंहनाद की भांति गरजती है और शंख-नाद से प्रेतादि भयभीत हो उठते हैं । यथा—

दे विरिंचि आदेस यहहु पिल्ल्यो असुरन पर ।
तबहि हुंकि चालुक्य बढ्यो सज्जित सताग वर ।।
संगर मंडिय जाइ बंदि विरुदन छक धारत ।
नद्दत मृगपति नाद चढ चापहि टकारत ।।
प्रेतन डारत रचि संख रव रारि रसिक विधुरात मह ।
गरदाइ असुर चालुक लये दे स्यदन कावा दुसह ।।

—वंश० ३६४ । ६

वह प्रचंड शक्ति के साथ असुरों का विनाश करता है — 'तुरग भेदि रथ तोरि फोरि दृग इकक-काण किय' (वंश० ३६४।८)—तथापि कर्म साफल्य न बदा था सो न मिला - चालुक्य भी अचेत होकर गिर पड़ता है—असुर प्रफुल्लित होते हैं । फिर भी अध्यवसाय का अंत नहीं । अब वीर परमार , चालुक्य का स्थान लेता है । वह वीर-कर्मा उद्दण्ड प्रचंडता के साथ असुर-वैरियों पर चढ़ता है और वे फाल्गुन के वृक्ष की भांति झड़ जाते हैं —

ते ते सब तिन कट्टि दूरहि फग्गुन तरु किन्नों...

—वंश० ३६५ । १५

तथापि असफलता ही नियति के विधान में थी सो वही मिली ।

चौथी बार वीर चहुवाण की उत्पत्ति होती है । कवि ने यहां विस्तृत भूमिका बांध कर चहुवाण के उत्साह को परिपुष्ट किया है । देव-जयघोष एवं पुष्प-वर्षा के मध्य वह प्रचंड सूर्य की भांति उदित होता है जिससे शत्रुओं के मुख पीले पड़ जाते हैं —

सुर हुव सकल प्रसन्न लगे मुनिवर जस भक्खन ।
जय रक्खन यह जानि बजे दुन्दुभि दिव लक्खन ।।

सौरभि अनेक बरखे सुमन भुवन जय जय भयो।
मल भाग सुरूप अनु तजि उदय अब अर्बुद रवि उगयो ॥

—वंश० ४०० । ६

पंकजता पाई विप्र विबुध विविध वृंद,
पाई चक्रताई मीठि निगम विचारेनें।
असुर असारे ने महादुसह मीति पाई,
ज्योति पाई जित तित सुजस उजारेनें ॥
सोनपुर पाई हरदाई अरदाई करदाई,
ज्यों लुकाई पाई त्रास जगतारे नें।
असुमालि अतुल चुहान के उदय होत,
उदयता पाई श्री सदाशिव के सारे नें ॥

—वंश० ४०१ । ७

चहुवाण के उदय मात्र से शुभ लक्षण प्रकट होने लगे—'प्रान के निधान चहुवाण के वढ़त पुरैं दाहिनैं पुरंदर के बाम अंग बान के' (वंश० ४०१ । ८) देवगण शुभ कामनाओं सहित उसे अस्त्र-शस्त्र प्रदान करते हैं और नव बल से पुष्ट बनाते हैं। तब युद्ध क्षेत्र में छका वह वीर विजयघोष करता हुआ असुरों पर चढ़ता है। यथा—

प्रभु देव विप्रन पुज्जिकैं चहुवान संगर पैं चढ्यो।
विजयावलोकन को उछाह समस्त लोकन में बढ्यो ॥
उततेंहु आतमज बान के चहुवान के सिर चक्कमें।
अति निम्न ढाल विसाल ज्यों फनजाल आलुकर्के नमें ॥ ३
जिम तैल भाजन बर्तिका रसना हजार उभे कढी।
बलि होत दतुलि चीर पीर बराहके सिरमें बढ़ी ॥
मृत ज्यों लहैं पुनि प्रान अद्रिन सब जंगम यों भये।
नभसिंधु नीर उड़ान लैं पवमान लैं घन ज्यों गये ॥
कमठेम को उर त्यों भट्यारन की अधिश्रयनी भयो।
प्रजराव ताव अलाव कालिक पूपिका जिम पक्कयो ॥
... ... वंश० ४१६ । ४

वीर-रस के परिपाक में यहां भयानक और अद्भुत मेल द्रष्टव्य है। आश्रय और आलंबन दोनों की प्रचण्डता, भाव को सशक्त बनाने के लिए प्रतिष्ठित की गई है। युद्ध-दर्शन का उत्साह संपूर्ण लोक में फैल रहा है। इधर आलंबन पक्ष के सेना-भार से शेष के अनड़ (अनम्र) फन भी झुक गये हैं। अत्यधिक भार-श्रम से उसकी दो सहस्र जिह्वाएं बाहर निकल गई हैं तो उधर बराह की दतुलि चिर गई है, पर्वत उड़ गए हैं, सागर में प्रलय मच गया है—चारों ओर खलबली मच गई है। कच्छप की पीठ मानों भटियारी की भट्टी बन गई है जिस पर रण चण्डी ने वीरों के मालपुए बनाने का उपक्रम किया है।

इसी प्रकार प्र.गे (वंश० ४१६ । १–९) भी भयानक और बीभत्स परस्पर मिल कर वीर के उत्कर्षक बनते चले गये हैं।

शत्रु-असुर वीर चहुवाण पर टूट पड़े हैं (वंश० ४१६ । १७–१९) और यह वीर प्रचण्ड त्वरा से एक के बाद एक शस्त्र उपयोग में लेता जा रहा है—भुर चाप कट्टुत खगिसें पटकी नरेश्वर सीसपै, जिम दंत तुट्टुत केहरी करसूक बाहत रीसपै (वंश० ४२० । २०) वीर के दृढ़कर्म और संचारियों के गतिपूर्ण-चित्रण कवि-कौशल का परिचायक है। यथा—

> उडु ज्यों बहै तब दिट्ठि भात बहोरि बानन विथयो।
> यह मेह को फल छेहको खल देहको खलको भयो॥
>
> मुरकी मनो मुरकी मनीर रही मनीर विचारिकैं।
> तब कालिजिव्ह हु भारि मुद्गर भ्रां जुरयो झलकारिकैं॥
>
> —वंश० ४१२ । २४

एक के बाद एक दैत्य रणमंच पर आ रहे हैं—हय बाग लैं नव भाग व्है बक खग्ग भारिय आनिकैं (४२१ । २६)—परन्तु वह वीर अंगद के पैर की तरह जमा हुआ कर्म-रत है। किंचित् शैथिल्य अनुभव करने पर देवी का चिंतन करता है—क्छु बोहरं पति मोह आगम चंडिका नृप चितई (वंश० ४२२ । ३०) और प्रबोध............ 'न होवहु पुन विव्हल सु बिजैं लहि है' (वंश० ४२२ । ३२)—पाकर फिर से नव-प्रान-शक्ति से भर जाता है—'अमु धामु पूरिय अम्ब तें यह्ो आनि कें'......(वंश० ४२२ । ३२) यों हिये में हुलास भर कर—छनहीन व्है हुलस्यो हिये...... (वंश० ४२३ । ३३) वह काल-भूर चहुवाण दैत्य सेना में बीभत्स का ठाट खड़ा कर देता है। बावन वीर उत्फुल्लित होते हैं— 'भट भीर में जंह वीर बावन है खुरी करते फिरें'— चौसठ योगिनियां नीड़ासक्त होती हैं— 'परनारि जुव्वनमत्त ज्यों चउसट्ठि मच्चत रत्त व्है' कबंध घूमते हैं– 'मद अंध महन्न के समान कबन्ध बस्यनसों भिरें' –गज टूटते हैं, 'प्रति उक्क छिन्न मंड ज्यों कहुं कुंभ हस्थिन उत्तरें– 'शोणित-नद उफनता है'– कटि काय सायक घायके कटि घाय सोनित उच्छकें' (वंश० ४२४।३८-४०)–और वह वीर साक्षात् प्रलयंकर– 'दहा को भय '–बन कर वज्रास्त्रों से शत्रु रूपी पर्वतों को रुई के समान उड़ाता चला आ रहा है– "पवि अस्त्र घाय उड़ाय तूनै पुनि तूल संचय से दये" – (वंश० ४२७।१०) उधर प्रचण्ड शत्रु धूमकेतु की दृढ़ता भी कुछ कम नहीं। यथा—

> ...   .
> दुव पानिसों इन भारि ए खल बान सुन टट्टयो॥
> एक सैंगि सैं खल हत्थ मुच्चिन विज्जु की बहिनो बढ़ो,
> पुनि भूर के रथवाहु भेदि भुजाह सें गिरि में गरी॥
>
> —वंश० ४२७ । १३

यहां प्रत्यनीक अलंकार से भूत डाकिनियों द्वारा वीर की जो प्रशंसा करवाई गई है[1] वह उसके उत्साहधर्मी कर्मशीलता की प्रतीक है। एक ही बार में मारुत मेघ और वरुणास्त्र के प्रयोग के साथ "इक सत्थ मारुत, म्राम्र वारन म्रस्त्र डारिय म्रायके" (वंश० ४२८।२६) चहुवान वीर बड़वाग्नि की भांति लपकता है—जालतें महिपालहू बड़वागि सागर तें कढ्यो" (वंश० ४२८।२७) और कराल काल बनकर शत्रु के प्राण हर लेता है। यथा—

तिहिं काल काल नृपाल कौं विकराल विस्तरतहीं बनैं।
अति भाल ज्वाल अराल भ्रकुटि लाल अविछिन ऊफनैं॥
जिम कुंभके उर सूल सक्ति सु सक्ति यों नृप मुक्कई।
लगि दुष्ट के उर पुष्ट चंदन जुष्ट जो असु लेगई॥

—वंश० ४२८।२९

कार्यसिद्धि के फलस्वरूप वीर का प्रताप दिगन्त में व्याप्त हो जाता है। लोकमंगल वीरोत्साह को चिरस्थाई बना देता है—

सुअसौं दिवाकर सप्त दीपन सोसपै तपनें लग्यो,
जुग वेद अग्गन सप्त तत्तुन ज्वाल कुंडन में जग्यो।
लहि अट्टसप्त अवार पारन सिद्धि निश्चलता लई,
स्वर सप्त सुंदर गायकी उरगायकायसि की भई॥

—वंश० ४२९।६२

वंशभास्कर में वीर-रस का प्रत्येक वर्णन इसी प्रकार अन्य रसों से परिपुष्ट होकर पूर्णता को पहुंचा है। भाषा-काठिन्य थोड़ा अवश्य है किंतु कथंचित् आयास से यदि काव्य-शास्त्रण किया जाय तो एक से एक बढ़ कर सुंदर वर्णन मिल जायेंगे। यों कहिये कि महासागर की गहराई में जाने पर जिस विविधता और नवीनता के दर्शन होते हैं वैसे ही इस वीर-रसार्णव में अवगाहन करने पर वीर-रस अपने नये-नये परिवेशों में हमारे सामने आता है। प्रत्येक वर्णन पूर्व-वर्णन से भिन्न है। यह वर्णन वैविध्य कवि की अपनी विशेषता है जो पाठक को अगला वर्णन पढ़ने की उत्सुकता में बांधे रखती है। कुछ और वर्णन-प्रसंगों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

ईरानी आक्रान्ता अबूरर के विरोध में देश-रक्षक, अमरवीर गोग चहुवाण की वीरता का प्रकाशन इस महाग्रंथ का एक उद्बोधक प्रसंग है। गोग के मामा से अपदस्थ होने के

१—बहु विधि कौतुक भूत डाकिनि हुंकि तालिन दै हसै,
जिहिं दुष्ट के रहट्ट त्यों हनतैंहि दीननि बसै।
जय संबरीन कह्यो तहां हमकौं हनैंहिन जिमि हो,
चहुवान चड्ड प्रतापको बलवान बिरद बिलि हो॥

—वंश० ४२८।२६

कारण भोजकट का स्वराज्य गोग को दे दिया था। गोग के मौसेरे भाई गौड अर्जुन और सुर्जन बंट लेने हेतु आते हैं—'प्रधीस कंबोज के तुम करनाट नरेस। मातामट्ट गौभव अमित, दुव मिलि मुग्गहि देस' (अंश० ७५२। २०) सम्मान के प्रश्न पर गोग उन्हें अब कैसे बट दे सकता है? वह वीर अपनी भोग्या वसुन्धरा का बटवारा कैसे कर सकता है? वह कहता है—'माता मट्ट के मरते समय तुम आते तो तुम्हें भी कुछ मिल सकता था। उन्होंने तो तुम्हें बुलाया तक नहीं। अतः हम तुम्हें अब कुछ भी नही देंगे', दान स्वरूप तो तुम सब ले सकते हो—शक्ति से कुछ नहीं मिलेगा—

देव गये भुव मोहि दे, भाग चहत तुम आज।
दान लेहु देहों अखिल, कछु बल सों नहिं काज॥

—अंश ७५२। २२

शत्रुता का बीजारोपण यहीं से होता है। 'वीर भोग्या वसुंधरा' मत के अनुयायी भला भूमि का दान लेंगे? धमकी से अपना भाग छोड़ेंगे? भव-देव के पुत्र अर्जुन-सुर्जन गोग से रार करते हैं किंतु भगा दिये जाते हैं।

वे जब देश में किसी को अपने स्वार्थ का सहायक नहीं पाते तब विदेशियों को आमंत्रित करके जन्म-भूमि के कलंक बनते हैं—

... .

जिन दिवसन ईरान पति, राजै कटक अनन्त॥ २५
पेस भरै जिहिं रूम लग, नाम अबूफर जास।
तासों किम प्रकार तब, गौड़न बटन आस॥

—अंश० ७५२। २६

उनकी नीचता देश-द्रोह, जाति-द्रोह किंबहुना आत्म-द्रोह की सीमा तक पहुंच गई है—

कहिय हमारे मुलक में, आवहु अमल जमाय।
हम तुमरे पय पारि हैं, सबहिंदुन समुदाय॥

—अंश० ७५३। २७

गोग का वीरोत्साह अब व्यापक रूप धारण करता है। केवल अपने राज्य या भूमि का स्वार्थ अब नहीं रहा। अब तो प्रश्न मातृभूमि की रक्षा, भारतीयता की आन और रजपूती गर्व का है। इधर अबूफर दिगन्त कंपित करता हुआ विशाल-वाहिनी के साथ चढ़ता है, उधर अटल वीर गोग उत्साह और आत्म-विश्वास में उफनता हुआ, मुस्कराहट बिखेरता हुआ उसे तृणवत् समझता है। शत्रु का आना सुन कर क्रोध से उसकी मूंछें ऊंची उठती हैं—

गोग हु स्मिति पुव्व सो सुनि मिच्छ को तृन मान मत्रिय।
छोहि मुच्छन उम्मरै कच रारि रीति रहै न छत्रिय॥

—अंश० ७५५। ४

गोग के इस देश-रक्षा के यज्ञ में देश-देश के वीर सहायक बन जाते हैं क्योंकि—

> मिच्छनों इक को बनें तु बने समस्तन को पराभव ।
> इक कारन एह भो भवजाय दुष्टन के सुर्व भय ॥
>
> —वंश० ७५६ । १०

किंतु उस वीर के उत्साह, आत्मविश्वास, दृढ़ता और वीर दर्प का प्रकाश देखिये कि वह किसी को अपने श्रेय में भागीदार नहीं करना चाहता । वह चाहता है कि देश रक्षा में जब वह तिल-तिल कर कट जाय तभी वे दूसरे युद्ध-कर्म करें—'गोग प्रविसर क्यों सरो तुम, मैं घनो सबहिं गिनो मत ।' —वंश० ७५६ । १०

और—

> हाथ विबलहु गोगके अबलों यह रन टेक उरज्झहु ।
> मोहि जा खल मारिकै इतकों बढ़ें तब सर्व जुज्झहु ॥
>
> —वंश० ७५७ । १२

सबको ऐसी सौगन्ध देकर वह वीर अपनी सेना सजाता है ।

युद्ध के भयानक वर्णन में कर्म रत वीर के अनुभावों के गत्यात्मक चित्रण बड़े गजब के हैं । प्रचण्डता, प्रघनता, अतमोह, त्वरा एवं वीर मद से भरा हुआ वह वीर म्लेच्छ सेना में खलबली मचा देता है । उसके बोर म्लेच्छों का भक्षण करने वाले सर्प होकर फँसते हैं । राहिरोग के निदान बनकर वे उनके उत्साह को भग करते हैं । प्रलयकारी सूर्य की भांति गोग शत्रु-सेना में सुशोभित होता है । शत्रुओं में प्रकम्प, वैवर्ण्य और भय भर कर वह वीर शत्रु सेना को मथ डालता है (वंश० ७५८ । १६-१८) ।

यहां पुनः भयानक और बीभत्स वीररस के पोषक बनकर वीर के कर्म को प्रकाशित करने आये हैं (वंश० ७५६ । २०-२७) । घोर गोग के प्रहारों से आहत होकर म्लेच्छ बनजारों के टांडों की तरह अटे पड़े हैं । उसके बाण भादों की घटा की भांति घटाटोप होकर छा गए है । लोथ पर लोथ ऐसी पट गई है जैसे बनजारों के डेरे पड़े हों । उस वीर के प्रताप का इतना आतंक फैला कि यवन-वाहिनी भाग खड़ी हुई । उसके भय के मारे कितने ही भागते हुए यवन धारा में डूब गए । कितने ही भवर में पड़कर नष्ट हो गये, कितने ही गोग को देख कर ऐसे उड़ भागे जैसे तांत पर रूई उड़ती है । यथा—

> गोग को असि चक्कित मिच्छन किन्न गड्डन की तयारिय ।
> लुत्थिनै लगि लुत्थि ज्यों बनिजार लोकन टंड डारिय ॥
>
> भट्टके भरको प्रभा चहुवान के सर की भई जब ।
> चाह ले घर की अटूकर की घनी सरको घनी तब ॥ २८
>
> नर्मदा तट पार लों अतिघोर मिच्छन हु कियो रन ।
> बार आवत निट्ठि निट्ठि लगे सबै मुख भाग भज्जन ।

स्रोत के भ्रम मे परे लि कितेक नाव समेत बुड्डिय।
वारहू लखि भूपकों खल तति तें जनु तूल उड्डिय ॥

—वंश० ७६१ । २६

वीर का उत्साह इनसे उद्दीप्त होता है। भागते म्लेच्छों की एड़ियों पर अगूठा दबाता था वह उन्हें घेर लेता है। घोड़ों को शीघ्रता से झपटा कर मजूफर की छाती पर भाला मारता है जिससे वह चमगादड़ की भांति रकाब से लटक जाता है (—वंश० ७६२। ३१)। अपने शरीर पर दो-सौ घाव खाकर वह गोग देश-रक्षा के कर्म में सफल-काम होता है (वंश० ७६२।३३)। इधर देशद्रोही अर्जुन का शिरोच्छेद होता है और उधर सुर्जन भाग जाता है। गोग की विजय के नक्कारों से दिगन्त गूंज उठता है।

चालुक्यराज भीम द्वारा विदेशी आक्रान्ता शहाबुद्दीन गोरी को स्वदेश में आमन्त्रित करने के प्रसंग में वीर पृथ्वीराज के उत्साह का उत्कर्ष चित्रित किया गया है—मरु-भाषा गद्य में। पद्य की भांति ही गद्य पर भी कवि का समान अधिकार है—यह यहां स्पष्ट है।

रस-वर्णन की शैली में भी नवीनता है। वीर पृथ्वीराज के विरोध में आलम्बन भीम राय अपने नीच बैर में गोरी को भागीदार बनाता है। उसके असूया भाव के कारण—इञ्छिनी—विवाह है (वंश० १३६३। १८)। पत्र द्वारा गोरी को लोभ का पिंड मिलाकर वह उसे अपना सहायक बनाना चाहता है। किंतु पत्र मे विजय-बंट के विषय में रखी गई शर्तों से गोरी भीम के प्रति कुपित हो उठता है और बात बदल जाती है—गोरी और चालुक्य भीम परस्पर शत्रु बन जाते हैं। चालुक्य-दूत सारंगदेव बड़बोले गोरी को राज सभा में खरी-खरी सुना देता है—

"जठे मकुवाण कही जवनारो जाति स्वभाव आपरो उत्कर्ष बणाओ परन्तु आजरो चालुक्य सारांही प्रत्यत देसांरो सरणों ॥ ... मुसलमानांरो जोर आपरेही घर रहे छै ॥ अर राजपूतां सूं मिलियां अदिरा उदक समान निस्सेस ढलि बहै छै ॥ वंश० १३६५।२३-२४।"

और यहीं वह अनेक योद्धाओं को मार कर टूक-टूक हो जाता है। अब गोरी चालुक्य के विरोध में चढ़ाई करता है।

वीरत्व की भूमिका पुष्ट हो गई है। चालुक्यराज भीम का उत्साह उफन उठा है। उसकी विदग्ध उक्तियों में उसका वीर-दर्प घायल सर्प की भांति फुंकार उठता है—

"मकुवाणरो मरण सुणताही चालुक्य सधारे साथसाथ सभा में बोलियो जं— खुरासाण तखत गोरी सहाबुद्दीनरे रहाऊ, तो अब लज्जारे अधीन अच्छो पुरषार्थ खोय पाछो भीम नाम न कहाऊ।।" वंश० १३६५।२५।

इधर चालुक्य उफना है, उधर गजनी की प्रचंडवाहिनी का आगमन सुनकर कुमार पृथ्वीराज महानद की भांति गरज रहा है। चालुक्य भीम भी पृथ्वीराज का आलंबन बन

रहा है (वंश० १३ ६।२६)। भीम गजनी के मार्गावरोध स्वरूप सोजत पहुंचता है, किंतु उसकी भिड़न्त पृथ्वीराज से ही होती है।

गत्यात्मक अनुभाव-वर्णनों से कवि ने इस प्रसंग को रस दशा तक पहुंचाया है। आलंबन का जोश देखिये—

"तिण समय चन्द्रमा रैं चौतरफ परिवेसरैं प्रमाण भाले सिंहदेव साठि हजार सेनासूं स्वकीय स्वामीरा सिविररैं चहुँओरो चक्र चलायो ॥"

उधर आश्रय भी कम नहीं—

"अर पृथ्वीराजरा वीरां भचाणक कान्ही मिलाय ऊंचाणों वीररस तत्काल जगायौ।" (वंश० १३६६।३५)

जहां वीरों की दृढ़ता, त्वरा, प्रचण्डता, धृति, अनड़ता आदि के चित्र प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं (१३७०।३५-३६)। इधर पृथ्वीराज का वीर जैतकुमार मुहूर्तभर में ही शत्रुसेना में कल-कल मचा देता है। उधर भीम स्वयं प्रेरणास्पद उक्तियों से अपनी सेनामें जोश भरता है आलंबन की प्रखरता को प्रशंसा करना भी कवि नहीं भूला है। इससे आश्रय का उत्साह जो वर्धित होता है (वंश० १३७१।३८)।

विकट युद्ध के दौर में भीम के गज की सूंड कट जाती है और वह वाहनविहीन हो जाता है तथापि क्षिप्रता से उठकर निरस्त्र हो जूझता है। फिर करवाल भी टूट जाती है तब तक पृथ्वीराज का वीर सेनापति कैमास उसे उठाकर बगल में दाब लेता है। यथा—

"तत्काल ही उठी बाहण विहूणों भी नाक री नारियारो भुरड भुकायतो निःशंक जुटियो जठैं अमाप आघात पड़ता चण्ड पुण्डीररी गदारै लागि भीमरो करवाल तूटियो। कटार मेलाहीं मंत्री कैमास चालुक्यराज नू जाय पकड़ियो॥ अर काख रे अन्तर दबाय पाछो हालणरो प्रयास गहियो॥" वंश० १३७१।३६।

कैमास के उचित बाणों से भीम बिद्ध हो रहा है। किंतु करे क्या? उसके अतुल बल-दाब में से निकलना कठिन है। उसकी दयनीय दशा का बालु घायल पड़े हुए चालुक्य हम्मीर को तिलमिला देता है। वह झपटकर अपने स्वामी को छुड़ाता है तब तक तो अन्य वीर भी आ जाते हैं—

"या सुलताँही मोहछक होय पड़ियेथकें ही समर सेर चालुक्य हम्मीर कैमास री कोख में घंसिया आपरा स्वामीनू झाटकियो। इण अन्तरतो राजानूं गहियो जाणतां ही हाथी वीरमदेव भोटे भारमदेव देवड़ें देव बड़ेस वीरदेव प्रामार सिंहदेव गाजी श्रीसिंह इत्यादिक वीरां भी आय सहाय दियो॥" वंश० १३७२।४१।

एक से एक अनोखे वीर, एक से एक बढ़कर उनकी बानी, एक से एक बढ़ना हुआ करें। इधर प्रतिहार सिंहदेव की स्पृहा (प्रतीक्षा) कि भीम के प्राणों का आहार—अपने स्वामी को भेंट करे उधर वीरमदेव की स्वामी-रक्षा की प्रबल कामना (वंश० १३७३।४४) दोनों ही वीरों के देवते, दोनों के प्रबल आघात, दोनों की स्वामी-भक्ति की टक्कर जैसे वज्रास्त्र से वज्रास्त्र टकरा गया हो—बिजलिया चमक उठी, भटकामी के कटाक्ष बाण बनकर बरसने लगे, दो बलाय भिड़ गए, झनकारों की गर्जना छा गई—

दोही वीरांरा तीन दोही तरफरा··· । काटि पुद्गलां में पीठ···तूटिया ॥

जटै दोही सामतरा म्हकाररै उफाण भद्रकाळीरा कटाक्षरै अनुकार चट्टहासांरा संघात छूटिया ॥

भीमसेनरी तरह तरवारि तूटिता ही दोही जुज्भारा परिवारां बिहूंण करि कृतांतरी दाढ़ांरो तिरस्कार करता कटार भालिया ॥

अर रणरा गळियार रोस में रजोगुणरै रूप हुवा थका सिंहनाद रै साथ दाकालिया ॥" वंश० १३७३ । ४६

फलतः चालुक्य भीम विवर्ण संत्रस्त पलायन कर गया—

"इण अतर में ताजी तुरग आरूढ़ होय कातरांरा संकल्परै साथ सत्तरि सहस्र ग्रामारो अधीस चालुक्यराज भीम महदेवरै समान अपूठो अणिहलपुररी तरफ खड़ियो" वंश० १३७४ ।

और स्वामीभक्त वीर स्वामी की प्राण-रक्षा मे तिलतिल होकर अपना होम करते रहे—

"जठै समर रो भार आपरे माथे थोडि गुर्जरघरारो कपाट होय आपरा बारहसै बार्नैतां समेत भाठी कृष्णदेव चन्द्रहासांरा चौड़ा वाढ़ चलावण रै काज पृथ्वीराजरा वीरांरै थोम लगाय खड़ियो । जिकणरो सीस महेसरो मनोरथ मोचकरि अनेक धारा धरांरी धारा माही लागि लीन थियो ॥" वंश० १३७४ । ४७ ।

भागते हुए चालुक्य पर वीर कन्ह की ललकार देखिये—

"भूखा केहरी रो केहर खोजिया नागराज रो मणि माहाणो भ्राटकि लेणरो बल होय तो म्हारा प्रस्थानरो राह रोकणरी सलाह छै ॥

अर आजरा समय मे गुजरा काचा कलसरे सीस चड़वाणरा समुद्ररो सोमा-खोचियो प्रवाह छै । इसड़ा कन्हरा बचन गिरिनारीरागरै समान श्रवण में पड़िया तियांमू चालो होतो तो पाछो पलटणरी जेज करतो नहीं ॥

पर अणिहलपुर वैसीमै पाघरो ही जाय पैठणरो संरम्भ घरतो नहीं ॥" वंश० १३७५ । ४९ ।

पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता । चालक्य के पलायन के साथ ही पृथ्वीराज के वीरों का उत्साह मूछों से भौहों तक फैल जाता है (वंश० १३७५ । ५०) चालुक्यराज की पराजय से उत्पन्न आतंक मात्र से गोरी की बढ़ती हुई सेना फिर जाती है (वंश० १३८० । १) ।

बदाद नरेश हल्लू (वंश० १८२ । १) के अपराजित वीरत्व के प्रसंग में रोमांच के वीर भावों का परिपाक किया गया है । हल्लू अद्भुत वीर था । उसने सारे देश में अपनी वीरता का डंका बजा रखा था : 'आ बैल मुझे मार' वाली नीति से प्रेरित वह युद्ध

खोजता फिरता था तथापि मृत्यु उससे दूर भागती थी। उसीका मनुज रोपाल मरण-राग में झूमता हुआ अद्भुत वीरत्व का उदाहरण बनता है।

मंडोवर नरेश प्रतिहार हम्मीर द्वारा किया गया हल्लू की शपथ का अपमान (वंश० १८०४। ४८-५३) मद्यमग्न लोहठ कवि का विक्षोभ और उसके परितोष हेतु ली गई हल्लू की शपथ ही यहां आलंबन है।

मुख्य लक्ष्य है मंडोवर का पतन, स्वाभिमान रक्षा तथा दंभ का विनाश।

मरण छक में छका हुआ हल्लू अपने वीरों में मरण-राग का शंख फूंकता है। अपने पुत्र को राज्य देकर वीरता के उफान में परीक्षित वीरों के साथ केसरियां की तैयारी है। उन वीरों में रोपाल भी है (वंश० १८१०। १७२१)।

वीर छक में मदमस्त रोपाल मरणोक बाना धारण करने से पूर्व ही अपनी पत्नी को— उसकी इच्छा से ही सही—चिता की भेंट कर मोह बंधन से मुक्त हो जाता है। यथा—

> 'आपरी अपनारो इसड़ो अभिमत जाणि रोपाळ भाक रा सोढा दामोरी दुहिता सुगुणा नाम इसड़ी आपरी पत्नीनूं आपरे आस यही काठां चढाई दवावरे आई अग्रजरो साथ कीधो। सो जाणि हालू नरेन्द्र भी पावक में पत्नीरो पहिलो प्रवेश प्रमाण थी विरुद्ध विचारी आपरा अनुजनूं उपालम्भ दीधो।
>
> कहियो रणरो मरण सो दंवरे अनुकूल हुवां होई जिको न बणसी तो संसारनूं मुख दिखावण जिसड़ो रहसी नहीं।
>
> अर बेदहूं बहिगत बात बणाई पतिव्रता पत्नीनूं पहलो प्रज्वाळणरी प्रसंसा कोई भी कहसी नहीं॥"
>
> —वंश० १८१२। २२।

युद्ध-लोलुपता लेकर हल्लू और रोपाल गरज-गरज के सागर बनकर मंडोवर पर चढ़ते हैं। अचानक आक्रमण से प्रतिहारों का पतंगवत् पतन उनकी शिथिलता, स्तब्धता आदि वीरों को निश्शंक विजय दिलाती है (वंश० १८१४। २६)।

प्रतिहार हम्मीर की ओर से उसकी माता कन्याएं ब्याहकर पुत्र के प्राणों की भिक्षा मांगना चाहती है (वंश० १८३०। ३०) तथापि वीर हल्लू रोपाल आदि जो मरण के मगेतर हैं, मरण-युद्ध ही मांगते हैं यथा— "मरणनूं चाहे तिके विवाहणनूं न चाहे (वंश० १७१४। ३०)।" अंत में विवाह-संधि का ही उपक्रम सफल होता है (वंश० १८१७। ३५) यहीं से वीरवर रोपाल का युद्ध-राग भड़कता है। वह 'पगसी का कळस', 'सती का नाळेर' अपने अग्रज से एक ही वचन मांगता है— चाहे जो करो किंतु मेरे चुने हुए वीर प्रतिहार बुलाओ ताकि मुझे मरण का योग्य अवसर मिले। यथा—

> मोनु अब मरियां मिळै, उचित सुजस आमोग॥
> कहो आपही गति कवण, जीवण मरण दु जोग॥ वंश० १८१७। ३६

युद्ध-कौशल के साथ (वंश० १८१८। ४२-४३) वह वीर तलवार के करतब

दिलाता महराज प्रतिहार के हाथों मारा जाता है किंतु मरते मरते भी शत्रु को साथ लेकर साथ ले जाता है। यथा—

"सीस उडतांही पड़िहार हतिया पर महराज सुरड़ि चालियो तिकणरें लार लागैं रोपाळ रैं रुंड खगपटकि कटारी काढ़ि सातवौ पैंड जावतां कटिबंध पकड़ि पड़िहार रा पिंड मे सात घाव जड़िया ।।

सो च्यारि ऊभां तीन पड़ियां देर इणरीति दोहो बानैत एक ही काळमें खेत पड़िया ।।"—वंश० १८१६। ४४

इस प्रकार वह वीर अपनी टेक पूरी करता है।

औरंगजेब के कोप के विरुद्ध राजपूती मान - रक्षा के प्रश्न पर बीकानेर के कर्णसिंह की सहायता में बूंदीश भावसिंह के वीरत्व का प्रकाशन हुआ है।

शाहजहां के काबुल-आक्रमण के समय एक तो कर्णसिंह काबुल नदी के पार नहीं गया था दूसरे अपने पिता की रुग्णता के समाचार पाकर वापस लौट गया था। उसी बात को लेकर औरंगजेब क्रुद्ध है और बीकानेर नरेश को अपमानित करने के लिए चालें चल रहा है (वंश० २८२४। ३४)।

बूंदीश भाऊ के भरोसे पर ही कर्णसिंह दिल्ली आया है। क्योंकि शाही कोप का फन नमाने वाला उस समय यदि कोई था तो वह भाऊ ही था। भाऊ प्रथम तो चाहता है कि विनय-निवेदन से औरंग शांत हो जाय। तदनुसार उसकी सम्मति से कर्णसिंह अर्जी पेश करता है (वंश० २८२५। ५-७) किन्तु प्रयत्न विफल जाता है।

दुष्ट औरंग की हठवादिता, अविनय और अनीति वीर भाऊ के उत्साह को उद्दीप्त करती है (वंश० २८२६। ६)। राजा कर्णसिंह की मान प्रतिष्ठा को समग्र राजपूत जाति की मान प्रतिष्ठा मानकर वह धर्म धुरीण अधर्म के विरोध में सत्कार्य-साधन-रत होता है। केसरिया चोला धारण कर वह द्रुत गति से वर्ण की सहायतार्थ उसके डेरे पर पहुंचता है।

राजा कर्णसिंह द्वारा प्रदर्शित विनयशीलता एवं स्तुति - भाव (भाऊ का भरोसा ज्यों भरोसा दीनानाथ का। वंश० २८२६। १०-१३) कृतज्ञता तथा दृढ़ वचन उसके उत्साह को द्विगुणित करते हैं। अन्याय के विरुद्ध युद्ध को धर्म सम्मत कह कर वे दोनों वीर कर्मरत होने को तत्पर होते हैं।

कवि ने अद्भुत एवं भयानक अनुभाव-वर्णनों से युद्धकर्मियों के आतंक प्रभाव, प्रताप आदि का चित्रण किया है। देवताओं और अप्सराओं के ठट्ट के ठट्ट वीरों का कौशल देखने के लिए एकत्रित होते हैं। त्वरित वेग से वीर मरण-पर्व में योग देने दौड़ रहे हैं। साधारण जन भयभीत होकर घरों में बंद हो रहे हैं, वीरों की मूछें भौंहों से मिल रही हैं, योगिनियां, ५२ वीर, रुद्र, काली सब दौड़-दौड़ कर आ रहे हैं (वंश० २८२७। १२-१५)।

इधर औरंग की सेना कर्णसिंह पर चढ़ आती है उधर उबलता हुआ वीर भाऊ गर्जना

करके पहले सामने आता है। वीर की दर्पोक्तियां, उसकी ललकार, उसका अडिग धैर्य, आलंबन के मन में पश्चाताप और आतंक उत्पन्न करता है। जुझारों की उक्तियां उसके धधकते उत्साह की अग्नि स्फुलिंगकाएं बनकर शत्रु को स्तंभित कर देती हैं। यथा—

> भाऊ भन्यों पहिलो तौ प्रहार इहो सहिबो इक साहु की ओर को।
> पीछे बनै सु करै परि हौं करि हैं पल पूजन खंग कठोर को॥
>
> वाहन वाहिनि डारै बिलोरी जथा मद मारै भरातिन ओर को।
> यों अवरंग करै अनुताप चुक्यो जिम घाय रुक्यो मन चोर को॥ १६
>
> तोपन के चलते ही तुरंग चमू पर सम्मुह संग चलाहि हैं।
> दूसरी बेर न फेर दगैं जिम भू पर भंजते ऊपर जाई हैं॥
>
> भार प्रसार अपार मचाइ कितेक अनीकहि खग्गन खाई हैं।
> भज्जसों ऐसी बहोरि बनै न तथा अवरंग कृपा पचनाई॥
>
> —वंश० २८२८। १७

युद्धकार के इस आरम्भ - विश्वास से सब ओर भय छा गया है। वीरों पर उत्साह का रंग और घना हो रहा है। दोनों ओर की सेनाओं में एक सन्तमन की-सी स्थिति उत्पन्न हो गई है (वंश० २८२८। १८) शत्रु सेना में संशय घर कर गया है। इसी समय औरंग के वजीर इस भयानक संकट को टालने के उपाय करते हैं (वंश० २८२८।१९-२१)। वह उसकी बातें मान जाता है, शत्रु सेनाएं हट जाती हैं और वीर भाऊ के उत्साह के सामने शाह का हक नष्ट हो जाता है। कर्णसिंह के नाश का भय मिटाकर वह सूरमा अपनी कीर्ति सर्वत्र फैला देता है।

जयसिंह द्वारा बूंदी पर अमल करने के प्रयत्न - प्रसंग में स्वामी भक्त तथा मान - रक्षा के हेतु अमरसिंह तथा दूसरे भट्टों के युद्धोत्साह का स्फुरण हुआ है।

जयपुर नरेश बुधसिंह की जड़ता का लाभ उठाकर बूंदी पर अमल करने के लिए सेना भेजता है (वंश० ३१४२। २१)।

बुधसिंह अपार आलस्य तथा प्रमादजन्य निद्रा-भाव में मग्न है किन्तु उसके स्वामी-भक्त वीर चैतन्य हैं। कूरम-नरेश के व्यंग्य-बाणों (वंश० ३१४१। १०-१२) का बुधसिंह पर कुछ असर नहीं होता। किन्तु उसका वीर साथी अमरसिंह उन वचनों से भड़क उठता है।

कूर्म भटों के कुवचन सुनकर वीर अमरसिंह प्रलय के रुद्र की भांति नेत्र खोलता है, मूछों पर हाथ देकर ओठ चबाता हुआ उन पांचों भटों की ओर कुछ ऐसी दृष्टि डालता है—जैसे किसी ने काले भुजंग पर पैर रख दिया हो या कि मतवाले सिंह से छेड़खानी की हो। कोप-पूर्ण दृष्टि से अग्निवर्षा करता हुआ भुजा ठोंक कर वह कहता है—'गाल बजाने से गीदड़ डरते हैं हमें अपने स्वामी बुधसिंह की आन है तो हम शाहे विहार का दम भरने वाले तुम कछवाहों को मार मार कर भेड़ बना देंगे—

कूरमपति भट कुवच प्रकट सुनि सुनि बलबन पति
अभयसिंह प्रति बीर भयउ छकि प्रलय रुद्र भति ।।
करसि मुच्छ डसि अधर निरखि पंचन उफनायो ।
पन्नग पय चख्यो कि मत्त मृगराज खिजायो ।।
बुल्लयो बिदिन भुज ठोंकि बल मल्ल बजत गोदर डरै ।
बुधसिंह मान कूरम बलहिं केहरि हम गड्डरि करैं ।।

—वंश० ३१४३ । ३३

उसका कहना है कि अपने भाइयों से लड़ना अनीतिपूर्ण समझकर हम टल जाते हैं किंतु दूसरे शत्रुओं के सामने हाड़े पर्वत की भांति अडिग रहते हैं (वंश० ३१४४।३४)। इस प्रकार वह वीरावेश में उठ खड़ा होता है। उसका गर्व तथा दर्पोक्तियां विपक्षियों को भी युद्ध सज्जा की प्रेरणा देती हैं। यथा—

इम हकारि बलवन अधिप मरि उद्विग गहि मुच्छ ।
फटाटोप महिन मनहु पन्नग दब्बत पुच्छ ।।

—वंश० ३१४४ । ३५

युद्ध सिर पर है और स्थिति नाजुक होती जा रही है। बूंदीश के पक्षधर वीर समय की प्रबलता देखकर शत्रु से मिल रहे हैं। कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की भांति बुधसिंह का पक्ष घट रहा है (वंश० ३१४५ । ४२-४३)। किन्तु अभयसिंह का जोश कम नहीं होता, उसके भीतर की आग तनिक भी ठण्डी नहीं होती है। अपना बल घटता देखकर तो उसका गर्व और भी अधिक बढ़ता है। स्वामी की शपथ भी उसे अपने निश्चय से नहीं डिगा पाती। जिसने मरना ही ठान लिया है उसे भला कौन रोक सकता है— "हट्टे मज्जन ना सुनें, लग्गी अन्दर लाय।" ज्यों - ज्यों वर्जना की जाती है त्यों - त्यों हठ बढ़ता जाता है (वंश० ३१४६ । ५१)।

आश्रय पक्ष की इस दृढ़ता से आलंबन पक्ष भी भभक उठता है। आक्रमण होता है। प्रत्याक्रमण में हाड़ा वीर काल बनकर गरजता है। उसका उत्साह ऊपर आकाश को छूता है तो नीचे पाताल का स्पर्श करता है—

अभयसिंह अरु देव इत, कुप्पि चलिय जिम काल ।
सिर परसत अज्ज लोक सों, पर परसत पायाल ।। —वंश० ३१४६।५८

कवि भयानक तथा वीभत्स के योग से वीरों के उत्साह को अनुभाव-पुष्ट करता चलता है (वंश० ३१५३ । १७)। प्रतिशोध की आग में जलता हुआ अभयसिंह अपना अपमान करने वाले फतमल्ल को खोज रहा है (वंश० ३१५३ । १८-२१)। उसे सम्मुख पाकर उसका जोश इतना बढ़ता है कि उसका शरीर कवच में नहीं समाता—दर्पोक्तियों के साथ उसे ललकारता हुआ साक्षात् प्रलय का सूर्य बनकर वह अंगद की भांति युद्ध में अपना पैर रोप देता है। यथा—

यम दम्मत यहि पुग्ग मुण्ड मेंकत मयंद जिम ।
सोर मनहुँ सावात मगिग मागत प्रचंड इम ॥
हेरि मयूख हजार बेठ दुरहुर मनु लगिय ।
प्रमत बड़ जिम प्रचित साथ पंखिन मति मगिय ॥
कानन प्रमान बानन करनि कूरम देह सुनेह किय ।
मरमता मनहु हद्दे मरद गहे पर मगद गतिय ॥

—वंश० ३१५४ । २५

फतहमल भी दुस्ह वीर है। दोनों के शस्त्र-कौशल के वर्णन में कवि रम गया है। (वंश० ३१२४ । २९-३२)। दोनों ही वीर तीरों, भालों, बरछियों आदि से वार करते हुए दल की भांति लड़ रहे हैं (वंश० ३१२२ । ३३-३४)। अभयसिंह पर्वतवत् अडिग रहकर कूर्म भट के कुकर्म का कोप उत्तर दे रहा है (वंश० ३१२२ । ३५)। बरछी के बाद वह म्यान से तलवार खींचता है। कवि फिर रम गया है—तलवार की टक्कर उपमा देने में (वंश० ३१२६ । ३६-४१)। असि-संचालन का अद्भुत कौशल दिखाता हुआ वह वीर कम्पउोदतया अपने विपक्षी को काट ही तो डालता है (वंश० ३१२७ । ४२)।

अब वह दूसरे शत्रु को मरद बनाता है (वंश० ३१२७ । ४६)। पूर्व विजय की प्रसन्नता उसका उत्साह-वर्धन कर रही है। दूसरे विपक्षी को भी शीघ्र परमधाम पहुंचाकर शत्रु को खोज-खोजकर अपने कोपानल में होम रहा है। अद्भुत, भयानक और वीभत्स की सृष्टि करता हुआ (वंश० ३१२८ । ६१-८६)। वह तीसरे शत्रु सावलदास को भी मार गिराता है। चौथे शत्रु रूपसिंह को झटके से समाप्त कर, पांचवें बहादुरसिंह पर अश्वहीन होकर भी झपटता है (वंश० ३१६३ । ८८)।

वीरोन्माद देखिये कि वह पैदल ही अश्वारूढ़ बहादुरसिंह पर झपटा है। अश्वारोही की सांग उस पर पड़ती है मानो पर्वत पर वज्रपात हुआ हो (वंश० ३१६३ । ९०)। वीर की छाती भेद कर वह सांग आर पार निकल गई है तथापि वह रण मस्त शत्रु के घोड़े पर उछलता है। क्षण भर में वह शत्रु को भी अपने जैसा सग-विद्ध करके धरती पर पटक देता है—

सगत लगि अभमल्ल छत्ति फुट्टन नन छोहिउ ।
बिरचि नपा बखसोस डंकि कूरम दल डोहिउ ॥
बिना तुरग हठ बंधि तुमुल कोऊ नहीं तवकल ।
यह अचिज्ज सहि संग बढ़्यो सम्मुह जय बक्कल ॥
जिम सुला दंड खंभहि जुरत उर प्रविद्ध अभमल्ल इम ।
बुंदानिनगर ईसहि सबिधि तुल्लि पटक्किय अवनी तिम ॥

—वंश० ३१६३ । ९१

वह उद्भट योद्धा अभयसिंह अपमान से उफन कर युद्ध भूमि में पांचों कूरम

कछवाहों को सुलाकर स्वयं भी अनन्त निद्रा में लीन हो जाता है और वीरता के इतिहास पट्ट पर अपनी अक्षय-कीर्ति छोड़ जाता है।

इसी युद्ध में वीर देवसिंह के उत्साह का भी विशेष रूप से स्फुरण किया गया है। वह भी अभयसिंह का साथी था और उसी के साथ दृढ़ बन कर युद्ध सागर में कूदा था (वंश० ३१४६ । ५८)।

अभयमहल के गिरते ही उस वीर में प्रलयकारी उत्साह भरता है। वह हरावल से बढ़कर कूर्म नरुका सरदार को सम्भालता है (वंश० ३१६३ । ६३)। उसके साथ-साथ दोनों दलों के वीर अति-युद्ध में डट जाते हैं। एक बार फिर भयानक और अद्भुत वातावरण छा जाता है— बीभत्स का पट्ट लग जाता है (वंश० ३१६५ । १०५)।

इधर देवसिंह और उधर नरुका — मानो महाभट और भट— दोनों यम के दास— भिड़ गये हों। युद्धरूपी महामारी फैलाते हुए दोनों वीर प्राण-ग्राहक बन कर अद्भुत गति से धमचक कर रहे हैं (वंश ३१६५।१०७)। एक दूसरे के बल पराक्रम को देखकर उनका उत्साह निरंतर बढ़ रहा है। नरुका और देवसिंह के बीच अटूट वीरों की बाधाएं हैं जो देवसिंह के बीरत्व को उफान देने वाली हैं। उन्हें तोड़ता हुआ वह वीर नरुका के पास पहुंचता है—उसके पराक्रम का तेज सूर्य को भी चमत्कृत करने वाला है (वंश० ३१६६ । ११०)। *संसार में भय और देवों में विस्मय भरता हुआ वह अपने मुख्य शत्रु तक पहुंचता* हैं (वंश० ३१६७ । १११)। तब भयानक, अद्भुत और बीभत्स का ठाट रचते हुए दोनों वीर प्रलयंकारी युद्ध में रत होते हैं। देवसिंह शिव के मनचाहे ही नरुका का शीश उन्हें भेंट करता है (वंश०३१७१ । १४१)। उसको मारकर वह वीर तृप्त हो हरावल में रक्त की होली खेलता हुआ फिरता हैं। इस प्रकार नरुका ने प्रलय-पुत्र को छेड़कर उसे अपना काल और जयसिंह का मान भंजक बनाया—

> लग्गे तच्छक उरग बहुरि पग पुच्छ बिदरिय।
> लग्गी कर बारूद छोरि पावक सिर छुविय ॥
> लग्गी दिनकर असह मुरारि उत्तर मग लिद्धो।
> लग्गी छुधित मयद बहुरि बिच्छिय मल बिद्धो ॥
> लग्गे सु देव आहुज अदर अरु नारद अति उप्फन्यों।
> जयसिंह मान भंजक सजय बेतालन रंजक बन्यों ॥
>
> —वंश० ३१७२ । १४४

इधर नरुका को खाकर जैसे देवसिंह का उत्साह असीम हो गया हैं। एक के बाद एक वीर को खाता हुआ वह निर्द्वन्द्व होकर बढ़ता है। जयसिंह की अथाह सेना का विलोड़न करता हुआ वह शत्रु की जयाशा को धूमिल कर देता है। उधर से कछवाहा कर्णसिंह झपट कर सामने आता है (वंश० ३१७६ । १५४)। उसका जोश उबल पड़ता है। वीभत्स के रंग मथन करता हुआ वह उसे टूक-टूक कर डालता हैं (३१७७ । १५६)। कूरम घासीराम के

हाथ से खड्ग का प्रचण्ड आघात खाकर भी उसका उत्साह नहीं मरता (वंश० ३१७७।१६४)। एक के बाद एक शत्रु उस पर लपकते हैं। घायल होते हुए भी वह विचित्र वीर शत्रु-दल को काटता हुआ चला जा रहा है (वंश० ३१७८।१६७)। इस प्रकार शत्रु पक्ष के छः वीरों को सुलाकर मूच्छित होता है— अप्सराओं में इसे वरण करने की उमंग थी, किंतु वह पूरी नहीं हुई (वंश० ३१७८।१६६)। तीन तलवारों से घातक प्रहारों से वह मरा नहीं— अचेत होकर पड़ा रहा (वंश० ३१८२।२, ३१८६।४) और अंत में उसे युद्धोतर खोज में बचा लिया जाता है (वंश० ३१८७।१२)।

बूंदी के निमित्त, वीरों ने अपूर्व वीरता दिखाकर अपने प्राणों की भेंट चढ़ाई तथापि अपने लक्ष्य में वे कृतकार्य नहीं हुए। उनका उत्साह भावी के गर्भ में विकसित होता रहा।

पूर्व - वर्णनों से इन वर्णनों की भिन्नता स्पष्ट है। प्रत्येक प्रसंग भिन्न लक्ष्य एवं भिन्न शैली में प्रस्तुत किया गया है। कवि की प्रतिभा हर बार एक नया रूप लेकर सामने आई है। ऊपर के पांच सात युद्धों में ही कवि ने उत्साह-स्फुरण; संचारी - वर्णन एवं अनुभाव चित्रण के नए नए विधान प्रस्तुत किए हैं। यह भी द्रष्टव्य है कि ऐसे वर्णनों में साधारणीकरण के लिए कवि को अतिशयोक्ति तथा लोकोक्ति अलंकार ही अधिक मान्य हैं। (द्र० अलंकार प्रकरण)। गत्यात्मकता के लिए कवि ने रेखता-शैली (वंश० ३१५४।३-२६) का प्रयोग किया है। इसी प्रकार बलाघात के लिए वीप्सा (वंश० ३१५६।६४ - ७२) का प्रयोग भी प्रभविष्णुता के दृष्टिकोण से अनुपम बन पड़े हैं (द्रष्टव्य शैली - समीक्षा)।

बीभत्स-रस—

'बीभत्स का समावेश वीर के रूप में हुआ है। सूर्यमल्ल बीभत्स-कल्पना सर्वथा रूढ़ि मुक्त नहीं की जा सकती। फिर भी कवि ने उद्भावना और विशिष्ट अप्रस्तुत-योजना द्वारा उसे 'मोनोटोनस' होने से बचाने का पूरा प्रयास किया है। कहीं-कहीं रूढ़ि मुक्त रह कर भी वह भीम रूप के नितांत ही प्रभावशाली चित्र उतारने में समर्थ हुआ है।

उल्लेखनीय है कि बीभत्स के प्रसंगों में योद्धा अथवा कवि-कल्पित रुद्रगणादि न तो आश्रय ही है और न आलंबन ही। जुगुप्सा के आश्रय बने हैं सहृदय, जो युद्ध की भीषण मारकाट, रक्त-क्रीड़ा, कबन्ध-लीला आदि से दोनों पक्षों के वीरोत्साह का अनुभव करते हुए रस-दशा को प्राप्त होते हैं। अस्तु।

दैत्य बाणासुर के पुत्र धूम्रकेतु तथा जंत्रकेतु की रूढ़ि-मुक्त रूप कल्पना देखिये —यहां बीभत्स जैसे मुंह से बोलने लगा है—

" जंगली बिडाल के-से नेत्र, विकराल वाणी, सुदीर्घ नासिका, जीभ तथा तालु के मध्य व्याप्त गहन नीलिमा, मूंगे के समान लाल ललाट, स्थूल केश-राशि कुदाल के से दांतों पर श्यामल चर्म-चर्बी की सड़ांध वराह जैसा मुख, घण (एरण)-सा माथा, वज्र-सा कपाल, कृपाणवत् भयावह भ्रू लता, कम्पायमान पीत कपोल, ढाक के पत्तों-से काले ओंठ श्वास-प्रश्वास के साथ निकलती हुई कच्चे मांस तथा चर्बी की दुर्गन्ध। पर्वत की गुफा से काले और

लम्बे कान, लोहे से कठोर स्कन्ध, कनेर-पुष्पों से वलियत विशाल ग्रीवा, ताम्रवर्णी शल्यवत् मूछें। रक्त की पट्टी के से युक्त काली जिव्हा, अमर्ष-पूर बलते हुए नेत्र, कटार सी दड्ढा, पीले हाथ। चौड़ी छाती, चपटा पेट, गहरी नाभि, विशाल वक्ष, स्थूल कटि-प्रदेश, नीले मेघ की सी पिण्डलियां, पाण्डुवर्णी घुटने तथा छुरी से लम्बे पद-नख। यथा—

बिडाल नैन घोर बैन लंबमान नासिका,
रु जीह तालु मध्य सांद्र नीलता प्रकासिका।
कठोर उत्तमांग रोम सल्लकीज सूल से,
प्रबाल लाल गोधि देस भौंह केस थूल से ॥ ७

कुदाल दंत जालकी कराल नील राजिका,
बपा बिलास चिक्कनो महाकुमग्ग भाजिका।
बराहतुंड कूट मुंड जो करोटि सब सी,
कृपान ज्यों भयान भेस भ्रू लता प्रलम्बसी ॥ ८

कपोल नैन लाल ए पिसंग रंग में लसैं,
प्रचंड बात पातसे निसर्ग सास निक्कसैं।
पलास काल दंतवास धूम्र रूप सुक्कणी,
बहुंत बिस्र स्वास संग भेद भेद बिक्कणी ॥ ९

रु सकु कान लबमान छिद्र भद्रि लोह से,
चकोर एत अंस जे छुरैं कठोर लोह से।
बिसाल लाल कंधरा कणीर मालकों धरैं,
रु मुच्छभाग सुल्ब राग भाकपोल उब्भरैं ॥ १०

रु मेचकाभ जीह मध्य लीह लाल लग्गई,
अमर्ष खानि दिट्ठि ठानि ज्वाल जान जग्गई।
अकुंठभाव बड्डिका जु दड्डिका कटारसी,
पिसंगपानि आप जानि वज्र के प्रहार सी ॥ ११

... ...

बडे पिचंड कच्छ भी गंभीर तुंद कूपिका,
उर्दुंबराभ रोम पति तीर घोर रूपिका।
कटिप्प्रदेस थूलमें बतीस चाप सप्तकी,
महाभयान जास शिंजितेन भूमि तप्तकी। १३

बिसाल स्रोच धंम लाल मेघ नील पिंडुरी,
सपीत बेस जानुदेस अंघ्रि मोह ज्यों छुरी।
प्रचंड पाद स्याम रंग लंबमान अंगुली,
बडे बिरूप भ्रात दृष्टि करैं बिलोक व्याकुली ॥ —वंश० २२८। १४

कवि ने यहां बीभत्स को प्रसंग-सापेक्ष बनाकर अर्थात् भयानक के सहयोगी के रूप में

प्रस्तुत किया है। भयानक भी यहां आलम्बन के प्रचंड बल-मापन हेतु आया है जिसका लक्ष्य है—अग्नि-पुत्रों (आश्रय पक्ष) के उत्साह का परिवर्द्धन। वीरोत्साह तथा भयानक की सम्पुष्टि में वीभत्स को वसन्तरूपक के माध्यम से प्रस्तुत करने के कुछ अनोखे प्रयोग भी वंशभास्कर में मिलते हैं। युद्ध-सामग्री को 'माधवी' उपकरणों से उपमित करके कवि ने यहां तीखे विरोधाभास का आश्रय लिया है—

"तलवार के झपाटों से तड़ातड़ सिर झड़ रहे हैं, इधर वीरों के हृदय गुलाब की तरह खिल रहे हैं, उधर कटे हुए हाथ-पैरों के रूप में लोहित-किसलयों की पंक्तियां खड़ी हुई हैं, रक्त में सनी उंगलियां कलियों की भांति सुशोभित हैं, फटे हुए नेत्र विकसित पुष्पों से लग रहे हैं, गोलियों की तड़तड़ाहट ही भौंरों की गुंजार है, कट-कटकर गिरने वाले हाथी (काला शरीर और रक्त रंग) प्रफुल्लित किंशुक हैं, ध्वजाएं रसाल वृक्ष और घंटी-नाद पिक-वाणी है। लोथ पर लोथ गिरती हुई वीभत्स में बसन्त की रचना कर रही है, पल-भोजी पंक्तिबद्ध होकर अपनी भूख मिटा रहे हैं—

> उडत तरत्तर अमित सीस जित तित असि संक्रम।
> सुमन गिनहु निज समय सुमन चटकत गुलाब सम॥
> कर पय पल्लव किरन तरुन लोहित किसलय तति।
> गुटिका अलिगन गुंजि कुसुम लोचन बिकसे कति॥
> गज छिन्न भिन्न मानहु गिरिन सुम किसुम चल बात सह।
> केतन रसाल पिक घंट करि किय माधव माधव कलह॥
>
> —वंश० २५६१।४४

वीभत्स की एक और नई कल्पना द्रष्टव्य है—

"तलवारों से उड़ती चिंगारियां मानो वीर-दलों में अग्नि की लपटें फैलाती हैं और फटे हुए घाव (उछलते हुए रक्त से) जल-भरे बर्तन मालूम होते हैं। कलेजे, प्लीहा आदि कट-कट कर गिर रहे हैं, मस्तक खड-खड होकर यों बिखरते हैं जैसे वज्रपात से पर्वत-शिखर टूटते हैं (वंश० ३१५२। १६)।

मस्तक रूपी बिलोवण को मथकर भेजा रूपी मक्खन निकालती हुई गिद्धिनियां मक्खन बिलोती हुई ग्वालिनियों-सी त्वरा प्रदर्शित कर रही हैं। यथा—

> मथि मंथनि मरष गहैं, गतिसों गन गिद्धिनि गोद गिलैं गहकैं।
> मनु ग्वालिनि मट्ठ दही मथिकैं नवनीत निकारन बारनकैं॥
> चहिमार दुधार चलैं चमकैं असवार तुखार कटैं उलटैं।
> फटि मक्कुम ऊरु फटैं उछटैं कटि बाहु बाहुल बाहु कटैं॥
>
> —वंश० ३१५३।१७

वीभत्स की यह योजना युद्ध की भयंकरता को स्पष्ट करने हेतु हुई है।

बीभत्स में बसन्त का एक और रूपक द्रष्टव्य है—"बाहर कढ़े हुए कलेजे पर आँखें रखकर भँरव ऐसे नृत्य कर रहे हैं जैसे लाल कमल पर भ्रमर शयन कर रहा हो, गुर्दों के टुकड़े कट-कट कर बिखर रहे हैं मानो बैशाख मास में किंशुक फूल रहे हों, कंदुक क्रीडा करती हुई कालिका, पक्षियों को उड़ा रही है। आँतें कट-कट कर ढालों में फड़फड़ा रही हैं मानो पिटारी में सर्प रेंग रहे हों, आधे फटे हुए मस्तक लुढ़कते हैं मानो योगिनियों ने खप्पर डाल दिये हों, चोटियां कट-कट कर उड़ रही हैं मानो विजय-पताकाएं लहरा रही हों, लाल ओंठ कट कर यों गिरते हैं मानो पके हुए बिंबाफल अथवा प्रवाल पुंज बरस रहे हों, दांतों के समूह कट-कट कर गिर रहे हैं मानो हीरे के खंड खंड हो टूट रहे हों मुक्ताभूषण सहित कान ऐसे कटते हैं जैसे ससीप मुक्ताफल बरस रहे हों। रुधिर के तालाब में तैरती हुई ढालें कच्छप-सी लग रही है, भयातुर मृतकों के मांस को गिद्ध भी नहीं छूते (क्यों कि इसमें उन्हें स्वाद नहीं आता)।

उड़ै सिर अंबर पच्छिम पेलि, करै जनु कालिय कंदुक केलि।
उघट्टहिं ढालनपैं कढ़ि आंत, भुजंग पिटारन में कि भ्रमात।। ७७

दरैं सिर अद्ध फट्यो इहिं रारि, दयो जनु जुग्गिनि खप्पर डारि।
सिखा कटि सूरन की फहरात, किधौं जयकेतु प्रभंजन पात।। ७८

फिरैं फटि तोपनतैं करवाल, फटा बिनु लेत भुजंग कि फाल।
सुहावत के झरि नक्क समूल, फबै इस मास मनों तिल फूल।। ७९

लगैं असि ओठ झरैं कटि लाल, पके जनु बिंब कि पुंज प्रवाल।
उड़ै कटि दंतन ओघ अखंड, खिरैं फटि हीरन के जिम खंड।। ८०

फिरैं सह मुत्ति प्रहारन कान, बनैं सह सुत्ति सु मुत्ति विधान।
जहां मरि हत्थ गिरैं मति जुद्ध, किधौं बन पंचक के अहि क्रुद्ध।। ८१

... ...

गिरैं कहुं मज्जत ओरन सोस, उठावत पूर्ग बिहावत ईस।
गिलैं तिन को तन गृद्दनु ढि, बुरे इम जे मरैं भय बिद्ध।।

—वंश० ३।६२।८४

भयानक के सहयोगी के रूप में रहकर भी यहां बीभत्स रस दशा तक पहुंचा है। कल्पना-चातुर्य तथा नूतन प्रसंग योजना भी द्रष्टव्य है।

उम्मेदसिंह के बूंदी-युद्ध प्रसंग मे वीररसोत्कर्ष के अन्तर्गत बीभत्स सहायक रूप में आया है। कवि ने यहां विशेष विस्तार से बीभत्स के आलंबन उद्दीपन विभावों का चित्रण किया है। देखिये—

गिद्धों और चीलों से नभ पट गया है, चोंच मार-मार कर गिद्धादि मुंड में से गूदा निकाल रहे हैं। शिव उड़ते हुए मुंडों को ऊपर झेल रहे हैं, रक्तपायी चंडी के भी बीसों हाथ सक्रिय हैं, उबलता हुआ रक्त पीकर चौसठ योगिनियां प्रफुल्लित हो रही हैं, और बावन वीर गुट बनाकर घुबकारियां कर रहे हैं, चुडैलें कूद-फांद कर रही हैं, डाइनें घुम्मर-

ताल मचा रही हैं। इधर नारद अपनी महती वीणा बजा-बजा कर रार को बढ़ावा दे रहे हैं, उधर तलवारें खोपड़ी चीर कर भेजे में धसती हुई ऐसी ज्ञात होती हैं जैसे साबुन में सांप प्रवेश करती हुई शोभित हों।

कमर की हड्डियां कड़कड़ा कर टूट रही हैं, उधर तलवारें टूक-टूक होकर बिखर रही हैं। जंघा के टुकड़े हो होकर गिर रहे हैं। गज मुंह भड़ रहे हैं, फेफड़े फूट रहे हैं, कलेजे फुदक रहे हैं। ललाट में कटारें भिदती हैं तो उधर मस्तक कटने से गूदा यों बिखरता है जैसे मटकी फूटने से मक्खन बिखरता हो। रीढ़ की हड्डियां कड़कड़ा कर टूटती हैं तो आंखें निकल कर रक्त-प्रवाह में यों धसती हैं जैसे प्रवाह में मछली। गले कटते हैं और विकराल श्वास नलिकाओं से बहता है जैसे धौंकनी चलती हो, छाती के किवाड़ फूट कर हृदय बाहर निकलता है जैसे जलाशय में लाल कमल हों। अंत्र-जाल पेट फाड़ कर बाहर निकलता है ज्यों पिटारी तोड़ कर सर्प निकलते हों, श्वास-प्रश्वास की संधि टूटती है जैसे लवण पड़ने से दूध और पानी फटकर अलग होते हों। यथा—

> अमावसि सावन मास अनेह, मच्यो इम बुंदिय सग्गन मेह।
> छई नभ गिद्धनि चिल्हनि छत्ति, घुमंडत गूदन चंचुव घत्ति ॥ २१
> ... ...
> उड़े सिर झेलत उद्धहि ईस, बहैं इत चंडिय के भुव बीस।
> चट्टुट्टहि रत्त खिलें चउसट्ठि, बबक्कहि बावन गावत गट्ठि ॥ २३
> चुरैलिनि मंडत फालन चाल, लगावत डाइनि घुम्मर ताल।
> बजे लगि खग्गन खग्गन बाढ़, गिरें भट मोरु मजे तजि गाढ़ ॥ २४
> उमेद दिनेस रच्यो खग खेल, दुरयो सठ घुग्घुव दुग्ग दलेल।
> फबे असि खुप्पन टोपन फारि, बहैं जनु सब्बुव तत्ति बिदारि ॥ २५
> फिरैं कटि हड्डन खड करक्कि, झरैं उड़ि धारन चूर झरक्कि।
> कटै सह सत्थिन जानुव जघ, सु ज्यों गज सुंडिन खंडन सघ ॥ २६
> फदक्कहि कद्दहि कालिक फिप्फ, भचक्कहि टोप कपालन भिप्फ।
> उड़ेसिर फुट्टन भेजन ओघ, मनो नवनीत मटक्किय मोघ ॥ २७
> मचक्कहि रीढ़क बक अमाप, चटक्कहि ज्यों मिथिलापुर चाप।
> धसैं कढ़ि लोचन सोनित धार, चढ़ै सिसु मच्छ बिलोम कि मार ॥ २८
> कटै गल स्वास बजै बिकरार, धमैं धमनि जनि लगि लुहार।
> कढ़ैं हिम छत्तिय फट्टि किवार, सु ज्यों ह्रद लोहित कंज सुढार ॥ २९
> परैं कढ़ि अंत अपुब्ब प्रकारि, फनि गन जानि टिपारन फारि।
> परैं छुटि संधिल प्रान अपान, मनों पय पानिय लोन मिलान ॥
>
> —वंश० ३३६१। ३०

यह आलवनात्मक वर्णन विस्तृत (वंश० ३३६१ - ७। २१ - ६६) है जो अपने आप में निराला है।

इसी प्रकार बीभत्स का उद्दीपनात्मक वर्णन भी हुआ है— बहुत से प्रेत उत्साहपूर्वक गले मिल रहे हैं, उत्तम युद्ध की प्रशंसा कर रहे हैं। भैरव उछाल मारते हैं, भूत लड़ते हैं, डाकिनियां मृतकों की छाती पर चढ़कर उन्हें घसीटती हैं मानो कुलटा नायिका कामी पुरुष की छाती पर मचलती हों (३३६६। ४४)। कोई घावों से भरपूर एक पैर से ही घूम रहा है तो कोई एक आंख से ही कुपित दृष्टि डाल रहा है। कोई जीभ-कटा 'म-म' करता डोल रहा है तो कोई एक होठ एक कान अथवा आधा मुंह कटवाकर भी घमासान में झूम रहा है (वंश० ३३६५। ४६)। यों बूंदी के बाजारों में त्रिवेणी बह निकली है—इधर वर्षा होती (गंगा) रक्त बहता है (सरस्वती)और पुरनारियों के कज्जल-संयुक्त आंसू बहते हैं (यमुना); इनमें कट-कट कर गिरने वाले वीर मुक्ति-लाभ करते हैं—

अब घन सावन को इत तुट्टि, बरुथ घटा इन आयुध बुट्टि।
बहैं पुरबुंदिय सोन बजार, धयो जनु जोहि सरस्वति धार।। ४६

गिरैं जल बद्दल गंग सु गाथ, पुरत्तिय अंसुव जामुन पाथ।
बही इम बेनिय पत्तन बीच, मिलैं बहु मुक्ति जहां लहि मीच।।

— वंश० ३३६५। ५०

इसी प्रकार के और भी बीभत्स वर्णन प्रायः सभी युद्ध-प्रसंगों में आये हैं जैसे—वंश० १४५४। ३४-४०; ३३६२। २७-३१; ३४१६। ३१-३७; ३०२५। ४७-५६; ३४३७। १३५-१४१; ३४४०। १५६-१६५; ३४६३। ११ आदि

भयानक रस—

भयानक रस के प्रसंग स्वतंत्र रूप में भी हैं तथा वीर के सहकारी रूप में भी। भयानक की सृष्टि दो प्रकार से की गई है— १ भूत-प्रेत-पिशाचादि के आलंबन उद्दीपनात्मक चित्रण द्वारा तथा २ युद्ध-जन्य विनाश, उद्वेलन, मारकाट आदि के वर्णन द्वारा भयानक-सृष्टि के कतिपय उदाहरणों का विवेचन प्रस्तुत है—

अग्नि-पुत्रों और असुरों के युद्ध-प्रसंग में दैत्य-बाण के दोनों पुत्रों के भयानक रूप-वर्णन द्वारा भय संचार किया गया है। अनुभावादि का चित्रण किये बिना ही कवि यहां भय-सृष्टि में सफल हुआ है। उद्देश्य है वीर के उत्साहादि हेतु आलंबन को भयानकता बनाना। सर्वप्रथम भयानक रूप वर्णन (वंश० २५६। ७-१४ द्रष्टव्य— रूप-वर्णन) करके तदनन्तर उद्दीपन-सामग्री के रूप में उनका वेद-विरोध भयानक अस्त्र शस्त्र (वंश० २५७। १५) बीभत्स तथा घृणित कर्म (वंश० २५७। १६) आदि को प्रस्तुत किया गया हैं, जिनसे उनकी भयानकता रसावस्था तक पहुंचाई गई है। इन्द्रादि देवताओं की सिटपिटाहट, कातरता, असहायता (वंश० २६१। २६) धर्म का लोप, धार्मिक क्रियाओं का गोपन (वंश० २६१। ३०-३१) उन दुष्टों के भयानक कर्मों के अनुभाव हैं (वंश० २६२। ३२)।

यहां भयानक रस का स्वतंत्र वर्णन है। तथापि इसका उपयोग अग्निवंशी वीरों के उत्साह के आलंबन-रूप में किया गया है।

बाण के पुत्रों के विरुद्ध चहुवाण के युद्ध में आलंबन-पक्ष का भयानक वर्णन हुआ है। उसके सैन्य-भार से शेषनाग के फणों का झुकना, उसकी दो हजार जीभों का बाहर निकलना, वराह की दंतुली का चिरना, दर्द बढ़ना, कच्छप की पीठ विदीर्ण होना, अलाव की भांति उसके हृद् प्रदेश का खुलना, (वंश० ४१६ । ३-४) समुद्र जल में खलबली मचना इत्यादि अनुभावों से शत्रु-पक्ष एवं शत्रु-सैन्य की भयकरता बताई गई है। पल-भोजी गिद्ध, कंक, लोमड़ी, फेंकरी, भूत राक्षस, पिशाच, डाकिनी, शिव, बावन वीर, नारद आदि का साहचर्य (वंश० ४१६ । ५-७) उद्दीपन सामग्री है। धूल उड़ने से उत्पन्न अंधकार भयानक को अधिक उद्दीप्त करता है। सूंड मुंह में दबाकर दिग्गजों का चीत्कार करना, कायरों का पलायन, चकवा चकवियों का घबराना (वंश० ४१७ । ८) भय की अनुभव–योजना है जो रस-दशा की संपूर्ति है।

स्वतंत्र वर्णन होते हुए भी यह भयानक प्रसंग उद्दीपक-अंग है—वीरों के उत्साह में रौद्र आदि संचारियों का कारण है।

समग्र रूप से ये वर्णन 'वीर" के प्रवर्धक होकर ही आये हैं। कवि को मात्र भयानक के अनुभावों का वर्णन सब स्थानों पर अभीष्ट नहीं रहा है। भयानक का वर्णन अधिकतर आलंबन-उद्दीपन की सीमा तक ही हुआ है जिससे वीरों के उत्साह संचारी पुष्ट होकर उन्हें पुनः भयानक युद्ध के लिए उत्प्रेरित करते हैं। इस प्रकार एक भयानक अन्ततः (दूसरे भयानक वर्णन की भूमिका बनाता चलता है)। यह क्रम प्रत्येक विस्तृत युद्ध-प्रसंग में समान रूप से अपनाया गया है (द्रष्टव्य-चहुवान युद्ध-वर्णन) प्रस्तुत प्रसंग में ही जैसे दूढ़ आदि दैत्यों के पतन के पश्चात जो बीभत्स वातावरण बनता है उसके गर्भ से ही कालजिह्व, मंकड़ आदि दैत्यों के युद्ध का जन्म होना (वंश० ४२१ । ४५-४६)।

भयानक का वर्णन श्री कृष्ण के कंस-विनाश के अन्तर्गत भी हुआ है। मल्लयुद्ध के प्रकरण में चाणूर एवं कृष्ण, बलराम व मुष्टिक के भयावह मल्लयुद्ध को रस-दशा तक पहुंचाया गया है। दैत्यों की बल-प्रसिद्धि, उसकी घातक-वृत्ति, प्रलम-प्रहार, मल्ल-विद्या के कौशल (वंश० ३८१ । २४) ही आलम्बन पक्ष हैं; वज्रपात के-से प्रहार, आघात आदि उद्दीपन हैं (वंश० ३८२ । २६) तथा पृथ्वी का प्रकम्प, ब्रह्माण्ड का हिलना, शंकर की समाधि का भंग होना, शेष वराह कच्छप का कसमसाना, संसार की विह्वलता, त्रास आदि अनुभाव तथा संचारी हैं (वंश० ३८१ । २२-२६) कृष्णादि का अद्भुत पराक्रम यहां आलम्बन (कंस) में विस्मयजन्य शंका उत्पन्न करके अद्भुत की-सी सृष्टि करता है (वंश० ३८२ । २७)। भयानक रस के अनुभाव रूप में दैत्यों की मृत्यु एवं अन्य दुष्टों का पलायन (वंश० ३८२ । २८) है। यहां भयानक आलम्बन (कंस) में रौद्र (संचारी) एवं आश्रय (कृष्ण) में रौद्र की प्रत्युत्तरात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर वीर भाव का मध्य संचारित तक पहुंचाया है (वंश० ३८२ । ३१)।

श्री राम रावण पर चढ़ाई करते हैं। राम-रावण-प्रसंग में यहां वीराश्रय का उत्कर्ष प्रदर्शित करने हेतु भयानक रस का उत्कर्ष दिखाया गया है। राम लक्ष्मण के साथ दल-बादल सहित कूच करते हैं— सब जगत तक प्रकम्पित हो उठते हैं, चौदहों भुवनों

में भय भर जाता है, दिशाएं स्तब्ध रह जाती हैं, विस्मय आशंका, उत्सुकता चारों तरफ फैल जाती है— यहां अनुभाव तथा संचारण के माध्यम से भयानक को रस - सीमा तक लाने का प्रयास है। श्री राम के बाणों की सहज किंतु प्रचण्ड गति से ही रावण के प्राण बाहर खिंचे आ रहे है— जैसे केहूरी के श्वास - प्रवाह मे चींटी स्वय खींची चली आती है।

धनुष - टंकार, उसके वेग, प्रचण्डता आदि— उद्दीपनों— के साथ-साथ शिव की पलकों का खुलना, बिन बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट, सूर्यमंडल का धूम्राच्छादित होना, सुमेरु के अंगों का मुरझाना, समुद्र - जल में प्रलय उत्पन्न होना, धरा की टूटन से चटचटाहट का रव चारों ओर फैलना, शेष का अपने फणों को उलटना तथा अपनी लपलपाती हुई दो हजार जिह्वाओं द्वारा हृदय को चाटना, कच्छप की पीठ का दबकर उखल के समान बन जाना, पृथ्वी की दरारों से (अंत:प्रलय के कारण) जल - स्रोतों का बाहर फूट निकलना, सन्त्रस्त दिग्गजों का चकराकर गिरना, पवन का वामगति पूर्ण दुस्सह बहाव—आदि अनुभाव योजनाएं यहां महाकाली उपास्य रघुनंदन के आक्रमण को नितांत ही भयावह बना रही है। यथा —

> चींटी उप्पर कोप जदपि सरभ न करि जानैं।
> तदपि सहज सक्रमत त्रास सासहि तस तानैं॥
> उघरि ईस बफनिय गाज घन बिनु धुर रविकय।
> रज छविकय सिसुमार मेरु अवयन मुररविकय॥
> उच्छलि अमेय सिंधुन सलिल लोकन छलि छिरकन लगिय।
> रघुनाथ चढ़त भूतल दरकि करकि अड चटचट्ट किय॥
>
> —वंश० ८८२। १४

> उलटि सेस सिर सहंस सहस दुव बदि उर चट्टिय।
> दब्बत दतुलि दारि पुहवि सूकर कनरट्टिय॥
> कमठ पिट्ठि कड्डनिय घसत किरि पय चउ मूसल।
> अवनि दरारन उमगि जन्न जिम कढ़त गमंजल॥
> मूनगति गिरंत दिग्गज बिमद पलट देस दुस्सह पवन।
> सावरो चढ्यो ध्है किम सहज मनत कल्प चहुंदह भुवन॥
>
> —वंश० ८८२। १५

और भी— भयातुर हो पर्वत घूजने लगे, सृष्टि पत्ते की तरह कांपने लगी, दशो *दिशाओं से उड़ती हुई धूल सरोवरों के जलमण्डलों को कर्दम युक्त करने लगी,* प्रस्तर - खंड परस्पर टकराकर चूर - चूर होने लगे, हिम - स्थलों से हिम पिघल कर द्रुतगति से बहने लगा, भूलोक में जीव अचैन भोगने लगे, मौनियों के मौन भंग होने लगे, स्थिरता अस्थिर हो उठी, देव -कृत मर्यादा भी मिटने लगी, जब वह (श्रीराम) [illegible] कर चढ़ दौड़ा—

हरि डुंगर डगमगत थगत भगमगत पत्र जिम ।
दाब दगत गिरि गाथ ताव झगझगत उडव तिम ॥
दुर्दम रज दिश दिसन करत कर्दम कासारन ।
निखिम धाम निहार पतिग मह्व आसारन ॥
बन अजब भूमि भीतिन भजत मौन चरन हुव थिर न मग ।
करता चड्यौ सु महव्वत कहत बहुत देवनि निमेषन ॥

—८८२ । ११

यहां अनुभावों के साथ संचारियों का भी संयोग है जो स्थायी भाव, 'भय' को रस दशा की ओर अग्रसर कर रहा है ।

अद्भुत गति से होने वाला महाभिनाद, धनुष-टंकार, लोथ पर लोथ पटना, अश्व-गज आदि का कट-कट कर गिरना (वंश० ११२१ । ३५) भूत प्रेतों का भी विनाश में सहयोगी होना (वंश० ११५१ । ३४), वीभत्स - दृश्य (वंश० ११५२ । ३७ - ३६; ११५३ । ४४ - ४८) आदि उद्दीपन सामग्री से 'भयानक', अनुभाव-दशा तक पहुँचा है जो आगे संचारियों—धरा का निरन्तर डुलना (वंश० ११५१ । ३३) कायरों की कूक - चीत्कार, कच्छप की पीठ तथा वराह की दाढ़ों का हिलना भीरु जनों का प्रकम्प-वैवर्ण्य (वंश० ११५२ । ४०) आदि से पुष्ट होकर रसोत्कर्ष को प्राप्त हुआ है ।

इसी प्रकार शाह आलम तथा बूंदीश बुद्धसिंह की संयुक्त - वाहिनी का भी अनुभाव संचारी - मिश्रित वर्णन प्रस्तुत किया गया है । कवि ने कहीं मात्र आलम्बन - वर्णन से भयानक की सृष्टि की है तो कहीं उसे अनुभाव - योजना द्वारा ही भयानक की रसनिष्पत्ति दिखलाई है — संयुक्त वाहिनी, आज़म को लक्ष्य बनाकर, धरती दबाती हुई निकली, माराक्रान्त शेषनाग कुलबुलाता हुआ अपने फन पटकता है (पुत्र का दुःख देखकर माता कद्रू अकुलाती है वैसे ही वनिता प्रसन्न होती है), शिव नव-मुण्डमाल की कल्पना से मुदित होते हैं (वंश० २६६३ । १०) ।

मार्ग में जहां मुकाम पड़ते हैं वहां धन-धान्य, पशु पक्षी आदि कुछ भी शेष नहीं रह जाते, लगता है वज्र भार से पृथ्वी फट जायेगी, समुद्र सीमा छोड़ देगा, संसार में त्राहि-त्राहि मचेगी (वंश० २६६३ । ११) ।

भाराधिक्य से कच्छप - पीठ तिल-तिल कर नष्ट हो रही है, उसके प्राण नाड़ी में समाकर डूब रहे हैं अथवा यह कहिये युद्ध-ज्वाल में कच्छप पतंगवत् जल रहा है, विधाता नित नया कच्छप बनाता है किंतु बारम्बार उसकी यही गति हो रही है भयभीत वराह अपनी दतुलि से पृथ्वी को हटाकर कहीं मुंह छिपाकर बैठ गया है, देवगण आतंकित हैं (वंश० २६६३ । १ - २) । चौदहों भुवनों में भी त्रास बढ़ा है । विखण्डित शेष, कच्छप वराह, दिग्गज दिक्पाल एवं संतुप्त-संत्रस्त त्रिलोक को देखकर ब्रह्मा ने नया आयास प्रारंभ किया

मात्र अनुभाव-चित्रण के आधार पर ही यहां कवि भयानक के अंग-प्रत्यंग की व्यंजना में समर्थ हुआ है। प्रतिध्वनावादिता और उत्साहात्मकता पर आश्रित रहते हुए भी रस-परिपाक में कोई बाधा नहीं आई है। प्रसंग-गर्भत्व इस वर्णन की अपनी विशेषता है।

उल्लेखनीय है कि ऐसे प्रसंगों में जहां सूर्यमल्ल का पाण्डित्य उसके कवि पर हावी हो गया है वहां रस-निष्पत्ति का लक्ष्य दब कर रह गया है। कुमार अभिपाल के अभियान को इस बात के प्रमाणस्वरूप ग्रहण किया जा सकता है—इसमें सैन्य-सज्जा के आलम्बनात्मक वर्णन (वंश० १४४५।४; १४५२।५६) के द्वारा कवि ने भयानक सृष्टि करने का प्रयास किया है। किन्तु यहां उसने सैन्य-रचना के उपकरणों— हाथी, घोड़े, अस्त्र-शस्त्र, निशान-पताका, योद्धादि से सम्बन्धित अपने अतुल ज्ञान को ठूंस-ठूंस कर इस प्रकार भर दिया है कि सारा वर्णन-प्रसंग रस परिपाक से दूर हो गया है। उदाहरणार्थ हाथियों की भयानक टोली का आलम्बनात्मक चित्रण (वंश १४४५ । ४) जाति-गणना इलष और शुष्क वर्णन में न जाने कहां खो गया है (वंश० १४४५ । ७) जिसमें उपमा-कौशल के प्रति कवि का इतना अधिक आग्रह है कि उसके आगे वर्ण्य विषय ही तिरोहित हो गया है। आगे घोड़ों के वर्णन की भी यही गति (वंश० १४५० । २२) हुई है। तत्पश्चात् योद्धाओं के अस्त्र-शस्त्रादि का कलात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यहां भी बहुज्ञता प्रदर्शन की झक में कवि मूल विषय को भूल गया है (वंश० १४५१ । २५)।

भयानक के इस प्रकार के प्रसंग वंशभास्कर के प्रायः प्रत्येक अभियान अथवा युद्ध मे समाहित हुए हैं। उनमें परम्परा निर्वाह है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता, किंतु फिर भी कवि ने परम्परागत उपकरणों को अपने संस्कार देकर नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया है।

अद्भुत रस —

जैसा कि कहा जा चुका है—वंशभास्कर का प्रधान रस वीर है। भयानक और वीभत्स जैसे उसके पोषक बन कर आये हैं वैसे ही अद्भुत भी वीर अथवा उसके मित्र-रसों का सहायक बन कर आया है। अद्भुत के वर्णन आलम्बनात्मक भी हैं और उद्दीपनात्मक भी। किसी-किसी स्थल पर उसका स्वतंत्र प्रकाशन भी कवि को इष्ट रहा है जैसे जयसिंह के प्रकरण में उसकी अद्भुत (जुगुप्सित नहीं) मृत्यु।

अद्भुत के कुछ महत्वपूर्ण वर्णनों का विवेचन प्रस्तुत है—

चहुवान-युद्ध के अन्तर्गत भयानक और वीभत्स के साथ-साथ आनुषंगिक रूप से अद्भुत का भी समावेश हुआ है। प्रायः प्रत्येक सेनाभियान पर शेष के फणों का झुकना कच्छप की पीठ का छिलना, वराह का अश्रमित होना, समुद्र का उद्वेलित होना इत्यादि उपकरण भयानक के आलंबन रूप होकर अद्भुत रस का संचार करते हुए आए हैं। सेना-प्रयाण के ये अनोखे अनुभाव ही भयानक के आलंबन बनते हैं (वंश० ४२६ । ३-६)। इसी प्रकार बावन वीरों सहित शिव का आगमन, (वंश० ४१७ । ७) नभ-मार्ग मे अटे देव-विमान

आदि भी कौतूहल की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। और, भयानक और बीभत्स के उद्दीपन अनुभाव संचारी के विभाग में भी अद्भुत तत्वों का ही आश्रय लिया जाता है। जैसे—रोमोत्तोलन की प्रचण्डता, लंबी जिह्वा का निकालना-छिपाना (अंश० ४१८-११।१४), तालवृक्ष की वज्र-नलिका-सी भव्यावलि (अंश० ४१६।१३), आकाश मार्ग का युद्ध, पर्वतों की मार (अंश० ४१६।१६) और वैसे ही चहुवान द्वारा अद्भुत शक्तियों का दमन (अंश० ४२०।२०) विस्मयोद्बोधक प्रसंग है। यहां अद्भुत उपकरण तो आलंबन है तथा वीर द्वारा उनका मुकाबिला और काट उद्दीपन है जो विस्मय भाव को प्रहर्षण, समुत्सुकता आदि संचारियों से पुष्ट करके रस-दशा तक पहुंचाते हैं।

इसी युद्ध प्रसंग में भ्रम-गमन तथा माया-युद्ध के द्वारा भी अद्भुत का परिपाक किया गया है। चहुवान द्वारा घायल सुर दैत्य का आकाश में उड़ना, वहां से शिला, वज्र, बिजली आदि की वर्षा करना आलंबन है, चहुवान को पवनास्त्र प्रयोग की प्रेरणा होना, दैत्य माया को तिरोहित कर उसे नभ में ही तीरों से छेद-छेद कर शल्यक के समान कर देना इत्यादि (अंश० ४२०-२२) उद्दीपन हैं। शत्रुओं का भय-पलायन आदि जहां भयानक अनुभाव हैं, वहां विस्मय के रस-परिपाक के हेतु भी (अंश० ४२१।२४)।

युद्ध वेला में आहत होने पर चहुवान द्वारा देवी पार्वती का स्मरण एवं तदनुसार ही उसका प्रकट होना (अंश० ४२२।३०), उद्बोधन के उपरांत निरंतर साथ रहने का आश्वासन देकर उसके घावों को मिटा देना (४२२।३२)। इसी प्रकार चंडिका के ध्यान मात्र से चहुवाण का त्रास-हीन होकर पुनरुल्लास लाभ करना (अंश ४२३।३४) आदि अद्भुत के आलंबन हैं। आगे चहुवान की विजय पर देवताओं द्वारा पुष्प-वर्षा, मोदमय गायन वादन, शीतल मन्द सुगन्ध, वात रचना आदि (अंश० ४२६।६०-६१) से विस्मय परिपक्व होकर रस-दशा को प्राप्त हो जाता है।

अद्भुत के प्रसंग में रोपाल का लोक विरुद्ध कृत्य भी विचारणीय है। 'मरण-लुब्ध' रोपाल अपनी पत्नी के प्रस्ताव पर बन्धन-मुक्त होकर रण में जूझने के लिए उसे जीवित ही अपने हाथों चिता पर चढ़ा देता है। यथा—

"अब लारै एक पति ही परमेस्वर कहीजै जिकारी दरसण करीजीवीजै तींका आप मरण ही आसगियो सो मोनूं आपरै ही आगे काठां चढ़ाई पधारो॥

अर जीवणरी आस रहै तो मरणोक हुआ सत्यसंध अपज रै साथ जावणरी न धारो।

आपरी अगनारो इसड़ो अभिमत जाणी रोपाल झाकरा सेदा दामां री दुहिता सुगुणा नाम इरड़ी आपरी पत्नी नूं आपरै आस यही काठां चढ़ाई बम्बावदे माई अपज रो साथ कीधो।"

यहां वीर-पत्नी का साहस भी कम विस्मयकारक नहीं है कि वह अपने पति को रण-मृत्यु दिलवाने के लिए अपनी कंचनसी काया को खाक कर डालती है। यों अपनी सहचरी को फूंक कर रोपाल वीरोत्साह में धधकता इधर-उधर धमाके करता फिरता है।

रोपाल के इस दुःसाहस को देख कर सहृदय के मन में वितृष्णा उत्पन्न नहीं होती अपितु वह उसकी अनोखी मरण - भावना से अभिभूत हो उठता है— जुगुप्सा अथवा क्रोध की अपेक्षा उसके प्रति आश्चर्य-मिश्रित आदर-भाव ही पैदा होता है। उसका मरण-हठ आदि से अंत तक अडिग है तभी तो दूसरे वीरों ने मुकर जाने पर भी वह मरण का मोह नहीं छोड़ता और असि-युद्ध में जीतता हुआ शत्रु के साथ खंड-खंड होकर रणक्षेत्र में गिरता है। विस्मय के रंगों में रंगा वह राजपूती मरण-भावना का अमर प्रतीक है। उसके विस्मय-कारक वीरत्व के रंग कितने गहरे हैं। देखिए—

"जिकण यो अचलरा उपमान रोपाळ महराजोतरो सीस गूगरे समान तूटो। *सीस उड़तां ही, पड़िहार हसियो अर महराज मुरडि चालियो तिकणरैं लार लागे* रोंपाळ रै रुड सग पटकी कटारी काढ़ि सातधो पेढ जावता कटिबध पकड़ि पडिहाररा पिंड में सात घाव जडिया। सो च्यारि ऊभा तीन पडियां देर हुणारोनि दोही बानैत *एक ही काल में खेत पड़िया*" —*वंश० १८१८। ४३-४४*

राजपूत वीरों के साथ ही उनके प्रचेतक चारणों की अद्भुत वीरता और साहसिकता आदि के प्रसंगों को भी कवि ने अद्भुत रस-समन्वित करके उठाया है। मौसण विजयसूर अकाल के दिनों में गुजरात की ओर गमन करता है (वंश० १८४५। २७)। बारो चारण समुद्रसिंह को अपनी भगिनी विवाह कर वहीं दिन बिताने लगता है। एक दिन एक सामान्य-सी घटना को स्वाभिमान की कसौटी बनाकर वह कट मरता है (वंश०१८४७। ३५)। उसकी गर्भवती पत्नी सह गमन करने का निश्चय करती है। तदनुसार वह अद्भुत रीति से अपनी कोख चीर डालती है और गर्भस्थ बालक को निकाल कर अपनी ननद को सौंप देती है और फिर सहगमन कर जाती है। यथा—

विजयसूर री जोडायत कम्मे कटार झालि साहस हंवणरैं काज रोढ़करै समीप आपरी पीठ फाड़ि नेत्र मूढ़ मूछित बालकनूं काढ़ि नणदरैं हाथ दीधो। पर अब इणरो पालणो थारे अधीन इसडो कहि बालकरो नाम पीठहवो रखाइ सहगमण कीधो॥" (वंश० १८४८। ३७)

यह अद्भुत साहस भले ही अति मानवीय कहा जाय किन्तु इससे स्पष्ट होता है कि उस युग में साहस तथा वीरता के मामले में स्त्रियां भी किसी कदर पुरुषों से कम न थीं।

एक अत्यन्त ही सुन्दर उदाहरण कवि द्वारा बुधसिंह के पलायन के समय कल्पित किया गया है जो काव्य-क्षेत्र में अनोखा तो है ही साथ ही अद्भुत रस को भी अद्भुत बनाने वाला है।

हाड़ों कछवाहों में भयंकर युद्ध ठन गया है। कछवाहा सालमसिंह युद्ध का अगुआ बनकर हाड़ों के सीस शंकर की भेंट चढ़ाने हेतु उपस्थित हुआ है। सब ओर वीरोत्साह छाया है, ऐसे में बुधसिंह जैसे प्रचण्ड योद्धा का भयभीत होकर टलना ही अद्भुत का कारण है। भयानक के उत्कर्ष में अप्सराओं का आकाश मार्ग में छा जाना वीरों से वरदाहें करके

गज-गति से चलना (वंश० ३१४६ । ७) नारद का नाचना (वंश० ३१५० । ८) आदि उद्दीपन है। उद्दीपनों के विस्तार को कवि और बढ़ाता है। युद्ध रूपी बसंत के वीभत्स-परिप्रेक्ष्य में वर्षा का योग जहां भयानक का संस्पर्श देता है वहीं अद्भुत के उद्दीपन तत्व भी प्रस्तुत करता है। उस वर्षा में योद्धा रूपी पतियों को देखकर अप्सराओं के अग अंगमें अनंग का वेग बढ़ता है (वंश० ३१५० । ९-१०)। इधर वीरों के रक्त का उफान बढ़ता है उधर अप्सराओं में गीतों का वेग वर्धमान होता है, इधर सिंधुराग उठता है उधर अप्सराओं के आभूषणों की झंकार फैलती है। सभी अप्सराएं सुहागिनियां बनकर आनन्दोत्सव मना रही हैं केवल एक ही अभागिनी है जिसने बुधसिंह की कामना लेकर सजधज कर रणक्षेत्र में प्रवेश किया था किंतु बुधसिंह के युद्ध से विरत हो जाने पर वह बेचारी दुहागिन बनकर रह गई। यह अतिलौकिक कल्पना वास्तव में अद्भुत को अद्भुत गति से उद्दीप्त करने वाली है, फिर उस अभागिनी का क्षुब्ध होकर अपनी शृंगार - सज्जा को बिगाड़ना, उसकी दुर्दशा पर डाकिनियों का हंसना आदि विस्मय को रसोत्कर्ष तक पहुंचा देते हैं। यथा—

> यह मानि सुधाकर में बरसा, बढि माधव मास प्रभा विधुरयो,
> सखि नायक सूरन हूरन हूरन मगन अंग अंगन फुरयो।
>
> इत सूरन चंदन अस्त्र चढे रसकैं इत हूरन राग रचैं,
> उमहे इत सिंधुन की ध्वनितैं समुहैं उत सिंजित सद्द मचैं ॥ १०
>
> इत डाकिनी दूती कजाकिनी यो इत साकिनी नाकिनिया ससखी,
> सब हूर सुहागिनी इक्क अभागिनी बुद्धविभागिनी सो बिलखी।
>
> द्रुत हारसिंगार बिगारि दये धुपि अंजन रोदन बारि बह्यो,
> कर कंकन फोरि मरोरि कलापहि छोरि अलापहि ताप सह्यो ॥ ११
>
> यह आइस डाकिनिकी सिखई धवहीन भई अब छोह छई,
> अति आरति अच्छर रिको लखिकें हँसि डाकिनी डिंडिम डक्क दई।
>
> —वंश० ३१५०-५१ । १२

अद्भुत की यह उद्दीपन सामग्री जहां अद्भुत रस का परिपाक करती है वहीं बुधसिंह की कायरता के प्रति आश्चर्य भी जगाती है। बुधसिंह की कायरता पर तीक्ष्णतम व्यंग्य भी इसमें निहित है।

युद्ध - संकुल ग्रंथ होने के कारण वंशभास्कर में अद्भुत के स्थल पग-पग पर मिलते हैं कहीं स्वतंत्र तो कहीं आलम्बनात्मक, कहीं केवल उद्दीपनात्मक तो कहीं अनुभावात्मक, कहीं अन्य रसों के साथ सहचारण करते हुए तो कहीं उनके साथ आरोहण-अवरोहण तिरो-हण-प्रकाशन करते हुए भी। अद्भुत रस के अन्य महत्वपूर्ण स्थल हैं—

वंश० ३३२३ । ४०-४२ ; ३४२० । १७-३६ ; ३४४० । १८-१८० ; ३४८३ । ७१-७५ ॥

रौद्ररस—

'रौद्र' 'वीर' की मूल भित्ति है, 'अद्भुत' प्रवर्धक तत्व, 'भयानक' विकास-रेखा, 'बीभत्स' कर्म-परिणाम तथा 'करुण' अंत। इस दृष्टिकोण से इस 'वीर-रसार्णव' में बीभत्स की उत्तुंग लहरियां प्रत्येक युद्ध-प्रवाह में अनायास ही मिल जाती हैं। बीभत्सादि अन्य रसों की भांति रौद्र भी वीरोत्साह का कारण बन कर आया है। उसकी स्थिति या तो युद्ध-कर्म से पूर्व है या फिर युद्ध-कर्म-शृंखला के मध्य। कारणभूत तथा संश्रयात्मक दोनों ही रूपों में रौद्ररस का समावेश वंशभास्कर में हुआ है। कतिपय उदाहरणों की विवेचना अपेक्षित है—

चहुवान के युद्ध-प्रसंग में बाणासुर-पुत्रों के रौद्रानुभावों का वर्णन भयानक के सहकारी रूप में हुआ है। दैत्यों के क्रोध का आलंबन चहुवाण है। ऋषि मुनियों द्वारा उसका अभिषेक देवताओं द्वारा उसकी सहायता, साज-सज्जा, विजय घोष (वंश० ४१५। १-३) इत्यादि उद्दीपन हैं जो दैत्यों में रौद्र भाव का संचार कर उन्हें प्रत्याक्रमण हेतु प्रेरित करते हैं। दैत्यों के रौद्र अनुभावों के चित्रण का उद्देश्य है—आलंबन-पक्ष की प्रचंडता बतलाकर आश्रय-पक्ष का उत्साह-वर्द्धन करना।

देव-विमानों के थट्ट (वंश० ४१७। ८), अति लौकिक सत्त्वाओं के समूह (वंश० ४१६। ६), भयानक अंधकार (४१७। ७), तलवारों की चमक (वंश० ४१७। १०) आदि भी दैत्यों के क्रोध के उद्दीपक हैं। मूछों का उत्तोलित होकर आंखों तक चढ़ जाना, प्रत्यंचा की टंकार करना, सिंह के समान हुंकार कर ओठों को चबाना (४१८। ११-१३) रोमावली का खड़ा होना (वंश० ४१८। १४) रदच्छद का स्फुरण, लंबी जिह्वा का लपलपाना, भौंहों की कुटिलता (वंश० ४१६। १५) इत्यादि उनके रौद्रभावोदय के सूचक हैं।

रौद्रावेश में अभिमान-बहुलता (वंश० ४१८।१३) विजय-वाणी (वंश० ४१६। १५) विनाश का उत्साह इत्यादि संचारी बनकर आये हैं। दैत्यों के पक्ष में ये रौद्रानुभाव उनके वीरोत्साह के प्रकाशक हैं जो वीररस के संदर्भ में चहुवान के लिए आलंबन तथा उद्दीपन सामग्री बनते हैं। आगे धूम्रकेतु के क्रोध का भी रसोत्कर्ष किया गया है। अपने भाइयों की मृत्यु तथा चहुवाण की विजय अग्निनासिक का पतन तथा गिद्धों द्वारा की जाने वाली दुर्दशा (वंश० ४२७। ५१) मूर्छित धूम्रकेतु के क्रोध को उद्दीप्त करती है। उठकर चहुवान पर उसका प्रबल आघात करना (वंश० ४२७। ५२), चहुवान के प्रत्याक्रमण से उसका खो जाना (वंश० ४२७। ५५), भूतादिकों के उपहास से कलमलाना तथा उन्हें रहप्पट्ट (चपेट) लगाना अनुभाव हैं। भूतादिकों के व्यंग्य-वचन पुनः उद्दीपक हैं जो धूम्रकेतु के कोप को भावित करके प्रचंडतम शस्त्र-वर्षा के लिए प्रेरित करते हैं (वंश० ४२८। ५६) धूम्रकेतु के ये रौद्रानुभाव जिस भयानक स्थिति की रचना करते हैं (वंश० ४२८। ५७) उससे चहुवान का क्रोध और भी उद्दीप्त हो उठता है। फलस्वरूप युद्ध पूर्णाहुति को प्राप्त होता है। यथा—

तिहिं काल काल नृपाल कों बिकराल बिक्खन ह्वै बनै।
अति भाल ज्वाल अराल भ्रकुटी लाल अक्खिन उप्फनै॥

> भिग सुंभ के उर सूल सक्तिसु सक्ति यों मृग मुक्कई ।
> लगि दुष्ट के उर पुष्ट चंदन जुष्ट जो प्रभु तैं गई ॥
>
> —वंश० ४२८ । ५६

कृष्ण के प्रसंग में देवराज इन्द्र के कोप का भी चित्रण किया गया । कृष्ण के नेतृत्व में व्रजवासियों द्वारा गोवर्धन की पूजा (वंश० ५६८ । ८-९) उद्दीपन है जो इन्द्र के क्रोध को जाग्रत करती है; उसका अमर्ष, अवमानानुभव आदि (वंश० ५६८ । १०) संचारी बनते हैं । संवर्तक को बुलाकर प्रतिशोधात्मक आदेश देना, भयानक-रचना आदि (वंश० ५६८ । ११) अनुभाव हैं । यहां रौद्ररस भयानक का हेतु बनकर आया है; तथापि कृष्ण-चरित्र के प्रकरण में यह उनकी वीरता के परार्थ प्रकाश का एक अंग मात्र है । इंद्र का यह कोप और उसका वैर कृष्ण के लोक-रक्षण कार्य का निमित्त बना है ।

रौद्ररस के छोटे मोटे उदाहरण तो इस महाग्रन्थ में स्थान-स्थान पर मिलते हैं । भिन्न-भिन्न प्रसंगों में ये उपकरण भी भिन्न रूपी हैं तथा उनके लक्ष्य भी भिन्नार्थक हैं। कहीं हेतु रूप में, कहीं आलंबनात्मक, कहीं उद्दीपनात्मक तो कहीं अनुभाव रूप में आकर वे अन्य रसों के संपोषक बनते हैं । कवि की रस-योजना में रौद्र एक अनिवार्य तत्व है ।

रौद्र के कुछ और भी महत्वपूर्ण स्थल हैं जैसे—

रौद्र का एक दीर्घसूत्री प्रसंग पृथ्वीराज की सभा में हुई दुर्घटना से उठाया गया है । अपने असीम बल-मद में भरा हुआ कन्ह चहुवाण चालुक्य प्रतापसिंह को मार डालता है । (वंश० १३४४ । ११) इस कृत्य का कोई कारण नहीं है । महाभारत की कथा सुनते सुनते प्रतापसिंह का हाथ अपनी मूंछों पर जाता है इसी पर कन्ह तलवार के झटके से उसके दो टोल कर डालता है ।—

> "एक समय सभा में महाभारत रो उदंत चालतां बड़े भाई प्रतापसिंघ मूंछरे माथै हाथ दियो । सो देखता ही कोपानल में मत्त कन्ह चहुवाण उठि मूंछरा हाथ सहित दाहिणैं खांधे खड्ग रो प्रहार कियो ।।' —वंश० १३४४।११

कन्ह आलंबन बनता है और चालुक्य के शेष छ भाई क्रोध में उफनते हैं । कन्ह का नीच-कर्म उद्दीपन है; चालुक्य वीरों का मरण-महोत्सव ही अनुभाव है । यथा—

> "अर छोटा छही सोदरां होलीरा हुलियार जिम खड्गांरो खेल मंडियो जुवो जुवो अर दोही तरफरा वीरां प्रस्थान रूप बाजार में प्राणांरा क्रय-विक्रय रूप व्यापार मचायो । इण रीति सोलखी सारंगदेवरा सातूं ही पुत्र आप आपरा सिपाहां सहित सभा में टूक टूक भड़िया ।।" —वंश० १३४४-४५ । १२-१३

इस दुर्घटना से पृथ्वीराज भी चालुक्यराज भीम के कोप का शिकार होता है (वंश० १३४५ । १५) । आगे इछिनी विवाह के प्रसंग में पृथ्वीराज की तुलना में भीम का अपमान (वंश० १३५८ । ८; १३५९ । १०) उद्दीपन बनकर उसके क्रोध को अर्बुद विनाश के

निश्चय (वंश० ११६० । १२) तथा शाहबुद्दीन के आह्वान में व्यक्त होता है (वंश० १३६३। १८)। यह प्रयत्न पुनः शाहबुद्दीन में भी रौद्र स्फुरण का हेतु बनता है (वंश० १३६४।२१)। शाहबुद्दीन के दरबार में चालुक्य का पत्र ही क्रोध का आलंबन है। शाहबुद्दीन का दर्पाभिमान भीम के प्रति कहे गए उसके दुर्वचन (वंश० १३६४ । २१-२२) दूत सारंगदेव में भी प्रत्युत्तरात्मक रोष उत्पन्न करते हैं। फलतः वह सुल्तान को खरी-खरी सुनाता है—

" मुसलमानांरो जोर आपरै ही घर रहै छै ।। अर राजपूतांसूं मिळियां मदिरा उदक समान निस्सेस ढळि बहै छै ।। —वंश० १३६५ । २४

सारंगदेव की कटूक्तियां उद्दीपन हैं जो शाहबुद्दीन के क्रोध को गर्व, दर्प आदि संचारियों से पुष्ट करके दूत-हत्या-निदेश के अनुभावों में भावित करती हैं। यथा—

" या कहतां ही पातसाहरी सैनसूं वजीररो तीर मकुवाण री छातीरैं पार फूटो ।।
सो लोह लागतां ही सारंगदेवरा हाथरो चन्द्रहासरो प्रहार छूटो ।।

—वंश० १३६५ । २४

शाहबुद्दीन का यह क्रोध पुनः चालुक्य के क्रोध का उद्दीपक बनता है। इस प्रकार यहां तीनों शत्रुओं के पारस्परिक आलंबनत्व को एक साथ उभारने के लिए रौद्र का प्रयोग किया गया है। रौद्र-रस का यह प्रसंग आगे के वीर तथा भयानक की भूमिका के रूप में उठाया गया है।

रौद्र के इसी प्रकार के अन्य प्रसंग हैं— वंश० ३१५३ । ३३; ३१७१ । १४४; ३४२७ । ३८-३६; ३६१५ । २५-२७ ।

शृंगाररस

'शृंगार' का समावेश वंशभास्कर में नवरस-संकलन की दृष्टि से ही हुआ है। विविध-कथा-संदर्भों में इनका प्रायः सूचनात्मक निदेश हुआ है। काव्य-परम्परा-निर्वाह के लिए और कहीं-कहीं अपनी काम-शास्त्र अथवा काव्य-शास्त्र सम्बन्धी बहुज्ञता के प्रदर्शन हेतु भी कवि ने 'शृंगार' की अवतारणा की है।

संयोग-शृंगार का केवल एक प्रसंग आया है। वियोग-शृंगार के स्थल अनेक हैं किंतु कवि ने उन्हें अनुभाव दशा तक विकसित करने का यत्न नहीं किया है। शृंगार के नाम पर नायिका भेद अभिसारिका, चौर्य-रति, पूर्वराग, हरण, व्यभिचार, काम-क्रीड़ा आदि के स्फुट वर्णन यत्र तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। ऐसे वर्णनों में कहीं-कहीं तो कवि अश्लीलता की सीमा तक पहुंच गया है।

रति-भाव से सम्बन्धित कुछ प्रसंग विचारणीय हैं—

रति का एक प्रसंग श्री कृष्ण की रास लीला के संदर्भ में आया है। शरद की ज्योत्स्ना (वंश० ५७० । २१) में रति-भाव से प्रेरित (वंश० ५७० । २२) श्री कृष्ण त्रिभंगी लास से वंशीवादन करते हैं। वंशी-स्वर गोपियों के रतिभाव के लिए उद्दीपक बनता है।

वे कामोद्दीप्त हो लोकलाज छोड़कर दौड़ पड़ती हैं (वंश० ५७० । २३) आकुलता, आतुरता, विस्मय, असूया, मोह, कायरता इत्यादि संचारी हैं । कृष्ण के छिप जाने पर संकेत-चिन्हों तथा क्रीड़ा-स्थानों को चूमना, बावली बनकर यमुना तट पर कृष्णवत् आचरण करना तथा गीत गाना उनकी रति-तन्मयता के अनुभाव हैं । यथा—

हरि अन्य देश गये तहाँ सब कृष्ण ह्वै रमने लगी ।
पदचिन्ह खोजत ओरके पद संग देखि चली ठगी ॥
अवचाय पुष्पन को करयो हरिसो लख्यौं कहुं जायकैं ।
कहुं सग की तियको कलाप गुथ्यो सु ठौरहु पायकैं ॥ २४
पुनि संगकोहु समर्थ जानि टरे जनार्दन ताहुसौं ।
इत्यादि सब लखती भई थल चुंबि चिन्हन बाहुसौं ॥
गहनाटवी पुनि अग्ग जानि मुरी सबै बनि बवरी ।
रहिकै जमि तट कृष्ण चेष्टित गान की रचना करी ॥

—वंश० ५७१ । २५

गोपियों में यह रत्योद्दीपन बताकर कवि ने आगे शास्त्रीय पद्धति पर इसका विकास किया है । रतिक्रीड़ा के लिए आलंबन और आश्रय पक्ष में समान रति की भावना तो चाहिये ही । दोनों पक्षों में समान रूप से रति-भाव जाग्रत होने पर रासलीला की रचना होती है (वंश० ५७१ । २६) यहां पर भी कवि ने अल्पकालिक वियोग (५७१ । २४) के बाद संयोग के आनंदानुभावों एवं संचारियों का सुंदर चित्रण किया है । प्रसन्नता, आमोद, विश्वास के बीच रास-रचना तथा नृत्य के उत्कर्ष के साथ-साथ रति-भाव की सम्पुष्टि हो रही है जिसमें विविध अनुभावों तथा संचारियों का कुशलता के साथ चित्रण किया गया है । तन्मयता, गति, उग्र-वेग, मदोन्मत्तता, श्रम, अवलम्ब, मुग्धता, शृंगार-सज्जा की अस्त-व्यस्तता इत्यादि से सपुष्ट रति-भाव रसोत्कर्ष को प्राप्त होता है जिससे न केवल आश्रय-आलंबन ही अपितु समस्त प्रकृति शृंगार-सागर में डूब जाती है । यथा—

करकै पयोघट घेर गुम्फि बनाय डेरन सों भये ।
सिर चीर बेग समीरसों बिथुरे बितानन सों छये ॥
कटि सूत्र नूपुर घंटिका झननंकि झल्लरि सों बनी ।
कर पुञ्ज कंकन कुमना तब चंगके मिस न्हैं तनी ॥ २७
स्वर मंद मध्य रु तार झननंकार दामन में फिरे ।
तदन्य तीन हि मैं चले न चतुर्थ सों कबहू गिरे ॥
परिवर्त्त के श्रम काहु कच्छूर कच बाहुलता दई ।
अवलम्ब के हित डल्लरी तनु बलवाद मैं गई ॥ २८
कटि भग्न पच विमय को कवरीन काहुक खुलयो ।
कुचभार संग विनम्र तुरुन कांति सावक है नयो ॥

इक सार भेद प्रकार वर्जित रासको फिरनों लस्यो।
भावर्त भद्भुत भानि यह शृंगार बारिधि में बस्यो ॥

—वंश० ५७१-५७२ । २६

राठौड़ मालदेव के विवाह-प्रसंग में उसकी कामातुरता, प्रथम रति, तथा उमादे भटि॰ यानी का उत्कट मान-वर्णन हुआ है। *खंडिता-नायिका के उत्कट मान का चित्रण ही यहां* लक्ष्य है। मालदेव का मद्यपानाधिक्य से कामांध होना (वंश० २०६१ । १२) विनोद-विलास के बीच भटियानी को बुलाने के उसके निर्लज्ज प्रस्ताव (वंश० २०६१ । १३) आतुरता, अन्य स्त्रियों से लज्जित होकर उसके पास से उठ जाना (वंश० २०६२ । १३) सेविका के साथ रमण (वंश० २०६३ । १४) आदि उद्दीपन हैं जो भटियानी के क्रोध, रोष, अभिमान आदि को जाग्रत करके उसे 'खण्डिता' बनाते हैं। उसकी भयंकर सथा-चढिबो जु भात सज्जा उचित तो चढिहौं तावक तलव—तथा उसे पूर्ण करने के यत्न (वंश० २०६३ । १६-२०) अंत में पति-त्याग (वंश० २०६४ । २२) आदि अनुभाव है। खंडिता-नायिका के अनभ्र गर्व सचारी का यह उदाहरण मार्मिक भी है तथा करुण भी।

परम्परा-पूर्ति के लिए जो अन्य शृंगार प्रसंग आये हैं, उनकी स्थिति इस प्रकार है—

१ पूर्वराग— जगमाल द्वारा यवन-कन्या का अपहरण तथा प्रेम-निर्वाह (वंश० १७७१ । १६) ।
२ *सप्रयोग-रति— राव सूर्यमल्ल-प्रसंग (वंश० २१३६ । ११)*
३ चौर्य-रति— सलीम तथा मेहरुन्निसा-प्रसंग (वंश० २४१८ । ४१-५१)
४ विकृत-रति— वीसलदेव (वंश० १२८६ । १४), गोपीनाथ की विकृत रति के प्रसंग (वंश० २४४६ । २४-६१)
५ नायिका-भेद-गणना— रात्रि-वर्णन के प्रसंग में (वंश० २६६६ । १०-२२)
६ *प्रगल्भा परकीया— रहीम तथा वणिक् नायिका का प्रसंग (वंश० २३७३ । ३१ ३८*

करुणरस—

युग-प्रधान रचना होने के कारण वंशभास्कर में मरण-विनाश आदि के चित्रों का अभाव नहीं है, तथापि करुणरस के योग्य अनुभाव-सचारी आदि की योजना कवि को अभीष्ट नहीं रही है। कहीं कहीं तो अत्यन्त मार्मिक स्थलों को भी उसने चलता कर दिया। (द्रष्टव्य-खेतल का मरण—वंश० १८३४ । १५) कहीं मात्र सूचनात्मक वर्णन द्वारा प्रस्तुत प्रसंग की करुणा के सकेत भर किये गए हैं। कुछ ही स्थलों पर करुणरस के परिपाक की चेष्टा की गई है। करुणरस की स्थिति प्राय: 'वीर' की अवसान-दशा में है। यह अवसान-दशा कहीं तो अंतिम रूप में है और कहीं विश्राम रूप में, जो वीर में नए सिरे से कर्म-भावना का सचार करती है।

दो-एक उदाहरणों की विवेचना प्रस्तुत है—

वीर परिहार के आसन्न मरण से ऋषि-देवगणादि में व्याप्त शोक के सूचनात्मक संकेत आये हैं। 'धूम्रध्वज' के आघात से परिहार का अचेत होना आलंबन है। सारथी का रथ रोक कर उसके पीछे लौटाना, देवताओं का हतप्रभ होना, अपने निवास स्थानों—वन पर्वत गुहा आदि—को छोड़ कर भागने का विचार करना (वंश० १६१ । १४) अनुभाव हैं। करुण का यह प्रसंग वीर-कर्म का विरामस्थल है जिसके तुरंत बाद ही विष्णु के प्रबोधन के देव गणों का भ्रम निवारण होता है, शोक मिटता है (वंश० १६२ । १६-२०) और पुनः नए उत्साह की भूमिका बनती है।

रावण मरण को भी कारुण्य का पुट देकर सवारा गया है। रावण दुष्ट था, उसका मरण देवादिकों के लिए हर्ष का विषय था तथापि मानवीय संवेदना के आधार पर सूर्यमल्ल ने उसकी मृत्यु को करुणाप्लावित बनाकर चित्रित किया है।

अग्रज की मृत्यु पर विभीषण का रुदन (वंश० १८६ । १-३) तथा राम का भी पश्चाताप तथा सदय-भाव (वंश० १८७ । ४) असुर-अंगनाओं का हाहाकार करते हुए रण-भूमि में प्रवेश, उनका आभूषणों को बिखेरते हुए बालों को नोंचना, रावण के शव पर पछाड़ खाकर गिरना, इत्यादि अनुभाव हैं। यथा—

> सुनत कुणप दससीस पतन लंका अंतहपुर।
> विलपत नारिन्ह वृंद अखिल आये कढ़ि आतुर॥
>
> द्रुत पुर उत्तरद्वार होय रनभुव पथ हेरत।
> सुख सुमिरत पति संग तुलै केयुन बखेरत॥
>
> लोटत बिहाल तोरत अलक सुतो लखि मानव समर।
> महिला अचेत मयजा प्रमुख परी सकल तस देह पर॥
>
> —वंश० १८७ । ५

पूर्व-सुखों का स्मरण, रावण की हठधर्मिता का स्मरण (वंश० १८७ । ५-६) आदि उद्दीपन हैं जो व्याकुलता, दीनता, निस्सहायता, चिंता, विषाद, प्रमाद, अचेतना आदि संचारियों से संपृक्त होकर अत्यन्त ही मार्मिक वातावरण की सृष्टि करते हैं। मंदोदरी का विलाप इस करुण प्रसंग की मार्मिकता को कितना सघन बना रहा है। यथा—

> मंदोदरि व्याकुल भ्रमित, अविलय तिय अवतंस।
> सीता सन मोहिं सदा, बढ़त रूप गुन वंस॥ ६
>
> तदपि अनंगायत्त तैं, मोहित बीसरि मोहि।
> हठि बरजत सीता हरि, ताथ मिल्यो फल तोहि॥ ७
>
> पुष्पक दिव्य विमान पर, अब हम जुत चढ़ि धीर।
> रैवते नंदन चैत्ररथ, बिहरंत क्रीड़न वीर॥ ८
>
> सो अज्जहि बित्यो समय, सोये तुम रन सैन।
> अर्क किरन प्रविसे अभय, अज्जहि लंका ऐन॥ ९

भोक्ता त्रिभुवन भोग के, जेता जमके जंग।
स्वप्न किधौं यह सत्य है, हाय हनैं तुम रंग ॥ १०
पवनहु हमको लखि परसि, रंक ग्रदंड रह्यो न।
तैं बाहर निकसी तकनि, क्यों तिहि रोष कह्यो न ॥
—*वंश० १८७-८८ । ११*

यहां यह तनिक भी विचार नहीं ग्राता कि एक यवन की मृत्यु का प्रसंग चल रहा है। मानवीय संवेदनाओं से आपूर यह चित्र अपूर्व है।

शत्रुसल्ल की वीरगति के बाद बूंदी के रनिवास की दुर्दशा का प्रसंग भी मार्मिक बनाकर प्रस्तुत किया गया है। शत्रुसल्ल का मरना (वंश० १८६१ । ५१), उसके एक एक वीर का खेत रहना, म्लेच्छों का बूंदी-प्रवेश और रानियों का महल छोड़ कर भागना ही करुणा के *आलंबन हैं (वंश० १८६७ । ७)। मासूम बच्चों और धरती पर पैर न रखने* वाली सुकुमार रानियों का अकस्मात विपत्ति में पड़ना, बिना सगी साथी पर्वतीय मार्गों में छिपकर भागना (वंश० १८६७ । ६), धात्री सहित बालक-बालिका (श्याम श्यामा) का म्लेच्छों के हाथ पड़ना (वंश० १८६८ । १०), बाज बहादुर का उन्हें लेकर मालवा की ओर भाग जाना (वंश० १६०१ । २३) और इस वृत्तांत को सुनकर वीर जावद्द के मरते हुए घावों का फट जाना और मृत्यु हो जाना (वंश० १६०१ । २५) आदि करुण के सघन उद्दीपक हैं। बच्चों की माता प्रामारी का अनशन करके प्राण त्याग कर देना, अनुभाव हैं। वीरों की विजय में भी पराजय की अनुभूति, चिंता, लज्जा (वंश० १६०१ । २७) आदि सचारी हैं।

उम्मेदसिंह के चरित्र में भी करुणा के प्रसंग अनेक स्थलों पर आये हैं। उसका बार बार असफल होना, प्राप्त वैभव का नाश होकर उसका निराश्रित होना आदि प्रसग अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं (वंश० ३३२१ । १६)।

हास्यरस—

वंशभास्कर में 'हास्य' की स्थिति प्रायः नगण्य है। कतिपय स्थलों पर ही कवि ने लोकातिशयता-युक्त उपहासात्मक चित्रण प्रस्तुत किये हैं। कुछ प्रसंगों की विवेचना से बात स्पष्ट हो जायगी—

वीर जगमाल के युद्ध-वर्णन में यवनों की भगदड़ का हास्यात्मक चित्रण किया गया है। हास्य का यह प्रसग जहां यवनों की कायरता व्यक्त करता है वहीं 'वीर' का उत्कर्ष भी। *जगमाल की वीरता के सामने यवनों के समूह में उपद्रव मच गया। घोड़े सवारों के बिना और सवार घोड़े के बिना इधर उधर भागने लगे (वंश० १७७१ । ४३)। किसी की पगड़ी* वृक्षों में उलझकर रह गई, किसी का पाजामा कांटों में उलझकर कहीं रह गया, कितने की दाढ़ियां ही उलझ गईं जिससे वे घाटियों में फंस गये, कितने ही थककर हाथ जोड़ने लगे तो कितने ही पैर पकड़ने लगे, कितनों ने भय के मारे कपड़े खराब कर दिए तो कितने ही हाय-तोबा करके झूरने लगे। यथा—

... ...
जगमाल पाग आकुल चरनं अग्रव अति तद्दिन पद्दिग ॥ ४१
तदन पाथ रहि कठिन सूघन फटि कंटन,
चिबुक लोम अति छरकि परैं स्वकठ गिरि घंटन ।
कर जोरत पकि कतिक पयन द्रम्ह कतिक खात परि,
पूरब धराम अपूत कतिक भूरत तोबा करि ॥

—१७३९ । ४४

शत्रुओं के भय के ये अनुभाव हास्य के विभाव बनकर आए हैं । यहाँ हास्य वीर का संपोषक बना है ।

मुगल बादशाह के दरबार में खानकलीज का व्यंग्य हास्यात्मक भी है और उद्बोधनात्मक भी । तत्कालीन दरबारी परंपरा को आलंबन बनाकर यह हास्य प्रस्तुत किया गया है। वजीर का एक एक सलाम पर अलग अलग इनाम पाना और उसके आदाब को देखकर खानदोरा का व्यंग्य करना (वंश० ३२५१ । १) हास्य का आलंबन है । कलीजखां की शरीर रचना और उसका मोटा पेट इसी का आलम्बन है जिस पर उसकी आदाब कसरतें उद्दीपन हैं,शाह के साथ सारे दरबारका मुस्कराना, अट्टहास करना लज्जा और सभा-मर्यादा का टूटना अनुभाव है (वंश० ३२५१ । २-३) । खान कलीज की खीज तथा उसका व्यंग्य (वंश० ३२५१ । ४) जहाँ मूर्ख शाह की सराहना का विषय बनकर हास्य का विलंबक बनता है वहाँ वस्तु-स्थिति की दयनीयता का सही चित्रण करके उद्बोधन भी देता है ।

इंदे-पड़िहारों का सिंधिया की हत्या करने के उद्देश्य से रचा गया कपट-कौतुक हास्यात्मक प्रसंग है जिसमें बनिया की लड़ाई का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है । ऐसे युग में जबकि मरना और मारना साधारण-सी बातें थीं, कायरता, दीनता और शरीर पर आंच न आने देने वाले झगड़े उपहासात्मक ही माने जायेंगे । हास्य का यह एक सुंदर प्रसंग है ।

सिंधिया ने नागोर में विजयसिंह को घेर लिया है। सिंधिया पर उसका वश नहीं चल रहा है (वंश० ३६४८ । ९-१०) । ऐसे समय पर वह इंदा जाति के परिहारों को बुलाता है । ये परिहार अपने प्राणों की बाजी लगाकर कपट कौतुक और अचूक घात करने के लिए प्रसिद्ध हैं (वंश० ३६४९ । १७) । ये वीर परिहार ही हास्य के आलंबन हैं । यद्यपि वे वीर हैं, साहसी हैं तथापि कपट-कौतुक के खिलाड़ी होने के कारण विदूषक की कोटि में ही आते हैं । दोनों परिहारों का वणिक बनकर सिंधिया की सेना में जाना, दुकान खोल कर कारबार जमाना तथा एक दिन किसी बहाने लड़ना-झगड़ना (वंश० ३६४९ । १९-२०), परस्पर जूतियों का प्रहार करना, धोती को इस पैर से उस पैर में पलटना (उसका खुलना बांधना) पगड़ियों का ढीली होकर सरकना, गले में उलझना, सांस चढ़ना, हांफना, कलम गिरना (वंश० ३६४९ । २१-२२), जैन मतविरोधी आरोप लगा-लगा कर परस्पर धमकाना, एक का पत्थर उठाने को दौड़ना तो दूसरे का दांत उखाड़ने की कोशिश करना, किन्तु फिर गालियों की लड़ाई लड़ना, कृत्रिम बाथ भरना, अपानवायु निकालना (वंश०

३६२० । २३-२६), एक का हवा में मुट्ठी मारना तो दूसरे का दांत पीसना आदि हास्य के लिए खासा सामग्री उपस्थित कर देते हैं। यथा—

बकल परस्पर जँन बनि, उभय तिरप्पर खान।
पलटन पायन धौवपट, होत पदम्न हान ॥ २१

सिथिल पघ सिरतें सरकि, उरझी कंठन प्राय।
कलम गई गिरि कान तें, मुख गल स्वास न माय ॥ २२

इक्क कहूँ कहिहीं भ्रबहि, गिनि रक्खो मैं गूढ़।
मोदक खावत मात तव मार्‌यो उदर मूढ ॥ २३

जपै इतर तेरे जनक, छली जिनोदित छोरि।
मक्खी दस घृत मांहितें नक्खी जियत निचोरि ॥ २४

गहन इक्क पत्थर गह्‌यो, दैबेकों करि दाव।
खँचत विटपन इक्क खिजि, थल्लत गालित घाव ॥ २५

जिम तिम विरचत करि सतन, प्रबोबात उतसर्ग।
लखि इत उत विहसन लगे, बल दक्खिन भट वर्ग ॥ २६

इक मारत मुट्ठी उछरि, खिजि इक दंत नसात।
सय्या की डोड़ी गये, सरत प्रहारत लात ॥ २७

धोंत वसन अंतर दुहुन, कछि कछि दृढ कोपीन।
दुव भ्रसि धेनु दुराय तहँ सरन भये हम लीन ॥

—वंश ३६४६-५० । २८

शान्तरस

वीररस के विरोधी होने के कारण वंशभास्कर में शांतरस की स्थिति एकदम नगण्य है। राजाओं के वानप्रस्थ-ग्रहण, दान-त्याग, प्रायश्चित्तार्थ यज्ञ, तीर्थ-सेवन आदि के वर्णनों मे निर्वेद की स्थायी वृत्ति प्रतिफलित होती दीख पड़ती है।

वानप्रस्थ-प्रसंगों में निर्वेद के अवसर अपेक्षाकृत अधिक आये हैं। उत्तर-कालीन वर्णनों में बुधसिंह के निर्लिप्त-भाव के परिवर्तनों में भी निर्वेद की दशावस्था के विभाव दिखलाई पड़ते हैं।

वीरों के अभिमान प्रसंग में भी निर्वेद संचारी रूप में आया है। यश-पूत योद्धा माया, मोह, सांसारिक वैभव आदि का परित्याग कर रण-यज्ञ मे अपनी प्राणाहुति देने के लिए तत्पर हैं— सर्वभावेन निर्लिप्त। ऐसे प्रसंगों में कवि ने स्वयं भी संसार की निस्सारता, असत्यता, ब्रह्म के स्वरूप आदि की व्याख्या करते हुए जीवन की अनित्यता की वेदान्तिक व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं।

स्वतंत्र रूप से कवि ने छठे खंड में वेदान्त की विस्तृत एवं प्रबोधात्मक व्याख्या उपस्थित की है जो पाठकों में भौतिक सुखों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर आध्यात्मिक सुख की कल्पना का रस सचार करने में समर्थ है।

अध्याय ११

वंशभास्कर : भाषा–विवेचन

वंशभास्कर की भाषा के विषय में प्रचलित धारणाएं—

हिन्दी-साहित्य की सबसे विशाल कृति होते हुए भी वंशभास्कर विद्वत् समाज द्वारा उपेक्षित बना रहा। विदेशी विद्वानों ने तो उसे 'भाज' की रचना होने के कारण छुआ ही नहीं, भारतीय विद्वान भी उससे कतराते रहे। वंशभास्कर की इस उपेक्षा के दो कारण रहे हैं— एक इसका वृहदाकार और दूसरा इसकी अति 'कठिन' भाषा।[1] आकार की बात तो फिर भी गौण है, मूल बात इसकी भाषा-विषयक जटिलता ही रही। डा० मोतीलाल मेनारिया के शब्दों में 'इनकी भाषा बहुत कठिन है। सूरजमल्ल ने कहीं-कहीं अपने गढ़े हुए शब्द रख दिये हैं और कहीं-कहीं ऐसे क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है कि एक साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति के लिए इनके अर्थों को समझना तो दूर रहा उनको हाथ में लेने का साहस ही कम होता है।"[2] साधारण पढ़े लिखे व्यक्ति की बात तो दूर, अंगुलियों पर *गिने जाने वाले जिन विद्वानों ने वंशभास्कर को हाथ में लेने का साहस किया भी तो वे इस* की भाषा के विषय में ठीक निर्णय न दे सके। मिश्रबन्धु इसकी भाषा को 'राजपूतानी मिश्रित ब्रजभाषा'[3] कहते हैं तो श्री सूर्यकरण पारीक उसे 'कृत्रिम डिंगल'[4] मानते हैं। उधर डा० उदयनारायण तिवारी उसे 'वेलि क्रिसन-रुकमिणी री' के साथ 'डिंगल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना घोषित करते हैं।[5] प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के शब्दों में "इसी *प्रकार वंशभास्कर को डिंगल की रचना मानने वाले महानुभावों की कमी नहीं है।* इसका कारण यह है कि ग्रंथ को देखे बिना, उसे राजस्थान के एक चारण की रचना जानकर उन्होंने भ्रांत धारणाएं बनाली हैं।[6]

---

१ कृष्णसिंह बारहट : वंशभास्कर उदधि मथनी टीका प्रथम खण्ड पृ० १

२ डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपना यह मत सूर्यमल्ल की तीन रचनाओं वंशभास्कर, बलवद् विलास और छंदोमयूख—के विषय में सम्मिलित रूप से प्रस्तुत किया है, पर वे मुख्यतः वंशभास्कर पर ही केंद्रित रहे हैं। अपने मत की पुष्टि में उदाहरण भी वंशभास्कर से ही उद्धृत किया है। द्रष्टव्य राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० ९१०

३ मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण) पृ० ६११

४ सहल मोड़-स्वामिया द्वारा सम्पादित 'वीर सतसई' की भूमिका पृ० ६५ से उद्धृत।

५ वीर-काव्य पृ० ५६

६ पृथ्वीराज रासो की भाषा
राजस्थान भारती (भाग १ अंक २-३ पृ० ५१)

बहुभाषाभिज्ञ सूर्यमल्ल मिश्रण—

सूर्यमल्ल नाना शास्त्रों का प्रकाण्ड पंडित होने के साथ ही अपने युग का श्रेष्ठ भाषाविद् भी था। षड्भाषाभिज्ञ के रूप में उसकी कीर्ति का प्रसार समस्त राजपूताना और मालवा-प्रदेश तक था। परम्परा-मान्य 'षड्भाषाओं' के अतिरिक्त वह फारसी का भी जानकार था। डिंगल-पिंगल-पटु तो वह था ही। यह बहु-भाषाविज्ञता उसे वंशगत उत्तराधिकार में मिली थी। *इस बहु-भाषाभिज्ञता के कारण ही उसके वंशज 'मिश्रण' कहलाते हैं*—

भाखा खट मिश्रण भणिति बदि जिन्ह जित्ते बाद।
उनको मिश्रण नाम इम हुव सुलाद्यनिक ल्हाद॥ वंश० ३८। १०

वंशभास्कर लिखते समय सूर्यमल्ल भाषा के विषय में बड़ा सावधान रहा है। उसने जहां 'ग्रन्थ-नियमान्तर्गत' अपनी भाषा-नीति (जिस पर हम आगे विचार करेंगे) को स्पष्ट कर दिया है वहीं उसने जहां जिस भाषा अथवा भाषा-रूप का प्रयोग किया है— वहीं इसका भी साफ निर्देश कर दिया है कि वह अमुक भाषा में रचना करने जा रहा है। यथा शुद्ध-प्राकृत भाषा, शुद्ध अपभ्रंश भाषा, शुद्ध व्रज-भाषा, प्रायोव्रजदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा, प्रायो मरुदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा आदि। प्रयुक्त भाषाओं के विषय में इतने स्पष्ट निर्देश के रहते भी विद्वानों ने उलटे-सीधे अनुमान लगाकर वंशभास्कर की *भाषा को कभी कुछ तो कभी कुछ कैसे बता दिया?—किमाश्चर्यमतः परम्।*

वंशभास्कर : एक मिश्र-भाषा-काव्य—

वंशभास्कर एक मिश्र-भाषा-काव्य है। 'यहां मिश्र-भाषा' का अर्थ विभिन्न भाषाओं की पृथक-पृथक सत्ता— जो इसमें आकाश में तारामण्डल से भिन्न ग्रहों की भांति द्रष्टव्य है[1]— से भी है और एक ही भाषा में अन्यान्य भाषाओं के पदों— जो आकाश में छिटकते तारों की भांति यत्र-तत्र दृष्टिगोचर है[2]— से भी। इस प्रकार वंशभास्कर मिश्र-शैली (चम्पू) का ही काव्य नहीं मिश्र-भाषा का भी काव्य है। मिश्र-भाषा काव्य रचना की परम्परा हिन्दी में सुदीर्घ काल से चली आ रही है।[3]

वंशभास्कर में प्रयुक्त भाषाएं—

वंशभास्कर में कवि के अनुसार निम्नांकित भाषाओं और भाषा-रूपों का प्रयोग हुआ है—

---

१ सुद्दह संस्कृत आदि सब भिन्न-भिन्न कहु ठौर॥
जे आकाश ग्रह-न्याय जिम, मग्नहु भूपति मोर॥ वंश० १४६। ३८

२ संस्कृत आदि छ गिराहु के, पद विभक्ति निज सत्थ॥
जे नभ-तारा-न्याय जिम, भक्खों मिश्रित ग्रत्थ॥ वही १४६। ३७

३ द्रष्टव्य अगरचंद नाहटा कृत 'कई भाषाओं एवं बोलियों की मिश्रित रचनाएं' शीर्षक लेख, सम्मेलन-पत्रिका भाग ४६ संख्या ४, आश्विन मार्गशीर्ष शक १८८२

१ शुद्ध संस्कृत भाषा
२ शुद्ध प्राकृत भाषा
३ शुद्ध मागधी भाषा
४ शुद्ध पैशाची भाषा
५ शुद्ध शौरसेनी भाषा
६ शुद्ध अपभ्रंश भाषा
७ शुद्ध व्रजदेशीय भाषा
८ शुद्ध व्रजदेशीय प्राकृत भाषा
९ प्रायः संस्कृत शब्द व्रजदेशीय प्राकृत क्रिया विभक्ति की मिश्रित भाषा
१० प्रायोव्रजदेशीया प्राकृत-मिश्रित भाषा
११ प्रायो मरुदेशीय प्राकृतामिश्रित भाषा
१२ यावनी भाषा

कवि परम्परा-मान्य[१] भाषाओं अर्थात् प्रथम ६ भाषाओं को उपर्युक्त भाषा-सूची में से पृथक कर देने पर जो ६ भाषा अथवा भाषा-रूप शेष रह जाते हैं हमारा अध्ययन उन्हीं तक सीमित है। शुद्ध-यावनी भाषा, जो नमूने के रूप में केवल एक बैंत[२] में प्रयुक्त हुई है, को अलग करके इस भाषा-सामग्री को मूल भाषा के आधार पर दो भाषाओं में विभक्त किया जा सकता है—

१ व्रजदेशीय भाषा अथवा पिंगल
२ मरुदेशीय भाषा अथवा डिंगल

प्रधानतया इन्हीं दो भाषाओं में रचना करना ही कवि को अभीष्ट रहा है।

१ व्रजदेशीय भाषा अथवा पिंगल

वंशभास्कर : एक नर-गिरा-निबद्ध-काव्य —

वंशभास्कर एक नर-गिरा-निबद्ध काव्य है— परम्परा और अंतःसाक्ष्य दोनों से यह सिद्ध होता है। वंशभास्कर के टीकाकार श्री कृष्णसिंह बारहट सूर्यमल्ल को भाषा का आदि कवि[३] घोषित करते हैं तो कोटा के कविराजा भवानीदान महियारिया नर-वाणी के श्रेष्ठ

---

१ (क) प्राकृत संस्कृत मागध पिशाच भाषश्च शौरसेनी च
षष्ठोत्र भूरि भेदो देश विशेषादपभ्रंशः। काव्यालंकार २। १२
(ख) संस्कृत प्राकृत चैव। अपभ्रंशः पिशाचिका।
मागधी शूरसेनी च। षट् भाषाश्चैव ज्ञायते॥
—पृथ्वीराज रासो छं० ४४७ संख्या १

२ अरत दिला अज्जामें शराब दिल्ली ब्यकुनट् बस देख्वाब॥
मुहम्मदवर्दा बदाना दिमानो ताज़ीम तहम्मुल मुकाबिलान॥ वंश० १२५७। ३७

३ देववानि में आदिकवि, जिम हुव वल्मकजात।
सूर्यमल्ल भाषा सुकवि, मम मत तिमहि मनात॥
—वंश० टीकाकार वंशवर्णन वंश० २।४

एवं सुर वन्द्य-स्वरूप का प्रतिष्ठापक कहते हैं।[1] महारावराजा रामसिंह ने वंशभास्कर-निर्माण की आज्ञा के प्रसंग में कहा है *"संस्कृत-दुरूह सब सुगम नाहिं"* (वंश० पृ० ६५ । ६) अतएव यदि ग्रंथ 'नर-भाषा' में रचा जाय तो सब लोग उसे सरलता से समझ सकेंगे— "व्है जो नरभाखा ग्रथित ग्रंथ, पहुचे तो सबहि सुगम पथ" (वंश० पृ० ६५ । १०) यही कारण है कि उसने सूर्यमल्ल को अपने वंश-विषयक-काव्य को 'नर-गिरा' में ही रचने का आदेश किया है 'रचो नृगिरा करि बस-प्रबन्ध' (वंश० ६७ । ५) । इसी आदेश के पूर्त्यार्थ कवि ने अपने ग्रंथ की भाषा 'नर-भाषा' ही रखी है।

वंशभास्कर की प्रधान भाषा : व्रजदेशीय-पिंगल

यह 'नर-भाषा' दिल्ली-ग्वालियर के मध्यवर्ती प्रदेश 'व्रजदेश' की पिंगल भाषा है—

> पुर दिल्ली ग्वालेरपुर, बिच व्रजादिक देस।
> पिंगल उपनामक गिरा, तिनकी मधुर बिसेस ॥
>
> —वंश० १४० । ६
>
> ... ...
>
> यातें नर बानि यहहि रक्खी तहं इक ओर ॥
>
> —वंश० १४० । ७

इस व्रजभाषा में संस्कृतादि षट्भाषाओं के पद नभ-तारा-न्यायवत् समाहित हैं। व्रज-पद-तारक-समूह में ये अन्यान्य भाषा-पद नक्षत्रवत् स्थित हैं। जिस प्रकार अन्य ताराओं के साथ सत्ताइस नक्षत्र मिले हुए दीखते हैं इसी प्रकार व्रज-पदों में इतर भाषा-पद अपनी विभक्तियों के साथ दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

> संस्कृतादि छ गिराहु के पद विभक्ति निज सत्थ।
> जे नभ तारा न्याय जिम अक्खों मिश्रित अत्थ ॥
>
> —वंश० १७ । ४७

इस भाषा-मिश्रित प्रक्रिया को और भी स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है—

> प्राकृत संस्कृत पद प्रचुर, व्रजदेसी हु बिसेस।
> अत्थ अपभ्रंश हु अधिक, पैसाची कहुं पेस ॥
>
> —वंश० १४० । ४

स्पष्ट है कि इसमें पैशाची पदों का गौरव्य, अपभ्रंश-पदों का आधिक्य, प्राकृत-संस्कृत पदों का प्राचुर्य और व्रजदेशीया अर्थात् पिंगल का ही वैशिष्ट्य है। इस प्रकार 'प्राधान्ये-

---

१ भाए इलू रस पद भयो, चुग्घ भयो कवि चंद ॥
 नरबाणी पूजा करी, बरबाणी सुर बन्द ॥
 —वीर सतसई की भूमिका पृ० २९ से उद्धृत।

मध्यदेश: भवति' के अनुसार वंशभास्कर की भाषा ब्रजदेशीय अर्थात् पिंगल ही है।

वंशभास्कर में प्रयुक्त ब्रजदेशीयाभाषा-पिंगल के विविध रूप और उनका आधार

वंशभास्कर में यह ब्रजदेशीय भाषा— पिंगल-निम्नलिखित चार विविध-रूपों में प्रयुक्त हुई है—

(क) शुद्ध ब्रजदेशीय भाषा।[1]

(ख) शुद्ध ब्रजदेशीय प्राकृत भाषा।[2]

(ग) प्रायो ब्रजदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा।[3]

(घ) प्राय: संस्कृत शब्द ब्रजदेशीय प्राकृत क्रिया विभक्ति मिश्रित भाषा।[4]

---

१ पंकजता पाई विप्र विबुध विविध वृंद, पाई चक्रताई ओठि निगम विचारेनें।
मधुर पंधारेनें महादुसह भीति पाई, ज्योति पाई जित तित सुजस उजारेनें॥
सोनपुर पाई हरदाई जरदाई करदाई, ज्यों लुकाई पाई भास जगतारेनें।
अंशुमालि अतुल चुहान के उदय होत, उदयता पाई थीसदाथिव के सारेनें॥

—वंश० ४०० । ७

२ बान नभ अष्टु भू समान सक विक्रम के, भद्रव चढ़यो स्याम मालन मिलन कों।
नेर बगरू के खेत पंचों सेन सज्ज करि, मढ़्यो मगरूर हाकि सम्मुह मिलन कों॥
आसिक अनीके बींद अच्छरि बनी के फन, फोरस फनीके धार धारन फिलनकों।
हाहा छत्रधार मोर माधव मलार लागे, राहु व्है कैं कूरम कलानिधि गिलनकों॥

—वंश० २४६६ । ४

३ जिमि नागहिं खगराज मृगहिं मृगराज महावने।
जंभहिं जिम जंभारि मधुहिं मानहुं मधुसूदन॥
पानी जिम पावकहिं तूनहिं पावक जिम तक्कउ।
सजव कपोतहिं सेन हनन हेरन जिम हक्कत॥
आखुहिं बिडाल तिमरहिं अरुन नर रंकहिं दारिद निमें।
फतमल्ल रूप पोमिलो फिरत इम हेरिय अभमल्ल इम॥

—वंश० ३१५३ । २२

४ अरु बासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन च्यारि अवतारन-
देवन विशेषत पुर्विलिष्ठ बनि वंशोधनि बाण के वंशवर्द्धन
विरोधि-बालिश पुत्रन सों विजय को आशिष दीनों।

—वंश० ४०६ । २

ये चारों रूप एक दूसरे से पृथक न होकर मूलत: व्रजदेशीय पिंगल के ही विविध रूप हैं, जो संस्कृत, प्राकृत प्रथवा प्राकृताभास पदों के मिश्रण से खड़े किये गये हैं। उनका मूल ढांचा एक है, उसमें कवि ने संस्कृत-प्राकृत-पदों का पुट देकर उन्हें प्रलग-प्रलग नाम भर दे दिये हैं। इस प्रन्तर के प्रतिरिक्त शेष सब कुछ व्रज का है—मुख्य उपादान व्रज का, व्याकरण व्रज का, प्रकृति व्रज की प्रौर प्रवृत्ति व्रज की।

प्रागे सारिणी में दर्शाये गये इन चारों के व्याकरण रूपों से इस कथन की स्पष्टत: पुष्टी हो जायगी—

वंशभास्कर में प्रयुक्त व्रजदेशीय—पिंगल—के विविध रूपों को व्याकरणिक समानता

	१	२	३	४
	शुद्ध व्रजदेशीया भाषा	शुद्ध व्रजदेशीया प्राकृत भाषा	प्रायो व्रजदेशीया प्राकृतिक मिश्रित भाषा	प्राय: संस्कृत शुद्ध व्रजदेशीया प्राकृत क्रिया विभक्ति मिश्रित भाषा
ध्वनि	व=ब	व=ब	व=ब	व=ब
	श—स	श—स	श—स	•
	ष—ख	ष—ख		•
	क्ष—छ—च्छ (ख)	क्ष—ख	क्ष—छ	•
	ण—न	ण—न	ण—न	•
	य—ज			
वचन				
व व न		न	न	न
प्रत्यय				
काल	नि—स• पर•			
कर्ता	नें	नि	में	में नि• नै
कर्म	हि कों	नि	हि, कों, को	
करण	सों		सें, से, सन	सों
संप्रदान	के		के, को, कों, सों, को	
प्रपादान	तै सौं मों	तैं	तैं, सन, सों सौं	

मध्यपदेशः भवति' के अनुसार वंशभास्कर की भाषा व्रजदेशीय अर्थात् पिंगल ही है।

वंशभास्कर में प्रयुक्त व्रजदेशीयाभाषा–पिंगल के विविध रूप और उनका आधार

वंशभास्कर में यह व्रजदेशीय भाषा— पिंगल–निम्नलिखित चार विविध-रूपों में प्रयुक्त हुई है—

(क) शुद्ध व्रजदेशीय भाषा।[1]

(ख) शुद्ध व्रजदेशीय प्राकृत भाषा।[2]

(ग) प्रायो व्रजदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा।[3]

(घ) प्रायः संस्कृत शब्द व्रजदेशीय प्राकृत क्रिया विभक्ति मिश्रित भाषा।[4]

---

१ पंकजता पाई विप्र विबुध विविध वृंद, पाई चक्रताई नीठि निगम विचारेंनें।
असुर अंधारेनें महादुसह भीति पाई, ज्योति पाई जित तित सुजस उजारेनें॥
सोनपुर पाई हरदाई जरदाई करदाई, ज्यों लुकाई पाई त्रास जगतारेनें।
अमुमालि अतुल चुहान के उदय होत, उदयता पाई श्रीसदाशिव के सारेनें॥

—वंश० ४००।८

२ बान नभ श्रठु भू समान सक विक्रम के, भट्ट्व चउत्यो स्याम भालन मिलन कों।
नँर अगह के खेत पंचों सेन सज्ज करि, मंड्यो मगरूर हूकि सम्मुह मिलन कों।
भासिक अनीके बींद मच्छरि अनी के फन, फोरत फनीके धार धारन झिलनकों
हाहा दलधार श्रोर माघव मलार लागे, राहु व्है कें कूरम कलानिधि गिलनकों

— वंश० २४६

३ जिमि नागहि खगराज मृगहि मृगराज महावन।
जंभहि जिम जंभारि मधुहि मानहु मधुसूदन॥
पानी जिम पावकहि तुनहि पावक जिम तक्कत।
सजव कपोतहि सेन हनन हेरन जिम हक्कत॥
घासुहि बिहान तिमरहि धरन नर रंकहि दारिद्र निमें।
फत्तमल्ल रूप पोमिनो फिरत हम हेरिय अभमल्ल इम॥

—वंश० ३१५३।२२

४ अथ वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन च्यारि अवताराम-
देवन विशेषत पूर्वनिष्ठ बनि बैरोचनि बाण के बंशबढंन
विरोधि-वाणिज पुत्रन कों विजय को आशिष दीनों।

—वंश० ४०६।२

संस्कृत के तत्सम शब्द प्रायः ज्यों के त्यों प्रयुक्त- मृत्तिका, रथ, चक्र, नृप, द्विज	संस्कृत शब्दों के प्रायः प्राकृत रूप यथा—पोन खेत्रपाल खग्ग	२ की अपेक्षा प्राकृत शब्द और अधिक	१, २ और ३ की तुलना में प्राकृत शब्द बहुत कम संस्कृत तत्सम शब्द अधिक

निष्कर्ष यह कि—

शुद्ध ब्रज देशीया भाषा—

(क) यह ब्रज है ही जिसमें केवल ब्रजदेशीया प्रकृति है।

शुद्ध ब्रजदेशीया प्राकृत भाषा—

(ख) यह भी ब्रजदेशीया है, पर इसमें प्राकृत पदों का मिश्रण है।

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृतामिश्रित भाषा—

(ग) यह भी ब्रज है। इस मे अधिकतया (प्रायो) ब्रज है पर (ख) की अपेक्षा प्राकृत-पदों का मिश्रण कम है।

प्रायो संस्कृत शब्द ब्रजदेशीया प्राकृत क्रिया विभक्ति मिश्रण भाषा—

(ख) यह भी ब्रज है इसमें संस्कृत तत्सम शब्दों का मिश्रण शेष तीनों (क ख और ग) रूपों से अधिक है।

यह भाषा - मिश्रण कहीं-कहीं इस रीति से हो गया है कि कविप्रदत्त भाषा-विषयक निर्देश के अभाव में यह जान पाना बड़ा कठिन है कि वस्तुतः यह उपर्युक्त चारों भाषा-रूपों में से कौनसा भाषा-रूप है। उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

शुद्ध ब्रजदेशीया भाषा

च्यारि वर्णों के त्हां च्यारि कलित सचिव मानि,
बिप्र राख्यो पूरब दै हेमकुंभ आज्य धरि।
खत्रिय अवाची छीर पूरन दै तारक कुम्भ,
बनिक प्रतीची दै दहीसों रवत कुंभ भरि॥
सूद्रकों उदीची मृत्तिका घट सलिल पूरि,
राख्यो इन च्यारिन दयों यों अभिसेक करि।
वन्हिरच्छा बहुरि सदस्यन मढाइ लगे,
सिंचन पुरोधा मुनि राजसूय मंत्र ररि ॥ वंश० ४०४-५। २४

प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृता मिश्रित भाषा

च्यारि बरन जन कूप सरित सर नीर कलस भरि।
सिच्यो नृपहि बहोरि कथित चउ सिंधु सलिल करि॥

पद्रि भरन जल इमहि पूरि गंगा जमुना जल ।
इनहु तीरथ उदत भूप तिन करि सिच्यो मल ॥
बहु देवयोनि हरिके हुकम दासभाव लगे करन ।
किय तत्थ मुनिन पुर गुन कथन बेद ध्वनि करि बज्जरन ॥ वही४०६।२६

शुद्ध ब्रजदेशीया प्राकृत भाषा

बावन बरनतें सरस्वती को सरबस्व,
द्रौपदी को बस्त्र ज्यों दुसासन के करतें ।
छंद छप्पई तें ज्यों प्रपंचित प्रस्तर पुंज,
बीज बसुधातें बेर बुंदें बारिधर तें ॥
बारिधितें बीचि मारतंड तें मरीचि मित,
तरल तरंगा स्रोत गंगा गिरिबर तें ।
गोतम तें न्याय राज राज तें ज्यों राय रंचे,
कूरम कटक कढ़्यो अंबुर नगर तें ॥ वंश० ३४१५ । १

प्रायः संस्कृत शब्द ब्रजदेशीय प्राकृत क्रिया विभक्तिका मिश्रित भाषा

ताके अनतर इंद्रदत्त गज वरुणदत्त हयए नरेश के आरोहण के उचित उहाँ आनि
इनहूकों अभिषिक्त बनाये ।
अरु बंदीजनके बिबिध क्रंदन बैरिनसौं बिजय के बिमर्श बिरद लगाए ।
—वंश० ४१५ । ४०

उल्लेखित ब्रजदेशीय भाषा के चारों रूपों में प्राधान्य ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा का ही है। वस्तुतः यही वंशभास्कर की मूल भाषा है। इसी भाषा को कहीं-कहीं 'प्राकृती मिश्रित भाषा' और 'प्रायोदेशीय प्राकृती भाषा' नाम दे दिये गये हैं। पर टीका करते समय स्वयं कवि ने फिर उन्हें 'प्रायो ब्रजदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा' से अभिहित कर दिया है।[1] इसलिए इस नामान्तर से अन्य भाषा रूप की भ्रांति नहीं होनी चाहिए।

अनुमानतः वंशभास्कर का लगभग ७५ प्रतिशत अंश ब्रजदेशीय अर्थात् पिंगल में १० प्रतिशत मरुदेशीय अर्थात् डिंगल में और शेष १५ प्रतिशत अंश अन्यान्य षड्भाषाओं में रचित है। षड्भाषाओं में से अपने शुद्ध रूप में संस्कृत और प्राकृत अपेक्षाकृत अधिक प्रयुक्त हुई है; फिर अपभ्रंश का नम्बर है। पैशाची योंही दो-चार स्थलों में नमूने के तौर पर आई है। मागधी और शौरसेनी का प्रयोग तो नितांत ही विरल है।[2]

---

१ द्रष्टव्य सूर्यमल्ल कृत वंशभास्करान्तरगत बुधसिंह चरित्र की टीका।
—वंश० पृ० २६३६

२ सूरसेन मागधी कहुंक जिम अबुदन में जाम। वंश० पृ० १५० । ६०

पिंगल : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

शौरसेनी अपभ्रंश (प्राकृत) से बिलकुल मिलती - जुलती एक भाषा नवीं शती से लेकर १२वीं शती तक समस्त उत्तर भारत के राजपूत राजाओं मे प्रचलित थी और राजसभा के भाटों ने उसे उन्नत रूप दिया।[1] इसे ही परवर्ती अपभ्रंश के कवियों ने 'अवहट्ट' कहा है।[2] विद्वानोंका मत है कि 'अवहट्ट' पश्चिमी प्रान्तों में 'पिंगल' नाम से प्रसिद्ध था—खास-कर राजस्थान में अवहट्ट पिंगल नाम से प्रख्यात था और स्थानीय चारण समान रूप से इस 'पिंगल' और अपनी देशी भाषा 'डिंगल' में रचनाएं करते थे।[3] सूर्यमल्ल ने भी इसी परंपरागत 'पिंगल'—साथ ही अपनी देशी भाषा डिंगल—में वंशभास्कर की रचना की है।

पुर दिल्ली ग्वालेपुर बीचि ब्रजादिक देस।
पिंगल उपनामक गिरा तिनकी मधुर बिसेस ॥—वंश० १४०। ६

कह कर जिस पिंगल' की ओर संकेत किया है वह वस्तुतः वही पिंगल है जो परम्परा से चारण भाटों के हाथों विकसित होती आ रही थी। चारणी पिंगल की ही भांति यह भी मिश्र-प्रकृति की है और साथ ही उसी की तरह इसमें परवर्ती अपभ्रंश-प्राकृत के रूप भी हैं ; तत्कालीन व्रजभाषा के बीज भी और विदेशी शब्दों के देशीकृत रूप भी।

चारण-भाटों की परवर्ती रचनाओं की भाषाओं में यद्यपि देशकालानुसार पिंगल अथवा डिंगल की प्रकृति रही तथापि उस पर प्राचीनता की 'पालिश' चढ़ाने की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल रही है। इसी तथ्य को लक्ष्य मे करते हुए डा० चटर्जी ने कहा है कि "भारत में भाषा का इतिहास इस बात को सूचित करता है कि जनता कि रुचि हमेशा से नवीन वस्तुओं की ओर न होकर कुछ प्रौढ़ या पुरातन रूपों की ओर रही है।[4] अपने इस मत की पुष्टि में उन्होंने लिखा है कि "लोग प्रादेशिक भाषाओं या उनके साहित्यिक रूप में लिखने का प्रयत्न करते समय भी तत्कालीन प्रचलित भाषा में न लिख कर हमेशा इसी शैली में लिखते आये हैं जो ध्वनि-तत्व, व्याकरण दोनों दृष्टि से थोड़ा बहुत प्राचीन लक्षणसपन्न या अप्रचलित हों।[5] प्राचीनता लाने के इस प्रयत्न में इसकी भाषा में कहीं तो शुद्ध प्राकृत-रूपों का समायोजन हुआ है, कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों को पुराने ढांचों मे ढाला गया है तो कहीं उनके वर्तमान रूपों का अपभ्रंशीकरण या प्राकृतिकरण मात्र ही किया गया है। यही कारण है कि चारण-भाटों के भाषा-रूप—क्या वैयाकरणिक और क्या ध्वनि-तात्विक—सयत्नज हो गये हैं, स्वाभाविक नहीं। वंशभास्कर की भाषा भी इसी लीक पर चली है; उसकी भाषा-विषयक सयत्नता तो कविप्रदत्त भाषा-नियम (जिन्हें हम आगे देखेंगे) और नम-तारा न्याय जैसे भाषा-सम्बन्धी उद्वाक्यों से ही स्पष्ट है।

---

१ डा० सुनीतिकुमार चटर्जी : आर्य भाषा और हिन्दी पृ० १०६-७
२ शिवप्रसादसिंह : कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा पृ० ११४
३ डा० चटर्जी : ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट आव बंगाली लैंगवेज पृ० ११४
४ डा० चटर्जी : आर्य भाषा और हिन्दी पृ० १०५
५ डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : आर्य - भाषा और हिन्दी पृ० ६२

२ मरुदेशीय भाषा अथवा डिंगल

सूर्यमल्ल ने 'डिंगल' को 'मरुदेशीय-भाषा' के पर्याय रूप में ग्रहण किया है।

(क) डिंगल उपनामक कहुक मरुवानीहु विवेय।—वंश० १४७। ४०

(ख) मरुभाषा डिंगल भाषा इत्येके ॥ —वंश० १४७। ४०

मरुदेशीय भाषा अर्थात् डिंगल में भी अन्य भाषा - पदों का मिश्रण होने के कार[ण] 'मरुदेशीय प्राकृत मिश्रित भाषा' कहा गया है। वंशभास्कर में प्रयुक्त 'डिंगल' उत्तर[...] अथवा अर्वाचीन डिंगल है; जो बोलचाल की भाषा के निकट है। यह बात अलग [...] उसमें भी कहीं - कहीं अप्रचलित अथवा पुराने अथवा कवि के अपने गढ़े हुए शब्द प[...] हैं। 'शैली - समीक्षा' के अन्तगत ऐसे शब्दों की बानगी दी गई है।

वंशभास्कर : भाषा-नियम

सूर्यमल्ल ने ग्रंथ-नियमान्तर्गत वंशभास्कर की भाषा के विषय में अत्यन्त मह[...] सूचनाएं दी हैं, जिनका वैयाकरणिक दृष्टि से इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता [...]

ध्वनि-नियम—

(अ) ण—न

श ष—स

क्वचित वक्ता और श्रोता के अभिप्रेत अर्थ की रक्षार्थ इन वर्णों का मूल [...]

भी प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ

अणुमान—अणुमान

'भाष मलिनहुव व्याहमुख'—भाष मलिनहुव मुख—यहां अभिप्रत [...]

रक्षार्थ 'ण' 'न' में और 'ण' 'स' में परिवर्तित नहीं किया जा सक[...]

(आ) ऋ, ऐ, औ; अविकृत रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। यथा—

कृत कुम्यो नृप ऐल रन, अति कौसल इम माहि।[२]

कहीं विसर्ग के स्थान पर 'ह' का प्रयोग किया गया है। यथा—

अन्तःपुर—अन्तहपुर

(इ) कहीं विसर्ग का लोप करके पर-वर्ण का द्वित्व विधान किया है।[३] यथा—

---

१ व्यंजनगन को पंद्रहों, बहुरि सोलमों बर्ण।

तिम रक्यो इक्कीसमों, कहुं मिन पल कलिकर्ण ॥

—वंश० १४०। ८

स्वरादिक वंदित्यु कत, पुर्न न सामय सरव ॥

सयोगादिक सोहु पुनि, आनें मद्न जत्य ॥ वही १४०। ९

२ स्वरहु सतमों बारहों, चउदहों मिन चाहि।

कृन कुम्यो नृप ऐल रन, अति कौसल इम चाहि ॥ वंश० १४१। ११

३ कहुक हकार विसर्ग को, ज्यों अंतहपुर चाखि।

कहुक लोप पर द्वि गुन करि, निश्मह दुक्ख प्रमानि ॥ १४ वही

दुःख—दुक्ख
निःसह—निस्सह

पद के आदि का 'व' 'ब' में परिवर्तित किया गया है। यथा—
वन—बन

कहीं-कहीं पदादि 'आकार' 'अ-कार' में रूपान्तरित किया गया है।[1] यथा—
आकास—अकास

संस्कृत के हलन्त (व्यंजनान्त) शब्द कहीं तो 'अकरान्त' प्रयुक्त हुए हैं और कहीं उस हल् (व्यंजन) का लोप करके प्रयोग किया है।[2] यथा—
जगत्—जगत
जगत्—जग

क्रिया-अव्यय—

(क) कहीं-कहीं संस्कृत के क्रिया-पद और अव्यय-पद ज्यों के त्यों (उसी अर्थ में) प्रयुक्त किये गये हैं।[3] यथा—
ज्यों खलु जुद्ध जगाम—खलु—निश्चय, जगाम-गया (परोक्ष भूत)

(ख) कहीं-कहीं प्राकृत के अव्यय और क्रिया-पद भी तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं।[4] यथा—
अव्यय—णवि (नहीं)
क्रिया-पद—होई

विभक्ति—

(क) ग्रन्थ में प्रयुक्त भिन्न-भिन्न भाषाओं के बहुतेरे शब्द ब्रजभाषा की विभक्ति के साथ भी हैं और बहुतसी जगह अपभ्रंश व्याकरणानुसार निर्विभक्ति रूप में भी।[5]

(ख) ये ही भिन्न भाषाओं के शब्द अपनी अपनी विभक्तियों के साथ भी आये हैं।[6]

---

१ अरु पद आदि सब, जे बकार बन जेम।
आ को अ हू पद आदि में, लहु—अकास कहु तेम ॥ १६ वही

२ संस्कृत सब्द हलंत सो, आमैं बहुक अदंत।
कहुं हल लुप्त सु जगत जग, सब इहि रीति सुमंत ॥ १६ वही

३ कहुं संस्कृत अव्यय क्रिया, ज्यों खलु जुद्ध जगाम। वंश० १४१ । ११

४ ... ...
कहुं प्राकृतादि अव्यय क्रिया ण णवि होई जिम जुत्त जन। वंश० १४१ । १२

५ ब्रज विभक्ति जुरहे बहुत, ए पद समरस्सार॥
बहुरा एहि विभक्ति, अपभ्रंश अनुसार। वंश० १४० । ५

६ प्राकृतादि षट् गिराहू के पद, विभक्ति निज सर"

(इ) माता, राजा, चंद्रमा जैसे संस्कृत पद संस्कृत की प्रथमा विभक्ति के अनुसार 'सिद्ध रूप' में ही प्रयुक्त हुए हैं।[1]

(उ) इन्हीं संस्कृत-पदों का प्रयोग ब्रजभाषा की विभक्तियों के साथ भी किया है। जैसे ज्यों माता को जल्प (माता को—माता का) और कहीं-कहीं ब्रजभाषा की विभक्ति का विकल्प से लोप भी किया है।[2] यथा—
'कियउ विधाता कल्प' (विधाता कल्प-विधाता ने कल्प)

(ऊ) अपभ्रंश भाषा के प्रयोग में प्रथमा (कर्ता) द्वितीया (कर्म) तृतीया (करण), षष्ठी और सप्तमी (अधिकरण) विभक्तियों का लोप विधान है।[3]

लिंग —

संस्कृत के नपुंसक लिंगीय शब्द प्रायः पुल्लिग में और कहीं स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुए हैं।[4] यथा—

सो बारि (वह जल)
उरझी अंत (आंत उलझी)

वचन—

आदर व्यंजनार्थ एक वचनान्त संज्ञा (व्यक्ति-वाचक) के साथ भी बहु-वचन की क्रिया का प्रयोग। यथा—
कान्ह चले
जहाँ बहु-वचन के लिए विभक्ति है, वहाँ बहुत्व-व्यंजना के लिए नाम (संज्ञा) के साथ 'न' प्रत्यय का विधान है।[5] यथा—

'सुरनकैं' इसमें षष्ठी विभक्ति सूचक है। अतः बहुत्व-व्यंजना के लिये मूल-पद के साथ 'न' प्रत्यय का विधान किया है।

---

१ माता राजा चन्द्रमा, आदि सब्द अनुसार।
संस्कृत प्रथमा इक वचन, सिद्धहु नाम प्रकार॥ वंश० १४२। १७

२ ब्रज विभक्ति पावैं बहुरि, ज्यों माता को जल्प।
जुहु विकल्प करि लुप्त जिम, कियउ बिधाता कल्प॥ वंश० १४२। १८

३ पहिली दूजी अरु छठी, अपभ्रंस लुपि जात।
पंचमा अरु तीजी हु यहँ, दूजे चरण दिखात॥ वंश० १४२। १९

४ क्लीब लिंग नरकों भजै, बहुठां जिम सो बारि।
अरु कहुँ उरझी अंत इम, तृयवर व्है नारि॥ वंश० १४३। २०

५ पूज्यनाम इक वचन तास बहुवचन बिसेसन।
कन्ह चले जिम कुपित महाव्रत समूह महामन॥
बह पर व्है बहु वचन नाम अयंक नकार तहं।
बहु वचन की टौहु होय परहरि प्रथमा कहं॥
क्रमउ उदाहरन सुरनकैं सुरन तथा सत्रहि अगन।
... ... —वंश० १४३। २१

सधि—

भाषा में भी संस्कृत के सधि-नियमों के अनुसार ससंधोक प्रयोग हुए हैं।[1] यथा—

न + आयो—नायो

पद + अरहि—पद्धरहि

(१) ब्रजदेशीय (पिंगल) की कतिपय विशेषताएं

ध्वनि – विचार

(क) प्रयुक्त ध्वनि :

स्वर— अ आ आ इ ई उ ऊ

ए ऐं ओ औ अं ओ

व्यंजन— क ख ग घ ङ

च छ ज झ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न न्ह

प फ ब भ म म्ह

य र ल व

स ह

(ख) ध्वनि – विकास

(१) श—ष>स=बिसद जसधर नास कलेस

सूलधर सृंग कृसानु सोच

(२) य > ज=जसधर जुत जोजन

सजव (सदय) जवन मज्ज (मद्य)

(३) घोष+य>ज+घोष=बिज्जु (द्य ज्ज) अज्जन

मज्झ (ध्य ज्झ) गुज्झ (ह्य ज्झ)

(४) य>इ—ए श्रुति=मइन्द जै (जय) मै (मय)।

(५) क्ष>च्छ=रच्छक तिच्छन चच्छु सुच्छम

लच्छन (लक्ष्मण) कटाच्छ इच्छु दच्छ

(६) क्ष>ख—क्ख=गोख

(गोक्ष) रक्खस सिक्खि (शिक्षा) गुरुदक्खिना

रुक्ख (वृक्ष) तिक्ख (तीक्ष्ण) कक्ख

---

१ संधि हु कहुं फुट अर्थ सन, ज्यों नायो मुरि जुद्ध।

अच अच की यह हल रु अच, प्रभु जगदीस प्रबुद्ध॥ ११

हल हल की मग पद्धरहि, रीति यहै नृप राम।

... ... —वंश० १४१ । ११-१२

(७) थ>घ=बित्थर थानि
(८) ड>ब=अलावुद्दीन
(९) ट>र=भर (भट)
(१०) अय>ऐ=मैन (मयन)
(११) श्च>च्छ—ठठ=पच्छो (पश्च)
(१२) क्ष>च्छ=बच्छ (वक्ष)
(१३) व्यंजन>स्वर=उर (पुर) उत (सुत)
(१४) ड>र=सेवार चित्तौर दारिम मार (माड़)
(१५) क्त>त=जुत
(१६) स्पर्श>सप्राण=मोरछे (मोरचे) पुप्फ (पुष्प)
(१७) ण>न=सोन निवान पानी (पाणि) गुन (शोण)
(१८) म्ल>मि=मिच्छन
(१९) क्ष>ख=गोख (गवाक्ष) गउक्ख गोख
(२०) क्ष>र=रुक्ख (वृक्ष)
(२१) ष ख आसिख (आशिष्)
(२२) विसर्ग ह अन्तहपुर

शब्दों के दोहरे रूप

कुमर भू द्दव
कुमार भुव देव
कट्टेहि बिस्तर निश्रेनीन
कटित बित्थर निसैनिन
कीर्ति पुहवी
कित्ति पृथ्वी
जुद्ध
नियुद्ध
अग्नि आशिष
अग्गि आशीस याग
यजन पुहुव
दक्खिन
दाहिन
दक्षिण

रूप-विचार

स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय

ई (इ) व्रज कुमरि रट्ठोरि चन्द्रावलि

ई ईश्वरी कछवाही

बहुवचन-प्रत्यय—

बहुवचन— (१) कोई प्रत्यय नहीं।

(२) न प्रत्यय (सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ या परसर्गों के पूर्व)

प्रत्यय रहित— सिपाह बाजि कंगुर मिच्छ याव

(प्रत्यय रहित बहुवचन प्रयोग कर्तृ भी है, कर्मणि भी)

'न' प्रत्यय—

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
शत्रुन बहुत सबन तोबन	सनिन निभनोन ज्वालन सीढ़िन
अरिन भिल्लन खिलन भटन	निसैनिन पलन (पलकें) पीढ़िन
चन्द्राउतन जज्जन दोलन गोलन	सतीन दिसान
वारन कोसन नैनन अंतन (अयन)	
अनेकन चपन कौतुकीन केतन	
गैलन सैलन चवखन हल्लन	
हुमल्लन दट्टन भट्टन तोपन	
पयन (पैर) वेदन व्यालन	
अहर्गन (दिन) अक्षरन संकल्पन	
लोकन केरंडन (शृंगाल) समुद्रन	

'ए' प्रत्यय—

बुरके (बोरे)

'इ' प्रत्यय—

गज्झिनि, मुड्डि

कारक-रूप

कर्ता-कारक

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग-रूप
निर्विभक्तिक	साविभक्तिक	परसर्ग-रूप

एकवचन—

सुनि जानकी सु कह्यो	हरत नैं महादेव ने
हि देवर कन्ह चले	रूपवती नैं जस नैं
पुत्र दुव कला जनैं	बिन्दुसार नैं कुवसेन न
भूप हु कह्यो	पृथु नैं मंत्रजय नैं
इन्द्र हु अमंदयो	बाराटक बोच बाटक
धरनि धसी	कंजकेसर नैं कह्यो

बहुवचन—

छत्रिय उल्लटैं

कर्म कारक—

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग-रूप

नरबानी रखी, भग्गहपुरजानि, सबन सुहार्यं, करहु जेर उन, गिरि जो लच्यो, मिच्छन कट्टि दै, सुंडिय, गवभ परैं, मिच्छ ढालन तोरि दै।	दुष्ट तुमहि दैहैं सु दुम, ताहि गहि, तिन्ह मैं प्रभु भवदमि हौं, कुमर हि चित्तौर हि।	ब्रह्मा कौं महादेव कौं ताकौं पृथु कौं कुवेर कौं। करको जो तो कहं बिच श्राद्ध जिमार्वहि

करण कारक—

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग-रूप
गोलन दुग्ग दोलन जोरि दै, तोप जालन मिच्छ ढालन तोरि दै, जिनकी तुपक्कन— तदनु ईसिका अग्र जुदे कतितीर्थंशाक कढि, कराग्र कटि।		पालकन तैं, हत्थ तैं, गनित तहां सर्गादितैं,। गैंदन चोट सौं, बिदुसार सौं तासौं, कृसानुसौं। देवमहा सौं, इनसौं, तिनसौं। मरीचि सन कला जनै, अनुसूया बिच अत्रि सन, अरुधति, वशिष्ठ सन, पटुता सन।

सम्प्रदान कारक—

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग-रूप
दुरावन गात	देवरान हि, उरहि मिलाइ पढ़िवे।	सुमना कौं, दोमन कौं, धरस कौं, मंगज कौं, भाव कौं। देवकी सुत को कहैं, मानिबे को, ऊर्जा को। दिताश्रय को। यौं सब सौं कहि। परभंजन दित, लोकेश्वर दित माया। कुमर पट्टधर काज। समय के, अर्थ के, यजमान के।

अपादान कारक—

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग-रूप

मव विरस, भार ज्यों	द्विप पिट्टि केतन उत्तरैं।	कर्दम तैं, हत्थ तैं, ठानन तैं, सोराष्ट्र तैं बलि लै चल्यो। नरन सों, देवयजन सों कोट सों द्विजन सन, नाभि सन, मो सन बिच्छुरियो, तव आश्रम सन, जमदग्नि सुत सन, पिता- सन पाइ।

संबंध कारक—

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग रूप
अपभ्रंस अनुसार, रीतिवस सिर रेखा दोय, हम राविलय जो, छव हद, नय आग्रह, महीपति पास, लखंरिय, पविलय, बुंदिय, केकन, हत्थिन मुंडि, चम्मलिप्रात।	जिन्ह, सुनाहि, सोमहि घरोय, राज्यहि।	ज्वलन को, नीति को तुमको, गृहस्थनको, चालुक्यराज को मत्री धनुर्वेद कों राम के, चक्क के, हिंदोल के,नारग के, प्रभजन के दत्ति के, करन के, प्रतीचि के। खजूर के, प्रचड के, नृप के। राज्यभर कौ। महाफल की, स्वामिपन की, या की, सुदमकी, अध्वर की, महाफल की दूर भू खल केर है, इनकेर राव रो सुनिदेस। प्रसवरं समय, नाता रं घर।

अधिकरण-कारक

निर्विभक्तिक	सविभक्तिक	परसर्ग—रूप
सब ठाम नियम सह, भिन्न भिन्न कहु ठोर, लघु सदन, मातकुगर, पानि पुगल, परिपयन सखक अप्पन सिर लावहि,	खजूरी खेटके निवास करि।	ध्यालपन में, पृथ्वी में। जमी तट पै। रानिन में, बधाई में,

चल्लहि रथ समुचित चढ़त,	मंत्रवित मैं, वा समय मैं,
बैठि रथ काज बनावहि ।	विजय मैं, दक्षिणता मैं
	बागन मैं, विभावरी मैं ।
	मंदिर माँहि, मंजु बचा वा
	माँहि, माँहि ।
	बसादिन मैं, उज्जैं मैं ।
	पावक मज्झ ।
	चम्मलि पर । देव पर ।

सम्बोधन-कारक—

१ संबोधन का कोई चिन्ह विशेष प्रयोग में नहीं पाया है ।

नृपवर (!) जो हूं नारि ।

राघव (!) भंग प्रसिर को लघ्यो ।

हनुमान (!) ईस प्रवतार वीर (!) यहै हु सावक वेर है ।

सुत (!) काज सद हु करत हूं ।

खगपति(!) फिरि पच्छो ।

भ्रात (!) न दुरित करहु मन मायो ।

प्रभु (!) पारको पुहवी समुद्र

सर्वनाम

पुरुष वाचक सर्वनाम—

(क) उत्तम – पुरुष

एक वचन	बहु वचन
मम	हम
मदीय	हमहि
मामक	हमैं
मो	
मैं	
मैं	
मैं	
मुहि	
मुहि	
मोहि	
मेरे	
मेरो	
हौं	

(ख) मध्यम – पुरुष

एक वचन	बहु वचन

तू	तुम
तव	तुम्हें
तो	तुमहि
तोर	तुमरो
तावक	
तैं	
तेरं	

निश्चय वाचक (दूरवर्ती)

एक वचन	बहु वचन
सो	ते
सु	तिन
तो	तिनसो
तान	तिन्हु
तास	तिनसों
तिहि	तिनके
ताहि	उन
ताकों	उनहु
ताको	उनको
ताके	
तासों	
तदीय	
वह	

निश्चय – वाचक (निकटवर्ती)

एक वचन	बहु वचन
यह	इनसों
याहि	इन
याह	
याको	
यहै	
याके	
यातें	
याकोहि	
एह	
ऐसो	

अनिश्चय वाचक

कति	कतिन

दो— दु दुहु दुं दुव दोय
दोउन दोऊ दोइ द्वि द्वै
दूजो
दोहरी दुगुनैं
उभय जुग
तीन—तीन तीनन त्रय त्रि
तीजो तीनसत त्रिसहस त्रिगुनैं त्रंगसिक
तिहरो तीज
चार—चउ चहुं च्यार च्यारि
चौथो चौगुनों चोकोर चउन चतुर्थ चौथी
चुत्थी च्यारिगुनैं
पांच—पंच पंचम सतपंच पांच
पंचमी
छह—छ षट छट
छट्ठो
सात—सप्तम सप्तक सप्तमी सहस सात
आठ—अष्ट आठ अष्टि अट्ठगुन
नव—नव नव सत
दस—इक दसम एकादस दस
ग्यारह—इक दसम एकादस ग्यारह
बारह—द्वादस बारह
तेरह—तेरह तेरसी
चौदह—चौदसी चतुर्दस चउदह
पन्द्रह—पन्द्रह
सोलह—सोलह
सतरह—सत्रह
बीस—बीस बीसम
इक्कीस—इकीस इकबीस इकबीस एकोनबीस
बाईस—बाईस
तेईस—तेबीसम
चौबीस—चउबीस चौईस चउबीस
पच्चीस—पचीस
छब्बीस—छबीस
अठाईस—अट्ठाईस पुनतीस अट्ठबीस
तीस—तीस इकतीस
इकतीस—इकतीसम तेतीस चोतीस

पैंतीस—पैंतीस छत्तीस
अड़तीस—अटतीस
चालीस—चालीस
बियालीस—बियालीस पैंतालीस सैंतालीस गुनचास
पचास—पचास पंचास
बावन—बावन चोवन गुनसठि
पचपन—पंचावन
छप्पन—छप्पन सत्तावन अट्ठावन सट्ठि
बांसठ—बासट्ठि चउसट्ठि चोसठि इकहत्तरि सत्तरि चोरासी
सौ—सत नव सत तीन सत सत सप्तक सत सत्त अट्ठसप सहंस सत्त दु सत दस सतपंच
हजार—सहस सहस सत दोड़ हजार अठाई हजारी
लाख—दुलक्ख लक्ख
करोड़—कोटिक कोटि

क्रिया

विधि अर्थ

एक वचन	बहु वचन
उ—सुनहु करहु मारहु गिनहु	ए—प्रपंच में प्रमातये
बिगारहु मनहु बरहु होहु	अध्वर को प्रारंभ चलावै
सुनहु होवहु देहु करहु	कालिय जाय यों बहु छोरिये
	जप ध्यान यो तप जोरिये
भो—मोहि बैठन दयो	ऐं—मुरगें भुव सुपुज भयो
कह्यो गुद्रयन को करो	सबहि फुरै तुमको बढ़ै

होना क्रिया के रूप—

एक वचन

वर्तमान	भूत	भविष्य
है होत आदि	भो भई भ्है हे	भवामि
	हुव	होहु
	हो	
	हतो	
	भयोव	

बहु वचन

हुते भये	भ्है हैं
भ्है बैत भए	

वर्तमान-काल के प्रत्यय और रूप—

एक वचन	बहु वचन
त—आवत सोभित धरत देखत मुगत रमत रढ़त	त—लोगन कहत भावहि धरत मात इंदीदर मागध इम कहत
	ऐ—पावैं चलावैं प्रभा करैं किलोल कैं अवखैं उत्तरैं बीस रैं फुरैं कोत लो फिरैं रजैं बहैं लसैं निवसैं
अय—राहय सुहाय	ए—कहै यहं जात रान के भट तोरि दैं
	अत—जिहि व्रत करत जुवति जन

भूत-काल के प्रत्यय—

एक वचन	बहु वचन
यो—किन्नो नट्टो	यों—सफल कीनों
य यो—जय लहुतोहि जरूर लयो भाख्यो लखउ हो बिटयो पिल्लयो जयो बयो पठयो सिक्खयो मो	ए—धिरन लगे पठये भये निक्कसे प्रवकसे सज्जे त्रास पाय सबै नसे अवक मंडल लों गये जुदे छेदे
यों—मान्यों बखान्यों नम्यों रम्यों	ये—दये बुल्लये जये लये
(इ)य—किय समप्पिय कहिय करिय मंडिय किय अविखय गहिय बांधिय चिंतित लिय मुक्कलिय बिंटिय रचिय बिस्थरिय पहुंचिय	ऍं—हनें जनें
अ—किन्न हुव दिन्न कीन लीन	
इ—इक रहि रान उदग्ग खगराज पच्छति दोहि कहि गहि तत्थ खावन काज अग्गिकों करि सविख छुवि हत्थ सों पकरि	
उ—पुनि तत्थ आयउ अवक मुनि ललचायउ उफनायउ बसायउ कियउ पायउ	
ए (आदर वाचक)—अच्युत लरे प्रभु पधारे निजलोक पधारे तजे तब वपुमद	

बुड्ढ करे टाए ध्यावें बँदे
राघव कौसराज गला मदं

गो—भजियो

हि—रवहित पढ़ेहि बहूँहि

स्त्रीलिंग—

ई—कहन लगी पानी धानी किन्नी
पठई सुन्यो रखी बई
भई गई नष्ट भई प्रवनी
पुकी राम बिलम्पि कातरता लई
गुसीलता तिराही कन्या बिवाही
ऐवो

भविष्यत्-काल के प्रत्यय—

है—बनि है तारे प्रत्य लोरक प्राय है
टूक टूक गिराय है मंगना फरकत
मरि है मो हु सहि है ममर्यांतर
के प्रप्पन छिति छोरि है कै करि
है मम नाश मैघिलो हत प्राय है
फुरि है बनि है मजि मोहि
को बचि है न

हैं—सतति रहे हैं बिस्तर वै हैं
फिर मिलि हैं मिलि जाय हैं
रहि हैं तुषित पितर महि हैं
दुष्ट तुमहि दे है सु दुख

ऐं—प्रसाद होय तब सुरें

हु—जो हुमतो यह हो हु वधातव
ध्वंसक तब होव हु मम कुमयव

हो—कांत बिहीन जो मोहि करि हों
मो दुख हिय मरि हो
बहुरि जो मैं हां
नर्म सब पैं हो

हि—या को तू जब करहि प्रनादं
जो तो कहं बिच श्राद्ध जिमावहि
तर्जहि दब्बहि

हों—तिन्ह मैं अब दमिहों रन मधु
मारि प्रनर्गल रमि हों मैं तुम
तस्कर मारि हों

ओं—दब्बों बग्गों

औ—जानों

कृदन्त-रूप—

पूर्व कालिक कृदन्त (क्रिया)

य—होय पाय बिहाय बटाय बिचरिय दबाय
गरदाय लयो मिजोय

इ—लहि मारि करि निवारि सिलगाइ
   धप्पि भगि बिवाहि रचिक मानि
   प्रवेसि लुनि

इय—बिचरिय

ए-ऐं—लै रचित कै लंघि कै हरि कैं पढ़ र कै

हेतु कृदन्त—

बे—लाइबे पढ़िबे भाइबे रचिबे

न—ध्याइन बिलसन महिलुट्टन जित्तन
   बैठन मुग्गन करन बखानन लरन

कर्तृवाचक कृदन्त—(संज्ञा+विशेषण)—

अक—ध्वंसक मारक पालक

न—धरन बिरचन

वार—रिझवार

हार—मग्गनहार

भाव वाचक कृदन्त (संज्ञा)—

न—लरन जितन कटन विघटन हनन
   बिलपन गमन गैरन जावन चक्खन

बो—मारिबो सोयबो

वर्तमान कृदन्त (विशेषण+क्रिया विशेषण)—

त—सुनत भात बिरचन करत
   ग्रहत देखत खोजत तुलत
   पुग्गत बितरत लहुन भपित भाग

तो—मारतो

आवत—दिखावत

ती—बुझती

ते—चढ़ते

भूत कृदन्त (विशेषण+क्रिया विशेषण)—

यो—लग्यो सुनि सुपत्र भयो

ए—मंडन के रचे मंडनगढ़

तद्धित प्रत्यय—

अन—दोलन

आ—बिदार

ई—दौगुनी

अन—देखन
अ—बिहार
ई—लाजमी कौतुकी

अव्यय-पद

क्रिया-विशेषण—

स्थानवाचक— जँह तहँ तँह यहाँ कहुंक कहूं कतनो यहँ
जित-तित जहाँ यत नियराइ तहाँ भी तत्य

काल—जब लग अब लग हु नित नित पुनि
तत्थहि सदा ही बारंबार जा तब
बहुरि बहुर फिर भी ब

रीति—ज्यों जिम जेम तेम अस इम एम
जथा त्यों तस तिमही मित संटें यों जुत

परिमाण—कितनोक इतिमुत्त

निषेध—अयोनिज

संबंध-बोधक—

साथ सह सरिस सौं सत्थ कहुंक सहित

समुच्चय-बोधक—

रु अरु और वा

विदेशी-शब्द—

अरज अमल अंदाजन अफसोस अमानत
आदाब आसान (एहसान)
इलाके इस्तबल (अस्तबल) इलाह इनकार
ईमान
एवज
ऐलिजबथ
कब्रां कतल कैद कपतान कदमां
खबरि (खबर) खास खत खिताब खून
गरक गजब गोता गरीबन
चौतरफ
जोर जलूस जाहिर जोस जुदा-जुदा जजिया जवाब
जुवा-जुवा (जुदा-जुदा) जेर जंजीर जवाहर जंग
जमी जुगराफिया जखमी
तरफ तहखानन तेगो तखत तारीफ
दगा दरवाजा

नूर नजराणो निमाजगाह निमकहराम नकज नबाब
पातसाह पुक्कर-पुकार पुकार पेस पैगंबर
फैरंग (इंगलिश) फौजां फरमान फतै फौजदार फौलन
बखसीस बेगम बाजार बुलबुलन बाजी बेगम
मगरूरी मालिक माफिक मुकाम माहताब मौलिममोलार
मुलक माफकीय मस्जिद महल मम्मानी (महमानी)
महर महसूल
राह रसूल वजीर
हजरत हजूर हाजरि हाकिम हुकम हूर हरामखोर
सलाह साहबजादे सिकार सिरस्त सिरताज सूबा
साज सुरतान साहवी सौदागर

२ मरुदेशीय (डिंगल) की कतिपय विशेषताएं

ध्वनि-विचार

प्रयुक्त-ध्वनि—

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ
 ए ऐ ऍ ओ औ ऑ

व्यंजन—क ख ग घ ङ
 च छ ज झ
 ट ठ ड ढ ण
 त थ द ध न न्ह
 प फ ब भ म म्ह
 य र ल ल्ह ल़ व
 स ह ड़

ध्वनि-विकास—

स्वर—'इ' को 'य' श्रुति—सोयण
 इ—ई—जमाई

उद्वृत्त स्वर—पउदह

आदि, मध्य एवं अन्त्य—

—स्वरों का संकोच

क आदि—मट्टो, खनजी

ख मध्य—पहलो, ओढ़णा, बुटंब

ग अन्त्य—भतीज

व्यंजन—

अल्पप्राण को महाप्राण—बाड़मेर, कोबो, कोड़, सब

महाप्राण को अल्पप्राण— बी (भी), वामी
अघोष को घोष—मोरछा
तालव्य को मूर्धन्य—जठे, उठे, ठवण
घोष को 'ह'—मुहड़, पुहवी
विसर्ग को 'ह'—अन्तहकरण
श, ष, को 'स'—अधीस, कासी, अवनीस, प्रसंसा, नरेस, निदेस
सीस, रोस, बिसम, पाउस (पोष)
ष को ख—विखम, खटरस
व को ब—बर्ण, बांधव, बर्ग, बराह, बास, बीरों, बिक्रम,
बैर, बय, बीतिहोत्र
'य को ई' श्रुति—गइव
'य को ध'— अरिधिप
'य को ज'—जठे, जवना, जादव, जुक्त, जथा, तथ, जतन,
जुज्झम्, जतन, जोगिणी, अदुवस
श, स, को 'च्छ'— अच्छरी, उच्छाह, इच्छणी
क्ष को क्ख, ख—रक्ख, खमिया, खेत, खेत्रपाल, कांख, ईखि, साखी
लखमण, भीखत
स्त को थ—प्रायमणी, हाथ
घोष+य को ज+घोष—संझा
ट को ड़—जड़

सानुनासिकता—

सहस, तूं, कूमों, पापों, बड़तों, काठो, (काष्ट) मूहों
सों, गुणों, लाखों, परदेसों, आणों, भाजनों, जायको,
वेताजों, बाटतों, बारैं, पाछैं,

द्वित्व—

पब्वय, गुज्जर, दप्पन, अग्ग (अग्र), दुक्ख, जुज्झार,
पुव्व, उद्दाग, पज्ज (पार्य)

शब्दों के दोहरे रूप—

पव्वय-पर्वत-पर्वत, सिंघ-सिंह, पृथ्वीराज-पीथल,
अम्बू-आबू-अर्बुद, बिजयपुर-बिजैपुर, चालुक्य-चालुक्क,
पिउहर-पीहर, जल-जगन, हाथ-हत्थ

बुन्दी

माणी—कुमराणी
ई—घोड़ी चावोड़ी चंदाणी
माणी—मांगलियाणी

बहु वचन प्रत्यय

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
आं—सिंहां रा प्राणां वीरां	आं—सुन्दरियां पोढियां
कुमारां गइन्दां मुंहां रां	पुत्रियों जोइटां
सामंतां सिरोपावां हुयां	
हरकूंचां प्राणां चहुवाणां	
वैरियां माथां करणां	
खप्परां	
आ—पुत्रा नूं माथा	आं-मावां—होयणां
वां—राजावां	वां—उवां

कारक प्रत्यय

कर्ता-कारक—

प्रतापसिंघ मूछ रै माथै हाथ दियो।
चहुवाणां कहियो लोपि लागण दूकी
सामन्तां कहियो लोयण मिळाया
जुज्झारां परिवारां बिहूण करि
कटार झालिया टीलै दूत रै साथ वरण दूत अगाऊ भेजियो

परसर्ग-रूप में—नैं-मेर मीणां नैं सिकार लेतां ही

कर्म-कारक—

चन्द्रहास चलाया   प्राणां भाजि
अमरसिंह भेजियो   भोग भुकायो
प्रकर गहियो   लोप मिळाय   पतावां सुलाय
लोभ हारियो   चंद्रहास चलाया

परसर्ग-रूप नूं—पृथ्वीराज नूं   अनंगपाल नूं   साहण सिगार नूं
सजातीय नूं   पुत्रा नूं   प्रतिहार राज नूं
नैं—सु सोम नैं उड़ावै छै

करण-कारक—

परसर्ग-रूप-करि—आबदेव रा किवाण करि......गजरो सुंडादंड......भड़िगो
सूं—चंद्रहास......तिरासूं टोपरा टूक होय
हूं—आपरा काका हू हमा मे पकड़ाट देणरो......हड़ाविराज
हूं छोटी राणी में

संप्रदान-कारक

परसर्ग रूप-रै—घाट रै कारण चंडिका रै चढ़ायो बधावण रै काज
कुमार रै भेंट कीधो वेग भेलन रै काज
री—पूगण री प्रदान कीधो
सों—चामुण्डराज सों कहियो
सूं—कुमार सूं भ्रादर सूं
काज—सहायकाज रासरण रै काज विशाखराज रै काज
सगर रै काज
मैं—बैठन नैं देर

अपादान-कारक

निर्विभक्तिक—भाई गोसवाल नूं बूंदी सीख दीधो
परसर्ग रूप-सूं—निज कंठ सूं उतारि देस सूं सुंडादह बाहिरय देस सूं
विछूटि पातसाह री सैन अजमेर सूं
हूं—अवमर्द हूं अंचल हू अंचल ओढ़ियो
हूंता—अर्बुदाचल हूंता बरात रै सिविर में चाल्या

सम्बन्ध-कारक

सम्बन्ध –
निर्विभक्तिक—गुजरातकटक में कलकल मचायो
संग्राम राम निपात सुणि
परसर्ग रूप-रा—दिल्ली रा अधीस देवगिरि रा भूपाल भीम रा
अब्बू रा मेदपाट रा
री—जिणरी मातामह री एक री आपरी
सुवर्ण री प्रतिहार री
रै—देव रै राज रै हीरा रै दाहिम रै प्राण रै
रो—अवतंस रो सायंकाळ रो प्रसंसा रो तोमराधीस रो
तणो-तणैं सलखांतणों

अधिकरण-कारक

निर्विभक्तिक—लोयण पट्टी लगाई घरै रहण रो संदेह
कंगूरै कंगूरै होय नरेसां रै घरै नागरोणि गुप्त इम
राखि
परसर्ग रूप-में—सभा में फौज में कटक में अनीक में प्रबंधों में
माहीं—धारां माहीं
पर—पाघ पर पुंज पर ड्योढ़ी पर
माथैं—लोयणा माथैं दुर्ग माथैं

संप्रदान-कारक

परसर्ग रूप-रैं—घाट रैं कारण चंडिका रैं चढ़ायो बधावण रैं काज
कुमार रैं भेंट कीधो वेग भेजन रैं काज
रौ—पूगण रौ प्रस्थान कीधो
सौं—चामुण्डराज सौं कहियो
सूं—कुमार सूं आदर सूं
काज—सहायकाज रावण रैं काज विसाधराज रैं काज
सगर रैं काज
नैं—बैठन नैं देर

अपादान-कारक

निर्विभक्तिक—भाई गोलबाम नूं बूंदी सीख दीधो
परसर्ग रूप-सूं—निज कंठ सूं उतारि देस सूं मुंडादह वाहिर्य देस सूं
विछुटि पातसाह री सैन अजमेर सूं
हूं—अवमर्दं हूं अंचल हू अंचल छोडियो
हूंता—अर्बुदाचल हूंता बरात रैं सिविर में चाल्या

सम्बन्ध-कारक

सम्बन्ध —

निर्विभक्तिक—गुजरातकटक में कलकल मचायो
संग्राम राम निपात सुणि
परसर्ग रूप-रा—दिल्ली रा अधीस देवगिरि रा भूपाल भीम रा
अब्बू रा मेदपाट रा
री—जिणरी मातामह री एक री आपरी
सुवर्ण री प्रतिहार री
रैं—देव रैं राज रैं हीरा रैं दाहित्र रैं प्राण रैं
रो—अवतंस रो सायंकाळ रो प्रसंसा रो तोमराधीस रो
तणो-तणै सलखांतणौं

अधिकरण-कारक

निर्विभक्तिक—लोयण पट्टी लगाई घरै रहण रो संदेह
कंगूरै कंगूरै होय नरेसां रैं घरै गागरोणि
राखि
परसर्ग रूप-में—सभा में फौज में भकट में अनीक
माहीं—धारां माहीं
पर—पाघ पर पुंज पर डोढ़ी पर
माथै—लोयणा माथै दुर्ग माथै

ओ—बिवाहो तेड़ो
वो—सामलि आवो चखावो
ऊं—रहाऊं कहाऊं
ऐ—चित्त करैं साधन करैं
  संग पावैं आवैं लटावैं

अति क्रिया के रूप

एक वचन वर्तमान भूत भविष्य
  छैं व्है (संभव्य) हूवौ थियो सी
  छैं हुतो हुंतौ
  थको
बहु वचन हुवा कतराक सामंत छा हुआ होइ
  हुंता हुवा हुंवा
  थिया

वर्तमान-प्रत्यय

एक वचन अनेक वचन
ऐ—सुणीजै बहै रहै ऐ—सुणिजैं
  धरैं करैं कहीजैं जीवीजैं

भूत-प्रत्यय

ओ—आयो पायो कियो लियो आ—घोड़ा झलाया मिलाया
  कीधो गंजिओ दियो जपिओ काढ़िया आया साथा
  लाग्यो हुवो जुवो पैंड दिया कोटि लिया
  कपाट दीया कीधा
  लगाया
इयो—आविओ हालियो मंडियो
  पाड़ियो झाड़ियो गहियो
  बियो गियो
आयो—लगायो चलायो सिखायो
  भगायो
ई—दीधी-कीधी कही लगाई
  लीधी कहाई गहाई चढ़ाई
  करी धरी लागी बिवाही
  गीतरी

भविष्य-प्रत्यय

सी—बैर लियो आवसी रहसी दइसी सां—मौठ सामिल हुवां करां

बळै भी परंतु सारा पण (भी)

विस्मयादि-बोधक—वाह वाह

विदेशी-शब्द—

अमल	अरज	असाब	एवज
कदमा	कबरी	कैद	खूनी
गरक	जंग	जमी	जुदा
जोर	जोरदार	तरफ	तारीफ
तेग	नवाब	निमाजगाह	पातसाह
फौजां	बखतर	बखसीस	बाजार
मकान		मसकरी	मरजी
मालिक	मुकाम	राह	वजीर
सलाह	सिकस्त	सुरताण	सेहरो
हजरत	हजार	हरामखोर	हाजरि
हुकम			

अध्याय १२

वंशभास्कर और इतिहास

न परम्परा—

और परम्परा के बीच बिन्दु और रेखा का संबंध है। पुरातनदेश होने के
.र ही परम्परा-प्रिय रहा है। भारतीय तत्वचिंतक मनीषियों और साधक-
.ी युग-युगीन धर्म और संस्कृति की धाराओं को अजर-अमर बनाने के लिये
.हैं वे आज 'आर्ष ग्रंथों' के रूप में हमारे समक्ष हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण,
.काव्य-रामायण, महाभारत आदि ज्ञान-राशि के अक्षय कोष हैं। ये ही
हैं, ये ही दार्शनिक-आलेख, ये ही उनके इतिहास, ये ही काव्य-कृतियां
के समस्त ज्ञान-विज्ञान और कला के भण्डार। भारतीय मस्तिष्क की इस
.ड ने उन्हें कभी खण्ड-दृश्यों में नहीं उतरने दिया। अपितु समस्त जीवन
के रूप में ग्रहण कर उससे सम्बद्ध तमाम तथ्यों को एक ही स्थान पर
. लिए प्रेरित किया है। यही कारण है कि आज वैज्ञानिक और
.िलचक जब किसी एक दृष्टिकोण से इन भारतीय ज्ञान-कोषों (संहिताओं)
.करता है तो खिन्न हो उठता है। इतिहासकार जब इन वीथियों में प्रविष्ट
.इतिहास-पादप पर कला और साहित्य की शाखाएं, गणित और ज्योतिष
. दर्शन के पुष्प एवं धर्म पुरुषार्थ-चतुष्टयादि के फल चित्र-विचित्रताओं
दृष्टिगोचर होते हैं। जिन्हें देख कर वह तुरंत निर्णय देता है कि भारतीयों
. था ही नहीं।[१]

भारतीय कल्पना में इतिहास का स्वरूप

.स देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया"।[२]

.ry is the one weak point in Indian literature. It is in
.non-existent. The total lack of History sense is so
.teristic that the whole course of Sanskrit literature is
.ted by the shadow of this *defect*, *suffering as it does*
one entire absence of chronology.

Macdonell—Sanskrit Literature, page 10

.at India bequeathed to us no historical work.

Pargitor—Ancient Historical Traditions, page 2

.साद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल तृतीय संस्करण (२०१८)

बळे भी परंतु सारो पण (भी)

विस्मयादि-बोधक—वाह वाह

विदेशी-शब्द—

अमल	अरज	असाब	एवज
कदमो	कबरो	कैद	खूनी
गरज	जंग	जमी	जुदा
जोर	जोरदार	तरफ	तारीफ
तेग	नवाब	निजामशाह	पातसाह
फौजा	बहादर	बखसीस	बाजार
मकान		मजकूरी	मरजी
मालिक	मुकाम	राह	वजीर
सलाह	सिकस्त	सुरताण	सेहरो
हजरत	हजार	हरामखोर	हाजरि
हुकम			

अध्याय १२

वंशभास्कर और इतिहास

भारतीय इतिहास परम्परा—

पुरातनता और परम्परा के बीच बिन्दु और रेखा का संबंध है। पुरातनदेश होने के नाते भारत सहज ही परम्परा-प्रिय रहा है। भारतीय तत्वचिंतक मनीषियों और साधक-ऋषियों ने अपनी युग-युगीन धर्म और संस्कृति की धाराओं को अजर-अमर बनाने के लिये जो प्रयास किये हैं वे आज 'आर्ष ग्रंथो' के रूप मे हमारे समक्ष हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृति-ग्रंथ, महाकाव्य-रामायण, महाभारत आदि ज्ञान-राशि के अक्षय कोष हैं। ये ही उनके धर्म-ग्रंथ हैं, ये ही दार्शनिक-आलेख, ये ही उनके इतिहास, ये ही काव्य-कृतियां और ये ही उनके समस्त ज्ञान-विज्ञान और कला के भण्डार। भारतीय मस्तिष्क की इस समन्वयात्मक बुद्धि ने उन्हें कभी खण्ड-दृश्यों में नहीं उतरने दिया। अपितु समस्त जीवन को एक इकाई के रूप मे ग्रहण कर उससे सम्बद्ध तमाम तथ्यों को एक ही स्थान पर संग्रहित करने के लिए प्रेरित किया है। यही कारण है कि आज वैज्ञानिक और विश्लेषणवादी-मस्तिष्क जब किसी एक दृष्टिकोण से इन भारतीय ज्ञान-कोषों (संहिताओं) का अवगाहन करता है तो खिन्न हो उठता है। इतिहासकार जब इन वीथियों में प्रविष्ट होता है तो उसे इतिहास-पादप पर कला और साहित्य की शाखाएं, गणित और ज्योतिष आदि के किसलय, दर्शन के पुष्प एवं धर्म पुरुषार्थ-चतुष्टयादि के फल विश्व-विचित्रताओं सहित एक साथ दृष्टिगोचर होते हैं। जिन्हें देख कर वह तुरत निर्णय देता है कि भारतीयों में इतिहास-विवेक था ही नहीं।[१]

भारतीय कल्पना में इतिहास का स्वरूप

"वस्तुतः इस देश मे इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया"।[२]

---

१ (अ) History is the one weak point in Indian literature. It is in fact non-existent. The total lack of History sense is so characteristic that the whole course of Sanskrit literature is darkened by the shadow of this defect, suffering as it does from one entire absence of chronology.

Macdonell—Sanskrit Literature, page 10

(आ) Ancient India bequeathed to us no historical work.

Pargitor—Ancient Historical Traditions, page 2

२ डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल तृतीय संस्करण (२०१८) पृ॰ ७७।

भारतीय आचार्यों ने 'इतिहास' शब्द को जिस अर्थ में प्रयुक्त किया है वह आज के 'इतिहास-दर्शन' से सर्वथा भिन्न है। भारतीय दृष्टि में—

(क) जो धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के उपदेशों से समन्वित एवं पूर्व वृत्तान्तों की कथा से युक्त है, उसे इतिहास कहेंगे।[१]

(ख) पुराण इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सब इतिहास हैं।[२]

इस प्रकार भारतीय विचारधारा में इतिहास का विषयांचल बड़ा विस्तीर्ण है, जिसमें नाना विषय-विधाओं का समाहार है। वह किसी एक सीमा-रेखा में आबद्ध नहीं। तिथियों और घटनाक्रम की ओर ध्यान नहीं है, किंतु जन-जीवन के चित्रण को विशेष महत्व दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे यहां इतिहास, आज की परिभाषा में आने वाले 'विशुद्ध इतिहास' की भांति व्यतीत वंशावलियों और पूर्वघटित तथ्यावलियों के आधार पर विगत युग का लेखा-जोखा लेना मात्र नहीं रहा है। इसके आगे बढ़ कर वह और भी बहुत कुछ है।

ऐतिहासिक काव्य—

'महाभारत' को 'इतिहास-पुराण' कहते हुए[३] जो यह कहा गया है कि "इस ग्रंथ में इतिहास और पुराण का मंथन करके उसका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है"[४]। इससे यह स्पष्ट हो समझा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में स्वतन्त्र इतिहास लेखन की परम्परा नहीं रही है। इसी तथ्य को लक्ष्य में करते हुए विंटरनित्ज़ ने कहा कि "भारत में पुराण तत्व (मिथ्स) निजंधरी कथाओं तथा इतिहास में भेद करने का कभी प्रयास नहीं किया गया। भारत में इतिहास लेखन का अर्थ महाकाव्य लिखने से भिन्न नहीं माना गया।[५] इतिहास को काव्य से समन्वित करने की इसी प्रवृत्ति ने ऐतिहासिक काव्य

---

१ धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितं।
पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥ महाभारत

२ पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः
कौटिल्य—अर्थशास्त्र १। १५। १४

३ द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
इतिहासमिमं विप्राः पुराणं परिचक्षते। महाभारत १। १२

४ इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्॥ वही १। ६६

५ As it has never been the Indian way to make clearly defined distinction between myth, legend and history, historgraphy in India was never more than a branch of epic poetry.

Vinternitz—A History of Indian Literature.
Calcutta 1933 Vol. II pp 208

बंस प्रकाशक ग्रंथ यह कवि कुल पूरन काम ।।
आनहु याको सुकविजन वंसभास्कर हो नाम ।। वंश० १५३ । १२

इस 'वंश प्रकासक' ग्रंथ का अधिकांश अर्थात इसके १२ अंशों में से आठ अंशों में बंश अधिनानृपन चरित' अर्थात वंशक्रमानुसार अनेक राजाओं के चरित आलिखित हैं और शेष चार अंशों में पुरुषार्थ की गणना है—

वंस चरित बिच अट्ठ रवि पुरुषार्थन विच चार ।। वंश० १५३ । १५ इसीलिए हमने वृद्धा आदि विषयों को गौण कहा है।

'नाना नृपन चरित' और उनके इतिहास से सम्बन्धित सामग्री कवि को विविध स्रोतों से उपलब्ध हुई है।[1] इस प्राप्त सामग्री को वंशभास्करकार ने अपनी कल्पना के साँचे में ढालकर अपने भावानुरूप किसी अभिनव काव्य मूर्ति का निर्माण नहीं किया है अपितु यथा-तथ्य क्रमानुसार उनको लेखबद्ध करके एक सच्चे इतिहासकार के धर्म का निर्वाह किया है—

तथ्य न ह्वै कथितव्य तो अर्प्पहि ध्रुव अवनीस।
कबहु सुकवि अनृत न कहत, सहत जदपि दुख सीस ।।
—वंश० २३७७ । २०

सूर्यमल्ल इतिहासकार के रूप में—

सूर्यमल्ल 'एवमेव तथ्य' का वक्ता है और सत्य-कथन हेतु शीश बलि करने को भी प्रस्तुत है।

उसे किसी से वैर या प्रीति नहीं है—
कितहु राम प्रभु स्वीय कवि, बधे प्रीति न वैर ।।
—वंश० २३११ । १

इसलिए वह बिना जाने किसी पर ऐब नहीं रखता—यद्यपि भले-बुरे सब वंशों में होते हैं—

बुरे भले सब बंस में होत नरनाह ।
पै बिनु जानैं ताहु पर रक्खन ऐब न राह ।। वंश० ११४१ । ४५

वह किसी की बुराई नहीं चाहता, सत्य ही उसे इष्ट है और बुरे को भला कहना ब्रह्म-हत्या समझता है—

कानि चहै नहि काहुकी, सुकवि कहै इक सत्य ।
मानि देवों दुष्टहि भलो, कहैबो सद्विज हत्य ।।
—वंश० ११४१ । ४६

उसे तथ्य ही अभिप्रेत हैं—

---

1 द्रष्टव्य टीकाकार का वक्तव्य पृ. ३-५

तथ्यहि प्रिय मागत तिनहि प्रगुन करि न भास ।। वंश० २१७७ । ३

यही कारण है कि छोटी से छोटी बात के लिए वह कल्पना की कार्यवाही नहीं चाहता—

जाको कुल न लिख्यो नगर जनक यह नाम ।
तिम हम तंहं कल्पित लिखैं जाने धर्महि बाम ।। वंश० ११२० । ४१

यदि वह कहीं ठीक वस्तु-स्थिति का निर्णय नहीं कर सका है तो जो बात उसे जैसी मिली वैसी ही लिख कर स्पष्ट कह दिया है—

... ...

जिम मागध बंदी जपत, भक्खै तिम हम एत ।। ५०
कहँ हम न ता किम कहैं, हत्थ्यो लेस न और ।
रीति क्वचुक मनमथ रचैं, जो प्रवित म हिय जोर । ५१
भई यो न तो क्यों भई, होय सत्य तिम होहु ।
कही यद सुहि हम कहत, करहु न प्रमान कोहु ।। वंश० १२११ । १२

और यदि कहीं कोई प्रमाण मिल गया है तो दूसरों के मतों का खण्डन करते हुए इस प्रकार भी लिख दिया है—

प्रभु कोन करत चंदहि प्रमान, इत्यादि लिखो बुध बनि ग्रजान ।।
—वंश० ११३ । १४

इस प्रकार वंशभास्कर में सूर्यमल्ल का दृष्टिकोण प्रधानतः इतिहासकार का दृष्टिकोण रहा है। उसका पूरा चित्र-फलक इतिहास का है और कवि क्रमानुसार ऐतिहासिक ब्यौरा प्रस्तुत करता चला है। तथ्य-प्रतिपादन, घटना-लेखन, तत्सम्बन्धी विवरण संपादन वस्तु-स्थिति निर्देश में उसकी लेखनी लगी रही है। यही कारण है कि वंशभास्कर का अधिकांश मात्र इतिवृत्त बनकर रह गया है। कहीं वंश-वृक्ष अपनी समस्त शाखा-संतति के साथ राशि दर-राशि पर आच्छादित है तो कहीं समकालीन अन्य नरेशों के साथ किसी नरेश की कारगुजारियाँ आलिखित हैं तो कहीं विविध घटनाओं के ब्यौरों पर ब्यौरे फैले हुए हैं।

इतिहासकार का गुण है सामग्री का पता लगाना और उसे निष्पक्षता के साथ उपस्थित करना—इस गुण का सूर्यमल्ल में अभाव नहीं। उसने अपने जानते कहीं किसी के प्रति पक्षपात नहीं दिखाया। आश्रयदाता के दोष दिखाने में भी वह पीछे नहीं हटा। जो बातें उसे ठीक नहीं जान पड़ीं उनको उसने स्पष्ट शब्दों में गलत कहा, भले ही उनके आधार कितने ही प्रतिष्ठित क्यों न रहे हों।

वंशभास्कर में कवि सूर्यमल्ल एक इतिहासकार के रूप में भी हमारे सामने आया है। यह बात अलग है कि उसकी इतिहास लेखन की शैली आज की न होकर वही परम्परागत 'पुराणेतिहास-शैली' है जिसमें कुछ वर्णनों– विशेषतः युद्ध वर्णनों –में उसने काव्यत्व के अवसर ढूंढ निकाले हैं। कहा जा सकता है कि वह तथ्यों में इतिहासकार और वर्णनों में कवि है।

ो जन्म दिया है जिसका प्रशस्त रूप संस्कृत के भाण कृत हर्ष-चरित (७वीं शती) कल्हण वित राजतरंगिणी (११२७-११४५ ई०) मे दृष्टिगोचर होता है। इसी परंपरा के अन्य हत्वपूर्ण ग्रंथ पृथ्वीराज विजय, जयत-विजय, हम्मीर-मद-मर्दन, वसन्त-विलास, कीर्तिकौमुदी ादि हैं।

समसामयिक राजाओं के नाम से सम्बद्ध रचना सातवीं शताब्दी के पहले की नहीं मिली। बाद की शताब्दियों में यह बहुत लोकप्रिय हो जाती है और नवीं-दसवीं शताब्दी में ो संस्कृत प्राकृत में ऐसी रचनाएं काफी बड़ी संख्या में मिलने लगती हैं।[1] पालि का वंश-ाहित्य[2] अपभ्रंश के चरित-काव्य और डिंगल-पिंगल मे रचित रासो ग्रंथ इसी परम्परा के विकसित रूप हैं।

इतिहास और काव्य—

इतिहास और काव्य में बड़ा अन्तर है। एक का उद्देश्य जहां तथ्य और शुद्ध सत्य है वहा दूसरे का भावना और कल्पना। एक वास्तविक सत्य का आश्रय लेता है तो दूसरा संभाव्य सत्य को लेकर चलता है[3]। काव्य का सत्य इतिहास के सत्य से भिन्न काव्य के उद्देश्य अर्थात रसानुभूति का सत्य है-भावनाओं का सत्य है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक मे सुनाई पड़ती है[4]। पोयटिक्स मे इतिहास और काव्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए अरस्तु ने भी कहा है—

The true difference is that one relates what has happened, the other what may happen, Poetry therefore is more philosophical and higher thing that history, for poetry tends to express the universal, history the particulurs.

ऐतिहासिक काव्य मे कवि इतिहास का आश्रय तो ग्रहण करता है, परन्तु वह केवल ऐतिहासिक घटनावली अथवा तथ्यावलीका कोरा ब्योरा उपस्थित नहीं करता।[5] अपितु वह ग्राह्य ऐतिहासिक विवरणों को अपनी कल्पना को अनुभूति को अनुभूति की खराद पर चढ़ा कर उसे अपने उद्देश्यानुरूप बना लेता है।[6] इस प्रकार कवि स्वयं एक स्रष्टा होता है जबकि

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ७४

२ द्रष्टव्य—डा० भरतसिंह उपाध्याय—पालि साहित्य का इतिहास पृ० ५४७

३ डा० जगदीशचन्द्र जोशी— प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० ४५

४ डा० जगदीशचन्द्र जोशी— प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० ४५

५ न हि कवि रीतिवृत्तमात्र निर्वहणेन किंचित्प्रयोजनम—इतिहासदेव तत्सिद्धे।
आनन्द वर्धन पृ० ८

६ The poet may be historian, but he will be selective historian; whose method involves excision of all matters which cannot be closely knit into relation with this new action, whose contact with his hero and hero's doings, cannot some how he preserved.
—Dixon, English Epic & Heroic Poetry. Page 123

तथ्यहि प्रिय लागत तिनहि प्रवृत्त करि न प्रास ॥ वंश० २६७७ । ३

यही कारण है कि छोटी से छोटी बात के लिए वह कल्पना की कार्यवाही नहीं चाहता—

जाको कुल न लिख्यो नगर जनक प्ररु नाम ।
किम हम तंह कल्पित लिखें जाने प्रमंहि जाम ॥ वंश० ११२० । ४।

यदि वह कहीं ठीक वस्तु-स्थिति का निर्णय नहीं कर सका है तो जो बात उसे जैसी मिली वैसी ही लिख कर स्पष्ट कह दिया है—

... ...

जिम मागध वंदी जपत, प्रक्खैं तिम हम एत ॥ ५०
कहैं हम न ता किम कहैं, इक्क्यो लेख न प्रोर ।
रीति कछुक मनमय रचैं, जो प्रचित न हिय जोर । ५१
भई यो न तो क्यों भई, होय सत्य तिम होहु ।
कहो चद सुहि हम कहत, करहु न प्रमान कोहु ॥ वंश० १२१६ । २२

प्रोर यदि कहीं कोई प्रमाण मिल गया है तो दूसरों के मतों का खण्डन करते हुए इस प्रकार भी लिख दिया है—

प्रभु कोन करत चंदहि प्रमान, इत्यादि लिखो बुध बनि प्रजान ॥
—वंश० ११३ । १४

इस प्रकार वंशभास्कर में सूर्यमल्ल का दृष्टिकोण प्रधानतः इतिहासकार का दृष्टिकोण रहा है। उसका पूरा चित्र-फलक इतिहास का है प्रोर कवि क्रमानुसार ऐतिहासिक ब्योरा प्रस्तुत करता गया है। तथ्य-प्रतिपादन, घटना-लेखन, तत्सम्बन्धी विवरण संपादन वस्तु-स्थिति निर्देश में उसकी लेखनी लगी रही है। यही कारण है कि वंशभास्कर का अधिकांश मात्र इतिवृत्त बनकर रह गया है। कहीं वंश-वृक्ष अपनी समस्त शाखा-संपत्ति के साथ राशि दर-राशि पर प्राच्छादित है तो कहीं समकालीन अन्य नरेशों के साथ किसी नरेश की कारगुजारियां प्रालिखित हैं तो कहीं विविध घटनाप्रों के ब्योरों पर ब्योरे फैले हुए हैं।

इतिहासकार का गुण है सामग्री का पता लगाना प्रोर उसे निष्पक्षता के साथ उपस्थित करना—इस गुण का सूर्यमल्ल में प्रभाव नहीं। उसने अपने जानते कहीं किसी के प्रति पक्षपात नहीं दिखाया। प्राश्रयदाता के दोष दिखाने में भी वह पीछे नहीं हटा। जो बातें उसे ठीक नहीं जान पड़ीं उनको उसने स्पष्ट शब्दों में गलत कहा, भले ही उनके प्राधार कितने ही प्रतिष्ठित क्यों न रहे हों।

वंशभास्कर में कवि सूर्यमल्ल एक इतिहासकार के रूप में भी हमारे सामने आया है। यह बात अलग है कि उसकी इतिहास लेखन की शैली आज की न होकर वही परम्परागत 'सूर ऐतिहास-शैली' है जिसमें कुछ वर्णनों– विशेषतः युद्ध वर्णनों –में उसने काव्यत्व के अवसर ढूंढ निकाले हैं। कहा जा सकता है कि वह तथ्यों में इतिहासकार और वर्णनों में कवि है।

ो जन्म दिया है जिसका प्रशस्त रूप संस्कृत के भाण कृत हर्ष-चरित (७वीं शती) कल्हण
चित राजतरंगिणी (११२७-११४५ ई०) में दृष्टिगोचर होता है। इसी परंपरा के अन्य
हत्वपूर्ण ग्रंथ पृथ्वीराज विजय, जयत-विजय, हम्मीर-मद-मर्दन, वसन्त-विलास, कीर्तिकौमुदी
ादि हैं।

समसामयिक राजाओं के नाम से सम्बद्ध रचना सातवीं शताब्दी के पहले की नहीं
मिली। बाद की शताब्दियों में यह बहुत लोकप्रिय हो जाती है और नवीं-दसवीं शताब्दी में
तो संस्कृत प्राकृत में ऐसी रचनाएं काफी बड़ी संख्या में मिलने लगती है।[1] पालि का वंश-
साहित्य[2] अपभ्रंश के चरित-काव्य और डिंगल-पिंगल में रचित रासो ग्रंथ इसी परम्परा के
विकसित रूप हैं।

इतिहास और काव्य—

इतिहास और काव्य में बड़ा अन्तर है। एक का उत्स जहां तथ्य और शुद्ध सत्य है
वहां दूसरे का भावना और कल्पना। एक वास्तविक सत्य का आश्रय लेता है तो दूसरा
सम्भाव्य सत्य को लेकर चलता है[3]। काव्य का सत्य इतिहास के सत्य से भिन्न काव्य के
उद्देश्य अर्थात रसानुभूति का सत्य है-भावनाओं का सत्य है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक में
सुनाई पड़ती है[4]। पोयटिक्स में इतिहास और काव्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए अरस्तु ने
यों कहा है—

The true difference is that one relates what has happened, the other what may happen, Poetry therefore is more philosophical and higher thing that history, for poetry tends to express the universal, history the particulurs.

ऐतिहासिक काव्य में कवि इतिहास का आश्रय तो ग्रहण करता है, परन्तु वह केवल
ऐतिहासिक घटनावली अथवा तथ्यावलीका कोरा ब्योरा उपस्थित नहीं करता।[5] अपितु वह
ग्राह्य ऐतिहासिक विवरणों को अपनी कल्पना को अनुभूति को अनुभूति की खराद पर चढ़ा
कर उसे अपने उद्देश्यानुरूप बना लेता है।[6] इस प्रकार कवि स्वयं एक स्रष्टा होता है जबकि

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ७४

२ द्रष्टव्य—डा० भरतसिंह उपाध्याय—पालि साहित्य का इतिहास पृ० ५४७

३ डा० जगदीशचन्द्र जोशी– प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० ४५

४ डा० जगदीशचन्द्र जोशी– प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक पृ० ४५

५ न हि कवि रीतिवृत्तमात्र निर्वहणेन किंचित्प्रयोजनम—इतिहासदेव तत्सिद्धे.।
आनन्द वर्धन पृ० ८

६ The poet may be historian, but he will be selective historian; whose method involves excision of all matters which cannot be closely knit into relation with this new action, whose contact with his hero and hero's doings, cannot some how he preserved.
—Dixon, English Epic & Heroic Poetry. Page 123

इतिहासकार एक द्रष्टा-अन्वेषक। एक का लक्ष्य जहाँ भावोद्वेलन-रस-चर्वणा है वहाँ दूसरे का लक्ष्य तथ्य प्रतिपादन–विमर्श–संपादन।

क० मा० मुंशी इतिहासकार की 'रसानुभव' से प्रेरित सरसता को कारण मानते हुए इतिहास को साहित्य की एक कलात्मक-कृति कहते हैं।[1] किंतु हम इतिहास को ठेठ रूप में 'कलाकृति' स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि अंततोगत्वा इतिहासकार का लक्ष्य शैली-सौष्ठव और भावालोड़न न होकर *तथ्य-प्रतिपादन और सत्य-कथन ही रहता है।* स्वयं श्री मुंशी भी इस बातको स्वीकार करते हुए लिखते हैं— "इतिहासकार की कल्पना और सृजना को अतीत ऐतिहासिक प्रभावों का कठिन बंधन स्वीकार करना पड़ा है।"[2]

वंशभास्कर एक काव्यमय इतिहास

इतिहास और काव्य के इस अन्तर– विश्लेषण के प्रकाश में यदि वंशभास्कर का अध्ययन करें तो हमें विदित होगा कि वंशभास्कर विशुद्ध काव्यकृति अथवा ऐतिहासिक-काव्य न होकर एक काव्यमय इतिहास (पोइटिक हिस्ट्री) है और सूर्यमल्ल इतिहास कवि (पोयट हिस्टोरियन)। वंशभास्कर में कवि का उद्देश्य केवल काव्य-रचना नहीं रहा, *अपितु विविध राज-वंशों के इतिहास और वर-विद्याओं का निरूपण करना रहा है*–उसने इसे इतिहास ज्ञान के विश्व-कोष के रूप में उपस्थित किया है। यही कारण है कि इसमें काव्यात्मक स्थलों का किसी प्रकार अभाव न होते हुए भी अनेक ऐसे स्थलों की भरमार है जिन्हें काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। कवि ने स्वयं ग्रंथ के प्रारंभ में वस्तु-निर्देश करते हुए कहा है—

'...महारावराजेन्द्र रामसिंहातद्वंशवर्णनमीत नियोग...'

वंशभास्कर मिध विविधबाहुजवंशविभवितविशिष्टवदनीय वर विद्या विषय (वंश० १।१)

इससे स्पष्ट है कि कवि को अपने आश्रयदाता रामसिंह से किसी काव्य-ग्रंथ-निर्माण की नहीं अपितु वंश-वर्णन अर्थात इतिहास-लेखन की आज्ञा मिली है-रचो नृपगिरा करिवंश प्रबन्ध- (वंश० ६७।५) इसलिए ग्रंथ का मूल विषय क्षत्रियों के विविध वंशों का कथन है—वर-विद्याओं आदि का निरूपण गौण है।

कवि ने स्वयं अपनी कृति को *'अनल बंस उत्पत्ति कृति' वंश०* ८६। ८६ कहते हुए उसकी रचना का मूल लक्ष्य हाड़ा-वंश (चहुवान वंश) वर्णन बतलाया है—

(अ) हाड़ा ग्रंथ निदान है, सो सब मुख्य सुबोध ॥ वंश० १२६७। ४६

(आ) अथ बंस कहियत अखिल ग्रंथ हेतु जस गेह ॥ वंश० १४०६। ६१

(इ) अवसहि ग्रंथ निमित्त अब उदय बस अधिकाई ॥ वंश० १४०८। १

ग्रंथ का नाम 'वंशभास्कर' भी वंशों को अर्थात् वंशोंके इतिहास को प्रकाशित करने के *कारण* ही है—

---

१ क० मा०—पादि वचनों पृ० ११०।

२ वही—पृ० १६५

वंस प्रकासक ग्रंथ यह कवि कुल पूरन काम ।।
जानहु याको सुकविजन वंसभास्कर ही नाम ।। वंश० १५३ । १२

इस 'वंस प्रकासक' ग्रन्थ का अधिकांश अर्थात इसके १३ अंशों में से ८ अंशों में विधिनानानृपन चरित' अर्थात वंशक्रमानुसार अनेक राजाओं के चरित आलिखित हैं चार अंशों में पुरुषार्थ की गणना है—

वंश चरित्त बिच अट्ठ रवि पुरुषार्थन बिच चार ।। वंश० १५३ । १५ इसीलिए विद्या आदि विषयों को गौण कहा है।

'नाना नृपन चरित' और उनके इतिहास से सम्बन्धित सामग्री कवि को विविध से उपलब्ध हुई है।[१] इस प्राप्त सामग्री को वंशभास्कर ने अपनी कल्पना के डालकर अपने भावानुरूप किसी अभिनव काव्य-मूर्ति का निर्माण नहीं किया है अपितु तथ्य क्रमानुसार उनको लेखबद्ध करके एक सच्चे इतिहासकार के धर्म का निर्वाह किया

सत्य न हुँ कथितव्य तो अप्पहिं ध्रुव अवनीस ।
कबहु सुकवि अनृत न कहत, सहत जदपि दुख सीस ।।

—वंश० ९३७७ । २०

सूर्यमल्ल इतिहासकार के रूप में—

सूर्यमल्ल 'एकमेव कथ्य' का वक्ता है और सत्य कथन हेतु शीश बलि करने को प्रस्तुत है।

उसे किसी से वैर या प्रीति नहीं है—

कितहु राम प्रभु त्वोय कवि, यंपे प्रीति न बैर ।।

—वंश० २३७७ । १

इसलिए वह बिना जाने किसी पर ऐब नहीं रखता—यद्यपि भले-बुरे सब वंशों में हैं—

बुरे भले सब बंस में होत नरनाह ।
पै बिनु जानैं ताहु पर रक्खन ऐब न राह ।। वंश० ११४१ । ४५

वह किसी की बुराई नहीं चाहता, सत्य ही उसे इष्ट है और बुरे को भला कहना ब्र हत्या समझता है—

कानि चहै नहि काहुकी, सुकवि कहै इक सत्य ।
मानि देवो दुष्टहि भलो, ब्है बो संद्विज हत्य ।।

—वंश० ११४१ । ४६

१ द्रष्टव्य टीकाकार का वक्तव्य पृ. ३-५

वंशभास्कर में वर्णित इतिहास क्रम—

वंशभास्कर में वर्णित इतिहास का पाट बड़ा लंबा-चौड़ा है। इसमें संदेह नहीं कि 'चहुवान-वंश' और उसमें भी बूंदी के हाड़ा-वंश का ही इतिहास लिखना वंशभास्कर का लक्ष्य है; फिर भी इसके ऐतिहासिक कलेवर में राजपूताने का ही नहीं अपितु समस्त भारत-वर्ष का इतिहास समाया है।

अग्निवंशीय क्षत्रियों की प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चहुवाण चारों शाखाओं की अग्नि-कुण्ड से उत्पत्ति वंशावलियों सहित उनके विभिन्न राज्यों की स्थापना, युद्ध-विजय आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए चहुवाण-वंश की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं के परिचय के उपरांत कवि बूंदी के राजवंश पर आकर टिक जाता है और इस प्रकार इस क्रम से एक वृहद् इतिहास की रचना कर डालता है—जिसमें सृष्टि-रचना से लेकर भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना तक का ऐतिहासिक ब्योरा आ जाता है।

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि बूंदी के राजवंश का क्रमानुसार इतिहास-इतिवृत्त प्रस्तुत करना ग्रंथकार को इष्ट है। बूंदी-राजवंश के इस प्रकार के इतिहास को पूर्णता देने के लिए यह आवश्यक था कि कवि भारतीय प्रदेश के अन्यान्य नरेशों के इतिहास पर प्रकाश डालता हुआ बूंदी राज्य से उनके पारस्परिक सम्बन्ध को भी स्पष्ट करता चले। हम पाते हैं कि कवि ने अपने ग्रंथ में इसी भाँति का अनुसरण किया है। फलतः वंशभास्कर में समस्त भारत का इतिहास आ गया है।

धागे से चीनी के रवे बनाने की विधि में जिस प्रकार धागे पर चासनी की परतें चढ़ती जाती हैं और फिर रवे के रूप में टूट-टूट कर धागे से जुदा होती जाती हैं, कुछ वैसा ही क्रम वंशभास्कर में है। बूंदी के किसी महाराव राजा का वर्णन चल रहा है; उसके साथ ही जो अन्य महत्वपूर्ण समसामयिक राजा—बादशाह हैं उनका इतिहास भी वर्णित होता हुआ चला जा रहा है। एक के बाद फिर बूंदी-नरेश का वर्णन आता है और फिर यही क्रम आगे भी जारी रहता है।

वंशभास्कर में वर्णित ऐतिहासिक सामग्री का आधार—

राजस्थान में सूर्यमल्ल की ख्याति केवल एक कवि के रूप में ही नहीं अपितु एक इतिहासकार के रूप में भी है। इस मान्यता का आधार उपरिलिखित वंशभास्कर की वह व्यापक ऐतिहासिक सम्पत्ति है जिसकी कड़ियां समस्त भारत के इतिहास से जुड़ी हुई हैं। वंशभास्कर की इस व्यापक ऐतिहासिक सामग्री के संकलनार्थ कवि ने अपने समय में उपलब्ध जिन ऐतिहासिक साधनों का उपयोग किया है उनका क्षेत्र वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि आर्ष ग्रंथों से लेकर संस्कृतादि भाषाओं—नाटक, भाण, चम्पू आदि काव्यों, बड़वा-भाटों की पोथियों, रास, ख्यात, बात, हाल एवं विभिन्न राजघरानों की दफ्तर-बहियों तथा फारसी तवारिखों तक परिव्याप्त है।

टीकाकार श्री कृष्णसिंहजी बारहट ने वंशभास्कर की विभिन्न राशियों में वर्णित

इतिहास के साधन स्रोत की ओर जो संकेत[1] किये हैं उनका सारांश इस प्रकार है—

द्वितीय राशि[2] में अग्निवंशीय क्षत्रियों का वंश वर्णन बड़वा भाटों की पुस्त
आधारित है। उनके बीच कहीं-कहीं नाटक आदि काव्यों के आधार पर भी इतिहास-
बातें लिखी गई हैं।

तृतीय राशि का इतिहास पुराणों, रामायण, महाभारतादि से लिया गया है
राशि में स्वयं सूर्यमल्ल ने लिखा है कि सातवाहन के चरित्र से लेकर वल्लभाचार्य के
तक हमने प्राचीन पण्डितों के लिखे अनुसार लिखा है, जिसका असमव वृत्तांत मानने
नहीं है।

चतुर्थ राशि में विक्रम का इतिहास है, जिसके विषय में आधुनिक विद्वानों में
मतभेद है। इसी में भोज का चरित्र है जो 'भोज-प्रबन्ध' से लिया गया है। आगे पृथ्वी
रासो से सामग्री ग्रहण की गई है जिसके लिए ग्रंथकार ने स्वयं लिख दिया है कि
इतिहास झूठा है।

पंचम एवं षष्ठ राशि का इतिहास कुछ तो बड़वा भाटों की पुस्तकों से, कुछ दिल्ली
फ़ारसी में लिखित प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों और कुछ बूंदी की ख्यात से लिया गया है
फ़ारसी इतिहास ग्रंथों में से सूर्यमल्ल ने 'तवारीख फ़रिश्ता' तथा 'अकबरनामा'
विशेष रूप से उपयोग किया है—

> तवारीखफिरिस्तादिम्लेच्छितेभ्यो विनिश्चितम्।
> तथा अकबरनामादियवनानीय उद्धृतम्॥ वंश० १९९१। ६

सप्तम राशि में अपेक्षाकृत समीप का इतिहास है जो राजपूताने के विभिन्न ऐतिहासिक
लेखों और बड़वा भाटों के लेखों पर आधारित हैं। इनके विषय में सूर्यमल्ल ने स्वयं लिख
दिया है कि हमें जहां-जहां पूर्ण निश्चय हुआ वहां वहां तो संवत् लिख दिये हैं, शेष वृत्तान्त
पूर्वापर का अनुसंधान न होने से जहां याद आया वहां वैसा लिख दिया है। अतएव यहां
जैसा संभव होवे वैसा यहां जान लेना।

अष्टम-राशि – में वर्णित इतिहास ग्रंथकर्ता ने बूंदी के दफ़्तर और बड़वाभाटों की
पुस्तकों से बहुत छानबीन कर लिखा है।

निष्कर्ष—एक इतिहासकार के रूप में सूर्यमल्ल के विषय में दो प्रकार की धारणाएं
प्रचलित हैं। एक धारणा चारण विद्वानों की है जो उन्हें 'पक्षपात रहित, सत्यवक्ता-इतिहास-
वेत्ता' मानते हुए घोषित करते हैं कि 'सूर्यमल्ल जैसा इतिहास-वेत्ता अद्यावधि नहीं हुआ

---

१ कृष्णसिंह बारहट—पूर्वपीठिका वंशभास्कर प्रथम खण्ड पृ. ४-५

२ प्रथम राशि में मंगलाचरण, देवादि स्तुति, कवि वंश वर्णन, रामसिंह-वर्णन, ग्रन्थ-निर्माणाज्ञा, ग्रन्थ-निर्माण-नियम, ग्रन्थ-सूची, ग्रन्थ-नाम, भगोल-खगोल वृत्तान्त, कमारंभ आदि वर्णित हैं – इसमें ऐतिहासिक संकेत मात्र मात्र ही है।

और अब होना भी कठिन है।[1] दूसरी धारणा इतिहासकारों की है जिसके अनुसार 'वह कवि और अच्छा विद्वान था परन्तु इतिहास-वेत्ता नहीं'।[2] इन दोनों धारणाओं में पुरानी और नई पीढ़ियों के साथ ही नये और पुराने दृष्टिकोणों का अन्तर है। पुरानी पीढ़ी का इतिहास विषयक दृष्टिकोण परम्परागत पुराऐतिहास—शैली पर ही आधारित है। इसके विपरीत नई पीढ़ी इसे ही 'इतिहास' मानती है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति से तथ्यातथ्य का विश्लेषण कर शुद्ध सत्य का प्रतिपादन किया गया है।

जहां तक तथ्य-कथन और सत्य-प्रतिपादन का प्रश्न है सूर्यमल्ल पर हम अंगुली नहीं उठा सकते। इसके लिये प्रमाण प्रत्यक्ष है कि उन्होंने निष्पक्ष-भाव से अपने आश्रयदाता राज-वंश का दोष-निर्देशन किया है; यहां तक कि अपने स्वामी महाराव राजा रामसिंह के वर्णन का जब अवसर आया तब भी सत्य-संरक्षा से विमुख न हुए। उन्होंने 'वंशभास्कर' जैसे महद्ग्रंथ, जिसकी पूर्ति पर 'कुछ साधारण प्राप्ति की आशा नहीं थी'; का लेखन छोड़कर उसे अपूर्ण रखना स्वीकार किया पर तथ्यों की हत्याकर रावराजा रामसिंह का कोरा स्तुतिपरक इतिहास लिखना स्वीकार नहीं किया। कवि की इसी सत्य-निष्ठा और तथ्य संरक्षा को देखकर ही श्रीकृष्णसिंह बारहट जैसे विद्वान उसे शपथपूर्वक 'सत्यवक्ता-इतिहास-वेत्ता' तथ्य-प्रतिपादन और सत्य समर्थन से आगे बढ़कर जब हम सूर्यमल्ल में एक तत्वतः इतिहासकार की विश्लेषणवादी प्रतिभा, शोध-समर्थ बुद्धि एवं इतिहास-रचना-प्रक्रिया अपेक्षित सूझबूझ, सूत्र रूप में 'इतिहास-विवेक,' की खोज करते हैं तो हमें निराश होना पड़ता है। विभिन्न साधन-स्रोतों से उपलब्ध इतिहास की कच्ची सामग्री को जिस प्रकार इतिहासकार अपनी शोध - यात्रा में निर्मित - कारण-कार्य की कसौटी पर कस कर विभिन्न प्रमाणों के आधार पर अपने 'इतिहास' में उसका समाहार-प्रत्याहार करता हुआ शुद्ध ऐतिहासिक सत्य को प्रस्तुत करता है—वैसा सूर्यमल्ल ने नहीं किया है। उसे जहां से जो सामग्री मिली है उसने उसकी बिना ऐतिहासिक-परख किये हुए उसे प्रायः ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। इसी बात को लक्ष्य करते हुए डा० गो० ही० ओझा ने कहा है कि—वंशभास्कर ने 'उस समय तक इतिहास लिखने में विशेष खोज की हो, ऐसा पाया नहीं जाता। कवि का लक्ष्य कविता की ओर ही रहा है प्राचीन इतिहास की शुद्धि की ओर नहीं'।[3]

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वंशभास्करकार का लक्ष्य कविता करना भी रहा है; परन्तु यह नहीं माना जा सकता कि इतिहासकार के दायित्व की उसने अवहेलना की है। जहां तक 'इतिहास की शुद्धि' का प्रश्न है, उसने जो ऐतिहासिक सामग्री दी है उससे अधिक की आशा उससे हम कर भी नहीं सकते। क्योंकि उस युग में इतिहास के

---

१ डा० गो० ही० ओझा—राजपूताने का इतिहास पहली जिल्द पृ० ३७

२ कृष्णसिंह बारहट—वंशभास्कर प्रथम खण्ड—पूर्व पीठिका

३ राजपूताने का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृ. ५५८

साधन प्राज की तरह प्रचुर नहीं थे और न ही उस दिशा में कोई विशेष खोज हो पाई थी। तथापि उसने उपलब्ध सामग्री के अध्ययन के आधार पर ही अपने मत निर्धारित करने का प्रयास किया था। इस बात का समर्थन उसके इस कथन से हो जाता है—

> प्रभूतमतमासाद्य दिल्लीराड्यावनावली।
> उद्देश्येनोदिताप्याहो द्वापरासम्बन्धं क्वचित ॥
>
> —वंश० ११६८ । ८

इतना करने पर भी जो संदेह रह गये हैं उनका कारण तत्कालीन साधन-सामग्री की तथ्यगत अनेकरूपता ही है। स्वयं सूर्यमल्ल ने इस बात का अनुभव किया था—

> दिल्लीशानां प्रतिग्रथमायाति महदन्तरम्।
> अद्भुत य-मतीवयं अपि मीरंवर्यु-मप्लुत्या लिपि ॥
>
> —वंश० ११११ । ७

इसीलिये उसने स्पष्टतः लिखा है कि 'प्राप्त-सामग्री' एक ही तथ्य के बीसों रूपान्तर मिलते हैं। अन्य साधन उपलब्ध न होने के कारण ग्रंथ में उन्हीं का आकलन कर लिया गया है। अतएव पाठकों को, नीर क्षीर-विवेक से, जो उसमें सार है उसे ही ग्रहण करना चाहिये—

> "एक एक बात बीस बीसन भेद भजत जानि ग्रंथ के ग्रथन में
> और कोउ आलंबन न मानि भिन्न भिन्न भासनन में
> कोऊ तो सत्य ह्वै हैं ऐसी पहिचानी इहां तो आगम प्रमाण के
> दुग्धोदधि में राजहंसताकरि सारसार टारि तात्विक ही ग्रदत गहिये।"
>
> —वंश० १२८० । २

इस प्रकार 'इतिहास विवेक' की कमी का प्रश्न है यहां तो यह कहा जा सकता है कि यह कमी सूर्यमल्ल की कमी न होकर उसके युग की 'इतिहास-लेखन-प्रक्रिया' की कमी है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूर्यमल्ल में लाख 'इतिहास-बुद्धि' का अभाव हो उसने अपने जानते इस बात के प्रति बारबार सतर्कता बरती है कि उसकी रचना में असत्य-अतथ्य का मेल न होने पाये—और इसी आधार पर यदि हम उसे पुराने खेवे का इतिहासकार कहते हुए वंशभास्कर को 'ऐतिहासिक-वृत्तांत-सपन्न एक 'संहिता' ग्रंथ कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। वंशभास्कर के इन ऐतिहासिक वृत्तों से आज के सर यदुनाथ सरकार, डा० गौ० ही० ओझा, महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह, डा० दशरथ शर्मा, डा० मथुरालाल शर्मा, श्री जगदीशसिंह गहलोत प्रभृति इतिहासकारों ने अपने इतिहास-ग्रंथों के निर्माण हेतु बहुत कुछ लिया है और आगे भी मध्यकालीन राजपूत-इतिहास का लेखक इनकी उपेक्षा नहीं कर सकेगा।

अध्याय १३

वंशभास्कर में राज-समाज की झलक

वंशभास्कर क्षत्रियों का एक विराट जातीय अभिलेख है। इस 'वंश-प्रकाशक-ग्रंथ' में छत्तीसों राज कुलों की जाति-गत विशेषताओं का समाहार सहज ही हो गया है।

वंशभास्कर में सृष्टि-समारंभ से लेकर वेद, महाकाव्य और पुराण-युग तक के क्षत्रिय-समाज की गति विधियों के स्फुट-विशेषतया युद्धाभिमुख चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। तदनन्तर भारतीय इतिहास के पूर्व-मध्य-काल (राजपूत युग से मध्य-काल—यवन-काल) और आधुनिक काल (अंग्रेज-युग) तक की सुदीर्घ काल परिधि में आने वाले क्षत्र जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में अकेले हाडा वंश के लगभग दो सौ नरेशों का चित्रण वंशभास्कर में हुआ है। इन सब के आधार पर क्षात्र-संस्कृति का सांगोपांग अध्ययन स्वतंत्र प्रबंध का विषय है। अतएव यहां क्षात्र जाति के कतिपय महत्वपूर्ण संस्कारों एवं विशिष्टताओं को संकलित करने का प्रयास किया गया है। अस्तु।

विवाह—ऋग्वेद के अनुसार विवाह का उद्देश्य गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर देवकार्यों का सम्पादन और वंशानुक्रम-सचालन के निमित्त संतान प्राप्ति है।[1] गृह सूत्र, धर्म सूत्र और स्मृतियों में विवाह के आठ प्रकार कहे गये है।[2] ब्राह्म, प्रजापत्य, आर्ष, देव, गान्धर्व, क्षात्र और मानुष (क्षात्र और मानुष राक्षस और असुर के ही पर्यायवाची हैं)।

वंशभास्कर में निम्नांकित प्रकार के विवाहों के वर्णन आये हैं—

१ ब्राह्म विवाह—उत्तर मध्यकालीन सभी हाडा राजाओं के विवाह ब्राह्म विवाह की कोटि में आते हैं।

२ दैव-विवाह—द्रौपदी-विवाह (वंश० ६५६।४८)।

३ गांधर्व-विवाह—गंधर्व विवाह आसुरी माने जाते थे फिर भी इनका प्रचलन था (वंश० १०६८।२३१)।

४ राक्षस-विवाह—चौहान मानसिंह ने नेपाल नरेश की कन्याओं का हरण करके बलात् विवाह कर लिया था। (वंश० १०२०।४४-४५)

शास्त्र संकेतिक विवाहों के अतिरिक्त वंशभास्कर में अन्य कई प्रकार के विवाह वर्णन आये हैं। जैसे—

---

१ एवमयमनपाणिग्रहणशब्द वत्वपरिणयनशब्दतामपि दण्डिन्यायेनैव कर्म समुदाये शास्त्रेषु प्रयुज्येत्-अपरार्क पृ० ९१।

२ आश्वलायन गृहसूत्र व ६ गौतम ४, ६, ११ बोधायन
डा०गायत्रीदेवी: कवि कालिदास के ग्रंथों पर आधारित भारतीय संस्कृति पृ० ७८ और ८१ से उद्धृत।

स्वयंवर-विवाह—कन्या यदि किसी को स्वेच्छा से वरण कर लेती थी तो वह उसे विद्युत् से बलात् अपने यहां लाकर विधिवत् विवाह कर लेता था (वंश० ५१ । ४२; ५४१ । ६; ६३६ । १४) । १२वीं–१३वीं शती में ब्राह्मण स्वयंवर प्रथा का विरोध करने लगे थे (वंश० १४१६ । ६) ।

संधि-विवाह—आक्रान्ता का सामना करने में असमर्थ राजा शत्रु को अपनी बेटी ब्याह कर संधि कर लेते थे (वंश० ५३७ । ५७–८०) किसी सुंदर-कन्या के लिए आक्रमण कर देना आम बात थी (वंश० ५४४ । २२; ५४५ । २६; १०३५ । १२) ।

प्रारंभ में सजातीय विवाह का ही प्रचलन था। विवाह-संबंध-संस्थापन में धनादि न देखकर शुद्ध-कुल देखा जाता था (वंश० ८२४३ । ५६–६०) । १३वीं शती के अंत में राजपूत राजा यवन-म्लेच्छों को कन्याएं देने लग गये थे (वंश० १६२० । २) । एका-दुक्का राजपूत नरेश भी यवन-कन्याओं से विवाह कर लेता (वंश० १७७१ । ६) । अकबर के समय मे तो यह लेन-देन खासा चल पड़ा था (वंश० २२३४ । ७, १२, १३) । राजाओं के विवाह सम्बन्ध दूर-दूर तक भी सम्भव थे (वंश० २६०१ । २–५) । लग्न भेजने की एक विशिष्ट रीति थी (वंश० २६०२ । १४–१६) । विवाह के अवसर पर वर हाथी पर बैठता था। तोरण मारने की प्रथा प्रचलित थी और आरती भी होती थी (वंश० १३८१ । १–३) । राजाओं के विवाह बड़ी धूम धाम से सम्पन्न होते थे—द्र० विवाह-वर्णन । सगाई के समय भी दान दिया जाता था (वंश० १७५२ । १४–१५) । विवाहो-परान्त दान करने की रीति थी । चारण-बारहट आदि हठ-पूर्वक दान लिया करते (वंश० २७५२ । १६; २७५७ । ४१) ।

अभिषेक—राज्याभिषेक विशिष्टपद्धति से ससमारोह सम्पन्न होते थे।

नाना प्रकार की मिट्टी का आलेपन कर पवित्र-जल से स्नान करने के पश्चात् सुगन्धित द्रव्य-लेप लगाकर कुमार यज्ञ-वेदी पर समासीन होते थे । वेदीके चारों ओर चारों वर्णों के चार सचिव नियोजित रहते थे। पूर्वमें ब्राह्मण स्वर्ण-कलश एवं घृत लिए हुए दक्षिण में क्षात्र रजत कलश और दूध लिए हुए, पश्चिम में वैश्य ताम्र-कलश और दही लिए हुए एवं उत्तर में शूद्र मृत्तिका-कलश और जल लिए हुए । तत्पश्चात् याज्ञिक कर्मकाण्ड और मंत्रोच्चार के साथ राज्याभिषेक सम्पन्न होता था (द्रष्टव्य चहुवाण-अभिषेक—वंश ४०१-१ । १६-२८) उम्मेदसिंह अभिषेक (वंश० ३५४४ । ४ ; ३५६५ । ३०६) ।

पाटवी पुत्र को राज्याधिकार मिलता था । अन्य पुत्र अपने भुजबल के प्रताप से, दूर दूर देशों मे जाकर राज्य-स्थापन करते थे (वंश० ४५८ । १६) । राज्यस्थापना हेतु मातुल-कुल तक का भी विनाश कर दिया जाता था-जैसे मूलराज ने अपने मातुल-वंश का नाश कर अनहिलवाड़ा पाटण का राज्य हस्तगत कर लिया था (वंश० ४६० । २२) ।

अक्षत-वहन—चार प्रकार के छत्र (वंश० १७३५ । ४५) के पश्चात अङ्कित भुजा हुआ मांस

(वंश० ११४६ ६) और विविध व्यजन (वंश १८३६ । ६) आम भोजन था। द्रोण-पात्र (वंश० ११४६ । ६) से लेकर काच के सुंदर बर्तनों तक का उपयोग होता था (वंश० २४३६ । २८) ।

नासिरुद्दीन के समय (स० १३०३-१३२३) से अफीम और हुक्के का प्रचलन हो चुका था (वंश० १५६८ । २५) । आगे चलकर तो अफीम और मदिरा-सेवन बेहद बढ़ गया था (वंश० १४४७ । २६; १८२६ । ६ ; २००६ । ३३ ; २००६ । ४८ ; २०१५ । १ ; २०१६ । ७-८ ; २२५४ । ६४) । तांबूल का प्रचलन विक्रम की १०वीं शती से ही प्रारम्भ हो गया था (वंश० १३२२ । २३) । राज-दरबार में ताम्बूल-वाहक का विशेष पद होता था (वंश० १५७६ । १) ।

घोड़ों को भी मांस खिलाया जाता था (वंश० ११४६ । ६) और सत्तू, दही, शक्कर आदि भी दिये जाते थे (वंश० १६५० । ३०) ।

राजन्य-वर्ग बड़े भड़कीले वस्त्र धारण करता था। नील से केश रंगे जाते थे (वंश० २६७४ । २) और नाना प्रकार के रत्नाभूषण धारण किये जाते थे (वंश० ३२४४ । ७३-७७-द्रष्टव्य रूप-वर्णन) ।

मनोरंजन—कंदुक-क्रीड़ा (वंश० ११५४ । ५४; १८४८ । ३७) आंखमिचौनी-चकवे का खेल (वंश० १४५४ । ३५) हुडुडू—एक प्रकार का खेल जिसमें अपने पराये का ज्ञान नहीं रहता, खो-खो (वंश० १४५५ । ४०) गोटा-छोट (वंश० १६६३ । १५) आदि खेलों का प्रचलन था।

मनोरंजन के अन्य साधनों में नृत्य, वाद्य, गायन (वंश० १७३१ । ४३) आदि मुख्य थे। वन-भोज (वंश० १७४७ । २६), गोष्ठी (वंश० २०१५ । १) आदि का भी आयोजन होता था। मृगया (वंश० २०११ । १८), पक्षियों के युद्ध (वंश० १७७६ । १७) नटों के करतब (वंश० २०२६ । ५७) और *पातुरियों-पण्यनारियों* (वंश० २०२६ । ५८) की कलाओं से भी राजा मन बहलाते थे।

धर्म—सभी चौहान वंशी राजा सनातन-धर्मी थे। शनैः शनैः राजन्य वर्ग अन्य-धर्माभिमुख भी होने लगे थे। शत्रुजित को वामप्रस्थगामी न बतला कर गोरखपंथी दिखलाया गया है (वंश० १०२४ । ७-८) । चालुक्य वंशी कुमारपाल ने भी जैन-धर्म ग्रहण कर लिया था (वंश० १०३६ । ३५) । चालुक्य इन्द्रद्युम्न ने जैन-धर्म को मिटाकर वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा की थी (वंश० ११०४ । १०-११) ।

पन्द्रहवी शती के लगभग पश्चिमी भारत में औघड़ साधुओं की जमातें फैल चुकी थीं (वंश० १८४८ । ३८) । पृथ्वीराज चौहान के समय वैष्णव तथा स्मार्त मत मान्य हो चले थे। भैरव-पूजा, वाम मार्ग आदि का भी प्रचलन था किंतु ये हेय समझे जाते थे (वंश० ११४६ । १; १५०० । २०) । हेमचन्द्र के पहले से वैष्णव, स्मार्त, शैव, गाणपत्य, शाक्त आदि मतों का चलन था (वंश० १४२६ । १२) ।

१८वीं शती में कौलमार्गी तथा वाममार्गियों का जोर बहुत बढ़ गया था (वंश० ३२९ । १४) । राजन्य-वर्ग भी उनसे दीक्षित होने लगा था । महाराव राजा बुधसिंह कौलमार्गी होकर किस प्रकार भ्रष्ट हो चुका था, इतिहास के पन्ने और वंशभास्कर (वंश० ३०३० । १) इसके साक्षी हैं ।

धार्मिक-विश्वास—

सनातनधर्मी होने के कारण वैदिक अनुष्ठानों के प्रति समाज में अपार श्रद्धा थी एक बार यज्ञ का समारंभ हो जाने पर हर हालत में उसकी पूर्ति आवश्यक मानी जाती थी (वंश० ५४७ । ५६-५९,५३६ । ७२-७९) । विक्रम की १२वीं शती से गोवध का तीव्र विरोध होने लगा था (वंश० १५६५ । १२) आगे चल कर गो-रक्षा को राजाओं ने अपने धर्म का अभिन्न अंग मान लिया था (वंश० १२९९ । २७-३०, १६०६ । १-२) तीर्थ-यात्रा को भी धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था । तीर्थ यात्राएँ विशिष्ट विधि से सम्पन्न होती थी (वंश० २०९९ । ५३-५४) । साष्टांग प्रणाम विधि से भी यात्राएं की जाती थीं (वंश० १५९ । १०-११) । द्वारिका से आगे सिंध को मलेच्छ देश मानकर विजयोत्सुक राजा भी नहीं जाते थे (वंश० १४९०) अरब आदि देशों में भी जाना धर्म-विरुद्ध माना जाता था । इसी अटक की सीमा को लांघना भी अत्य बन जाता था । (वंश० १४६१ । ७०) अकबर के सम्मुख प्रेषित अपनी सात शर्तों में बूंदी नरेश सुर्जन ने एक शर्त यह भी रखी थी कि हाडा वंशी युद्धार्थ अटक पार नहीं जाएंगे । ग्रहण के समय राजा सपरिवार गंगा-स्नान को जाते थे और दान-पुण्य करते थे (वंश० १७७० । २०-२१) । शूकर-क्षेत्र भी गया और काशी की तरह पुण्य धाम समझा जाता था (वंश० १८९२ । ५८) । चौदहवीं शती के अंत तक आते-आते ऐसे संकेत मिलते हैं कि वृद्ध नृप-जन प्रायः काशी में ही वास करते थे (वंश० १७९३ । ५१-५३ ; १८५५ । ८ ; २०९६ । ६८) मूर्ति-पूजा सर्वत्र प्रचलित थी मध्यकाल में मूर्ति-भजकों के भयसे मूर्तियां भण्डार में बंद रखी जाती थीं (वंश० २१४८ । १ ; २८०३ । २७) । अकबर के समय में भी मूर्तियों का तोड़ा जाना जारी था (वंश० २३२१ । ४०-४१)। औरंगजेब के काल में तो मूर्ति-भंजन और मंदिर विध्वंस बहुत बढ़ गया था (वंश० २८०० । १०) । इस समय हजारों की संख्या में हिंदुओं ने धर्म परिवर्तन कर लिया था (वंश० २८११ । ३८) ।

सामाजिक रीति-नीति—

परम्परा से समाज में ब्राह्मण का महत्व अक्षुण्ण चला आ रहा था किंतु धीरे-धीरे उसका मान घटने लगा (वंश० २४०३ । ९-१२) । फिर जात-पांत की खाई गहरी होने लगी । डोम आदि अस्पर्श्य जातियोंके लिए पृथक कूप-वापिका आदि बनवाये जाने लगें(वंश. १६११ । २०) । विक्रम की १३वीं शताब्दी में ओछी कही जाने वाली जातियों के हौसले बढ़ने लगे (वंश० १६११।२०-२१) राजाओं मे भी ऊंच-नीच की भावना व्याप्त थी (वंश० १३४६।१८) । राजपूतों में अपने पूर्वजों के नाम पर नये गोत्र चल पड़ते थे (वंश० ५०० । १२४-२५) । १२वीं शती विक्रमी से राज-प्रासाद में यावनी रीति-रिवाज घर करने लगे थे (वंश० १५९३।९-१०) । तेरहवी शती तक आते-आते राजपूतों ने पर्दा-प्रथा अपनाली थी ।

म्लेच्छों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने वालों का मान घट जाता था। विचित्र बात है कि राजपूत नरेश यवनों को अपनी कन्याएं ब्याहकर भी यावनी आचरण को अधार्मिक मानते थे (वंश० २७११।१५)। यवन को ब्याही कन्या के साथ भी अयवनत्व का व्यवहार नहीं होता था (वंश० २७६७।११)।

क्षात्र नारियां पातिव्रत्य में ही अपनी मोक्ष देखती थीं। वियोगावस्था में वे पलंग पर नहीं सोती थी (वंश० ८७१-११)। राजाओं में बहुविवाह का प्रचलन था। वे रानियों के साथ ख्वासिनें भी रखते थे (वंश २४२४।५७) राजा के मरने पर यह ख्वासिनें भी सती हो जाती थीं। दुहागिन के पुत्र होने पर उत्सव तो होता था किंतु भोजनादि की व्यवस्था नहीं होती थी (वंश० २२६१।३७)। दुहागिन पुत्रों का आदर भी कम होता था। अविवाहित अथवा निःसंतान मरने वालों को पितर मान कर पूजने की भी प्रथा थी (वंश० १०२८।२४; ११२१।४३; ११३७।२१)। दाढ़ी मूछ मुड़ाए हुए शत्रु को युद्ध के योग्य नहीं समझा जाता था। राजा पृथु इसी कारण से मुधम्वा से युद्ध नहीं करता (वंश० ५३८।७०-७१)। शस्त्रहीन को मारना धर्मविहीन समझा जाता था (वंश० ५३८।६७) वीर अथवा मल्ल-जन अपने विशिष्ट बल को प्रकट करने के लिए पैरों में साकल डाले रखते थे, जो उनकी अजेयता का सूचक था (वंश० ५८२।५८)। पैरों में लंगर पहिनना भी वीरता का प्रतीक था (वंश० १६१२। २२ ; २६६१।२६)। चौदहवीं-पंद्रहवीं शती तक भी कुछ ऐसे राजपूत थे जो युद्ध-मरण को श्रेष्ठ मानकर बिन बात का बैर और युद्ध ठान लिया करते थे (वंश १७७२।१० ; १७८०।५६ ; १७६६।२)।

हल्लू जैसे क्षत्रिय तो मरण को महोत्सव मान कर मृत्यु को ढूंढते फिरते थे (वंश० १७६६।४-५ ; १७६८।१२ ; १८०१।२८-३० ; २६४२।३४)। मरणराग में मस्त कोई-कोई वीर (रोपाल) तो निज मरण से पूर्व ही अपनी सहधर्मिणी को अपने ही हाथों चिता पर चढ़ा कर रणांगण में मरण के लिए समसमाते फिरते थे।

सूत, मागध, चारण आदि का राजसमाज में विशेष स्थान था (वंश १८००।२४-२७ ; २०६७।३७ ; २०८०।५० ; २१५२।२५ ; ३०२२।२५ ; २६।३७)। झूठी कीर्ति अथवा प्रशस्ति-गायक चारण कवियों की कमी नहीं थी। राजा उनका भरपूर उपयोग करते थे (वंश २३४६।२३)। चारण कवियों का पतन हो चुका था। तथापि कतिपय ऐसे चारण-कुल भी थे जो वंश-धर्म सुकवि की उपाधि से विभूषित होते थे (वंश २३४६।५)। सूर्यमल्ल ने अपने पूर्व-पुरुषों का वर्णन ऐसे ही कवियों के अन्तर्गत किया है (वंश० २३४६। ८-२३)। कभी-कभी चारण जन राजाओं के विरोधी बन जाते थे (वंश २३६१ । ७)। आपद्ग्रस्त होने पर राजपूतानियां चारणों की चाकरी में भी रहती थी (वंश० १८४१।२२ ; २०६१।११)।

प्रिय मित्र या सम्बन्धी की मृत्यु हो जाने पर उत्सव उत्तम भोजन आदि बंद हो जाते थे (वंश० २११३।१६)। स्वामी के मरने पर सेवक-जन छाती-माथा कूट-कूट कर प्रलाप करते थे (वंश० १७३४।५८)।

आक्रांताओं के सामने इन राजाओं की दशा भेड़ों की - सी थी। वे स्वयं भागकर दूसरों को भगाते थे और फिर वह तीसरी जगह ही भाग खड़ा होता था (वंश० १४१६ । ५०-५४)।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय राजाओं ने हद दर्जे की कायरता और संगठन-हीनता का परिचय दिया था। पृथ्वीराज चौहान के समय तो पारस्परिक ईर्ष्या - द्वेष एवं झूठा दंभ राजसमाज में दूर तक घर कर गया था। एकता का कहीं नामोनिशान न था (वंश० १३४४ । ११-१८) । असूया भाव इतना प्रबल था कि जैत प्रमार ने दाहिमा की सलाह से पुण्डीर धीर के विरुद्ध शहाबुद्दीन गौरी को भारत-भूमि पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था (वंश० १३६५ । २-२) ।

जब किसी राजा पर बाहरी आक्रमण होता था तभी हिंदू-राजा अपने बैर निकालते थे और उसे नीति की संज्ञा देते थे (वंश० १६८१ ४६-५३) बैर प्रक्षालन के निमित्त बाहरी आक्रांता से मिल जाना आम बात थी (वंश० १६८३ । ६१-६६ ; १६८४ । ७२-७३) । किसी राजा के शिथिल हो जाने पर समीपवर्ती राजा स्वार्थवश उसकी जड़ें खोदने का यत्न करते हैं (वंश० १६११ । १६-२०) । इस प्रकार क्षत्रिय राजाओं की *वीरता पारस्परिक विनाश तक ही* सीमित थी (वंश० १६३० । ३१) ।

रजवट की ह्रासोन्मुख अवस्था—

सिद्धराज जयसिंह के बाद रजवट ह्रासोन्मुख हो चला था। अब राजपूतों को प्रणाम और वैभव प्यारे हो गए थे जैसा कि झाला कुबेर के उदाहरण से स्पष्ट है (वंश० ६५७१ । १०-११ ; १८८२ । २२ ; १८८४ । २६)। आक्रांता से भयभीत होकर अब राजा दीनता प्रकट करने लगे थे और कभी-कभी तो स्थिति आत्मघात तक पहुंच जाती थी(वंश० १५४० । २-३५ । १५४३ । ५-६) । युद्ध में स्वामी-रक्षा की भावना भी शिथिल हो गई थी । सेवक जनों में प्राण-मोह बढ़ गया था (वंश० १५७१ । १) ।

नासिरुद्दीन के समय हिंदू राजाओं की दशा गुलामों की सी हो गई थी (वंश० १५६६ । २२ ; २४, २५) । अलाउद्दीन खिलजी के काल तक आते आते तो राजपूती खून का उबाल तो एकदम ठंडा हो गया था (वंश० १७०२ । ११-१६) । तैमूर के समय विदेशी आक्रांताओं के प्रति विरोध की भावना ही मर चुकी थी। हमला होने पर राजाओं में भगदड़ मच जाती थी (वंश० १८६७ । ८) । इस भगदड़ में हिंदु राजा लूट मार करने एवं पारस्परिक बैर चुकाने के अवसर देखने लगे (वंश० १८६८ । ६-२०) । इस पतितावस्था के बीच भी, देश रक्षा की भावना से उद्वेलित कुछ राजपूत वीर धूमकेतु की भांति कहीं-कहीं प्रकट होते थे और पराक्रम का जौहर दिखा कर उल्कापात की भांति नष्ट हो जाते थे।

विक्रम की सत्रहवीं शती के उत्तरार्ध में क्षत्रियों का पतन इस सीमा तक पहुंच गया था कि उनमें से अधिकांश हल भोगी बनकर ही रह गये थे (वंश० २१२१ । ५१) । जो राजा शेष थे उनमें घोर नैतिक [illegible] था (वंश० २१३७ । १२-१३ ; २१३८ । १८) । राजपूत [illegible] गहरा हो चला था (वंश० २१६७ । [illegible]) और उमरावों के बीच परस्पर सौहार्द

भावना समाप्त-सी हो गई थी। राज-समाज पर मुगलिया प्रभाव बढ़ने लगा था। बादशाहों की भांति वे भी अपना परिकर-वर्ग साथ लेकर चलने लगे थे (वंश० २३०० । ११ ; २८३५ । ४४) मुजरे की रीति तो पहले ही लागू हो चुकी थी। किंतु अकबर के समय से यवनों को हिंदू कन्याएं देना, नौरोज में हिंदू बहूबेटियों का जाना, बादशाह के निकट निःशस्त्र होकर रहना आदि क्षत्रियों को डुबाने वाली रीतियां कायम हो चुकी थीं (वंश० २२३४ । ११-१२ ; २२६५ । १७-२८) वस्तुतः अकबर के समय राजाओं का दर्जा ग्राम पति का-सा हो गया था (वंश० २२४३ । १०)। विदेशियों के समर्थन में पिता पुत्र के विरुद्ध शस्त्र उठाता था (वंश० २३३८ । १८-१६)। बादशाह के किसी परिजन की मृत्यु होने पर हिंदू राजा सिर मुंडवाते थे (वंश० २३१५ । ३६-४०)। ऐसे गुलाम राजाओं को कवि ने षंढ (हीजड़ा) कहा है (वंश० २३१५ । ४१)। राजपूत अपना धर्म भूलकर (वंश० २६१० । ४१-४३ २६६२ । ३८२७६८ । २४) और मुसलमानी नाम रखने लगे थे (वंश० २५५६ । १८)। औरंगजेब के समय तो रजवट का जनाजा ही निकल चुका था (वंश० २८७० । ३६)। इस समय लोभी राजपूत यवन-धर्म में धड़ाधड़ दीक्षित हो रहे थे (वंश० २८२० । ३१)। कुलद्रोही कायर राजपूतों की संख्या बढ़ती जा रही थी (वंश० २४३६ । ८-१४ ; २७०५ । ६०-६२ ; २६६६ । १५-१८) किंतु पुरुषों की अपेक्षा राजपूत नारियों में फिर भी वीर दर्प शेष था।

सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति—

जन साधारण की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। राज्याधिकारी महाजनों से सांठ-गांठ करके कृषकों पर अत्याचार करते थे (वंश० ८६१ । १२)। व्यापार वस्तु-विनिमय-प्रधान होता था (वंश० ११५५ । ५५)। चोर-डाकुओं का सर्वत्र जोर था (वंश० २२४४। ६२-६४; २३-२४ । ३; २३७१ । १८; २४७१ । ६१-५३; २५६८ । ४६)। पठान बादशाहों की सेना गो-वध द्वारा अशांति फैलाकर (वंश० १५६६ । २७-३१) असहाय प्रजा को लूटती थी (वंश० १६०० । ३२)। राजा-जन पारस्परिक शत्रुतावश मार्गों को तोड़ भी डालते थे (वंश० ११३३ : ३-६)। जन-सामान्य की आर्थिक अवस्था अत्यन्त हीन थी। इसीलिए राजा लोग छोटे मोटे अवसरों पर भी दान करते थे (वंश० २०२२ । ६२)। भिक्षुओं की संख्या भी कम न थी (वंश० २५५६ । १३)। प्रजा मूर्ख और गंवार थी (वंश० २२७६ । २८)। लोगों में श्रम के स्थान पर हरामखोरी की भावना आ गई थी (वंश० २२७७ । ३२-६५)। अकाल के समय राजा जन-कल्याण के कार्य भी करते थे (वंश० १६६४ । ३१-४०)।

समर – रीति —

युद्ध-रीति के वर्णन सर्वत्र युद्ध-प्रकरणों_में बिखरे हुए हैं। कवि ने युद्धों का वर्णन प्राचीन रीतियों एवं योजना के आधार पर किया है। उसी से युद्ध रीतियों का पता चलता है। जैसे युद्ध-काल शरदऋतु से प्रारम्भ होता था और वर्षागमन तक चलता रहता था (वंश० १२६६ । २२)। सिकन्दर के समय तक तो सेनाएँ दिन-दिन में युद्ध करती तथा रात्रि में अपने डेरों में आ जाती थीं। वहां सब भट, मन्त्री आदि मिलकर भोजनोपरांत

युद्ध-मन्त्रणा करते थे। मन्त्रणा में एक मत स्थिर कर लेने के पश्चात् सब विश्राम करते थे (वंश० ११७५ । ९८)। बीसलदेव के समय तक भी यही रीति थी। व्यूह-रचना भी होती थी। प्रातः से सायं तक युद्ध जारी रहता था, तत्पश्चात् सेनानायक शिविरों में मंत्रणा और घायलों की सुश्रूषा करते थे (वंश० १२६६ । २८-३०)। युद्ध में पराजय की आशंका जानकर नीतिपूर्वक कपट-जाल भी रचे जाते थे। जैसे बीसलदेव की चारित्रिक दुर्बलता का लाभ उठाकर चालुक्य ने कपट-रचना की थी (वंश० १२६६ । ३०-३८) ऐसी कपट-नीति युद्ध का ही एक अंग होती थी। महाभारत के युद्ध में भी ऐसी कपट नीति के उदाहरण कम नहीं हैं। विक्रम की दशवीं शती तक और उसके बाद भी औरंगजेब के समय तक कपट-नीति युद्ध-रीति का आवश्यक अंग रही है। युद्ध व्यक्तिप्रधान होता था। एक वीर दूसरे वीर से नियुद्ध विधि से युद्ध-रत होता था तथा दूसरे वीर एक के पतनोपरांत क्रमशः युद्ध-रत हो जाते थे (वंश० १३२४ । २६-२९)। कवि ने शस्त्र-युद्ध के वर्णन इसी रीति के अन्तर्गत किये हैं। सेनापति या राजा के भागने पर पराजय मान ली जाती थी। राजा के पलायन पर प्रायः सेना भी पलायन कर जाती थी (वंश० १३२५ । ३०-३१)।

रतिवाह की प्रथा भी थी तथा उसके अवरोध में चौकी फिरने की रीति थी (वंश० १९६६ । ३३)। इन रीतियों का संकेत पृथ्वीराज के समय से मिलता है। शत्रु-सेना को परास्त करने तथा हानि पहुंचाने के उद्देश्य से अथवा प्रत्यक्ष युद्ध में विजय पाने की आशा न होने पर रतिवाह किया जाता था।

विजय के पश्चात् अथवा पलायन के बाद शत्रु-शिविरों को लूटा जाता था, घायल वीरों की खोज की जाती थी। मिलने पर उन्हें सुखासनों में बिठाकर शिविर में लाया जाता था (वंश० १७९० । ३४) और सुश्रूषा की जाती थी। विशिष्ट वीर सामन्तों को सुरक्षा-सेना के साथ केन्द्र पर पहुंचाया जाता था (वंश० १३७५ । २०-२१)। शत्रु-बन्दियों के साथ सदय व्यवहार किया जाता था। उन्हें कैद के पश्चात् आदर सहित मुक्त कर देने की रीति राजपूतों की अपनी विशिष्टता थी (वंश० १४०३ । ३५)। जब कभी शत्रु-दल के लोग पलायन करके अपने आहत वीरों को युद्ध क्षेत्र में छोड़ जाते थे तब विजयी भी उन्हें खोजकर उनकी सुश्रूषा करते थे (वंश० १५५७ । ३)। शत्रु-पक्ष की स्त्रियों की सुरक्षा की जाती थी। (वंश० १६२७ । १६)। यह विशेषता राजपूती वीरों की ही थी। मध्योत्तर काल में यह मर्यादा लुप्त हो गई थी। इसी कारण बाद में ऐसे आसन्न संकट को देखकर राजपूत अपने रनिवास को अपने ही हाथों काट कर समाप्त कर देने में बुराई नहीं मानते थे (वंश० २८४७ । ५६-५७)।

युद्ध के मोर्चे पर प्रहर रात्रि रहते बंदी-जन सेना को जगाते थे (वंश० १४२१ । ११-१२)। बंदी, मागध आदि वीरता के गीत गा-गाकर योद्धाओं में मरण राग का विस्तार करते जाते थे (वंश० १४५६ । ४२)। यह रीति सैनिकों में मरण-राग की मस्ती बनाए रखने के उद्देश्य से प्रचलित थी।

शरद-काल से युद्धारम्भ मानने की रीति इतनी व्यापक थी कि राजा-जन वर्षाकाल में

आक्रमण के भय से निश्चिंत रहते थे। सैनिक वर्षाकाल में छुट्टी मनाते थे या घर पर कृषि-कार्य करने चले जाते थे। उस समय दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था शिथिल रहती थी (वंश० २७८६। ३०)। प्रायः अन्न-भण्डार खाली हो जाता था और बारूद आदि भी समाप्त हो जाती थी। इस कमी का लाभ उठाने वाले भी वर्तमान थे (वंश० २७८१।२१)।

मध्यकाल में जब तोपों अथवा बारूद-यंत्रों का प्राधान्य होने लगा तब इन युद्ध-रीतियों में भी परिवर्तन हुआ तथापि राजपूतों ने लीक नहीं छोड़ी। विदेशियों ने तो येन-केन-प्रकारेण अपनी विजय को ही अभिप्रेत माना तथा नयानय के विवेक के बिना भी युद्ध लड़े किन्तु राजपूत ऐसा न कर सके। उनकी पराजय में परम्परागत रीति-निर्वाह भी कुछ सीमा तक तो उत्तरदायी माना ही जाएगा।

अध्याय १४

वंशभास्कर में कवि की बहुज्ञता

वंशभास्कर एक ऐसा विराटकान्तार देश है जिसमें वेद, पुराण, कथा, आख्यान, धर्म-दर्शन, इतिहास, संस्कृति, ज्योतिष-गणित आदि विषयों के अनगिनत सघन-कुंजों की एक पूरी सृष्टि खड़ी है—जिस पर नाना-ज्ञान-विज्ञान के लता-समूह अपने समस्त विस्तार-वैभव के साथ आच्छादित है। वस्तुतः वंशभास्कर एक संहिता-ग्रंथ है जिसमें अपने युग के एक षड्भाषाविद विविध-विद्या-निपुण-प्रकाण्ड-पण्डित ने भारतीय ज्ञान-परम्पराओं को चौहान वंश-सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास किया है। इसीलिए उसने इसे—'वंश भास्करामिधविविधबाहुजवंश-विभक्ति विशिष्टवेदनोयवर विद्याविपयक'- कहते हुए गुण-ज्ञान-विद्या-विहीन दंभी जनों से इस ग्रंथ से दूर रहने का आग्रह किया है (वंश ८७। ५)। मूलतः वंश-प्रकाशक-ग्रंथ होने के कारण वंशभास्कर में विविध-विषयों का समावेश आनुषंगिक रूप से हुआ है। कवि ने विवक्षित विषय के मध्य प्रसंग निक्षेप करके अपनी बहुज्ञता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में कहीं तो वर्ण्य-विषय वांछित ज्ञान-सभार से सपुष्ट होकर उजागर हो उठा है और कहीं पाण्डित्य के तले दबकर रह गया है, तथापि सूर्यमल्ल ने इस बात का निरंतर यत्न किया है कि चौहान वंश के चौखटे में ही विविध-ज्ञान-सामग्री का समावेश हो जाय। विविध विषयों के अधिकारी विद्वानों द्वारा ब्रह्मा के समक्ष अपने-अपने विषय की साक्षी में धर्मद्रोही तथा देव दाहक दैत्यों के दमन का औचित्य प्रतिपादन कराने के मिस सूर्यमल्ल ने भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रायः सभी प्रमुख शाखाओं का वंशभास्कर में सूत्र-बद्ध आकलन कर दिया है। इस ज्ञान-राशि की बानगी देखिये—

१ ज्योतिष-गणित—सूर्यमल्ल ज्योतिष और गणित का निष्णात पंडित है। वंशभास्कर के रचनारंभ-समय में व्यतीत कल्प-समय तथा लग्न-ग्रहादि का ज्योतिष गणना के आधार पर उसने नितांत ही सूक्ष्म, किंतु विस्तृत, अध्ययन (वंश ७०--८६। १-८६)। प्रस्तुत करने के उपरान्त ग्रंथ-रचना का सही-सही काल निर्धारित किया है यथा—

> विक्रम सक हय अंक अट्ठ अवनी मित आवत।
> सालिवाह सक नयन तर्क हय भूमि सुहावत ॥
> षट्ट राध सित तीज घटी मुनि गुन पल द्रुव कर।
> विषिम त्रिकु रु गज पंच छठो युति तीस रु दस पर ॥
> उतिल कृसानु ससि कृत बिसय दिन दत रु रदमान पर।
> मध्याह्न इष्ट आरम्भ किय लग्न कुलीर प्रबंध वर ॥ ८५
>
> ग्रहलाघव अनुसार अभ्र सर भेद अहर्गन।
> अवि पर रवि कवि कुज रु इदु इस केतु मृगादन ॥
> तुला जीव अलि मंद कुंभ आश्रित सिंहीसुत।
> सोमनंद थित सफर जन्म निज भाग भोग जुत ॥

हय पंच अर्क मित जवन सक द्वैअन ससि वेद चुनि ।
तिहि काल सुकवि आरंभ किय अमलवंश उतपत्ति कृति ॥

—वंश० ८५-८६ । ८६

इसी प्रकार चहुवाण-जन्म कुण्डली के हेतु सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों की ठीक ठीक स्थिति स्पष्ट करने में कवि ने पूरे तीन मयूख (वंश० द्वितीय राशि-मयूख १४, १५, १६) लगा दिये हैं ।

गर्ग मुनि के द्वारा दैत्य-दमन की औचित्य सिद्धि के प्रसंग में "ग्रह-गति-ज्ञान" का प्रदर्शन हुआ है—यथा—

गर्ग कह्यो तिन्ह नासको, निश्चय हमहि न आहि ।
गनित बिना बहु रासिगत, निश्चित ज्यों ग्रह नाहि ॥ ३४

ज्यों चल केंद्र कुजादि जुत, ससि रवि के नहि संग ।
त्योंहि करत यह लोक तजि, भुवनन को सब भंग ॥ ३५

उदय अस्त भारादि के, याही केन्द्र अधीन ।
तिनके बस भवभूत त्यों, किय बिधि सुन विधि कौन ॥ ३६

कोन गमी गहि बर दयो, कहँ परै भ्रम दाग ।
रवि सपात भुजलव बिनु न, निश्चित ससि उपराग ॥ ३७

ते सबहू मनु मानसों, ज्यों ज्यों पावत ह्रास ।
त्यों त्यों अति उपराग अरु, लव न रहे सग्रास ॥ ३८

त्योंही तिन पर रावरो ज्यों ज्यों अल्प प्रकोप ।
त्यों त्यों वे अति ही बढ़त, लाज धम करि लोप ॥

—वंश० २९३-२९४ । ३९

२. संगीत एवं काव्य-शास्त्र—अपने समय का कुशल वीणा वादक एवं कवि होने के नाते सूर्यमल्ल को संगीत और साहित्य शास्त्र दोनों की अच्छी परख थी । दैत्य-दलन प्रसंग में आचार्य भरत के माध्यम से उसने अपनी एतद्विषयक जानकारी का अच्छा परिचय दिया है—

(क) संगीत—

भरत कह्यो बर एरिसो, दै सरजहु जिन भीति ।
गुरु लघु लघु गुरु ज्यों करहु, ताल चाचपुट रीति ॥ ४०

दैत्य कुली इक स्वरन बिच, है निषाद सुहि तिक्ख ।
वे दैत्य हि बरवृद्ध तव, क्यों न घटै श्रुति सिक्ख ॥ ४१

उच्च नीच अरु नीचकों उच्च करहु जिन देव ॥
ज्यों न्याय तिन्ह बर मिलत, ध्यावित गमक ही एहे ॥ ४२

घर दै बोहि बुरो सदा, जानि दुष्टतम जाति।
ज्यों प्रातहि कपिकानड़ा, अरु भैरव मधराति ॥ ४३

गान माँहि ज्यों मंस स्वर, पुनि पुनि आवत जात ॥
वे खल त्यों सब धर्म को, पुनि पुनि करत निपात ॥ ४४

आरोही स्वर तैं अधिक, उच्च बढ़े लहि दाव।
कबलग तिनको रक्खिहो, वाईलों विरभाव ॥

—वंश० २६४-२६५ । ४५

(ख) साहित्य—

नित्य दोस ज्यों उर दहत, काव्य बिगारन हार।
यों ही सब जग को अहित, दंस्यन को उपकार ॥ ४६

ज्यों विभाव अनुभाव, व्यभिचारी मिलि रस व्हैहि।
त्योंही दुष्ट रु इष्ट तस, मिलै विनासक ह्वैहि ॥ ४७

बयो कहाँ लग नहिं फलै, सिंचमान विस रुक्ख।
अलकार परिवृत्त जिम, दै अर लीनों दुक्ख ॥ ४८

विरत भये अभिधादि ज्यों, लखत व्यंजना ओर।
त्यों हत उद्यम हमहु सब, चहत रावरो जोर ॥ ४९

सुचि अरि बीर भयानक रु उग्र करुन बीभच्छ।
करन भयानक हास्यके, ज्यों ए उभय विपच्छ ॥ ५०

करुना रस के सत्रु जिम, हास्य रस रु श्रृंगार।
सुचि दारुन हुत रौद्र के, ए तीनहिं अपकार ॥ ५१

सांत भयानक बीर के, दोसी दुव पहिचानि।
सुचिरस अरि बीभच्छ को, रहन दै न तिहिं रंच ॥ ५२

बैरी कविजन चित्तके, ज्यों अर्थादि अपुष्ट।
त्यों सब बेदबिधानके, दुवहि बिरोधी दुष्ट ॥

—वंश० २६६-२६७ । ५४

(३) योग तथा आयुर्वेद—योग तथा आयुर्वेद विषयक अपनी जानकारी को सूर्यमल्ल ने पतंजलि की वाणी में अभिव्यक्त किया है—

(क) योग—

पुरुष बुद्धि संजोगहि, होवत हेय निदान।
दुष्टसंग हम आपकों, उचित न प्रकट प्रमान ॥ ५६

संजम के जयके बिरह, होय न प्रज्ञालोक।
दुष्टनके जय बिनु कहूँ, न अद्‌भाव नय लोक ॥

—वंश० २६७ । ५७

... ...

त्यों ही के प्रान बपु भिन्न, मरौं जग भव्य ॥

याते मति सुखकाज पै, चित्तवृत्ति हंतव्य ।

—वंश० २६८ । ६६

(ख) आयुर्वेद—

धर्म प्रवर्त्तक दुष्ट दमि, इतर अन्य सम कोन ।

ज्यां औषध भूलोक पर, पारद सम दूजो न ॥ ६०

साधु भक्त सबही भजे, बढ़त खलन को वोर ।

अमृता मधु घन हरर तैं, ज्यों विसमज्वर घोर ॥ ६१

उपसय रूप उपाय कछु, हेरि अनामय होत ।

होहु मंत्र कृमि खलन पर, तक्र राजिका लोन ॥

—वंश० २६८ । ६२

४ धर्म-दर्शन—धर्म-दर्शन-ज्ञान का प्रतिपादन याज्ञवल्क्य मुनि के माध्यम से किया गया है (वंश० २६८ । ६६ । ६३-६६) । बुधसिंह के चरित्र में भी वेदान्त दर्शन सूत्रात्मक शैली में संकेतित हुआ है—

मनतें मूढ जुदे नहे, जियन मरन कृत आनि ।

सघन पंक गहि मरिय सब, अबक सुता विष मानि ॥ १०३

सुनों रे सयाने त्रिगुनन को तमासो आहि ।

वस्तुतें विचारें ज्ञान ज्वलन प्रजारें हैं ॥

सिद्ध कौन साधन कहाँ मैं कोन रीति गहै ।

कारनन काज भी दुहूं मैं धुर धारें हैं ॥

चाहि जे न आनें चाहि सत्य करि मानें यातें ।

भूठे सुख दुक्ख मानि बंधकों बिसारे हैं ॥

—वंश० ३२३८-४६ । १०४

अष्टमराश्यान्तर्गत रामसिंह-चरित्र में वैदिक, जैन, बौद्ध, आदि के धर्म-दर्शन का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

५ शकुन शास्त्र—शकुन शास्त्र का आकलन ब्याह-कथन के मिस हुआ है—

कौसल कह्यो जिम सब सकुन, छिपकातें दबिमात ।

त्रिभुवनकों आक्रम्य जिम महलन आमुर मात ॥

—वंश० ३०१ । ७८

६ द्रव्य-विज्ञान—द्रव्य-विज्ञान के मर्म वेत्ता के लिए कणाद ऋषि का आश्रय लिया गया है—

आत्मा बिच जिम बोध सीत सपरस जल बिच जिम।
संख्यादिक गुन पच रहत नव द्रव्य माहि तिम ॥
ज्यों परत्व अपरत्व भूमिमुख चउ भूतन में।
मह मन में यों सहजसिद्ध खलमति खल जन में।
चउबीस गुनन बिच बुद्धि जिम सब बिवेक साधन लसत।
साधन समस्त से सुवधर्म को दुष्टदमन सबकें सुमत ॥ ८२
द्रव्याकि छ पदार्थ ही, ज्यों सासत सब ठोर।
यों मयतैं भूतन भई, आसुरमय सब ओर ॥

—वंश० १०३ । ८४

७ जल एवं भुगर्भ-विज्ञान—जल एवं भूगर्भ-विज्ञान का प्रतिपादन सारस्वत ऋषि से करवाया गया है—

रक्त भू में खोरो स्वेत कपिल में खारो जैसें,
स्याम नील भूमें कहें मिष्ट जल जानिये।
भूमि खनत जो सिला टंकहु गिनैं न तापैं,
अनल प्रजारि कें सवएं सिहि मानिये।
बदर कुलत्थ कल्क तक्र सुरा कांजिक मे,
सप्त दिन रात्रि ताको सेक तहं ठानिये ॥
सींचे वा सुधा को जल तो जो भंग पावै अंसैं,
दुष्टन में हृत्या तिन्ह भंग मत मानिये ॥ ११३
कटुक कुगंधि खार आविल बिरस नीर,
कूप में जो व्है तो उपचार यह प्रेरिये।
आमलक कतक उसीर राजकोसातक,
अर्जुन पयोदन को छोद तहं गेरिये
तो जल प्रसन्न लघु सुरस सुगंधि होत,
यों वा समुझाइ मति दुष्टन की फेरिये ॥

—वंश० ३१० । १४

८ वनस्पति-शास्त्र—वनस्पति शास्त्र के लिए कण्व मुनि को चुना गया है और उनके द्वारा वृक्ष, लता, पौधे आदि को पनपा कर फूलने-फलाने के विविध उपाय बतलाए गए हैं। वृक्ष को पनपाने का एक नुस्खा देखिये—

कोल मृग मच्छ खड्गी छगल उरभ्रनके,
भेद पल मज्जादिक जथा भाग लीजिये।
एक करि नीर मांहि चुल्ली पैं पकाइ तामें,
दुग्ध घृत माहिष भो सीभे मास दीजिये।

तिल सम भूरि द्वारि जो तजैं न धन भाखता,
तो मन तथ्य द्वारि लाल द्रव कीजिये ।
भोर भरि एक पल गोमय में राखैं बनैं,
दूरण सो सर्वतइ पोषक पतीजिये ।

—वंश० ३१२ । ११८

९ भूतल-गत-धन-संधान-विद्या—भूमि-तल में गड़े हुए धन का पता बताने के लिए जातुकर्ण्य माने गये हैं । उनका कहना है कि ऐसी भूमि में जहां शीत और वर्षा काल में गोहिली-सर्प और बिच्छू वास करें, जहां ईंधन के अभाव में ही आग जलती देखी जाय, जहां दल न उग कर बेले के काटे पैदा हों, जहां बिना वजह ही पानी में भौंरे पड़ें और जहां दो माथे के कमल तथा ताड़ वृक्ष हों वहां की भूमि में निश्चित ही धन होता है । —

जातूकर्ण्य बोलि जंहं गोधा सर्पवृश्चिक ए,
सीतकाल में वा वरखा में वा धनें रहैं ।
इंधन रहित जंहं पावक ज्वलित होइ ।
खंजरीट भूपे बंहं सुरत तनें रहैं ॥
अप्ररोह तरु के प्ररोह कदली के कंद,
नीर में अकारन ही भ्रमन बनें रहैं ।
द्वै सिर के पंकज वा ताड़ जंहं होइ तंहं ।
भूमें निधि होइ ताहि कोबिद सनें रहैं

—वंश० १२० । १३८

१० माणिक्य-विज्ञान-माणिक्य-परीक्षण, भेदोपभेद, शुभाशुभ-लक्षण, रंग-कांति आदि का सूर्यमल्ल ने बड़ा गंभीर एवं सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है । माणिक्य ज्ञान का आकलन दैत्य-दलन प्रसंग में भी हुआ है और रामसिंह चरित्रान्तर्गत राजधर्म वर्णन में भी । जरा पन्ने की परख कीजिये —

पुनि गुरुता स्निग्धता विमलपन, देखहुं पहु सप्तहि अब दूखन ।
लेइ रूक्षता रूक्ष कहावत, पिटकन जुत सपिटक पद पावउ ॥ ८५

छायाहीन सुमलिन महीधर अश्मगर्भ अश्मर्हि अब अंतर ।
रजजुत नाम सर्करं रविखय दीप्ति हीन ज इम अविखय ॥ ८६

पुनि कल्माष जहां कर्बुर बन, बसु छाया अब सुनहु धराधन ।
सुकसिसु केकि किकीदिवि छद सम काच हरित सैवल सार क्रम ॥ ८७

सिरीषसुम खद्योत पृष्ठ सह, इन सन्निभ बसु छवि मरकत यह ।
कृत्रिम मनिन परिच्छा कहियउ, लाभ उचित निश्चै जिम लहियउ ।

—वंश० ४०८३ । ८८

११ धनुर्विद्या—निसर्गतः युद्ध का कवि होने के कारण सूर्यमल्ल को शस्त्रास्त्र का

भारी ज्ञान था। दैत्य-दलन-प्रसंग में परशुराम-कथन के बहाने उसने अपने धनुर्विद्या संबंधी ज्ञान का निरूपण किया है—

पट्ट सूत्र जो न तो हरिन गो महिष सिरा,
तिनके प्रभाव चर्म्म अस्त गोकरन के।
तेहु नातो पक्क बंस छल्लो शिवमल्ली चोंच;
भाद्र में वा गुन इम्ह से न अपरन के।
सर नर पीछे पूल जोग्य दृढ भेदिबे के,
अग्गे पूल नारी दूरपात बितरन के।
क्लीब बान सर्व सम लछ्यके उचित ऐसें,
दैत्यन से और कोन नासक नरन के ।। १०७

... ...

प्रथम तैल बहु पाइ दुष्ट सस्त्रहिं बहोरि इम।
अर्क दुग्ध हुड श्रृंग भस्म मूसक पुरीस तिम ।।
पारावतज पुरीस लै र इम्ह करि करि लेपित।
तैल मथित को पान बहुरि तिहिं देत अवेपित ।।
सस्त्र सु बहोरि करि सानसित पटकहु जँहँ तँहँ उपल पर।
नन लहत भंग तिम खल हनन रचहु उपाय अमोघ अर ।।

—वंश० ३०७-८ । १०६

१२ शालिहोत्र—अश्व-विद्या का प्रतिपादन शालिहोत्र मुनि द्वारा करवाया गया है (वंश० ३०४ । ८६-६४) । रामसिंह-चरित्र में घोड़ों के शुभाशुभ लक्षणों आदि का विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत किया गया है। एक उदाहरण देखिये—

स्वेत चरन मुख सप्ति अंग जबूफल आकृति।
मल्लिकाक्ष वह महत भद्र वर्द्धक नृप आकृति ।।
स्वेत अंग जो सप्ति स्याम कर्ण सु अति सुभ फल ।
पय मुख केसर पुच्छ बच्छ सित सो बसु मंगल।
आगोधि बरन अरु चउ चरन सित सु पचकल्यान हय।
ए सुभ रु सिचउ पय असित जमदूत सु गेरत अजय ।। १२०
रोम भिन्न व्है रंग में, असुभ सु पुष्पित आहि।
भस्मवर्ण तुरगहु भयद तजत महपति ताहि ।।

—वंश० ४०६१-६२ । १२१

१३ हस्ति-परीक्षा—हस्ति परिक्षा सम्बन्धी ज्ञान के लिए पालकाप्य मुनि आये गये है। हाथी के शुभ लक्षणों पर दृष्टिपात कीजिये—

मधुनिभ दत जाके जघन बराहसम,
चाप सम बस मद को अल हरित व्है।

रक्त मुख ओठ तालु नैन मधुपिंगल ह्वै ॥
वृत्त कर अग्र मृदु लोम आवरित ह्वै,
वृत्त पीन कंधरा पयोद सम बृंहित ह्वै ।
सप्त कर ऊंच मद सुरभि क्षरित ह्वै ।
नखर अठारह वा बीस जैसो जा नृप कै,
मद्गज होइ तासों दुर्जन दरित ह्वै ॥

—वंश० ३११ । ११६

१४ वृषभ, गौ, अजा, श्वान शुभाशुभ-लक्षण— इस विद्या का कथन पाराशर करते हैं । वृषभ के शुभ लक्षणों का अवलोकन कीजिये—

पारासर बोले जाके अरुन मृदुल ओठ,
जिव्हा तालु ह्रस्व कर्ण सुंदर उदर हैं ॥
पृष्ठ दृढ तुल्य जंघा संहत अरुन खुरखुर,
व्यूढ उर पुष्ट रु बड़ी कुकद वर हैं ॥
अरुन अपांग अति उच्छ्रित मृगेन्द्र लख,
सास्ना मृदु अल्प मूलों पुच्छ को प्रसर हैं ॥
ताम्र लघु सृंग त्योंही स्निग्ध तनु लोम चर्म,
जो वृषभ ऐसो सो सदाही सुभकर हैं ॥

—वंश० ३१४ । १२२

१५ आयु-प्रमाण— आयु-प्रमाण का कथन गृत्समद मुनि के माध्यम से हुआ है यथा—

गृत्समद बोले नर गज को परम आयु,
व्योम दृग भू मित समा रु पंच दिन है ।
अश्व को बत्तीस अब्द भाख्यो मौलि रासभ को,
प्रतिकृति मान वृक्ष सैरिभ को जिन है ॥
बस्तन उरभ्रन की अष्टि मित अब्द संख्या,
श्वानन के आयु की त्यों अब्द संख्या इन है ।
ऐसेन के आयु की कहीं सौं अब्द संख्या ऐसे,
कहतुं किरिचि कृपा लोक पै है कि न है ॥

—वंश० ३३१ । १७२

१६ काम-शास्त्र— दैत्य-दमन प्रसंग के अतिरिक्त अध्याय बाईसवीं में प्रमत निकाम कर कवि ने कामशास्त्र सम्बन्धी अपने ज्ञान के प्रदर्शन रुचि दिखलाई है (वंश० १०४ । ११-६६) । श्रीकृष्ण-चरित्र में आलिंगन, चुम्बन, नख-दान, दन्त-दान, सीत्कार आदि का कामसूत्र के अनुसार विशद वर्णन हुआ है (वंश० १०८ । २७-२८) ।

१७ सामुद्रिक-शास्त्र— प्रसंग-विशेष करके सामुद्रिक शास्त्र सम्बन्धी अपने ज्ञान का कवि ने इस ग्रंथ में समाहार कर दिया है। यथा—

> सो बाल सिवा किन्नौ सजीव, उठ्यो सुधारि बपु छबि अतीव ॥
> षउ ह्रस्व त्रि विस्तृत सप्त रक्त त्रि गभीर छ उन्नत बपु बिभक्त ॥
>
> —वंश० १०६१। १७४

१८ राज-धर्म-वर्णन—राज-धर्म से परिचित कराने के लिए 'रामसिंह चरित्र' में सूर्यमल्ल ने राज्य के सातों अंगों—राजा,अमात्य, मंत्री, कोष, देश,गढ़ और सेना का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत सैन्य, शस्त्र, राज-प्रकृति, दुर्ग-विद्या, संधि के प्रकार विरोध-विभेद, अभियान-यात्रा, आश्रय-रीति आदि नाना बातों का सांगोपांग लेखा प्रस्तुत किया गया है।

१९ भाषा-व्याकरण छंद-ज्ञान—सूर्यमल्ल भाषा-शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित है (दे० भाषा विवेचन) व्याकरण में उसकी बड़ी गति है। इसी प्रकार छंद-शास्त्र में भी वह निष्णात वंशभास्कर इसका प्रमाण है। दैत्य-दलन प्रसंग में उसने अपने एतद् सम्बन्धी उत्तम ज्ञान का परिचय दिया है—द्रष्टव्य वंश० व्याकरण २६६।६७, छंद-३०५+७। ९९-१०५ प्राकृत भाषा ३१८-१९। १३५-१३७

सहायक ग्रन्थ-सूची

(क) सूर्यमल्ल की रचनाएं

१ वंशभास्कर — उदधिमंथिनी टीका

— कृष्णसिंह बारहट

२ वीर सतसई — संपा० डा० कन्हैयालाल सहल

३ बलवद्विलास — (हस्तलिखित)

४ छन्दोमयूख — (हस्तलिखित)

५ रामरंजाट — (हस्तलिखित)

६ धातु रूपावलि — (हस्तलिखित)

७ प्रकीर्णक कृतियां — (हस्तलिखित)

(ख) चरित-काव्य

८ महाभारत — (गीता-प्रेस)

९ रघुवंश — (कालिदास)

१० बुद्धचरित — (अश्वघोष)

११ पद्मावत — (जायसी)

१२ पृथ्वीराज रासो (चन्दबरदाई)

१३ सूरजप्रकाश (कविया करणीदान)

(ग) वीरकाव्य संबन्धी समीक्षात्मक ग्रंथ

१४ वीरकाव्य—डा० उदयनारायण तिवारी

१५ हिंदी वीरकाव्य—डा० टीकमसिंह तोमर

१६ डिंगळ में वीररस—डा० मोतीलाल मेनारिया

१७ वीर-रस—बटेकृष्ण

(घ) साहित्य के इतिहास

हिंदी साहित्य का इतिहास—डा० रामचन्द्र शुक्ल

हिंदी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुंदरदास

मिश्रबंधु विनोद—मिश्रबंधु

हिंदी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिंदी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा

हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास—ना० प्र० सभा काशी

संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय
संस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला
अपभ्रंश साहित्य—हरिवंश कोछड़
पालि साहित्य का इतिहास—भरतसिंह उपाध्याय
कविरत्नमाला—मुंशीप्रसाद
संस्कृत लिट्रेचर—मैकडोनल
ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिट्रेचर—विन्टरनित्ज
एनशियंट हिस्टोरीकल ट्रेडिशन्स—पार्जीटर

साहित्यशास्त्र

साहित्यदर्पण—
काव्य-प्रकाश—(संपा० आ० विश्वेश्वर-डा० नगेन्द्र)
हिंदी वक्रोक्ति जीवित – आ० विश्वेश्वर
भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका—संपा० डा० नगेन्द्र

भारतीय काव्यशास्त्र—
काव्य मीमांसा (राजशेखर)—संपा० पण्डित केदारनाथ शर्मा
रसगंगाधर—जगन्नाथ
काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र
साहित्य विज्ञान—डा० गणपतिचंद्र गुप्त
पोइटिक्स—एरिस्टोटल
एपिक एण्ड हीरोइक पोइट्री—बिवसंन

छंद एवं कोष

पिंगल छन्दसूत्र
प्राकृत पैंगल
रघुवर जस-प्रकास—किसना आढ़ा
रघुनाथ रूपक—मंछाराम सेवग
छंद-प्रभाकर—जगन्नाथ भानु
आधुनिक हिंदी-काव्य में छंद-योजना—डां० पुत्तूलाल शुक्ल

छंद-योजना—
छंदोनुशासन—हेमचंद्र
परंपरा—(कोषांक)
हिंदी साहित्यकोष—संपा० डा० धीरेंद्र वर्मा

पाइयसद् महाण्णव—
संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी— शिवराम आप्टे

जस्थानी सबद कोस—सीताराम लालस

मावाविज्ञान-विषयक-ग्रंथ

जस्थानी भाषा—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
रतीय आर्यभाषा और हिंदी
ोरिजनल एंड डेवलपमेंट भ्राव बंगाली लेंग्वेज
रानी राजस्थानी (अनु०)—डा० टैसीटोरी
क्षिप्त राजस्थानी-व्याकरण—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी
जभाषा—डा० धीरेंद्र वर्मा
जभाषा का व्याकरण—डा० धीरेन्द्र वर्मा
जभाषा-व्याकरण—किशोरीदास वाजपेयी
र-पूर्व ब्रजभाषा—डा० शिवप्रसादसिंह
ीतिलता और अवहट्ट भाषा „
हिंदी शब्दानुशासन—किशोरीदास वाजपेयी
हिंदी भाषा का उद्भव और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी
पृथ्वीराज रासो की भाषा—डा० नामवर सिंह
इंट्रोडक्शन टू प्राकृत—ए. सी. वुलनर
लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया, वाल्यूम ६ पार्ट १-२—डा० ग्रियर्सन

राजस्थानी-साहित्य के समीक्षा-ग्रंथ

राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया
राजस्थान का पिंगल-साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया
राजस्थानी-साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी
राजस्थानी-वचनिकाएं—आलमशाह खान
डिंगल-साहित्य—डा० जगदीशचंद्र श्रीवास्तव

अन्य ग्रंथ

आदि-वचनो (गुजराती)—क० मा० मुंशी
प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक—डा० जगदीशचंद्र जोशी
चम्पू-काव्य आलोचनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन—डा० छबिनाथ त्रिपाठी
चिंतामणि—आ० रामचंद्र शुक्ल

इतिहास-ग्रंथ

वीर-विनोद— कविराजा श्यामलदास
राजपूताने का इतिहास (पहली जिल्द)—गौ० ही० ओझा
राजपूताने का इतिहास—जगदीशसिंह गहलोत
बूंदी-राज्य का इतिहास— „ „

कोटा-राज्य का इतिहास—डा० मथुरालाल शर्मा
पूर्व आधुनिक राजस्थान—डा० रघुवीरसिंह
हमारा राजस्थान— पृथ्वीसिंह मेहता
चारण-यश-प्रकाश – कृष्णसिंह बारहठ
करणी चरित्र—किशोरसिंह बार्हस्पत्य
संक्षिप्त चारण ख्याति—मुरारिदान
वीर पराक्रमी हाड़ा राव—मेहता लज्जाराम
उम्मेदसिंह चरित्र— " "
हिस्ट्री आव अर्ली चौहान्स—डा० दशरथ शर्मा
एनल्स एन्ड एंटिक्विटीज आव राजस्थान—कर्नल टाड
ट्रीटीज एंगेजमेंट्स एण्ड समनस—एटिकिसन

पत्र-पत्रिकाएं

राजस्थानी	—	कलकत्ता
राजस्थान भारती	—	बीकानेर
शोध पत्रिका	—	उदयपुर
परम्परा	—	जोधपुर
मरु-भारती	—	पिलानी
मरु-वाणी	—	जयपुर
वरदा	—	बिसाऊ
चारण	—	—

नागरी प्रचारिणी पत्रिका— वाराणसी